वायु-पुराण

(दूसरा खण्ड)



सम्पादक :—
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद् षट दर्शन
२० स्मृतियाँ और अठारह पुराणों के
भाष्यकार



प्रकाशक :

संस्कृति-संस्थान, बरेली

(उत्तर-प्रदेश)

प्रथम बार] सन् १९६७ ई० [मू० ७) रुपया

प्रकाशक :—
संस्कृति-संस्थान
बरेली (उ० प्र०)

*

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

सन् १९६७

*

मुद्रक
वृन्दावन शर्मा
जनजागरण प्रेस, मथुरा।

*

मूल्य ७) रु०

दो शब्द

'वायु पुराण' की विशेषताओं का वर्णन प्रथम भाग की भूमिका में विस्तारपूर्वक किया जा चुका है। इस दूसरे खण्ड में जो महत्वपूर्ण विषय पाठकों को मिलेंगे उनसे पूर्ववर्ती धारणाओं की और अधिक पुष्टि हो सकेगी। सृष्टि, प्रलय, जड़-चेतन पदार्थों का क्रमश: आविर्भाव, मानव-समाज का विकास, अनेकानेक राजवंशों तथा उनकी शाखाओं का वर्णन आदि जो पुराणों का मुख्य उद्देश्य माना गया है, वह इसमें पूर्ण रूप से पाया जाता है। पाठक जैसे-जैसे इस पुराण का अध्ययन करते जायेंगे उनको यह प्रतीत होता चला जायगा कि वास्तव में इस दृष्टि से इस पुराण का स्थान अधिकांश पुराण और उपपुराणों से बहुत ऊँचा है।

इस पुराण के प्रतिपादित विषय को अन्त तक देख जाने और विशेष कर इस दूसरे खण्ड के राज्य-वंशों के विस्तृत वर्णन और सृष्टि तथा प्रलय के बुद्धिसंगत विवेचन को पढ़ने पर हमको उन लोगों की बातों पर कुछ आश्चर्य होता है जो इस पुराण को अठारह पुराणों में न मानकर 'शिवपुराण' का एक अंश मात्र बतलाते हैं। हमको तो इस पुराण को सम्पादन करने पर यह मालूम हुआ कि जहाँ अधिकांश पुराणों के कलेवर का एक बड़ा भाग साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से लिखी गई कथाओं अथवा तीर्थ, व्रत, दान आदि के विधानों से भरा पड़ा है वहाँ 'वायु-पुराण' में इन बातों को कम से कम स्थान देकर उन बातों का ही दिग्दर्शन कराया है जो वास्तव में पुराणों के वर्ण्य विषय माने गये हैं। सृष्टि, जगत और मानव जाति के विकास पर विचार करना ही पुराण रचना का मुख्य उद्देश्य बतलाया गया

है और वह हमको 'वायु-पुराण' मे अन्य पुराणो की अपेक्षा कही अधिक और समन्वयात्मक रूप से दिखाई पडता है।

यद्यपि सभी पुराणो मे अलङ्कार, रूपक, उपमा, दृष्टान्त आदि की लेखन शैली पूर्ण मात्रा मे अपनाई गई है, जिससे कथा के रूप मे अपढ जनता को आकर्षित करके धर्म तत्वो की शिक्षा दी जासके, तो भी इस दृष्टि से विभिन्न पुराणो के स्तर मे बहुत अन्तर दिखलाइ पडता है। अन्य पुराणो ने जहाँ लोगो की रुचि और आकर्षण पर ही अधिक ध्यान दिया है 'वायुपुराण' में तथ्यो को प्रकट करने और प्राचीनता की एक प्रभावशाली झलक पाठको को दिखाने की चेष्टा की है। इसमे विभिन्न राजवशो की वशावलियो का जितने विस्तार के साथ वर्णन किया गया है वह इतिहास की दृष्टि से भी बहुत कुछ महत्व रखता है और अनेक इतिहास लेखको ने उसके आधार पर प्राचीन ऐतिहासिक युगो का निर्णय करने मे पर्याप्त सहायता प्राप्त की है। इसी प्रकार लोक, परलोक, नर्क, स्वर्ग, भुवन आदि का वर्णन इसमे कथा और रूपको के बजाय विवेचनात्मक ढङ्ग से ही किया है, जिससे इसकी गम्भीरता और प्रामाणिकता की वृद्धि ही हुई है। जो पाठक ध्यान पूर्वक इसका अध्ययन करेंगे वे, हमारा विश्वास है कि उपयुक्त निष्कर्षों पर पहुँचे बिना न रहेंगे।

--सम्पादक



विषय-सूची

अध्याय		पृष्ठ-संख्या

अध्याय		पृष्ठ संख्या
५६	कार्तवीर्य अर्जुन उत्पत्ति—	
	कार्तवीर्य अर्जुन द्वारा नाना द्वीपों की विजय, रावण को बंदी बनाना, वशिष्ठ द्वारा शाप दिया जाना।	२२६
५७	ज्यामघ वृष्णि वंश—	
	कार्तवीर्य द्वारा [illegible] का जलाया जाना।	२३४
५८	विष्णुवंश वर्णन—	
	स्यमन्तक मणि की कथा। श्रीकृष्ण के वंश का वर्णन।	२४१
५९	सम्भूतवंश वर्णन—	
	ऋषियों द्वारा विष्णु की विजयगाथा का वर्णन और कृष्ण अवतार लेने पर [illegible]। कृष्ण के [illegible] की कथा। बृहस्पति और शुक्राचार्य का विवाद।	२७२
६०	विष्णु माहात्म्य कीर्तन—	
	शुक्राचार्य और असुरों का [illegible] बृहस्पति का [illegible] का [illegible]। [illegible] का रहस्य।	३०६
६१	अनुषंग समाप्ति—	



वायु-पुराण

[दूसरा खण्ड]



॥ प्रकरण ४३—प्रजापति वंश कीर्तन ॥

भारद्वाजो याज्ञवल्क्यो गालवि सालकिस्तथा ।
धीमान् शतबलाकश्च नैगमश्च द्विजोत्तम ॥१॥
बाष्कलिश्च भरद्वाजस्तिस्र प्रोवाच संहिता ।
रथीतरो निरुक्तञ्च पुनश्चक्र चतुर्थकम् ॥२॥
त्रयस्तस्याभवञ्छिष्या महात्मानो गुणान्विता ।
धीमाश्चन्दायनीयश्च पन्नगारिश्च बुद्धिमान् ।
तृतीयश्चार्यवश्चैव तपसा शमितव्रता ॥३॥
वीतरागा महातेजा संहिताज्ञानपारगा ।
इत्येते बहवृचा प्रोक्ता संहिता यैः प्रवर्तिता ॥४॥
वैशम्पायनगोत्रोऽसौ यजुर्वेदं व्यकल्पयत् ।
षडशीतिस्तु येनोक्ता संहिता यजुषा शुभा ॥५
शिष्येभ्य प्रददौ ताश्च जगृहुस्ते विधानत ।
एकस्तत्र परित्यक्तो याज्ञवल्क्यो महातपा ।
षडशीतिश्च तस्यापि संहिताना विकल्पका ॥६
सर्वेषामेव तेषा वै त्रिधा भेदा प्रकीर्तिता ।
त्रिधा भेदास्तु ते प्रोक्ता भेदेऽस्मिन्नवमे शुभे ॥७

ऋषियों ने कहा—भारद्वाज—याज्ञवल्क्य—गालवि—सालकि—धीमान् शत-बलाक—नैगम जो द्विजो म श्रेष्ठ थे—बाष्कलि—भरद्वाज—इनने तीन संहिता कही फिर रथीतर ने चतुर्थ निरुक्त किया था ॥१॥२॥ उनके गुणों मे

नन्दायनीय पनगारि और बुद्धियान् तृतीय आचार्य था। वे तप से शासित व्रत वाले थे ॥३॥ ये सब वीतराग महान् तेज से युक्त और संहिताओं के ज्ञान के पारगामी थे। ये सब वह वृक्ष कहे गये हैं जिन्होंने संहिताओं का प्रवृत्त किया था ॥४॥ यह वैशम्पायन गोत्र वाला था जिसने यजुर्वेद की विशेष कल्पना की थी। जिसने यजुर्वेद की शुभ छयासी संहिताएँ कही थी ॥५॥ उनको शिष्यों के लिए दिया था और उन्होंने विधानपूर्वक उन्हें ग्रहण किया था। वहाँ पर एक महा तपस्वी याज्ञवल्क्य परिपक्व थे। उसके भी छयासी संहिताओं के विकल्प थे ॥६॥ उन सबके तीन प्रकार के भेद प्रकाशित किए गए हैं। इस शुभ नवम भेद में तीन प्रकार के भेद कहे गये हैं ॥७॥

उदीच्या मध्यदेशाश्च प्राच्याश्चैव पृथग्विधा ।
श्यामायनिरुदीच्यानां प्रधानं सम्बभूव ह ॥८
मध्यदेशप्रतिष्ठानामारुणिः प्रथमः स्तुतः ।
आलम्बिरादिः प्राच्यानान्त्रयोदश्यादयस्तु ते ॥९
इत्येते चरका प्रोक्ता संहितावादिनो द्विजा ।
ऋषयस्तद्वच श्रुत्वा सूतं जिज्ञासवोऽब्रुवन् ॥१०
चरकाध्वर्यवं केन कारणं ब्रूहि तत्त्वतः ।
किञ्चीर्णं कस्य हेतोश्च चरकत्वञ्च भेजिरे ।
इत्युक्तः प्राह तेषां स चरकत्वमसूयया ॥११
कार्यमासीदृषीणाञ्च किञ्चिद्ब्राह्मणसत्तमाः ।
मेरुपृष्ठं समासाद्य तैस्तदा त्विति मन्त्रितम् ॥१२
यो नोऽत्र सप्तरात्रेण नागच्छेद्द्विजसत्तमाः ।
स कुर्याद्ब्रह्मवध्यां वै समयो नः प्रकीर्तितः ॥१३
ततस्ते सगणाः सर्वे वैशम्पायनवर्जिताः ।
प्रययुः सप्तरात्रेण यत्र सन्धिः कृतोऽभवत् ॥१४

उदीच्य मध्यदेश और प्राच्य पृथक् विध थे। उदीच्यों में श्यामायनि प्रधान हुआ था ॥८॥ मध्यदेश के प्रतिष्ठानों में आरुणि प्रथम कहा गया है।

प्राच्यों म आदि आलम्बि थे वे त्रयोदशी आदि थे ॥६॥ ये सब द्विज जो शि सहितायो के वादी थे चरक कहे गए थे। ऋषियों ने उनके वचन जो सुनकर जिज्ञासु होते हुये वे सूतजी स बोले ॥१०॥ चरक और प्राध्वयव किस से हुए ? इसका कारण तत्वपूवक बतलाइये। जिसके हेतु मे क्या चीर्ण और वाचकत्व का सेवन किया था ? इस प्रकार से कहे हुए उसने जैसे चरकत्व उनका हुआ था कहा। ॥११॥ श्री सूतजी ने कहा—हे ब्राह्मण श्रेष्ठो ! ऋषियो का क्या काय था यह मेरु के पृष्ठ पर जाकर उन्होंने मन्त्रणा की थी ॥१२॥ हे द्विज सत्तमो ! जो यहाँ सात दिन तक नही आवे वह ब्रह्मवध्या करे। इसका समय नही कहा गया है ॥१३॥ इसके पश्चात गणो के साथ वे सब वैशम्पायन को छोड़ कर सात दिन मे चले गये जहाँ कि सधि की हुई थी ॥१४॥

ब्राह्मणानान्तु वचनाद्ब्रह्मवध्याञ्चचार स ।
शिष्यानथ समानीय स वशम्पायनोऽब्रवीत् ॥१५
ब्रह्मवध्याञ्चरध्व वैं मत्कृत द्विजसत्तमा ।
सर्वं यूय समागम्य ब्रूत मे तद्धित वच ॥१६
अहमेव चरिष्यामि तिष्ठन्तु मुनयस्त्विमे ।
वनञ्चोत्थापयिष्यामि तपसा स्वेन भावित ॥१७
एवमुक्तस्तत क्रुद्धा याज्ञवल्क्यमथाब्रवीत् ।
उवाच यत्त्वयाधीत सर्वं प्रत्यर्पयस्वमे ॥१८
एवमुक्त स रूपाणि यजूषि प्रददौ गुरो ।
रुधिरेण तयाक्तानि छर्दित्वा ब्रह्मवित्तम ॥१९
तत स ध्यानमास्थाय सूयमाराधयद्द्विजा ।
सूर्यब्रह्म यदुच्छिन्न ख गत्वा प्रतितिष्ठति ॥२०
ततो यानि गता-यूर्द्ध यजूष्यादित्यमण्डलम् ।
तानि तस्म ददौ तुष्ट सूर्यो वै ब्रह्मरीतय ।
अश्वरूपाय मार्तण्डो याज्ञवल्क्याय धीमते ॥२१

ब्राह्मणों के वचन से उसने ब्रह्मवध्या को किया था। इसके अनन्तर उस वैशम्पायन ने शिष्यों को लाकर कहा ॥१५॥ हे द्विज सत्तमो ! मेरे लिय

ब्रह्मवध्या को करो आप अब लोग आकर तद्धित वचन मुझे बोलो ॥१६॥ याज्ञवल्क्य ने कहा—मैं ही करूँगा ये मुनिगण ठहरें। अपने तप से भावित होता हुआ मैं बल को उत्थापित करूँगा ॥१७॥ इस प्रकार से कहे हुए वह क्रुद्ध होकर याज्ञवल्क्य से बोले कि जो भी तुमने पढ़ा है उस सबको मुझे अर्पण कर दो—यह कहा ॥१८॥ इस प्रकार से कहे जाने वाले ब्रह्मवित्तम उसने रुधिर प्रक्त रूप यजु को छर्दि कर के गुरु को दे दिया था ॥१९॥ इसके अनन्तर उसने हे द्विजो! ध्यान में स्थित होकर सूर्य की आराधना की थी। जो उच्छिन्न सूर्यब्रह्म था और आकाश में जाकर प्रतिष्ठित होता है। इसके पश्चात जो यजु ऊर्ध्व भाग में गए थे और आदित्य मण्डल में स्थित थे उनको सन्तुष्ट होने वाले सूर्य ने ब्रह्म रीति के लिए उसे दे दिया था। धीमान् याज्ञवल्क्य उस समय अश्व के रूप में थे। ऐसे याज्ञवल्क्य के लिए मार्तण्ड ने यजु दिए थे ॥२०॥२१॥

यजूंष्यधीयन्ते यानि ब्राह्मणा येन केन च।
अश्वरूपाय दत्तानि ततस्ते वाजिनोऽभवन् ॥२२
ब्रह्महत्या तु यैश्चीर्णा चरणाच्चरका स्मृता।
वैशम्पायनशिष्यास्ते चरका समुदाहृता ॥२३
इत्येते चरका प्रोक्ता वाजिनस्तान्निबोधत।
याज्ञवल्क्य स्वशिष्यास्ते कण्वबैधेयशालिन ॥२४
मध्यन्दिनश्च शापेयी विदिग्धश्चाप्य उद्दल।
ताम्रायणश्च वात्स्यश्च तथा गालवशैशिरी।
आटवी च तथा पर्णी वीरणी सपरायण ॥२५
इत्येते वाजिन प्रोक्ता दश पञ्च च सम्मृता।
शतमेकाधिक कृत्स्न यजुषा वै विकल्पका. ॥२६
पुत्रमध्यापयामास सुमन्तुमथ जैमिनि।
सुमन्तुश्चापि सुत्वान पुत्रमध्यापयत्प्रभु।
सुकर्माण सुत सुत्वा पुत्रमध्यापयत्प्रभु ॥२७

स सहस्र मधीत्यागु सुकर्माप्यथ संहिता ।
प्रोवाचाथ सहस्रस्य सुकर्मा सूर्यवर्चस ॥२८

जिस किसी के द्वारा ब्राह्मण जिस यजु का अध्ययन करते हैं वे प्रश्न-रूप वाले के लिये किये हुये हैं इसमें वाजिन हुए और कहे भी जाते हैं ॥२२॥ जिन्होंने चरण से ब्रह्महत्या को चीर्ण किया था वे चरक कहे गए हैं। वे वैश-म्पायन के शिष्य हैं जो चरक कहे गये हैं ॥२३॥ इनसे ये चरक कहे गये हैं अब उन वाजिनो को जान लो। याज्ञवल्क्य के वे शिष्य है जो कराव वैधेयशाली हैं ॥२४॥ मध्यान्दिन-- शापेयी - विदिग्ध - उद्दल -ताम्रायण-- वात्स-गालव-शैशिरी-आटवी-पर्णी-वीरणी-सपरायण--ये इनसे वाजिन इस नाम से कहे गये हैं ये दश और पांच कुल पन्द्रह होते हैं। यजुषो का पूर्ण विकल्प एकसो एक है ॥२५॥२६॥ इनके अनन्तर जैमिनि ने सुमन्तु अपने पुत्र को पढ़ाया था। सुमन्तु प्रभु ने भी अपने पुत्र सुत्वान को पढाया था। सुत्वा ने अपने पुत्र सुकर्मा को पढाया था ॥२७॥ इसके पश्चात् सुकर्मा ने भी शीघ्र एक सहस्र संहिताओं का अध्ययन कर के सूर्य वर्चस सुकर्मा ने सहस्र को बोला था ॥२८॥

अनध्यायेष्वधीयानास्ताञ्जघान शतक्रतु ।
प्रायोपवेशमकरोत्तत्तोऽसौ शिष्यकारणात् ॥२९
क्रुद्ध दृष्ट्वा तत शक्रो वरमस्मै ददौ पुन ।
भाविनौ ते महावीर्यौ शिष्यावमलवर्चसौ ॥३०
अधीयानौ महाप्राज्ञौ सहस्र संहितावुभौ ।
एतौ गुरो महाभागौ मा क्रुध्य द्विजसत्तम ॥३१
इत्युक्त्वा वासव श्रीमान्सुकर्माणं यशस्विनम् ।
शान्तक्रोधं द्विजं दृष्ट्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥३२
तस्य शिष्यो भवेद्धीमान्पौष्यञ्जी द्विजसत्तमा ।
हिरण्यनाभ कौशिक्यो द्विजयोऽभून्नराधिप ॥३३
अध्यापयत्तु पौष्यञ्जी सहस्रार्द्धं तु संहिता ।
तेनान्योदीच्यासामान्या शिष्या पौष्यञ्जिन शुभा ॥३४

शतानि पञ्च कौशिक्य संहितानाञ्च वीर्यवान्।
शिष्या हिरण्यनाभस्य स्मृतास्ते प्राच्यसामगा ॥३५

अनध्याय के दिन में अध्ययन करने वाले उनका शतक्रतु (इन्द्र) ने मार दिया था। इसके पश्चात् शिष्य के कारण से इसने प्रायोपवेश (भोजन का त्याग) कर दिया था ॥२६॥ इसके पश्चात् फिर इसको क्रुद्ध देख कर इन्द्र ने वरदान दे दिया था कि ये प्रलन, वर्चस दोनो शिष्य महान् वीर्य वाले होंगे ॥३०॥ हे द्विज सत्तम ! महा प्राज्ञ पढने वाले सहस्र संहिता वाले ये दोनों गुरु महान् भाग वाले हैं आप क्रोध न करें ॥३१॥ यह वह वर श्रीमान् इन्द्रदेव यशस्वी और क्रोध के शान्त हो जाने वाले द्विज सुकर्मा को देख कर वहीं पर ही अन्तर्धान हो गए थे ॥३२॥ हे द्विज सत्तम ! उसका शिष्य बहुत ही बुद्धिमान् और पौष्यञ्जी हुआ—हिरण्यनाभ—कौशिक्य और दूसरा नराधिप हुआ ॥३३॥ पौष्यञ्जी ने भाषा सहस्र संहिता का अध्यापन किया था। इनसे अन्योदीच्य सामान्य पौष्यञ्जी के शुभ शिष्य हुए और संहिताओं के पाँच सौ वीर्यवान् कौशिक्य हुये। हिरण्यनाभ के शिष्य प्राच्य सामग कहे गए हैं ॥३५॥

लोकाक्षी कुथुमिश्चैव कुशीती लाङ्गलिस्तथा।
पौष्यञ्जिशिष्याश्चत्वारस्तेषां भेदान्निबोधत ॥३६
राणायनीय स हि तण्डिपुत्रस्तस्मादन्यो मूलचारी सुविद्वान्।
सकतिपुत्र सहसात्यपुत्र एतान् भेदान् विरा लोकाक्षिणस्तु ॥३७
अयस्तु कुथुमे पुत्रा औरसो रसपासर।
भागवित्तिश्च तेजस्वी त्रिविधा कौथुमा स्मृता ॥३८
शौरिद्यु शृङ्गिपुत्रश्चद्वावेतौ चरितव्रतौ।
राणायनीयः सौमित्रिः सामवेदविशारदौ ॥३९
प्रोवाच संहितास्तिस्रः शृङ्गिपुत्रो महातपाः।
चैल, प्राचीनयोगश्च सुरालश्च द्विजोत्तमाः ॥४०
प्रोवाच संहिताः षट्तु पाराशर्यस्तु कौथुमः।
आसुरायणवैशाख्यौ वेदवृद्धपरायणौ ॥४१

प्राचीनयोगपुत्रश्च बुद्धिमाश्च पतञ्जलि ।
कौथुमस्य तु भेदास्ते पाराशर्यस्य षट् स्मृता ।
लाङ्गलि शालिहोत्रश्च षट् षट् प्रोवाच संहिता ॥४२

पौष्यञ्जी के चार शिष्य थे उनके नाम लोकाक्षी—कुथुमि—कुषीती और लाङ्गल थे। अब उनके भेद बतलाये जाते हैं उन्हें आप लोग समझ लेवें ॥३६॥ तण्डि का पुत्र वह राणायनीय था। उससे अन्य मूलचारी था जो कि बहुत अच्छा विद्वान् था। सकति पुत्र सहसात्य पुत्र ये लोकाक्षी के भेद जानो ॥३७॥ कुथुमि के तीन पुत्र औरस—रसपारस और भाग वित्ति ये तीन प्रकार वाले तेज-युक्त कौथुम कहे गये हैं ॥३८॥ शौरिद्यु—शृङ्गिपुत्र दो ये चरित व्रत वाले थे। राणायनीय और सौमित्रि ये दो दोनों सामवेद के पण्डित थे ॥३९॥ महान् तपस्वी शृङ्गिपुत्र ने तीन संहिता कही थी। हे द्विजोत्तमो! चैल, प्राचीन योग, सुराल इतने ही संहिता बोली थी, इनमें पाराशर्य और कौथुम भी हैं। आसुरायण और वैश नाम वाले दोनों वेद वृद्ध में परायण थे ॥४१॥ प्राचीन-योग का पुत्र पतञ्जलि बड़ा बुद्धिमान था। कौथुम के वे भेद पाराशर्य के छै कहे गये हैं। लाङ्गलि और शालिहोत्र ने छै-छै संहिता बतलाई हैं ॥४२॥

भालुकि कामहानिश्च जैमिनिर्लोमगायिन ।
कण्डश्च कोलहश्चैव षडेते लाङ्गला स्मृता ।
एते लाङ्गलिन. शिष्या संहिता यै प्रसाधिता ॥४३
ततो हिरण्यनाभस्य कृतशिष्यो नृपात्मज ।
सोऽकरोत्तु चतुर्विंशत्संहिता द्विपदा वर ।
प्रोवाच चैव शिष्येभ्यो येभ्यस्ताश्च निबोधत ॥४४
राडश्च महवीयश्च पञ्चमो वाहनस्तथा ।
तालक पाण्डकश्चैव कालिको राजिकस्तथा ।
गौतमश्चाजबस्तश्च सोमराजायतत्तन ॥४५
पृष्ठघ्न परिकृष्टश्च उलूखलक एव च ।
यवीयसश्च वैशालो ह्यङ्गुलीयश्च कौशिक ॥४६
स.लिमञ्जरिसत्यश्च कापीय कानिकश्च य ।

पराशरश्च धर्मात्मा इति क्रान्तास्तु सामगा ॥४७॥
सामगानान्तु सर्वेषां श्रेष्ठौ द्वौ तु प्रकीर्त्तितौ ।
पौष्यञ्जिश्च कृतिश्चैव संहितानां विकल्पकौ ॥४८
अथर्वाणं द्विधा कृत्वा सुमन्तुरददद्द्विजाः ।
कबन्धाय पुनः कृत्स्नं स च विद्याद्यथाक्रमम् ॥४९
कबन्धस्तु द्विधा कृत्वा पथ्यायैकं पुनर्ददौ ।
द्वितीयं वेदस्पर्शाय स चतुर्द्धाकरोत् पुनः ॥५०

भालुकि, कामहानि, जैमिनि, लोमगायिन, कण्ड, कोलह ये छै लाङ्गल कहे गये हैं। ये लाङ्गलि के शिष्य हैं जिन्होने संहिताऐं प्रसारित की हैं ॥४३॥ इसके पश्चात् हिरण्यनाभ के कृत शिष्य नृपात्मज हुए। जिन्होंने श्रेष्ठ उसने चौबीस संहिताऐं की हैं। और फिर उनको शिष्यों के लिये बोला था। जिन शिष्यों को बोला था उन्हें आप मुझसे जानो ॥४४॥ राड, महावीर्य, पचम, वाहन, तालक, पाण्डक, कालिक, राजिक, गौतम, अजवस्त, सोम राजायतन, पृष्ठघ्न, परिकृष्ट, उलूखलक, यवीयस, वैशाल, अंगुलीय, कौशिक, सालिम, जरिसत्य, कापीय, कानिक और धर्मात्मा पाराशर ये सब सामगा परिक्रान्त हुए हैं ॥४७॥ समस्त सामगों में दो अत्यन्त श्रेष्ठ प्रकीर्तित हुए हैं। संहिताओं के विकल्पक वे दोनों पौष्यञ्जि और कृति हैं ॥४८॥ हे द्विजो! सुमन्तु ने अथर्वा को दो करके दिया था। फिर कबन्ध के लिये सम्पूर्ण दिया था और उसने यथाक्रम उसे जाना है। कबन्ध ने भी दो प्रकार का करके उनमें से एक को फिर पथ्य के लिए दिया था। दूसरा वेदस्पर्श के लिये दिया था और फिर उसने उसे चार प्रकार का कर दिया था ॥४९॥५०॥

मोदो ब्रह्मबलश्चैव पिप्पलादस्तथैव च
शौक्वायनिश्च धर्मज्ञश्चतुर्थस्तपनः स्मृतः ।
वेदस्पर्शस्य चत्वारः शिष्यास्त्वेते दृढव्रताः ॥५१
पुनश्चत्रिविधं विद्धि पथ्यानां भेदमुत्तमम् ।
जाजलिः कुमुदादिश्च तृतीयः शौनकः स्मृतः ॥५२
शौनकस्तु द्विधा कृत्वा ददावेकन्तु बभ्रवे ।

द्वितीया संहिता धीमान्सैन्धवायनसंज्ञिते ।।५३
सैन्धवो मुञ्जकेशाय भिन्ना सा च द्विधा पुनः ।
नक्षत्र कल्पो वैतानस्तृतीय संहिताविधि ।
चतुर्थोऽङ्गिरस कल्प शान्तिकल्पश्च पंचम ।।५४
श्रेष्ठस्त्वथर्वणो ह्येते संहितानां विकल्पना ।
षट्श कृत्वा मयाप्युक्त पुराणमृषिसत्तमा ।।५५
आत्रेय सुमतिर्धीमान्काश्यपो ह्यकृतव्रण. ।
भारद्वाजोऽग्निवर्चाश्च वसिष्ठो मित्रयुश्च य ।
सावर्णि सोमदत्तिस्तु सुशर्मा शांशपायन. ।।५६
एते शिष्या मम ब्रह्मन् पुराणेषु दृढव्रता ।
त्रिभिस्तिस्र कृतास्तिस्र संहिता पुनरेव हि ।।५७

वेदस्पर्श के दृढ व्रत वाले चार शिष्य हुए थे। अक्षयवल वाला मोद, पिप्पलाद, धर्म का ज्ञाता शौनकायनि और चौथा तपन ये चारो के नाम बताये गये है ।।५१।। फिर पथ्या के तीन प्रकार के उत्तम भेद जान लो। एक जाजलि दूसरा कुमुदादि और तीसरा शौनक कहा गया है ।।५२।। शौनक ने दो भेद करके उनमे से एक बभ्रु के लिये दिया था। द्वितीय जो संहिता था उसे उस परम बुद्धिमान् ने सैन्धवायन नाम वाले को दिया था ।।५३।। सैन्धव ने मुञ्ज केश के लिये दी फिर यह दो प्रकार की भेद वाली हुई थी। नक्षत्र कल्प, वैतान, तृतीय संहिता विधि, चतुर्थ अङ्गिरस कल्प, पंचम शान्ति कल्प होता है ।।५४।। वे जो संहिताओं के विकल्पन हैं उनमे अथर्वण श्रेष्ठ होता है। हे ऋषि सत्तमा! छः प्रकार से करके मैंने भी पुराण को कहा है ।।५५।। आत्रेय, सुमति, धीमान्, काश्यप, अकृतव्रण, भारद्वाज, अग्निवर्चा, वसिष्ठ, मित्रयु, सावर्णि, सोमदत्ति, सुशर्मा, शांशपायन ये इतने पुराणों मे दृढव्रत वाले मेरे शिष्य थे। फिर तीनो ने तीन संहिताओं के तीन किये ।।५६।५७।।

काश्यप संहिताकर्त्ता सावर्णि शांशपायन ।
मामिका च चतुर्थी स्यात्सा चैषा पूर्वसंहिता ।।५८
सर्वास्ताहि चतुष्पादा सर्वाश्चैकार्थवाचिका ।

पाठान्तरे पृथग्भूता वेदशाखा यथा तथा ।
चतु साहस्रिका सर्वा शाङ्खपायनिकामृते ॥५६
लोमहर्षणिका मूलास्तत काश्यपिका परा ।
सावर्णिकास्तृतीयास्ता यजुर्वाक्यार्थपण्डिता ॥६०
शाङ्खपायनिकाश्चान्या मोदनार्थविभूषिता ।
सहस्राणि ऋचामष्टौ षट्शतानि तथैव च ॥६१
एता पञ्चदशान्याश्च दशान्या दशभिस्तथा ।
वालखिल्या समप्रैषा (पा) ससावर्णा प्रकीर्तिता ॥६२
अष्टौ सामसहस्राणि सामानि च चतुर्दश ।
आरण्यक सहोमञ्च एतद्गायन्ति सामगा ॥६३

काश्यप, सावर्णि और शाङ्खपायन संहिताकर्त्ता हैं और वह पूर्व संहिता चौथी मानिका होती है। वे सब चार पाद वाली हुआ करती हैं और सभी एकार्थ की वाचिका भी होती हैं। वेद की शाखाएं यथा तथा पाठान्तर में पृथक् होती है। शाङ्खपायनिका के बिना सब चार सहस्र वाली हैं ॥५८॥५६॥ मूल लोमहर्षणिका है, इसके पश्चात् काश्यपिका होती है। तृतीय सावर्णिका है वे यजु के वाक्यार्थ की पण्डित होती हैं ॥६०॥ अन्य जो शाङ्खपायनिका शाखाएं हैं वे मोदन के अर्थ से विभूषित होती हैं। ऐसे ये कुल आठ सहस्र छः सौ ऋचाएं हैं ॥६१॥ ये अन्य पन्द्रह हैं और दूसरी दश के साथ दश हैं बालखिल्या जो हैं वे समप्रैषा ससावर्णा कही गई हैं। ६२॥ आठ साम सहस्र और चौदह साम हैं। सामगा लोग इसको आरण्यक और सहोम गाया करते हैं ॥६३॥

द्वादशैव सहस्राणि छन्द आध्वर्यव स्मृतम् ।
यजुषा ब्राह्मणानाच यथा व्यासो व्यकल्पयत् ॥६४
सग्राम्यारण्यकन्तस्यात्समन्त्रकरणं तथा ।
अत पर कथानान्तु पूर्वा इति विशेषणम् ॥६५
ग्राम्यारण्य समन्त्रञ्च ऋग्ब्राह्मणयजु स्मृतम् ।
तथा हारिद्रवीयाणा खिलान्युपखिलानि च ।

तथैव तैत्तिरीयाणां परक्षुद्रा इति स्मृतम् ॥६६
द्वे सहस्रे शतन्यूने वेदे वाजसनेयके ।
ऋग्गणः परिसंख्यातो ब्राह्मणन्तु चतुर्गुणम् ॥६७
अष्टौ सहस्राणि शतानि चाष्टौ अशीतिरन्यान्यधिकश्च पाद ।
एतत्प्रमाणं यजुषामृचाञ्च समुक्रियं साखिलं याज्ञवल्क्यम् ॥६८
तथा चरणविद्यानां प्रमाणं संहिता शृणु ।
षट् साहस्रमृचामुक्तमृच षड्विंशति पुनः ।
एतावदधिकं तेषां यजुः काम विवक्षति ॥६९
एकादश सहस्राणि दश चान्या दशोत्तरा ।
ऋचान्दश सहस्राणि अशीतिस्त्रिशतानि च ॥७०
सहस्रमेकं मन्त्राणामृचामुक्तं प्रमाणतः ।
एतावदृभृगुविस्तारमन्यद्ध्यार्थर्विकं बहु ॥७१

बारह सहस्र छन्द प्राध्वर्यव कहे गये हैं। यजु का और ब्राह्मणों का अर्थात् ब्राह्मण भागों का जिस तरह व्यास अर्थात् विस्तार कल्पित किया है ॥ ॥६४॥ वह सप्रारण्यक तथा समन्त्रकरण होता है। इसमें आगे कथाओं का तो पूर्वा यह विशेषण होता है ॥६५॥ आरण्यक और समन्त्र ऋक्-ब्राह्मण और यजु कहा गया है। इसी प्रकार से हारिद्रवीयों के खिलामि एवं उपखिलामि तथा तैत्तिरीयों के परक्षुद्रा कहा गया है ॥६६॥ सौ कम दो हजार वाजसनेयक वेद में ऋक् गण की परिसंख्या की गई है, ब्राह्मण भाग तो चौगुना होता है ॥६७॥ आठ सहस्र आठसौ अस्सी अन्यान्य और अधिक पाद होता है। यह प्रमाण यजु का और समुक्रिया साखिल याज्ञवल्क्य ऋक् का है ॥६८॥ उसी प्रकार से चरण विद्याओं का प्रमाण एवं संहिता का श्रवण करो। छै सहस्र छब्बीस ऋचाओं का कहा गया है। इतना अधिक उनका यजु है जो काम को कहता है ॥६९॥ ग्यारह हजार दशोत्तर और अन्य दश है। दस सहस्र तीन सौ अस्सी ऋक् हैं ॥७०॥ ऋचाओं, मन्त्रों का एक सहस्र प्रमाण से कहा है। इतना भृगु का विस्तार है और अन्य बहुत आर्थर्विक होता है ॥७१॥

प्रद्युम का पुत्र कहा गया है ॥८४॥ पर्वत और नारद ये दोनों कश्यप के आत्मज हैं। ये देवों को ऋषण करते हैं इसी कारण से वे देवर्षि कहे गये हैं ॥८५॥

मानवे वैण्ये वंशे ऐलवंशे च ये नृपाः ।
ऐला ऐक्ष्वाकनाभागा ज्ञेया राजर्षयस्तु ते ॥८६॥
ऋषन्ति रञ्जनाद्यस्मात्प्रजा राजर्षयस्ततः ।
ब्रह्मलोकप्रतिष्ठास्तु स्मृता ब्रह्मर्षयो मताः ॥८७॥
देवलोकप्रतिष्ठाश्च ज्ञेया देवर्षयः शुभाः ।
इन्द्रलोकप्रतिष्ठास्तु सर्वे राजर्षयो मताः ॥८८॥
अभिजात्या च तपसा मन्त्रव्याहरणैस्तथा ।
एवं ब्रह्मर्षयः प्रोक्ता दिव्या राजर्षयस्तु ये ॥८९॥
देवर्षयस्तथान्ये च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ।
भूतभव्यभवज्ञानं सत्याभिव्याहृतं तथा ॥९०॥
सम्बुद्धास्तु स्वयं ये तु सम्बुद्धा ये च वै स्वयम् ।
तपसेह प्रसिद्धा ये गर्भे यैश्च प्रणोदितम् ॥९१॥
मन्त्रव्याहारिणो ये च ऐश्वर्यात्सर्वगाश्च ये ।
इत्येते ऋषिभिर्युक्ता देवद्विजनृपास्तु ये ॥९२॥
एतान् भावानधीयाना ये चैत ऋषयो मताः ।
सप्तैते सप्तभिश्चैव गुणैः सप्तर्षयः स्मृताः ॥९३॥

मानव वैण्य वंश में और ऐल वंश में जो राजा हैं वे ऐल ऐक्ष्वाक और नाभाग राजर्षि जानने के योग्य होते हैं ॥८६॥ ऋषण करते हैं और प्रजाओं का रञ्जन करते हैं इसलिये इन्हें राजर्षि कहा गया है। ब्रह्म लोक प्रतिष्ठा वाले ब्रह्मर्षि माने गये हैं ॥८७॥ देवलोक में प्रतिष्ठा वाले शुभ देवर्षि कहे गये हैं। इन्द्र लोक में प्रतिष्ठा वाले सब राजर्षि माने गये हैं ॥८८॥ अभिजाति से और तप से तथा मन्त्रों के व्याहरणों से इस प्रकार से ब्रह्मर्षि दिव्य तथा राजर्षि कहे गये हैं ॥८९॥ जो अन्य देवर्षि हैं उनके लक्षण मैं बतलाऊँगा। भूत-भव्य भव का ज्ञान तथा सत्याभिव्याहृत भी बतलाया जायगा ॥९०॥ जो स्वयं ही सम्बुद्ध हुए और जो स्वयं सम्बुद्ध हैं, यहाँ जो तप से प्रसिद्ध हुए और जिन्होंने गर्भ में

प्रणोदित किया, जो मन्त्रों के व्याहरण करने वाले हैं और जो ऐश्वर्य से सर्वत्र गमन करने वाले हैं, ये देव-द्विज और नृप ऋषियों से युक्त हैं। इन भावों का अध्ययन करते हुए और जो ये ऋषि माने गये हैं वे सत्त गुणों से युक्त सात ही हैं इसीलिए सप्तर्षि कहे गये हैं ॥६१॥६२॥६३॥

दीर्घायुषो मन्त्रकृत ईश्वरा दिव्यचक्षुष ।
बुद्धा प्रत्यक्षधर्माणो गोत्रप्रवर्तकाश्च ये ॥६४॥
षट्कर्माभिरता नित्य शालिनो गृहमेधिन ।
तुल्यैर्व्यवहरन्ति स्म ग्रदृष्टै धर्महेतुभि ॥६५॥
ग्रग्राम्यैर्वर्त्तयन्ति स्म रसैश्चैव स्वयकृतै ।
कुटुम्बिन ऋद्धिमन्तो बाह्यान्तरनिवासिन ॥६६॥
कृतादिषु युगाख्येषु सर्वेष्वेव पुन पुन ।
वर्णाश्रमव्यवस्थान क्रियन्ते प्रथमन्तु वै ॥६७॥
प्राप्ते त्रेतायुगमुखे पुन सप्तर्षयस्त्विह ।
प्रवर्त्तयन्ति ये वर्णा नाश्रमाश्चैव सर्वश ।
तेषामेवान्वये वीरा उत्पद्यन्ते पुन पुन ॥६८॥

दीर्घ आयु वाले—मन्त्रों के करने वाले—ईश्वर—दिव्य चक्षु वाले—बुद्ध—प्रत्यक्ष धर्म वाले—और जो गोत्रों के प्रवर्तक हैं—षट् कर्मों में रत रहने वाले नित्यशाली—गृहमेधी—अदृष्ट कर्मों के हेतुओं से तुल्य व्यवहार किया करते हैं। वे जो स्वयं कृत अग्राम्य रसों से वर्तन किया करते हैं वे—कुटुम्बी ऋद्धि वाले—बाह्य और अन्तर के निवास करने वाले कृतादिनाम वाले समस्त युगों में बार-बार पहिले वर्णों और आश्रमों की व्यवस्था जिनके द्वारा की जाती है। त्रेता युग के मुख के प्राप्त होने पर यहाँ पर पुन ये सप्तर्षि गण सर्वत्र वर्णों और आश्रमों का प्रवर्त्तन करते हैं उन्हीं के वंश में वीर बार-बार उत्पन्न होते हैं ॥६४॥ ॥६५॥६६॥६७॥६८॥

जायमाने पिता पुत्रे पुत्र पितरि चैव हि।
एव समेत्याविच्छेदाद्वर्त्तयन्त्यायुगक्षयात् ।
अष्टाशीतिसहस्राणि प्रोक्तानि गृहमेधिनाम् ॥६९॥

अर्यम्णो दक्षिणा ये तु पितृयाण समाश्रिता ।
दाराग्निहोत्रिणस्ते वै ये प्रजाहेतव स्मृता ॥१००॥
गृहमेधिनाञ्च संख्येया श्मशानान्याश्रयन्ति वे ।
अष्टाशीतिसहस्राणि निहिता उत्तरायणे ॥१०१॥
ये श्रूयन्ते दिव प्राप्ता ऋषयो ह्यूर्द्ध्वरेतस ।
मन्त्रब्राह्मणकर्त्तारो जायन्ते ह युगक्षये ॥१०२॥
एवमावर्त्तमानास्ते द्वापरेषु पुन पुन ।
कल्पाना भाष्यविद्याना नानाशास्त्रकृत क्षये ॥१०३॥
भविष्ये द्वापरे चैव द्रौणिर्द्वैपायन पुन ।
वेदव्यासो ह्यतीतेऽस्मिन् भविता सुमहातपा ॥१०४॥
भविष्यन्ति भविष्येषु शाखाप्रणयनानि तु ।
तस्मै तद्ब्रह्मण ब्रह्म तपसा प्राप्तमव्ययम् ॥१०५॥

पुत्र के उत्पन्न हो जाने, पिता और पिता के विषय में पुत्र इस प्रकार से अविच्छेद से मिलकर युग के क्षय पर्यन्त वर्तन किया करते हैं। ये ऐसे गृहमेधी अट्ठासी हजार कहे गए हैं ॥९९॥ अर्यमा के जो दक्षिण होते हैं वे पितृयाण में समाश्रित होते हैं। वे दाराग्निहोत्री हैं और जो प्रजा के हेतु रूप कहे गये हैं ॥१००॥ जो गृहमेधी श्मशानों का आश्रय लेते हैं उनकी संख्या करने के योग्य है वे भी अट्ठासी हजार उत्तरायण में निहित होते हैं ॥१०१॥ जो ऊर्द्ध्वरेता ऋषि दिव्य लोक में प्राप्त हो गये हैं और ऐसे सुने जाते हैं वे मन्त्र और ब्राह्मण के कर्त्ता युग के क्षय हो जाने पर उत्पन्न हुआ करते हैं ॥१०२॥ इस प्रकार से द्वापरों में पुन पुन आवर्त्तमान होते हैं और क्षय में कल्पों-भाष्य विद्याओं के नाना प्रकार के शास्त्रों के करने वाले होते हैं ॥१०३॥ भविष्य द्वापर में फिर द्रौणि द्वैपायन सुमहातपा वेदव्यास इसके अतीत हो जाने पर होंगे ॥१०४॥ भविष्यों में शाखा प्रणयन होंगे। उनके लिए उस ब्रह्मा के द्वारा तप से अव्यय ब्रह्म प्राप्त किया गया था ॥१०५॥

तपसा कर्म सम्प्राप्त कर्मणा हि ततो यश ।
यशसा प्राप्य सत्य हि सत्येनाप्नोति चाव्यय ॥१०६॥

अव्ययादमृत शुक्रममृतात् सत्यमेव हि ।
ध्रुवमेकाक्षरमिद स्वात्मन्येव व्यवस्थितम् ।
बृहत्वाद्बृहणाच्चैव तद्ब्रह्मेत्यभिधीयते ॥१०७॥
प्रणवाव स्थित भूयो भूर्भुव स्वरिति स्मृतम् ।
ऋग्यजु सामाथर्वरूपिणे ब्रह्मणे नम ॥१०८॥
जगत प्रलयोत्पत्तौ यत्तत्कारणसज्ञितम् ।
महत परम गुह्य तस्मै सुब्रह्मणे नम ॥१०९॥
अगाधापरमक्षय्य जगत्सम्मोहनालयम् ।
सप्रकाशप्रवृत्तिभ्या पुरुषार्थप्रयोजनम् ॥११०॥
साङ्ख्यज्ञानवता निष्ठा गति सङ्गदमात्मन ।
यत्तदव्यक्तममृत प्रकृतिब्रह्म शाश्वतम् ॥१११॥
प्रधानमात्मयोनिश्च गुह्य सत्वञ्च शब्द्यते ।
अविभागस्तथा शुक्रमक्षर यह वाचकम् ।
परमब्रह्मणे तस्मै नित्यमेव नमो नम ॥११२॥

इसस यम सम्प्राप्त किया और यम के द्वारा फिर यत्न का लाभ हुआ। यत्न से सत्य को पाकर फिर उस सत्य से अव्यय को प्राप्त किया ॥१०६॥ अव्यय से अमृत और अमृत से सभी शुक्र को प्राप्त किया। यह ध्रुव एकाक्षर अपनी आत्मा में ही व्यवस्थित है। बृहत्व होने से और बृहण होने के कारण से ही वह ब्रह्म ऐसे नाम से कहा जाया करता है ॥१०७॥ प्रणव के रूप में अवस्थित फिर भूर्भुव स्व ऐसा कहा गया है। उस ऋक यजु-साम और अथव के रूप वाले ब्रह्म के लिए नमस्कार है ॥१०८॥ इस जगत की प्रलय और उत्पत्ति में जो वह कारण की सज्ञा वाला कहा गया है वह महत् का परम गुह्य है उस सुब्रह्म के लिए नमस्कार है ॥१०९॥ वह जगत् अगाध-अपार अक्षय्य और सम्मोहन का घर है। सप्रकाश प्रवृत्तियों से पुरुषार्थ के प्रयोजन वाला होता है ॥११०॥ सांख्य के ज्ञान वालों की निष्ठा-गति-आत्मा का सङ्गद जो वह अव्यक्त-अमृत प्रकृति ब्रह्म शाश्वत है वह प्रधान आत्मयोनि गुह्य और सत्व इन शब्दों से कहा जाता है। अविभाग शुक्र है और अक्षर बहुत का वाचक होता है। उस परम ब्रह्म के लिये नित्य ही नमस्कार है ॥१११॥११२॥

कृते पुनः क्रिया नास्ति कृत एवाकृतक्रिया ।
सकृदेव कृतं सर्वं यद्वै मोमे कृताकृतम् ॥११३॥
श्रोतव्यं वै श्रुतं वापि तथैवासाधुसाधुता ।
ज्ञातव्यञ्चाथ मन्तव्यं स्प्रष्टव्यं भोज्यमेव च ।
द्रष्टव्यञ्चाथ श्रोतव्यं ज्ञातव्यं चाथ किञ्चन ॥११४॥
दर्शित यदनेनैव ज्ञानं तद्वै सुरर्षिणाम् ।
यद्वै दर्शितवानेष कस्तदन्वेष्टुमर्हति ।
सर्वाणि सर्वान्सर्वांश्च भगवानेव सोऽब्रवीत् ॥११५॥
यदा यत्क्रियते येन तदा तत्सोऽभिमन्यते ।
येनेदं क्रियते पूर्वं तदन्येन विभावितम् ॥११६॥
यदा तु क्रियते किञ्चित्केनचिद्वाङ्मयं क्वचित् ।
तेनैव तत्कृतं पूर्वं कर्तृणां प्रतिभाति वै ॥११७॥
विरक्तञ्चातिरिक्तञ्च ज्ञानाज्ञाने प्रियाप्रिये ।
धर्माधर्मौ सुखं दुःखं मृत्युश्चामृतमेव च ।
ऊर्द्धं न्तिर्यगधोभागस्तस्यैवादृष्टकारणम् ॥११८॥
स्वायम्भुवोऽथ ज्येष्ठस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
प्रत्येकविधम्भवति नेतास्विह पुनः पुनः ॥११९॥

कृत मे क्रिया नही है फिर अकृत की क्रिया कैसे हुई ? एक बार हो जो सब किया गया है वह लोक मे कृताकृत है ॥११३॥ श्रुत को सुनना चाहिए उसी प्रकार से असाधु साधुता है। जानना चाहिए—मानना चाहिए—स्पर्श के योग्य होना चाहिए—भाग करना चाहिए—देखना चाहिए—सुनना चाहिए—कुछ जानना चाहिए ॥११४॥ जो इसी के द्वारा देखा गया वह सुरर्षियो का ज्ञान है। जिसने यह देखा है वह कौन है, वही ढूंढने के योग्य होता है। सबको-सबको भगवान ही हैं ऐसा वह बोले ॥११५॥ जिस समय ये जो जिसके द्वारा किया जाता है उस समय उसके द्वारा वह माना जाता है। जिसके द्वारा यह पहिले किया जाता है वह अन्य के द्वारा विभावित होता है ॥११६॥ जिस समय किसी के द्वारा कुछ वाङ्मय कहीं प्रसार किया जाता है वह उसी के द्वारा पहिले

क्रिया हुआ करने वालों को प्रतिभान होता है ॥११७॥ ज्ञान और अज्ञान मे–प्रिय और अप्रिय मे विरक्त और अनिरिक्त–धर्म एव अधर्म–सुख–दु ख–मृत्यु-अमृत–ऊर्द्ध–तिर्यक् और अघोभाग ये सब उसी अदृष्ट का कारण होता है ॥११८॥ ज्येष्ठ परमेष्ठी ब्रह्मा का स्वायम्भुव यहाँ त्रेतायुग मे पुन-पुन प्रत्येक विद्य वाला होता है ॥११९॥

व्यस्यते ह्येवविद्यान्तद्द्वापरेषु पुनः पुनः ।
ब्रह्मा चैतदुवाचादौ तस्मिन् वैवस्वतेऽन्तरे ॥१२०॥
आवर्त्तमाना ऋषयो युगाख्यासु पुनः पुनः ।
कुर्वन्ति संहिता ह्येते जायमानाः परस्परम् ॥१२१॥
अष्टाशीतिसहस्राणि श्रुतर्षीणा स्मृतानि वै ।
ता एव संहिता ह्येते आवर्त्तन्ते पुन पुनः ॥१२२॥
श्रिता दक्षिणपन्थानं ये श्मशानानि भेजिरे ।
युगे युगे तु ताः शाखा व्यस्यन्ते तैः पुन पुनः ॥१२३॥
द्वापरेष्विव सर्वेषु संहिताश्च श्रुतर्षिभिः ।
तेषां गोत्रेष्विमाः शाखा भवन्तीह पुनः पुन ।
ताः शाखास्तत्र कर्त्तारो भवन्तीह युगक्षयात् ॥१२४॥
एवमेव तु विज्ञेय व्यतीतानागतेष्विह ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु शाखाप्रणयनानि वै ॥१२५॥
अतीतेषु अतीतानि वर्त्तन्ते साम्प्रतेषु च ।
भविष्याणि च यानि स्युर्वर्ण्यन्तेऽनागतेष्वपि ॥१२६॥

द्वापरों म बार बार एक विद्य वाला व्यवस्यमान होता है । आदि मे वैवस्वत मन्वन्तर मे ब्रह्माजी ने यह बोला था ॥१२०॥ ऋषिगण बार-बार युगाख्याओ मे आवर्त्तमान होते हैं और परस्पर मे जायमान होते हुए इन संहिताओं को किया करते हैं ॥१२१॥ अट्टासी हजार श्रुतर्षि कहे गए हैं और वे ही संहिताएँ बार-बार आवर्त्तमान हुआ करती हैं ॥१२२॥

दक्षिण मार्गों का आश्रय होने वाले जिन्होंने श्मशानों का सेवन किया था युग युग मे पुन पुन वे ही शाखाओं को किया करते हैं ॥१२३॥ यहाँ सब

द्वापरों में श्रुतर्षियों के द्वारा संहिताएँ और उनके गात्रों में ये शाखाएँ बार-बार होती हैं। यहाँ पर शाखाएँ वहाँ पर उनके करने वाले युग के क्षय से होते हैं ॥१२४॥ इसी प्रकार से जो व्यतीत हो गये हैं उनमें और जो आगे होने वाले मन्वन्तर हैं उनमें सब जान लेना चाहिए। सब मन्वन्तरों में शाखाओं के प्रणयन भी जान लेने चाहिए ॥१२५॥ अतीतों में अतीत होते हैं और साम्प्रतों में अर्थात् वर्त्तमानों में और जो भविष्य हैं वे अनागतों में वर्णित किये जाते हैं ॥१२६॥

पूर्वेण पश्चिमं ज्ञेयं वर्त्तमानेन चोभयम् ।
एतेन क्रमयोगेन मन्वन्तरविनिश्चयः ॥१२७॥
एवं देवाश्च पितर ऋषयो मनवश्च ये ।
मन्त्रैः सहोर्द्ध्वं गच्छन्ति ह्यावर्त्तन्ते च तैः सह ॥१२८॥
जनलोकात्सुराः सर्वे पशुकल्पात्पुनः पुनः ।
पर्यायकाले सम्प्राप्ते सम्भूता नैव नश्य (?) तु ॥१२९॥
अवश्यम्भाविनार्थेन सम्बध्यन्ते तदा तु ते ।
ततस्ते दोषवज्जन्म पश्यन्ते रागपूर्वकम् ॥१३०॥
निवर्त्तते तदा वृत्तिस्तेषामादोषदर्शनात् ।
एवं देव युगानीह दशकृत्वा निवर्त्तते ॥१३१॥
जनलोकात्तपोलोकं गच्छन्तीहानिवर्त्तनम् ।
एवं देवयुगानीह व्यतीतानि सहस्रशः ।
निधनं ब्रह्मलोके वै गतानि मुनिभिस्सह ॥१३२॥
न शक्यमानुपूर्व्येण तेषां वक्तुं सविस्तरान् ।
अनादित्वाच्च कालस्य असङ्ख्यानाच्च सर्वशः ।
मन्वन्तराण्यतीतानि यानि कल्पे पुरा सह ॥१३३॥

पूर्व से पश्चिम जानना चाहिए और वर्त्तमान से पूर्व और पश्चिम दोनों को ही जान लेना चाहिए। इस क्रम के योग से मन्वन्तरों का विनिश्चय हुआ करता है ॥१२७॥ इसी प्रकार से देव पितर-ऋषि और मनुगण ये सब मन्त्रों के सहित ऊर्द्ध्व भाग को चले जाया करते हैं और उनके साथ ही फिर आवर्त्त

मान होते रहते हैं ॥१२८॥ जनलोक से समस्त देवगण पयुक्रत्प मे वारवार-पर्याप्त काल के सम्प्राप्त होने पर सम्भूत हुआ करते हैं और कभी नष्ट नहीं होते हैं ।।१२६।। उस समय मे वे अवश्यम्भावी अर्थ से सम्बद्ध रहा करते हैं। इससे वे राग पूर्वक शेष वाले जन्म को देखा करते हैं ॥१३०॥ उस समय मे उनकी वृत्ति दोष दर्शन तक निवृत्त हो जाती है। इस प्रकार से यहाँ पर देव युग दश बार निर्वत्तित हुआ करते हैं ॥१३१॥ यहाँ पर अनिवर्तन जनलोक से तपो लोक को जाता है। इस प्रकार से यहाँ देवयुग सहस्रो व्यतीत होते हैं। मुनियो के साथ ब्रह्म लोक में नियन को गत होते हैं ॥१३२॥ आनुपूर्वी से उनके पूर्ण विस्तार का वर्णन नहीं किया जा सकता है क्योकि इनका कारण उनका अनादि होना और कालका सब ओर से असख्यान होना है। पहिले जो मन्वन्तर व्यतीत हो गये हैं और कल्प हो चुके हैं वह सब वर्णित नहीं किये जा सकते हैं ॥१३३॥

पितृभिर्मुनिभिर्देवैः साद्धं सप्तर्षिभिश्च वै ।
कालेन प्रतिसृष्टानां युगानाञ्च निवर्त्तनम् ॥१३४॥
एतेन क्रमयोगेन कल्पमन्वन्तराणि तु ।
सप्रजानि व्यतीतानि शतशोऽथ सहस्रशः ॥१३५॥
मन्वन्तरान्ते संहारः संहारान्ते च सम्भव ।
देवतानामृषीणाञ्च मनो पितृगणस्य च ॥१३६॥
न शक्यमानुपूर्व्येण वक्तु वर्षशतैरपि ।
विस्तरस्तु निसर्गस्य सहारस्य च सर्वशः ।
मन्वन्तरस्य सख्या तु मानुपेण निबोधत ॥१३७॥
देवतानामृषीणाञ्च सङ्ख्यानार्थविशारदैः ।
त्रिशत्कोटयस्तु सपूर्णाः सङ्ख्याता सङ्ख्यया द्विजैः ॥१३८॥
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतानि च सङ्ख्यया ।
विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयं सोधिकान् विना ॥१३९॥
मन्वन्तरस्य सङ्ख्यैषा मानुषेण प्रकीर्तिता ।
वत्सरेणैव दिव्येन प्रवक्ष्याम्यन्तरम्मनो ॥१४०॥

पितर मुनिगण देव जो कि महर्षियो के साथ ही हैं—काल से प्रतिसृष्ट

और युगों का निवर्त्तन इस क्रम के योग से कल्प तथा मन्वन्तर प्रजाओं के साथ सैकड़ों ही तथा हजारों ही व्यतीत हो चुके हैं ॥१३५॥ मन्वन्तर के अन्त में संहार और संहार के अन्त में जन्म देवों का-ऋषियों का-मनुओं और पितृगण का होता रहता है ॥१३६॥ आनुपूर्वी से सौ वर्षों में भी इस निसर्ग का विस्तार और सब संहार बताया नहीं जा सकता है। मन्वन्तर की संख्या तो मानुष से जान लो ॥१३७॥ अर्थ-विशारदों ने देवों तथा ऋषियों की संख्या तीस करोड़ सम्पूर्ण द्विजों के द्वारा संख्या से सख्यात की गई है ॥१३८॥ अधिकों को छोड़ कर यह काल संख्या से सड़सठ नियुत बीस सहस्र होता है ॥१३९॥ मन्वन्तर की यह संख्या मानुष के द्वारा कही गई है। अब दिव्य वत्सर से मनु का जो अन्तर होता है उसे कहूँगा ॥१४०॥

अष्टौ शतसहस्राणि दिव्यया सङ्ख्यया स्मृतम् ।
द्विपञ्चाशत्तथान्यानि सहस्राण्य धिकानि तु ॥१४१
चतुर्दशगुणो ह्येष काल आहूतसप्लव ।
पूर्णं युगसहस्रं स्यात्तदह्नर्ब्रह्मणः स्मृतम् ॥१४२
तत्र सर्वाणि भूतानि दग्धान्यादित्यरश्मिभि ।
ब्रह्माणं मग्रत कृत्वा सह देवर्षिदानवै ।
प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठं देवदेव महेश्वरम् ॥१४३
स स्रष्टा सर्वभूतानि कल्पादिषु पुन पुन ।
इत्येष स्थितिकालो वै मनोर्देवर्षिभि सह ॥१४४
सर्वमन्वन्तराणां वै प्रतिसन्धिं निबोधत ।
युगाख्या या समुद्दिष्टा प्रागेवास्मिन् मया तव ॥१४५
कृतत्रेतादि संयुक्त चतुर्युगमिति स्मृतम् ।
तदेकसप्ततिगुणं परिवृत्त तु साधिकम् ।
मनोरेकमधीकार प्रोवाच भगवान् प्रभु ॥१४६

दिव्य सन्ध्या से आठसौ सहस्र बताया गया है। तथा इसमें दो पंचाशत् सहस्र अधिक होता है ॥१४१॥ आहूत सप्लव यह समय चौदह गुणा होता है। पूरा एक सहस्र युग ब्रह्मा का पूरा दिन हुआ करता है, ऐसा बताया गया

है ॥१४२॥ वहाँ पर समस्त प्राणी सूर्य की किरणों से दग्ध हो जाते हैं। ब्रह्मा को आगे करके देव-ऋषि और दानवों के साथ देवों के देव और गुणों के ईश्वर महेश्वर में प्रवेश किया करते हैं ॥१४३॥ वह ही कल्पादि में बार-बार समस्त प्राणियों का सब होता है। यह ही देवर्षियों के साथ मनु की स्थिति का काल होता है ॥१४४॥ समस्त मन्वन्तरों की प्राप्ति सन्धि को समझलो। मैंने उसमें पहिले ही युगाख्या जो तुम्हारे सामने समुद्दिष्ट की थी ॥१४५॥ कृतत्रेतादि गयुक्त चतुर्युग कहा गया है। वह इसतरह गुणा परिवृत्त स्वाधिप मनु का एकाधिकार भगवान् प्रभु ने बतलाया था ॥१४६॥

एवं मन्वन्तराणां तु सर्वेषामेव लक्षणम्।
अतीतानागतानां वै वर्त्तमानेन कीर्त्तितम् ॥१४७
इत्येव कीर्त्तितः सर्गो मनो स्वायम्भुवस्य ह।
प्रति सन्धिन्तु वक्ष्यामि तस्य वै चापरस्य तु ॥१४८
मन्वन्तर यथा पूर्वमृषिभिर्देवतैः सह।
अवश्यम्भाविनार्थेन यथा तद्वै निवर्त्तते ॥१४६
अस्मिन् मन्वन्तरे पूर्वं त्रैलोक्यस्येश्वरास्तु ये।
सप्तर्षयश्च देवास्ते पितरो मनवस्तथा।
मन्वन्तरस्य काले तु सम्पूर्णे साधकास्तथा ॥१५०
क्षीणाधिकारा संवृत्ता बुद्धा पर्यायमात्मनः।
महर्लोकाय ते सर्वे उन्मुखा दधिरे गतिम् ॥१५१
ततो मन्वन्तरे तस्मिन् प्रक्षीणा देवतास्तु ताः।
सम्पूर्णे स्थितिकाले तु तिष्ठन्त्येकं कृतं युगम् ॥१५२
उत्पद्यन्ते भविष्याश्च यावन्मन्वन्तरेश्वराः।
देवताः पितरश्चैव ऋषयो मनुरेव च ॥१५३

इसी प्रकार से सभी मन्वन्तरों का लक्षण होता है। अतीत और अनागतों का वर्तमान के द्वारा किया गया है ॥१४७॥ यह स्वायम्भुव मनु का सर्ग बतलाया गया है। अब उसकी तथा दूसरे की प्रति सन्धि बतलाऊँगा ॥१४८॥ उस प्रकार से पहिले ऋषि और देवों के साथ मन्वन्तर अवश्यम्भावी अर्थ से

जैसे वह निवृत्त होता है ॥१४६॥ इस मन्वन्तर में पहिले जो त्रैलोक्य के ईश्वर हैं—सप्तर्षि-देव-पितर तथा मनुगण ये सभी सम्पूर्ण मन्वन्तर के समय में साधक होते हैं ॥१५०॥ क्षीण अधिकार वाले हुए अपने पर्याय (पारी) को जानकर वे सब महर्लोक के लिए उन्मुख होते हुए गति को धारण किया करते थे ॥१५१॥ इसके पश्चात् उस मन्वन्तर प्रक्षीण हुए वे सब देवता एक कृत युग में पूरे स्थिति के समय में ठहरा करते हैं ॥१५२॥ जितने मन्वन्तर के ईश्वर हैं जैसे—देवता—पितर—ऋषि लोग और मनु उत्पन्न होते हैं और आगे होने वाले होते हैं ॥१५३॥

मन्वन्तरे तु सम्पूर्णे यद्यन्यद्वै कला युगे ।
सम्पद्यते कृतं तेषु कलिशिष्टेषु वै तदा ॥१५४
यथा कृतस्य सन्तानः कलिपूर्वः स्मृतो बुधैः ।
तथा मन्वन्तरान्तेषु आदिमन्वन्तरस्य च ॥१५५
क्षीणे मन्वन्तरे पूर्वे प्रवृत्ते चापरे पुनः ।
मुखे कृतयुगस्याथ तेषां शिष्टास्तु ये तदा ॥१५६
सप्तर्षयो मनुश्चैव कालावेक्षास्तु ये स्थिताः ।
मन्वन्तर प्रतीक्षन्ते क्षीयन्ते तपसि स्थिता ॥१५७
मन्वन्तरव्यवस्थार्थं सन्तत्यर्थञ्च सर्वश ।
पूर्ववत् सम्प्रवर्त्तन्ते प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने ॥१५८
द्वन्द्वेषु सम्प्रवृत्तेषु उत्पन्नास्वोषधीषु च ।
प्रजासु च निकेतासु सस्थितासु क्वचित् क्वचित् ॥१५९
वार्त्तायान्तु प्रवृत्तायां सद्धर्मे ऋषिभाविते ।
निरानन्दे गते लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥१६०
अग्रामनगरे चैव वर्णाश्रमविवर्जिते ।
पूर्वमन्वन्तरे शिष्टे ये भवन्तीह धार्मिकाः ।
सप्तर्षयो मनुश्चैव संतानार्थं व्यवस्थिताः ॥१६१

सम्पूर्ण मन्वन्तर में यदि अन्य कलियुग में सम्पन्न होता है । कलियुग में शिष्ट उनके होने पर उस समय कृत होता है ॥१५४॥ जिस प्रकार से बुधों

ने कुल की सन्तान कालिपूर्व बताई है उसी प्रकार से मन्वन्तरान्तों में मन्वन्तर का आदि हुआ करता है ॥१५५॥ पूर्व मन्वन्तर के क्षीण हो जाने पर और फिर दूसरे के प्रवृत्त होने पर कृतयुग के मुख में और इसके अनन्तर जो उनके शिष्ट होते हैं वे उस समय में होते हैं ॥१५६॥ सप्तर्षियों का समुदाय और मनु जो कालापेक्ष स्थित होते हैं वे सब मन्वन्तर की प्रतीक्षा किया करते हैं और तप में स्थित क्षीण होते हैं ॥१५७॥ मन्वन्तर की व्यवस्था करने के लिए और सन्तति प्राप्त करने के वास्ते सब ओर में पूर्व की ही भाँति वृष्टि के सर्जन में प्रवृत्त हो जाने पर ये सम्प्रवृत्त हुआ करते हैं ॥१५८॥ द्वन्द्वों के सम्प्रवृत्त होने पर और औषधियों के समुत्पन्न हो जाने पर और कहीं-कहीं पर प्रजाओं में निकेतों से सन्स्थित होने पर ॥१५९॥ वार्ता के प्रवृत्त हो जाने पर तथा सद्धर्म के ऋषियों के द्वारा भावित होने पर-समस्त इस लोक के आनन्द रहित हो जाने पर एवं स्थावर (जड अचेतन) और जङ्गम (चेतन) के नष्ट हो जाने पर ॥१६०॥ ग्रामों और नगरों से रहित लोक के हो जाने पर तथा चारों वर्ण और आश्रमों से एकदम शून्य हो जाने पर पहिले मन्वन्तर के शिष्ट रहते पर यहाँ पर जो भी धर्म के मानने वाले व्यक्ति होतेहैं वे सप्तर्षियों के समूह और मनु सन्तान की वृद्धि करने के लिए व्यवस्थित हुए थे ॥१६१॥

प्रजार्थं तपता तेषां तप परमदुश्चरम् ।
उत्पद्यन्तीह सर्वेषां निधनेष्विह सर्वदा ॥१६२
देवासुराः पितृगणा मुनयो मनवस्तथा ।
सर्पा भूताः पिशाचाश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसाः ॥१६३
ततस्तेषां तु ये शिष्टा शिष्टाचारान् प्रचक्षते ।
सप्तर्षयो मनुश्चैव आदौ मन्वन्तरस्य ह ।
प्रारम्भन्ते च कर्माणि मनुष्या दैवतैः सह ॥१६४
मन्वन्तरादौ प्रागेव त्रेतायुगमुखे ततः ।
पूर्वं देवास्ततस्ते वै स्थिते धर्मे तु सर्वशः ॥१६५
ऋषीणां ब्रह्मचर्येण गत्वाऽनृण्यन्तु वै ततः ।
पितृणां प्रजया चैव देवानामिज्यया तथा ॥१६६

शत वर्षसहस्राणि धर्मे वर्णात्मके स्थिता ।
त्रयी वार्त्तां दण्डनीतिं धर्मान् वर्णाश्रमास्तथा ।
स्थापयित्वाश्रमाश्चैव स्वर्गाय दधिरे मतो. ॥१६७
पूर्वं देवेषु तेष्वेव स्वर्गाय प्रमुखेषु च ।
पूर्वं देवास्ततस्ते वै स्थिता धर्मेण कृत्स्नश. ॥१६८

प्रजा की प्राप्ति करने के लिए तपश्चर्या करने वाले उनकी तपस्या अत्यन्त ही दुष्कर थी । यहाँ पर सब लोगो का निधन (मृत्यु) हो जाने पर सभी ओर उत्पन्न हुआ करते हैं ॥१६२॥ देव तथा असुर–पितृगण–मुनि वृन्द तथा मनुगण–सर्प–भूत–पिशाच–गन्धर्व–यक्ष और राक्षस इसके पश्चात् उनमे जो शिष्ट थे वे शिष्टाचारो को किया करते हैं । मन्वन्तर आदि मे महर्षियो का समुदाय और मनु तथा देवो के साथ ही मनुष्य कर्मों का प्रारम्भ किया करते हैं ॥१६३-१६४॥ मन्वन्तर के आदि म पहिले ही त्रेतायुग के मुख मे पहिले देव होते हैं इसके पश्चात् सभी ओर से धर्म स्थित हो जाने पर ऋषियो के ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करने से आनृण्य अर्थात् ऋण का चुकाया जाने को प्राप्त हुए फिर इसके अनन्तर सतान की समुत्पत्ति करके उसके द्वारा पितृगण की अनृणता (ऋण का अभाव) प्राप्त की फिर इसके अनन्तर इज्या का यजन करने से देवो की अनृणता प्राप्त की थी ऋषि–ऋण पितृ–ऋण और देव–ऋण ये तीन ऋणो का भार सभी के ऊपर रहता है जोकि ब्रह्मचर्य-सन्तति और यज्ञ से क्रम से चुकाया जाया करता है ॥१६४-१६५-१६६॥ सो सहस्र वर्ष तक वर्णात्मक धर्म मे स्थित होते हुए उन्होने त्रयी–वार्त्ता—दण्ड नीति वर्णों तथा आश्रमो के धर्मों को स्थापित करके और ब्रह्मचर्य–गार्हस्थ्य–वानप्रस्थ और संयास इन चारो आश्रमो की स्थापना करके फिर स्वर्ग के गमन करने की बुद्धि धारण की अर्थात् स्वर्ग म चले गये थे ॥१६७॥ पहिले देवो के और फिर उनके स्वर्ग के लिए प्रमुख हो जाने पर पहिले देव और इसके पश्चात् वे सब पूर्णतया धम के साथ स्थित हुए थे ॥१६८॥

—न्तरे परावृत्ते स्थानान्युत्सृज्य सर्वश ।
ाँ सहोर्ध्वङ्गच्छन्ति महर्लोकमनामयम् ॥१६९

विनिवृत्तविकारास्ते मानसीं सिद्धिमास्थिताः ।
अवेक्षमाणा वशिनस्तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवम् ॥१७०
ततस्तेषु व्यतीतेषु सर्वेष्वेतेषु सर्वदा ।
शून्येषु देवस्थानेषु त्रैलोक्ये तेषु सर्वशः ।
उपस्थिता इहैवान्ये देवा ये स्वर्गवासिनः ॥१७१
ततस्ते तपसा युक्ता स्थानान्यापूरयन्ति वै ।
सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन च समन्विताः ॥१७२
सप्तर्षीणां मनोश्चैव देवानां पितृभिः सह ।
निधनानीह पूर्वेषामादिना च भविष्यता ॥१७३
तेषामत्यन्तविच्छेद इह मन्वन्तरक्षयात् ।
एवं पूर्वानुपूर्व्येण स्थितिरेषानवस्थिता ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु या वदाभूतसम्प्लवम् ॥१७४
एष मन्वन्तराणान्तु प्रतिसन्धानलक्षणम् ।
अतीतानागतानान्तु प्रोक्तं स्वायम्भुवेन तु ॥१७५

मन्वन्तर के परावृत्त होने पर सब ओर से स्थानों का त्याग करके मन्त्रों के साथ आमय रहित ऊर्ध्व महर्लोक को चले जाया करते हैं ॥१६९॥ समस्त प्रकार के विकारों से विशेष रूप से निवृत्त हो जाने वाले ये मानसी सिद्धि में समास्थित होते हुए अवेक्षमाण और अपने आपको वश में रखने वाले भूत सम्प्लव पर्यन्त ठहरा करते हैं ॥१७०॥ इसके अनन्तर उन सबके व्यतीत हो जाने पर और सर्वदा इन सब शून्य देवों के स्थानों में त्रैलोक्य में सभी ओर से उनमें स्वर्ग में निवास करने वाले जो अन्य देव हैं वे सब यहाँ पर ही उपस्थित होते हैं ॥१७१॥ इसके पश्चात् वे सत्य व्रत के द्वारा—ब्रह्मचर्य के पूर्ण प्रतिपालन के द्वारा और श्रुत के द्वारा पूर्णतया सर्व समन्वित और तप से युक्त वे उन स्थानों को आपूरित किया करते हैं ॥१७२॥ सप्तर्षियों का—मनु का और पितृगण के साथ देवों की यहाँ पर मृत्यु पूर्व में होने वालों की आदि से और भविष्यत् से होती है ॥१७३॥ उनका अत्यन्त विच्छेद यहाँ पर मन्वन्तर के क्षय से होता है। इस प्रकार से पूर्व की आनुपूर्वी से यह अनवस्थित स्थिति

होती है जो कि समस्त मन्वन्तरों में जब तक भूतों का सम्प्लव होता है हुआ करती है ॥१७४॥ इस प्रकार से मन्वन्तरों का प्रति सन्धान का लक्षण जोकि मन्वन्तर अतीत होगये या अनागत हैं स्वायम्भुव मनु ने कहा है ॥१७५॥

मन्वन्तरेष्वतीतेषु भविष्याणां तु साधनम् ।
एवमत्यन्तविच्छिन्न भवत्याभूतसम्प्लवात् ॥१७६
मन्वन्तराणां परिवर्त्तनानि एकान्ततस्तानि महर्गतानि ।
महर्जनश्चैव जनन्तपश्च एकान्तगानि स्म भवन्ति सत्ये ॥१७७
तद्भाविना तत्र तु दर्शनेन नानात्वदृष्टेन च प्रत्ययेन ।
सत्ये स्थितानीह तदा तु तानि प्राप्ते विकारे प्रतिसर्गकाले ॥१७८
मन्वन्तराणां परिवर्त्तनानि मुञ्चन्ति सत्यन्तु ततोऽपरान्ते ।
ततोऽभियोगाद्विषमप्रमाणं विशन्ति नारायणमेव देवम् ॥१७९
मन्वन्तराणां परिवर्त्तनेषु चिरप्रवृत्तेषु विधिस्वभावात् ।
क्षणं न तिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्त्तमानः ॥१८०
इत्युत्तराण्येवमृषिस्तुतानां धर्मात्मनां दिव्यदृशां मनूनाम् ।
वायुप्रणीतान्युपलभ्य दृश्य दिव्योजसा व्याससमासयोगैः ॥१८१
सर्वाणि राजर्षिमुर्षिमन्ति ब्रह्मर्षिदेवोरगवन्ति चैव ।
सुरेशसर्वर्षिपितृप्रजेशैर्युक्तानि सम्यक् परिवर्त्तनानि ॥१८२
उदारवंशाभिजनद्युतीनां प्रकृष्टमेधाभिसमेधितानाम् ।
कीर्तिद्युतिख्यातिभिरन्वितानां पुण्यं हि विख्यापनमीश्वराणाम् ॥१८३

जो मन्वन्तर अतीत हो चुके हैं उसमें आगे भविष्य में होने वाले मन्वन्तरों का साधन होता है। इस प्रकार से भूतों के सम्प्लव तक अत्यन्त विच्छिन्न हुआ करता है ॥१७६॥

मन्वन्तरों के परिवर्तन जो हुआ करते हैं वे एकान्त से महर्लोक में गत हुआ करते हैं। महर्लोक के पश्चात् जनलोक में जन के बाद तपो लोक में और फिर सत्य लोक में एकान्त में गये हुए हुआ करते हैं ॥१७७॥ वहां पर उसमें होने वालों के दर्शन से और नानात्व के स्वरूप में देखे हुए प्रत्यय अर्थात् विश्वास से उस समय में सत्य लोक में स्थित वे विकार स्वरूप प्रतिसर्ग काल

के प्राप्त होने पर यहाँ पर हुआ करते हैं ॥१७८॥ मन्वन्तरों के परिवर्तन इसके पश्चात् अपरान्त में सत्यलोक को त्याग दिया करते हैं। इसके अनन्तर अभियोग से विषय प्रमाण नारायण देव में ही प्रवेश किया करते हैं ॥१७६॥ मन्वन्तरों के चिरकाल से प्रवृत्त होने वाले परिवर्तनों में विधि के स्वभाव से यह जीवों का लोक क्षय और उदय से परिवन्दमान होता हुआ क्षणमात्र को रस में स्थित हुआ करता है ॥१८०॥ इस प्रकार से ऋषियों के द्वारा स्तुति किये गये धर्मात्मा-दिव्य दृष्टि वाले मनुओं के वायुदेव के द्वारा कहे हुए इन उत्तरों को प्राप्त करके व्यास और समास अर्थात् विस्तार और संक्षेप के योगों के द्वारा दिव्य ओज वाले के द्वारा देखने के योग्य हैं ॥१८१॥ वे समस्त परिवर्तन, जोकि मन्वन्तरों के हुआ करते हैं, राजर्षि और सुरर्षियों से युक्त हैं। और वे ब्रह्मर्षि-देव और उरगों वाले हैं। सुरों के ईश-सप्तर्षि-पितृगण-प्रजा के ईशों से भी युक्त भली-भाँति हुआ करते हैं ॥१८२॥ उदार वन-अभिजन और द्युति से युक्त-प्रकृष्ट मेधा से चारों ओर से समेधित होने वाले-कीर्ति द्युति और प्रसिद्धि से अन्वित ईश्वरों का परम पुण्यप्रद पवित्र विख्यापन होता है ॥१८३॥

स्वर्ग्यमेतत् परम पवित्र पुत्रीयमेतच्च पर रहस्यम्।
जप्य महत्पर्वसु चैत दग्य दु स्वप्नशान्ति परमायुपेयम् ॥१८४
प्रजेशदेवर्षिमनुप्रधानां पुण्यप्रसूतिं प्रथितामजस्य।
ममापि विख्यापनसंयमाय सिद्धि जुषध्व सुमहेशतत्वम् ॥१८५
इत्येतदन्तर प्रोक्त मनो स्वायम्भुवस्य तु।
विस्तरेणानुपूर्व्या च भूय किं वर्णयाम्यहम् ॥१८६

यह उन ईश्वरों का विख्यापन स्वर्गीय अर्थात् स्वर्ग के समान सुखप्रद-परम पवित्र और पुत्रीय अर्थात् पुत्रोत्पत्ति प्रदान करने वाला एवं अत्यन्त रहस्य अर्थात् गोपनीय है। यह महान् पर्वों के अवसरों पर जप करने के योग्य और सबसे श्रेष्ठ है। यह बुरे स्वप्नों की शान्ति करने वाला तथा परमायु प्रद होता है ॥१८४॥ जिसमें प्रजा के स्वामी—देवर्षि और मनु प्रधान होते हैं ऐसी अजन्मा की परम पुण्य प्रसूति को जोकि बहुत ही प्रसिद्ध है, विख्यापन के संयम के लिए मेरी भी सिद्धि को और सुमहेश तत्त्व को सेवन करो ॥१८५॥ इस

प्रकार से यह स्वायम्भुव मनु का अन्तर विस्तारपूर्वक तथा आनुपूर्वी से कह दिया है अब आगे फिर मैं क्या वर्णन करूँ ॥१८६॥

॥ प्रकरण ४४ पृथ्वी-दोहन ॥

अथ मन्वन्तराणान्तु ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वत ।
देवताना च सर्वेषा ये च यस्यान्तरे मनो ॥१
मन्वन्तराणि यानि स्युरतीतानागतानि ह ।
समासाद्विस्तराच्चैव ब्रुवतो वै निबोधत ॥२
स्वायम्भुवो मनु पूर्व मनु स्वारोचिषस्तथा ।
औत्तमस्तामसश्चैव तथा रैवतचाक्षुषौ ।
षडेते मनवोऽतीता वक्ष्याम्यष्टावनागतान् ॥३
सावर्णा पञ्च रौच्यश्च भौत्यो वैवस्वतस्तथा ।
वक्ष्याम्येतान् पुरस्तात्त मचोर्वैवस्वतस्य ह ॥४
मनव पञ्च येऽतीता मानवास्तान् निबोधत ।
मन्वन्तर मया चोक्त ब्रान्त स्वायम्भुवस्य ह ॥५
अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि मनो. स्वारोचिषस्य ह ।
प्रजासर्ग समासेन द्वितीयस्य महात्मन. ॥६
आसन् वै तुषिता देवा मनुस्वारोचिषेऽन्तरे ।
पारावताश्च विद्वासो द्वावेव तु गणौ स्मृतौ ॥७

श्री शांशपायन ने कहा—मैं मन्वन्तरो के क्रम को तत्त्व पूर्वक जानने की इच्छा करता हूँ और जिस मनु के अन्तर मे जो सब देवत हुए हैं उनके क्रम को भी जानने की इच्छा रखता हूँ। ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—अतीत और अनागत मन्वन्तरो के जो भी देवत होते हैं उनको सक्षेप मे और विस्तार से बताने वाले मुझसे सब कुछ समझ लो ॥२॥ अब तक छः मनु व्यतीत हुए हैं उनके क्रम से नाम ये हैं—सबसे पहला मनु स्वायम्भुव हुआ था उसके पश्चात्

स्वारोचिष मनु हुए फिर औत्तम तामस–रैवत और अन्त मे चाक्षुष मनु हुए हैं। ये इतने ही मनु तो अब तक व्यतीत हो चुके हैं। अब जो अनागत अर्थात् भविष्य मे होने वाले आठ मनु हैं उनको बताऊँगा ॥३॥ पाँच सावर्ण–रौच्य-भौत्य तथा वैवस्वत ये आठ हैं। वैवस्वत मनु के पहिले इनको बताऊँगा ॥४॥ जो पाँच मनु अतीत हो चुके है उन मानवो को आप लोग जान लो। स्वायम्भुव का क्रान्त मन्वन्तर मैंने कह दिया है ॥५॥ इसके आगे जो स्वारोचिष मनु है उस द्वितीय महान् आत्मा वाले की प्रजा का सर्ग सक्षेप [redacted] बतलाऊँगा ॥६॥ स्वारोचिष मन्वन्तर मे तुषिता और विद्वान् पारावत देव हुए ये उस समय ये दो ही गण कहे गये है ॥७॥

तुषितायां समुत्पन्ना क्रतो पुत्रा स्वरोचिष ।
पारावताश्च शिष्टाश्च द्वादशौतौ गणौ स्मृतौ ।
छन्दजाश्च चतुर्विंशद्वारते वै तदा स्मृता ॥८
धैवस्यशोऽय वामान्यो गोपा देवायतस्तथा ।
अजश्च भगवान् देवो दुरोणश्च महावल ॥६
आपश्चापि महावाहुर्महौजाश्चापि वीर्यवान् ।
चिकित्वान् निभृतो यश्च अ शोयश्चै व पठ्यते ।
इत्येते क्रतुपुत्रास्तु तदासन् सोमपायिन ॥१०
प्रचेताश्चै व यो देवा विश्वेदेवास्तथैव च ।
समञ्जो विश्रुतो यश्च अजिह्मश्चारिमर्द्दन ॥११
अजिह्मानमहीयानौ विद्यावन्तौ तथैव च ।
अजोपौ च महाभागौ यवीयश्च महावल ॥१२
होता यज्वा च इत्येते पराक्रान्ता परावता ।
इत्येता देवता ह्यासन्मनुस्वारोचिषेन्तरे ॥१३
सोमपास्तु तदा ह्येताश्चतुर्विंशतिदेवताः ।
तेपामिन्द्रस्तदा ह्यासीद्विघश्च लोकविश्रु[redacted]ः ॥१४

तुषिता मे क्रतु के स्वारोचिष पुत्र उत्पन्न हुए। और शिष्ट पारावत उत्पन्न हुए ये द्वादश थे। ये दो गण कह गये हैं और छन्दज थे वे उस समय

मे चौबीस देव कहे गये हैं ॥८॥ धैवस्य–वामान्य–गोपा–देवायन–प्रज–भगवान् देव–दुरोण–महाबल–भाप–महाबाहु–महौजा–वीर्यवान्–चिरिवान्–निभृत–प्रशाय य सब पढ़े जाते हैं। ये सब क्रतु के पुत्र उस समय मे सोमपायी हुए थे ॥९॥१०॥ प्रचेता देव–विश्वेदेवा–विश्रुत–अजिह्न–अरिमर्दन–प्रजिह्वान–महीयान ये विद्यावान् थे–दो भजोप जो महाभाग थे–यवीय–महाबल–होता और यज्वा ये सब परावत पराक्रान्त हुए है। ये सब स्वारोचिष मन्वन्तर मे देवता थे ॥११॥१२॥१३॥ उस समय मे ये चौबीस देवता सोमप थे। उस समय में लोक विश्रुत वैध उनका इन्द्र था ॥१४॥

ऊर्जो वसिष्ठपुत्रस्तु स्तम्भः काश्यप एव च।
भार्गवश्च तदा द्रोणो ऋषभोऽङ्गिरसस्तथा ॥१५
पौलस्त्यश्चैव दत्तात्रिरात्रेयो निश्चइस्तथा।
पौलहस्य च धावास्तु एते सप्तर्षयः स्मृता ॥१६
चैत्रः कविरुतश्चैव कृतान्तो विभृतो रविः।
बृहद्गुहो नवश्चैव सुताश्चैते नव स्मृताः ॥१७
मनोः स्वारोचिषस्यैते पुत्रा वशकराः स्मृताः।
पुराणे परिसङ्ख्याता द्वितीय चैतदन्तरम् ॥१८
सप्तर्षयो मनुर्देवाः पितरश्च चतुष्टयम्।
मूल मन्वन्तरस्यैते तेषा चैवान्तरे प्रजाः ॥१९
ऋषीणा देवताः पुत्रा पितरो देवसूनव.।
ऋषयो देवपुत्राश्च इति शास्त्रविनिश्चय ॥२०
मनो क्षत्र विप्राश्चैव सप्तर्षिभ्यो द्विजातयः।
एतन्मन्वन्तरं प्रोक्त समासाद्य तु विस्तरात् ॥२१

वसिष्ठ का पुत्र ऊर्ज–कश्यप का पुत्र स्तम्भ–भार्गव–द्रोण–आङ्गिरस–ऋषभ–पौलस्त्य–दत्तात्रि आत्रेय–निश्चल–पौलह का धावान् ये सप्तर्षि कहे गये हैं ॥१५॥१६॥ चैत्र–कवि–उत–कृतान्त–निभृत–रवि–बृहद्गुह–नव ये नो पुत्र कहे गये हैं ॥१७॥ ये स्वारोचिष मनु के ये वश कर पुत्र कहे गये हैं। पुराण मे ये सब परिसख्यात है। यह द्वितीय अन्तर होता है ॥१८॥ इसके अन्तर

मे प्रजा हैं ॥१९॥ ऋषियो के देवता पुत्र हैं और पितर देव पुत्र होते हैं। ये सब ऋषि और देव पुत्र ही हैं ऐसा शास्त्र का विनिश्चय होता है ॥२०॥ मनु से क्षत्र अर्थात् क्षत्रिय और वैश्य और सप्तर्षियो से द्विजाति हुए। यह मन्वन्तर सक्षेप स कह दिया गया है विस्तार नही कहा है ॥२१॥

स्वायम्भुवेन विस्तारो ज्ञेय स्वारोचिपस्य तु
न शक्यो विस्तरस्तस्य वक्तु वपशतैरपि।
पुनरुक्तबहुत्वात्तु प्रजाना यं कुले-कुले ॥२२
तृतीयस्त्वथ पर्याय ग्रोत्तमस्यान्तरे मनो।
पञ्च चैव गणा प्रोक्तास्तान् वक्ष्यामि निबोधत ॥२३
सुधामानश्च देवाश्च ये चान्ये वशवर्त्तिन।
प्रतर्द ना० शिवा सत्या गणा द्वादश वै स्मृता ॥२४
सत्यो धृतिदमो दान्त क्षम क्षामो धृति शुचि।
ईषोर्जश्च तथा ज्येष्ठो वपुष्माश्चैव द्वादश।
इत्येते नामभि क्रान्ता सुधामानस्तु द्वादश ॥२५
सहस्रधारो विश्वात्मा शमितारो वृहद्वसु।
विश्वधा विश्वकर्मा च मनस्वन्तो विराड्यमा ॥२६
ज्योतिश्चैव विभाव्यश्च कीर्तिमान् वराकारिण।
अन्यानाराधितो देवो वसुधिष्णो विवस्वसु ॥२७
दिनक्रतु सुधर्मा च धृतवर्मा यशस्विन।
केतुमाश्चैव इत्येते कीर्तितास्तु प्रमर्द ना ॥२८

स्वायम्भुव से स्वारोचिष का विस्तार जान लेना चाहिए। वैसे उनका पूर्ण विस्तार सौ वर्षों मे भी बतलाया नही जा सकता है। कुल कुल मे पुनरुक्ति का बाहुल्य प्रजाओ का होना है ॥२२॥ तृतीय औत्तम मनु के अन्तर मे पर्यास होता है। इसम पाँच गण कहे थ उनको बतलाऊँगा उन्हे आप समझ लो ॥२३॥ सुधामान और दव जो अन्य वशवर्ती हैं–प्रतर्दन–शिव और सत्य ये बारह गण कहे गये है ॥२४॥ सत्य–दम–दान्त–क्षम–क्षाम–धृति–शुचि–ईषार्ज–ज्येष्ठ–और वपुष्मान् ये बारह हैं। ये सब नाम स कहे गये है और

सुधामान बारह है ॥२५॥ सहस्रधार–विश्वात्मा–शमितार–बृहद्वसु–विश्वधा विश्व कर्मा–मनस्वन्त–विराडभ्रशा–ज्योति–विभाव्य–कीर्तिमान् ये वशकारी हैं। मन्यानाराधित–देव वसुधिष्ण–विचस्वसु–दिन ऋतु–सुधर्मा–और धृतवर्मा ये सब यशस्वी हैं। केतुमान् ये प्रमदव कह गये हैं ॥२६॥२७॥२८॥

हंसस्वरोऽहिहा चैव प्रतर्दनयशस्करौ ।
सुदानो वसुदानश्च सुमञ्जसविषावुभौ ॥२६
जन्तुवाहयतिश्चैव सुचित्तसुनयस्तथा ।
शिवा ह्येते तु विज्ञेया यज्ञिया द्वादशापरा ॥३०
सत्यानामपि नामानि निबोधत यथामतम् ।
दिक्पतिर्वाक्पतिश्चैव विश्व शम्भुस्तथैव च ॥३१
स्वमृडीकोऽधिपश्चैव वर्चोधा मुह्यसन्धैश्च ।
वासवश्च सदाश्वश्च क्षेमानन्दौ तथैव च ॥३२
सत्या ह्येते परिक्रान्ता यज्ञिया द्वादशापरा ।
इत्येते देवता ह्यासन्नौत्तमस्यान्तरे मनो ॥३३
अजश्च परशुश्चैव दिव्यो दिव्यौषधिर्नय ।
देवानुजश्चाप्रतिमो महोत्साहौशिजस्तथा ॥३४
विनीतश्च सुकेतुश्च सुमित्रः सुबलः शुचिः ।
औत्तमस्य मनो पुत्रास्त्रयोदश महात्मनः ।
एते क्षत्रप्रणेतारस्तृतीय चैतदन्तरम् ॥३५
औत्तमे परिसङ्ख्यात सर्गः स्वारोचिषेण तु ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च तामसस्तान्निबोधत ॥३६
चतुर्थे त्वथ पर्याये तामसस्यान्तरे मनो ।
सत्या स्वरूपा सुधियो हरयश्चतुरो गणाः ॥३७

हंस स्वर–अहिहा–प्रतर्दन–यशस्कर–सुदान–वसुदान–सुमञ्जस–विष दोनों–जन्तुवाहयति–सुचित्त सुनय–शिवा ये यज्ञिय दूसरे द्वादश जानने चाहिए ॥२६॥३०॥ अब सत्यों के नाम भी यथामत जान लो। दिक्पति–वाक्पति–विश्व–शम्भु–स्वमृडीक अधिप वर्चोधा मुह्य सन्ध–वासव–सदाश्व क्षेम और

आनन्द ये सब बारह दूसरे यजिय कहे गये हैं। औत्तम मन्वन्तरों में ये सब देवता थे। ॥३१॥३२॥३३॥ अज-परशु-दिव्य-दिव्यौषधि-नय-देवानुज-अप्रतिम-महोत्साहो शिज-विनीत-सुकेतु-सुमित्र सुबल-शानि ये महान् आत्मा वाले औत्तम मनु के तेरह पुत्र हुए थे। इन्होंने ही क्षत्र का अर्थात् क्षत्रियों का प्रणयन किया था और यह तृतीय अन्तर है। इस औत्तम में स्वारोचिष के द्वारा यह सर्ग परिसंख्यात हुआ है अब विस्तार से और आनुपूर्वी से तामस आता है उसको जान लो। ॥३४॥३५॥३६॥ इसके अनन्तर चौथे तामस मन्वन्तर के पर्याय में सत्य-स्वरूप-सुधिय-हृदय ये चार गए हैं ॥३७॥

पुलस्त्यपुत्रस्य सुतास्तामसस्यान्तरे मनोः ।
गणास्तु तेषां देवानामेकैकं पञ्चविंशक ॥३८
इन्द्रियाणां शतं यदि मुनयः प्रतिजानते ।
सत्यप्राणास्तु शीर्षण्यास्तमश्चैवाष्टमस्तथा ।
इन्द्रियाणि सदा देवा मनोस्तस्यान्तरे स्मृताः ॥३९
तेषां च प्रभुदेवानां शिबिरिन्द्रः प्रतापवान् ।
सप्तर्षयोऽन्तरे चैव तान्निबोधत सत्तमाः ॥४०
काव्यो हर्षस्तथा चैव काश्यपः पृथुरेव च ।
आत्रेयश्चाग्निरित्येव ज्योतिर्धामा च भार्गवः ॥४१
पौलहो धनपीठश्च गोत्रे वासिष्ठ एव च ।
चैत्रस्तथापि पौलस्त्य ऋषयस्तामसेऽन्तरे ॥४२
जनुजङ्घस्तथा शान्तिर्नरः ख्यातिर्भयस्तथा ।
प्रियभृत्यो ह्यवक्षिश्च पृष्टलोष्टो दृढोद्यतः ।
ऋतश्च ऋतबन्धुश्च तामसस्य मनोः सुताः ॥४३
पञ्चमे स्वस्य पर्याये मनोश्चारिष्णवेऽन्तरे ।
गणास्तु सुसमाख्याता देवतानां निबोधत ॥४४
अमृता आभूतरजोविकुण्ठाः ससुमेधस. ।
वरिष्णोस्तु शुभाः पुत्रा वसिष्ठस्य प्रजापतेः ।
चतुर्दश च चत्वारो गणास्तेषान्तु भास्वराः ॥४५

स्वप्नविप्रोऽग्निभापश्च प्रत्येतिष्ठामृतस्तथा ।
सुमतिर्वाविरावश्च वाचिनोद सवस्तथा ॥४६
प्रविरासी च वादश्च प्राशश्चेति चतुर्दश ।
अमृताभा स्मृता ह्येते देवाश्चारिष्णवेऽन्तरे ॥४७

पुलस्त्य पुत्र के सुत तामस मन्वन्तर मे थे। उन देवो के गण एक-एक पच्चीस थे ॥३८॥ जो इन्द्रियो के सौ मुनि प्रति सात हैं, सत्यप्राण–दीर्घरण्य तथा आठवाँ तम है। उस समय मे इन्द्रिय उस मनु के अन्तर मे देव कहे गये हैं ॥३६॥ उन प्रभु देवो का शिवि प्रताप वाला इन्द्र था। इस मन्वन्तर मे जो सप्तर्षि थे, हे सत्तमा! उनको अब आप लोग जान लो ॥४०॥ काव्य, हर्ष, काश्यप, पृथु, आत्रेय, अग्नि, ज्योतिर्धामा, भार्गव, पौलह, चनपीठ, गोत्र मे वासिष्ठ, चैत्र, पौलस्त्य ये इस मन्वन्तर मे ऋषि थे ॥४१॥४२॥ जनु घराड, शान्ति, नर, ख्याति, भय, प्रियभृत्य, अवलि, पृथुलोड, दशोरात, ऋत, ऋतबन्धु, ये तामस मनु के पुत्र थे ॥४३॥ इसके अनन्तर चारिष्णव मनु के पाँचवें मन्वन्तर-पर्याय मे जो देवताओ के गण कहे गये हैं, उन्हें अब जान लो ॥४४॥ अभून, आभून, रज, विकुण्ठ, सप्तमेघस चरिष्णु के शुभ पुत्र थे। वसिष्ठ प्रजापति के चौदह और चार उनके भास्वर गण थे। स्वप्न विप्र, अग्निभाप, प्रत्येतिष्ठामृत, सुमति, वाविराव, वाचिनोद, सव, प्रविरासी, वाद, प्राश ये चौदह हैं। चारिष्णव मन्वन्तर मे ये अमृताभ देव कहे गये हैं ॥४५॥४६॥४७॥

मतिश्च सुमतिश्चैव ऋतसत्यो तथैव च ।
आवृतिर्निवृत्तिश्चैव मदो विनय एव च ॥४८
जेता जिष्णु सहश्चैव द्युतिमान् श्रवसस्तथा ।
इत्येतानीह नामानि आभूतरजसा विदु ॥४६
वृषभेत्ता जयो भीम शुचिर्दान्तो यशो दम ।
नाथो विद्वानजेयश्च कृशो गोरो ध्रुवस्तथा ।
नीतितास्तु विकुण्ठा वै सुमेधास्तु निबोधत ॥५०
मेधा मेधातिथिश्चैव सत्यमेधास्तथैव च ।
पृश्निमेधाल्पमेधाश्च भूयो मेधादय प्रभु ॥५१

दीप्तिमेधा यशोमेधा. स्थिरमेधास्तथैव च ।
सर्वमेधाश्चमेधाश्च प्रतिमेधाश्च य स्मृत ।
मेधावान् मेधहर्त्ता च कीर्त्तितास्तु सुमेधस ॥५२
विभुरिन्द्रस्तदा तेषामासीद्विक्रान्तपौरुष ।
पौलस्त्यो वेदबाहुश्च यजुर्नामा च काश्यप ॥५३
हिरण्यरोमाङ्गिरसो वेदश्रीश्चैव भार्गव ।
ऊर्द्ध्वबाहुश्च वासिष्ठ पर्जन्यः पौलहस्तथा ।
सत्यनेत्रस्तथात्रेय ऋषयो रैवतान्तरे ॥५४
महापुराणसम्भाव्यः प्रत्यङ्गपरहा शुचि ।
बलबन्धुर्निरामित्र' केतुभृङ्गो दृढव्रत. ।
चारिष्णवस्य पुत्रास्ते पञ्चमस्तं तदन्तरम् ॥५५

मति, सुमति, ऋत, सत्य, आवृति, विवृति, मद, विनय, क्षेना, जिष्णु, सह, धृतिमान, वृषभ, ये इनके नाम समझने चाहिये जान लो ॥४८॥४९॥ वृषभेत्ता, जय, भीम, शुचि, दान्त, यश, दम, नाय, विद्वान्, अजेय, कृश, गौर तथा ध्रुव ये विकुण्ठ कहे गये हैं। अब सुमेधा जान लो ॥५०॥ मेधा, मेधातिथि, सत्यमेधा, पृश्निमेधा, अल्पमेधा, भूयोमेधादय, प्रभु, दीप्तिमेधा, यशोमेधा, स्थिरमेधा, सर्वमेधा, अश्वमेधा, प्रतिमेधा, मेधावान्, मेधहर्त्ता ये सब सुमेधस कहे गये हैं ॥५१॥५२॥ उनका विक्रान्त पौरुष वाला उस समय में विभु इन्द्र था। पौलस्त्य, वेदबाहु, यजु नाम वाला और काश्यप, हिरण्य रोमा, आङ्गिरस, वेदश्री, भार्गव, ऊर्ध्वबाहु, वासिष्ठ, पर्जन्य, पौलह, सत्यनेत्र, आत्रेय ये रैवत मन्वन्तर में ऋषि थे ॥५३॥५४॥ महापुराण सम्भाव्य, प्रत्यङ्ग परहा, शुचि, बलबन्धु, निरामित्र, केतुभृङ्ग, दृढव्रत ये चारिष्णव के पुत्र थे। यह पञ्चम मन्वन्तर है ॥५५॥

स्वारोचिषोत्तमश्चैव तामसो रैवतस्तथा ।
प्रियव्रतान्वया ह्येते चत्वारो मनवस्तथा ॥५६
षष्ठे मन्वन्तरे चापि देवा ये चाक्षुषेऽन्तरे ।
आद्या प्रभूता भाव्याश्च पृथुकाश्च दिवौकस. ।

महानुभावलेखाश्च पञ्च देवगणाः स्मृताः ॥५७
दिवौकसः सर्ग एष प्रोच्यते मातृनामभिः ।
अत्रेः पुनस्य नामार आरण्यस्य प्रजापतेः ।
गणाश्च तेषां देवानामेकैको ह्यष्टकः स्मृतः ॥५८
अन्तरिक्षो वसुहयो ह्यतिथिश्च प्रियव्रतः ।
श्रोता मन्ता सुमन्ता च आद्या ह्येते प्रकीर्तिताः ॥५९
श्येनभद्रस्तथा पश्य पश्यनेत्रो महायशाः ।
सुमनाश्च सुचेताश्च रैवतः सुप्रचेतसः ।
द्युतिश्चैव महासत्त्वः प्रसूताः परिकीर्तिताः ॥६०
विजयः सुजयश्चैव मनोधानो तथैव च ।
सुमतिः सुपरिश्चैव विज्ञातोऽथपतिश्च यः ।
भाव्या ह्येते स्मृता देवाः पृथुकास्तु निबोधत ॥६१
अजिष्ठः शावयनो देवो वानवृष्टस्तथैव च ।
शार्ङ्कर सत्यधृष्णुश्च विष्णुश्च विजयस्तथा ।
अजितश्च महाभाग पृथुकास्ते दिवौकसः ॥६२
लेखास्तथा प्रवक्ष्यामि ब्रुवतो मे निबोधत ।
मनोजवः प्रघासस्तु प्रचेतास्तु महायशाः ॥६३
यातो ध्रुवक्षितिश्चैव अद्भुतश्चैव वीर्यवान् ।
भवनो बृहस्पतिश्चैव लेखाः सम्परिकीर्तिताः ॥६४

स्वारोचिष तम तामस तथा रैवत ये चारों मनु प्रियव्रत के अन्वय अर्थात् वंश मे थे ॥५६॥ अब छठे पर्याय मे चाक्षुष मन्वन्तर मे जो देव थे वे आप्य प्रसूत भाव्य पृथुक दिवौकस और महानुभाव लेख ये पाँच देवगण कहे गये हैं ॥५७॥ यह मातृ नामों के द्वारा दिवौकस सग कहा जाता है। अत्रि के पुत्र प्रजापति आरण्य के नाती हैं। उन देवो के गण एक एक अष्टक कहा गया है ॥५८॥ अन्तरिक्ष वसुहय अतिथि प्रियव्रत श्रोता मन्ता सुमन्ता ये आद्य कहे गये हैं ॥५९॥ श्येनभद्र पश्य पश्यनेत्र महायशा सुमना सुचेता रैवत सुप्रचेतस द्युति महासत्व ये प्रसूत कीर्तित किये गये हैं ॥६०॥ विजय सुजय

मनोयान, सुमति, सुपरि, विज्ञात, अर्थपति ये साध्य देव कहे गये हैं, अब जो पृथुक हैं उनको समझ लो ॥६१॥ अजिष्ट, शावयन, देव, वानपृष्ठ, शाङ्कुर, सत्य-धृष्णु, विष्णु, विजय, अजित, महाभाग ये पृथुक दिवौकस अर्थात् देवता हैं। अब लेखों को बताऊँगा, आप बताने वाले मुझसे उन्हें समझ लो। मनोजव, प्रचाम, प्रचेता, महायशा, बात ध्रुवक्षिति, अद्भुत, वीर्यवान्, अनन्त, बृहस्पति ये लेख कहे गये हैं ॥६२॥६३॥६४॥

मनोजवो महावीर्यस्तेपामिन्द्रस्तदाभवत् ।
उन्नतो भार्गवश्चैव हविष्मानङ्गिर सुत ॥६५
सुधामा काश्यपश्चैव वासिष्ठो विरजस्तथा ।
प्रतिमानश्च पौलस्त्य सहिष्णु पौलहस्तथा ।
मधुरात्रेय इत्येते सप्त वै चाक्षुषेऽन्तरे ॥६६
ऊरु पूरु शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक् कृति ।
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव ॥६७
अभिमन्युश्च दशमो नाड्वलेया मनो सुता ।
चाक्षुषस्य सुता ह्येते षष्ठ चैव तदन्तरम् ॥६८
वैवस्वतेन सङ्ख्यातस्तस्य सर्गो महात्मन ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च वर्णित वै मया द्विजा ॥६९
चाक्षुषस्य तु दायाद सम्भूत कश्यपान्वये ।
तस्यान्ववाये येऽप्यन्ये तन्नो ब्रूहि यथातथम् ॥७०
चाक्षुषस्य निसर्गन्तु समासाच्छ्रोतुमर्हथ ।
तस्यान्ववाये सम्भूत पृथुर्वैन्य प्रतापवान् ॥७१
प्रजाना पतयश्चान्ये दक्ष प्राचेतसस्तथा ।
उत्तानपाद जग्राह पुत्रमत्रि प्रजापति ॥७२

मनोजव महावीर उनका उस समय म इन्द्र हुआ था। उन्नत, भार्गव, हविष्मान्, अङ्गिरा का पुत्र सुधामा, काश्यप, वासिष्ठ, विरज, प्रतिमान, पौलस्त्य, सहिष्णु, पौलह, मधुरात्रेय ये सात चाक्षुष मन्वन्तर में थे ॥६५॥६६॥ ऊरु, पूरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, कृति, अग्निष्टुत्, अतिरात्र और सुद्युम्न

वे भी हैं ।।६७।। और अभिमन्यु दशम था । नाड्वलेय मनु के पुत्र थे । ये सब चाक्षुष के पुत्र थे और यह छटवाँ मन्वन्तर है । उस महात्मा का यह सर्ग वैवस्वत ने परिसख्यात किया है । हे द्विजो ! मैंने इसे विस्तार तथा आनुपूर्वी से कह दिया है ।।६८।।६९।। ऋषियो ने कहा—चाक्षुष का दायाद कश्यप के वश मे उत्पन्न हुआ था । उसके अन्ववाय म और जो भी कोई दूसरे हो उन्हें यथा तथा रूप से बतलाइये ।।७०।। श्रीसूतजी ने कहा—आप लोग चाक्षुष का निसर्ग जो है उसे सक्षेप से सुनने के योग्य होते हैं । उसके अन्ववाय मे प्रतापवान् वैन्य पृथु हुआ था ।।७१।। अन्य दक्ष और प्राचेतस प्रजाओं के पति थे । अत्रि प्रजापति ने उत्तानपाद को पुत्र ग्रहण किया था ।।७२।।

दक्षकस्य तु पुत्रोऽस्य राजा ह्यासीत् प्रजापते ।
स्वायम्भुवेन मनुना दत्तोऽत्रे कारण प्रति ।।७३
मन्वन्तरमथासाद्य भविष्य चाक्षुषस्य ह ।
गद्य तदनु वक्ष्यामि उपोद्घातेन वै द्विजा ।।७४
उत्तानपादात्तुरा सूनृता वित्तभाविनी ।
उत्पन्ना चाधिधर्मेण ध्रुवस्य जननी शुभा ।
धर्मस्य पत्न्या लक्ष्म्या व उत्पन्ना सा शुचिस्मिता ।।७५
ध्रुवञ्च कीर्तिमन्तञ्च अयस्मन्त वसु तथा ।
उत्तानपादोऽजनयत् कन्ये द्वे च शुचिस्मिते ।
मनस्विनी स्वराञ्चव तयो पुत्रा प्रकीर्तिता ।।७६
ध्रुवो वर्षसहस्राणि दश दिव्यानि वीर्यवान् ।
तपस्तेपे निराहार प्रार्थयन् विपुल यश ।।७७
त्रेतायुगे तु प्रथमे पौत्र स्वायम्भुवस्य ॥ ।
आत्मान धारयन् यागात् प्रार्थयन् सुमहद्यश ।।७८
तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतो ज्योतिषा स्थानमुत्तमम् ।
आभूतसम्प्लव ह्यस्तोदयविवर्जितम् ।।७९
तस्यातिमात्रामृद्धि च महिमान निरीक्ष्य ह ।
दैत्यासुराणामाचार्य श्लोकमप्युशना जगौ ।।८०

इस प्रजापति दक्ष का पुत्र राजा था। स्वायम्भुव मनु ने अत्रि के कारण के प्रति दिया था ॥७३॥ इसके अनन्तर चाक्षुष के भविष्य मन्वन्तर को प्राप्त करके हे द्विजो! इसके पश्चात् उपोद्घात के साथ यह को बतलाऊँगा ॥७४॥ उत्तानपाद से चतुर सुनृत और विजयविनी शुभ धर्मधर्म से ध्रुव की माता हुई। शुचि स्मित वाली वह धर्म की पत्नी लक्ष्मी से उत्पन्न हुई थी ॥७४ ७५॥ उत्तानपाद ने ध्रुव–कीर्तिमान्–अयस्मान् तथा वसु को उत्पन्न किया था और शुचि स्मित वाली दो कन्याओं को जन्म दिया था। एक मनस्विनी और दूसरी स्वरा थी। उनके पुत्र कीर्तित किये गये हैं ॥७६॥ वीर्य वाले ध्रुव ने निराहार रहते हुए विपुल यश को चाहते हुए दस हजार दिव्य वर्ष तक तप किया था ॥७७॥ प्रथम त्रेता युग में वह स्वायम्भुव मनु का पौत्र था जिसने योग से आत्मा को धारण करते हुए महान् यश की प्रार्थना की थी ॥७८॥ ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर ज्योतिर्गणों का उत्तम स्थान उसको दिया था जो कि सम्प्लव पर्यन्त परम सुन्दर और अस्तोदय से रहित था ॥७९॥ उसकी अत्यधिक मात्रा वाली ऋद्धि और महिमा को देखकर दैत्यासुरों के आचार्य शुक ने भी इसके यश का वर्णन किया था ॥८०॥

अहोऽस्य तपसो वीर्यमहो श्रुतमहो हुतम् ।
स्थिता सप्तर्षयः कृत्वा यदेनमुपरि ध्रुवम् ।
ध्रुवे दिव समासक्तमीश्वरः स दिवस्पतिः ॥८१
ध्रुवात्सुश्लिष्ट भव्यञ्च भूमि सा सुषुवे नृपौ ।
स्वां छायामाह वं पुष्टिभव नारी तु तां विभुः ॥८२
सत्याभिव्याहृते तस्य सद्य स्त्री सामवत्तदा ।
दिव्यसंहन नाच्छाया दिव्याभरणभूषिता ॥८३
छायायां पुष्टिरायत्त पञ्च पुत्रानकल्मषान् ।
प्राचीनगर्भं वृषभ वृषञ्च वृकल धृतिम् ॥८४
पत्नी प्राचीनगर्भस्य भूवर्चा सुषुवे नृपम् ।
नाम्नोदारधियं पुत्रमिन्द्रो य पूर्वजन्मनि ॥८५

संवत्सरसहस्रान्ते सकृदाहारमाहरन् ।
एवं मन्वन्तरं युक्तमिन्द्रत्वं प्राप्तवान्विभुः ॥८६
उदारधेः सुतं भद्राजनयत्सा दिवञ्जयम् ।
रिपुं रिपुञ्जयं जज्ञे वराङ्गी सा दिवञ्जयात् ॥८७

शुक्राचार्य ने कहा था—अहो ! इस ध्रुव के तप का पराक्रम कैसा अद्भुत है और इसका श्रुत तथा कुल भी कितना विलक्षण है कि इस ध्रुव को अपने से भी ऊपर करके सप्तर्षिगण स्थित होते हैं। ध्रुव में समासक्त दिव है दिवस्पति ईश्वर है ॥८१॥ उस भूमि ने ध्रुव से भव्य और पुष्टि के नृपों का प्रसव किया था। विभु पुष्टि ने अपनी छाया से कहा कि नारी हो जाओ ॥८२॥ उनके सत्य अभिव्याहृत होने पर उस समय में वह तुरन्त ही स्त्री होगई थी जो कि छाया दिव्य संहनन से दिव्य भूषणों से विभूषित थी ॥८३॥ पुष्टि ने उस छाया में पाँच निष्पाप पुत्र उत्पन्न किये थे। जिनके नाम—प्राचीन गर्भ-वृषक-वृक-वृकल और धृति थे॥८४॥ प्राचीन गर्भ की पत्नी सुवर्चा ने नृपको पुत्र उत्पन्न किया था जिसका नाम उदारधी था और जो पूर्व जन्म में इन्द्र था ।८५। एक सहस्र वर्षों के अन्त में एकबार आहार ग्रहण किया था। इस प्रकार से विभु ने मन्वन्तर से युक्त इन्द्रत्व को प्राप्त किया था ॥८६॥ भद्रा उसने उदारधी के पुत्र दिवञ्जय को जन्म दिया था। वराङ्गी उसने रिपुञ्जय रिपु को उत्पन्न किया था ॥८७॥

रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम् ।
व्यजीजनत् पुष्करिण्यां वारुण्यां चाक्षुषो मनुम् ।
प्रजापतेरात्मजायामरण्यस्य महात्मनः ॥८८
मनोरजायन्त दश नड्वलायां शुभाः सुताः ।
कन्यायां वै महाभाग वैराजस्य प्रजापतेः ॥८९
ऊरुः पूरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक् कविः ।
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव ।
अभिमन्युश्च दशमो नड्वलायां मनोः सुताः ॥९०
ऊरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी महाप्रभान् ।

अङ्ग सुमनस स्वाति क्रतुमङ्गिरस शिवम् ॥९१
अङ्गात् सुनीथापत्य वै वेनमेक व्यजायत ।
अपचारेण वेनस्य प्रकोप सुमहानभूत् ॥९२
प्रजार्थमृषयस्तस्य ममन्थुर्दक्षिण करम् ।
वेनस्य पाणौ मथिते सम्बभूव महान्नृप ।
वैन्यो नाम महीपालो य पृथु परिकीर्त्तित ॥९३
स धन्वी कवची जातस्तेजसा प्रज्वलन्निव ।
पृथुर्वैन्य सर्वलोकान् ररक्ष क्षत्रपूर्वज ॥९४

रिपु से वृहती ने सर्व तेज वाले चाक्षुष को धारण किया था और पुष्करिणी वारुणी मे चाक्षुष ने मनु को उत्पन्न किया था जो कि महात्मा अरण्य प्रजापति की आत्मजा थी ॥८८॥ मनु ने नड्वला मे दश शुभ पुत्र उत्पन्न किए थे जो महाभाग प्रजापति वैराज की कन्या थी ॥८९॥ ऊरु–पूरु–शतद्युम्न–तपस्वी सत्यवान्–कवि–अग्निष्टुत–अतिरात्र और सुद्युम्न ये नौ हैं और दशम अभिमन्यु नड्वला मे मनु के पुत्र हुए थे ॥९०॥ आग्नेयी ने ऊरु से महान् प्रभा वाले छै पुत्रो को जन्म दिया था जिनके नाम—अङ्ग—सुमनस–स्वाति–क्रतु–आङ्गिरस और शिव थे ॥९१॥ सुनीथा ने अङ्ग से एक सन्तान वेनको उत्पन्न किया था। वेन के अपचार के कारण से बड़ा भारी क्रोध उत्पन्न हुआ था ॥९२॥ ऋषियो ने प्रजा के लिए उसके दाहिने हाथ का मन्थन किया। उस समय वेन के हाथ के मन्थन किये जाने पर एक महान् नृप वैन्य नाम वाला महीपाल उत्पन्न हुआ था जो कि पृथु इस नाम से कहा गया है ॥९३॥ वह धन्वी–कवचधारी तेज से प्रज्वलित करता हुआ उत्पन्न हुआ। क्षत्र पूर्वज वैन्य पृथु ने समस्त लोकों की रक्षा की थी ॥९४॥

राजसूयाभिषिक्तानामाद्य [illegible] वसुधाधिप ।
तस्य स्तवार्थमुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ ॥९५
तेनेय गौर्महाराज्ञा दुग्धा सस्यानि धीमता ।
प्रजाना वृत्तिकामाना देवैर्षिगणै सह ॥९६

पितृभिर्दानवैश्चैव गन्धर्वैरप्सरोगणैः ।
सर्वै पुण्यजनैश्चैव वीरुद्भिः पर्वतैस्तथा ॥६७
तेषु तेषु तु पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा ।
प्रादाद्यथेप्सितं क्षीरं तेन लोकास्त्वधारयत् ॥६८
विस्तरेण पृथोर्जन्म कीर्त्तयस्व महामते ।
यथा महात्मना दुग्धा पूर्वं तेन वसुन्धरा ॥६६
यथा देवैश्च नागैश्च यथा ब्रह्मर्षिभिः सह ।
यथा यक्षैः सगन्धर्वरप्सरोभिर्यथा पुरा ॥१००
तेषां पात्रविशेषाश्च दोग्धारं क्षीरमेव च ।
तथा वत्सविशेषाश्च तन्न प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥१०१

राजसूय यज्ञ के द्वारा अभिषिक्त होने वाले राजाओं में वह वैन्य सबसे पहले भाद्य वसुधा का स्वामी हुआ था। उसके स्तवन करने के लिए परम निपुण सूत और मागध उत्पन्न हुए थे ॥६५॥ उस बुद्धिमान् महान् राजा ने इस गौ से सस्यों का दोहन किया था। वृत्ति की कामना वाले प्रजाओं के देव-ऋषि गणों के साथ-पितर-दानव-गन्धर्व-अप्सराओं के गण-समस्त पुण्य जन-विरुद् और पर्वतों के साथ उन-उन पात्रों में दुह्य मान इस वसुन्धरा ने इच्छा के अनुसार क्षीर दिया था उससे लोकों को धारण किया था ॥६६॥६७ ॥६८॥ ऋषियों ने कहा—हे महामते! विस्तार के साथ पृथु के जन्म का वर्णन करिये। जिस प्रकार से उस महात्मा ने इस वसुन्धरा का दोहन किया था। ॥६६॥ पहिले जिस तरह से देव-नाग-ब्रह्मर्षि-यक्ष-गन्धर्व और अप्सराओं के साथ उनके पात्र विशेषों को दोग्धा को और क्षीर को तथा वत्स विशेषों को इन सबको पूछने वाले हमको भली-भाँति बतलाइये ॥१००॥१०१॥

यस्मिश्च कारणे पाणिर्वेनस्य मथितः पुरा ।
क्रुद्धैर्महर्षिभिः पूर्वं तत् सर्वं कथयस्व न ॥१०२
वर्णयिष्यामि वो विप्राः पृथोर्वैन्यस्य सम्भवम् ।
एकाग्राः प्रयताश्चैव शुश्रूषध्वं द्विजोत्तमाः ॥१०३

नाशुचेर्नापि पापाय नाशिष्यायाहिताय च ।
यशस्यमिम पुण्य नाव्रताय कथञ्चन ॥१०४
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्य पुण्य वेदैश्च सम्मितम् ।
रहस्यमृषिभि प्रोक्त शृणुयाद्योऽनसूयक ॥१०५
यश्चेम श्रावयेन्मर्त्यं पृथोर्वैन्यस्य सम्भवम् ।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न [redacted] शोचेत् कृताकृतम् ।
गोप्ता धर्मस्य राजासौ बभूवात्रिसम प्रभु ॥१०६
अत्रिवंशसमुत्पन्नो ह्यङ्गो नाम प्रजापति ।
यस्य पुत्रोऽभवद्वेनो नात्यर्थं धार्मिकस्तथा ॥१०७

जिस कारण से होने पर पहिले वेनका हाथ मथा गया था और पहिले महर्षियों ने बहुत क्रुद्ध होकर उसके हाथ का मन्थन किया था वह सब हमको बतलाइए ॥१०२॥ श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! हे विप्रो ! मैं आपके सामने अब वैन्य पृथु के जन्म का वर्णन करूँगा । आप लोग सब एकाग्र मन वाले और प्रयत होते हुए श्रवण करो ॥१०३॥ जो मनुष्य अशुचि हो पापयुक्त-अहित अव्रत एवं अशिष्य हो उसके कभी भी इस परम पुण्य चरित्र का वर्णन नहीं करना चाहिए ॥१०४॥ स्वर्ग देने वाला यश प्रदान करने वाला, आयु देने वाला पुण्य और समस्त वेदों के द्वारा सम्मत यह ऋषियों के द्वारा परम रहस्य कहा गया है जो असूया अर्थात् निन्दा न करने वाला हो, उस ही यह श्रवण कराना चाहिए ॥१०५॥ जो मनुष्य वैन्य पृथु का जन्म चरित्र के इस वृत्तान्त को सुनावे उसे ब्राह्मणों को नमस्कार करके ही सुनाना चाहिये और फिर अपने कृत तथा अकृत का कुछ सोच नहीं करना चाहिए । यह राजा धर्म की रक्षा करने वाला अत्रि के समान प्रभु हुआ था ॥१०६॥ अत्रि के वंश में उत्पन्न हुआ अङ्ग नाम वाला प्रजापति हुआ था । जिसका पुत्र वेन हुआ था, जो कि विशेष अधिक धार्मिक नहीं था ॥१०७॥

जातो मृत्युसुतायां वै सुनीथायां प्रजापति ।
स मातामहदोषेण वेन कालात्मजात्मज ॥१०८

स धर्म पृष्ठतः कृत्वा कामाल्लोभे व्यवर्त्तत ।
स्थापनं स्थापयामास धर्मपेतं स पार्थिवः ॥१०९
वेदशास्त्राण्यतिक्रम्य ह्यधर्मे निरतोऽभवत् ।
निःस्वाध्यायवषट्कारा प्रजास्तस्मिन् प्रशासति ।
प्रासन्न च पपु सोम हुतं यज्ञेषु देवता ॥११०
न यष्टव्यं न होतव्यमिति तस्य प्रजापते ।
आसीत् प्रतिज्ञा क्रूरेयं विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥१११
अहमिज्यश्च पूज्यश्च सर्वयज्ञ द्विजातिभिः ।
मयि यज्ञो विधातव्यो मयि होतव्यमित्यपि ॥११२
तमतिक्रान्तमर्यादमाददानमसाम्प्रतम् ।
ऊचुमहर्षयः सर्वे मरीचिप्रमुखास्तथा ॥११३
वयं दीक्षां प्रवेक्ष्यामः संवत्सरशतान् बहून् ।
माऽधर्मं वेन कार्षीस्त्वं नैष धर्मः सनातनः ।
निधने च प्रसूतोऽसि प्रजापतिरसंशयः ॥११४

मृत्यु की पुत्री सुनीथा में प्रजापति ने जन्म ग्रहण किया था। वह वेन मातामह के दोष से कालकी आत्मजा का पुत्र हुआ था। ॥१०८॥ उसने धर्म को पीठ पीछे करके अर्थात् एकदम भुला कर ही काम से लोभ में निमग्न होगया था। उस राजा ने धर्म से रहित स्थापना को ही स्थापित किया था ॥१०९॥ वेदों और समस्त शास्त्रों का अतिक्रमण करके वह अधर्म में निरत होगया था। उसके प्रशासन करने पर समस्त प्रजा स्वाध्याय तथा वषट्कार से रहित होगई थी और उसके शासन काल में देवगण यज्ञों में उस सोमरस का पान नहीं करते थे ॥११०॥ उस प्रजापति की ऐसी यह क्रूर प्रतिज्ञा विनाश काल के समुपस्थित होने पर थी कि उसके राज्य में किसी के द्वारा भी यजन तथा हवन नहीं करना चाहिए ॥१११॥ मैं यजन करने के योग्य सर्वोपरि प्रभु हूँ—मैं ही सब शिरोमणि पूजा के योग्य हूँ—द्विजातियों के द्वारा समस्त यज्ञ आदि में समस्त देवादि का त्याग कर मेरा ही यजन-पूजन करना चाहिये। मुझ में यज्ञ करना चाहिये और मेरे लिए ही हवन करना चाहिए ॥११२॥ उस समय

प्रमुख मरीचि आदि समस्त ऋषियों ने मर्यादा का अति क्रमण करने वाले तथा अनुचित वस्तु को ग्रहण करने वाले उससे कहा—॥११३॥ हम दीक्षा का प्रवेक्षण करेंगे और बहुत संकडो वर्ष तक करेंगे। हे वेन ! तुम अधर्म मत करो, यह सर्वदा से चले आने वाला सनातन धर्म नहीं है। और निधन होजाने पर बिना किसी संशय के प्रजापति तुम प्रसूत हुए हो ॥११४॥

पालयिष्ये प्रजाश्चेति त्वया पूर्वं प्रतिश्रुतम् ।
तांस्तथा वादिन सर्वान् ब्रह्मर्षीनब्रवीत्तदा ॥११५
स प्रहस्य तु दुर्बुद्धिरिद वचनकोविद ।
स्रष्टा धर्मस्य कश्चान्य श्रोतव्य कस्य वै मया ॥११६
वीर्यश्रुततप सत्यैर्मया वा क: समो भुवि ।
महात्मानमनून मा यूय जानीत तत्त्वत ॥११७
प्रभव सर्वलोकाना धर्माणाञ्च विशेषत. ।
इच्छन् दहेय पृथिवी प्लावयेय जलेन वा ।
सृजेय वा ग्रसेय वा नात्र कार्या विचारणा ॥११८
यदा न शक्यते स्तम्भान्मानाच्च भृशमाहित ।
अनुनेतु नृपो वेनस्तत क्रुद्धा महर्षय ॥११९
निगृह्य त महाबाहु विस्फुरन्त यथाऽनलम् ।
ततोऽस्य वामहस्त ते ममन्थुर्भृशकोपिता ॥१२०
तस्मात् प्रमथ्यमानाद्वै जज्ञे पूर्वमभिश्रुत ।
ह्रस्वोऽतिमात्र पुरुष कृष्णश्चापि तथा द्विजा ॥१२१

तुमने पहिले प्रतिज्ञा की थी कि मैं प्रजाओं का पालन करूँगा। उस समय इस प्रकार से कहने वाले समस्त ब्रह्मर्षियों से वह बोला—॥११५॥ दुष्ट बुद्धि वाला किन्तु बोलने में परम चतुर वह कुछ हँसकर के यह बोला—अन्य अर्थात् मुझसे अतिरिक्त कौन धर्म का सृजन करने वाला है और मुझे किसकी बात सुननी चाहिए अर्थात् ऐसा भी कोई नहीं है ॥११६॥ इस भूमण्डल में पराक्रम–श्रुत अर्थात् शास्त्र ज्ञान–तपश्चर्या और सत्य इस पूर्ण समुदाय में मेरी समता रखने वाला अन्य कौन है ? अर्थात् कोई भी ऐसा मेरे समान नहीं है।

आप लोग सब भी मुझे तत्वमे पूर्ण महात्मा निश्चय रूप से समझें ॥११७॥ समस्त लोकों के प्रभु और विशेष रूप से धर्मों के स्वामी हमही हैं। मैं इच्छा करता हुआ अर्थात् यदि मैं चाहूँ तो इस पृथ्वी को जलादूँ अथवा जलमे प्लावित करदूँ—सृजन करूँ या ग्रसन करूँ मुझमें यह सब शक्ति विद्यमान है। इसमे कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिये ॥११८॥ स्तम्भ होने के कारण से या मान की अधिकता से कोई अत्यन्त मोहित होजाने और उसका अनुनयन न किया जा सकता हो तो वेन नृप उसे ठीक कर देगा। इतना सुनकर महर्षिवृन्द बहुत क्रुद्ध होगये थे ॥११९॥ तब तो महाबाहु उसको विस्फुरित अग्नि के समान निगृहीत करके उन्होने अत्यन्त क्रोधित होते हुए उसके वाम हस्तका मन्थन किया था ॥१२०॥ उसके मथ्यमान होने वाले से पहिले जो अभिभूत हुआ है वह अर्थात् पृथु उत्पन्न हुआ। हे द्विजो! और अत्यन्त छोटा एक कृष्ण वर्ण वाला पुरुष भी उत्पन्न हुआ था ॥१२१॥

स भीत प्राञ्जलिश्चैव स्थितवान् व्याकुलेन्द्रिय ।
तमार्त्तं विह्वल दृष्ट्वा निषीदेत्यब्रुवन् किल ॥१२२
निषादवंशकर्त्तासौ बभूवानन्तविक्रम ।
धीवरानसृजत्सोऽपि वेनकल्मषसम्भवान् ॥१२३
ये चान्ये विन्ध्यनिलयास्तुम्बुरातुवरा खशा ।
अधर्मरुचयश्चापि सम्भूता वेनकल्मषात् ॥१२४
पुनर्महर्षयस्तस्य पाणिं वेनस्य दक्षिणम् ।
अरणीमिव सरम्भान्ममन्थुर्जातमन्यव ॥१२५
पृथुस्तस्मात् समुत्पन्न करास्फालनतेजस ।
पृथो करतलाद्वापि यस्माज्जात पृथुस्तत ।
दीप्यमान स्ववपुषा साक्षादग्निरिवोज्ज्वलन् ॥१२६
आद्यमाजगवं नाम धनुर्गृह्य महारवम् ।
शरांश्च विभ्रद्रक्षार्थं कवचञ्च महाप्रभम् ॥१२७
तस्मिञ्जातेऽथ भूतानि सम्प्रहृष्टानि सर्वश ।
समुत्पन्ने महाराजि वेनश्च त्रिदिवङ्गत ॥११८

वह प्रत्यन्त भयभीत हाथ जोड़े हुए व्याकुल इन्द्रियों वाला स्थित होगया था। उसको अत्यन्त आर्त्त और विह्वल देख कर ऋषियों ने कहा—बैठ जाओ अर्थात् निषण्ण हो जाओ ॥१२२॥ यह अनन्त विक्रम वाला निषाद वंश का करने वाला हुआ था। वेन के कल्मष से उत्पन्न होने वाले धीवरों था उसने भी सृजन किया था ॥१२३॥ और जो अन्य विन्ध्याचल में रहने वाले तुम्बर-तुवर-खर और अधर्म की रुचि वाले भी थे, वे भी सब वेन के कल्मष से उत्पन्न क्रोध वाले होते हुए बहुत संरम्भ से अरणी काष्ठ की भाँति वेन के दक्षिण हाथ का मन्थन करने लगे ॥१२५॥ करने पर आरफालन तेज वाले उससे पृथु उत्पन्न हुआ। अथवा जिस पृथु के करतल से पृथु उत्पन्न हुआ था वह अपने शरीर से दीप्यमान होते हुए साक्षात् अग्नि के तुल्य जलता हुआ था ॥१२६॥ आद्य आजगव नाम वाले और महान् ध्वनि वाले धनुष को ग्रहण करके और रक्षा के लिये शरों को धारण करते हुए तथा महा प्रभा वाले कवच को धारण किये हुए था ॥१२७॥ उसके उत्पन्न होने पर सभी ओर से समस्त प्राणी बहुत प्रसन्न हुए थे। इस महान् राजा के समुत्पन्न होने पर वेन तो स्वर्ग को चला गया था ॥ १२८ ॥

समुत्पन्नेन राजर्षि स सत्पुत्रेण धीमता ।
पुरुषव्याघ्र पुन्नाम्नो नरकात्त्रायते तत १२६
त नद्यश्च समुद्राश्च रत्नान्यादाय सर्वश ।
समागम्य तदा वैन्यमभ्यषिञ्चन्नराधिपम् ।
महता राजराज्येन महाराज महाद्युतिम् ॥१३०
सोऽभिषिक्तो महाराजा देवैरङ्गिरस सुतं ।
आदिराजो महाराज पृथुर्वैन्य प्रतापवान् ॥१३१
पित्राऽपरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिता ।
ततो राजेति नामास्य अनुरागादजायत ॥१३२
आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यत ।
पर्वताश्च विशीर्यन्ते ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥१३३

अकृष्टपच्या पृथिवी सिद्धयन्त्यन्नानि चिन्तया ।
सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ॥१३४
एतस्मिन्नेव काले च यज्ञे पैतामहे शुभे ।
सूतः सुत्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः ।
तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः ॥१३५

वह राजर्षि धीमान् और सत्पुत्र के उत्पन्न होने से वह पुरुषों मे व्याघ्र के समान रहने वाला पुं नाम वाले नरक से फिर त्राण पा जाता है ॥१२९॥ समस्त नदियाँ—समस्त समुद्र सब ओर से रत्नों को लाकर और वहाँ आकर उस नराधिप वैन्य का उन सबने अभिषेक किया था जो कि महान् राजा के राज्य से महान् राजा और महान् द्युति वाला था ॥१३०॥ वह महान् राजा अंगिरा के पुत्र देवों के द्वारा आदिराज—महाराज और प्रताप वाला वैन्य पृथु अभिषिक्त हुआ था ॥१३१॥ उसके पिता के द्वारा अपरञ्जित उसकी प्रजा उसके द्वारा अनुरञ्जित हुई थी। तब से ही अनुराग से इसका राजा यह नाम हो गया था ॥१३२॥ समुद्र में अभियान करते हुए उसके जल स्तम्भित होगये थे और विदीर्ण होते हैं और ध्वजभङ्ग नहीं हुआ था ॥१३३॥ उस समय पृथ्वी अकृष्ट पच्या हो गई थी अर्थात् बिना जुताई के ही फसलें पैदा करने वाली थी चिन्ता करने मात्र से ही अन्नों की सिद्धि होती है। गौएं समस्त कामों के दोहन करने वाली थी और पुटक-पुटक में मधु था ॥१३४॥ इस ही जन्म में शुभ पैतामह यज्ञ में सौत्य दिन में सुति में सूत उत्पन्न हुए जोकि महामति वाले थे। उस ही महायज्ञ में प्राज्ञ मागध उत्पन्न हुए थे ॥१३५॥

ऐन्द्रेण हविषा चापि हविः पृक्तं बृहस्पतेः ।
जुहावेन्द्राय देवेन ततः सूतो व्यजायत ॥१३६
प्रमादस्तत्र सञ्जज्ञे प्रायश्चित्तञ्च कर्मसु ।
शिष्यहव्येन यत्पृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः ।
अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णवैकृतम् ॥१३७
यच्च क्षत्रात्समभवद्ब्राह्मण्यां हीनयोनितः ।
सूतः पूर्वेण साधर्म्यतुल्यधर्मः प्रकीर्तितः ॥१३८

मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षत्रोपजीवनम् ।
रथनागाश्व चरितं जघन्यञ्च चिकित्सितम् ॥१३९
पृथोः स्तवार्थं तौ तत्र समाहूतौ सुरर्षिभिः ।
तावूचुर्मुनयः सर्वे स्तूयतामेष पार्थिव ।
कर्मैतदनुरूपं वां पात्रं स्तोत्रस्य चाप्ययम् ॥१४०
तावूचतुस्तदा सर्वांस्तानृषीन्सूतमागधौ ।
आवां देवानृषी इचैव प्रीणयाव स्वकर्मभिः ॥१४१
न चास्य कर्म वै विद्वो न तथा लक्षणं यशः ।
स्तोत्रं येनास्य कुर्यावो राज्ञस्तेजस्विनो द्विजाः ॥१४२

ऐन्द्र हवि के द्वारा बृहस्पति का भी हवि युक्त हुआ । देव के द्वारा इन्द्र के लिए हवन किया था । इसके बाद सूत उत्पन्न हुए ॥१३६॥ वहाँ पर प्रमाद उत्पन्न हुआ और कर्मों में प्रायश्चित्त उत्पन्न हुआ । शिष्य के हव्य से जो पृक्त हो वह गुरु का हवि अभिभूत होगया । ऐसे अधरोत्तर चार से वर्णों की विकृति उत्पन्न हुई ॥१३७॥ जो क्षत्रिय से ब्राह्मणी में हीनयोनि से हुआ । पूर्व से साधम तुल्य धर्म वाला सूत प्रकीर्तित हुआ था ॥१३८॥ सूत का यह मध्यम धर्म है और क्षत्रोपजीवन है । रथ नाग चरित है और चिकित्सित जघन्य चरित होता है ॥१३९॥ सुरर्षियों के द्वारा वहाँ पर वे दोनों पृथु के स्तवन के लिए बुलाये गये थे और समस्त मुनियों ने उन दोनों से कहा कि तुम इस पृथु राजा की स्तुति करो । यह आप दोनों के अनुरूप ही कार्य है और यह राजा भी स्तोत्र का पात्र है अर्थात् यह राजा भी स्तवन के योग्य है ॥१४०॥ तब उन दोनों सूत और मागध ने उन समस्त ऋषियों से कहा—हम दोनों अपने कर्मों के द्वारा देवों को और ऋषियों को प्रसन्न करते हैं ॥१४१॥ हम इसके कर्म को नहीं जानते हैं और न उस प्रकार के लक्षण वाला इसका यश ही है । द्विज वृन्द ! जिससे कि इस तेजस्वी राजा का स्तोत्र करें ॥१४२॥

ऋषिभिस्तौ नियुक्तौ तु भविष्यैः स्तूयतामिति ।
दानधर्मरतो नित्यं सत्यवान् स जितेन्द्रियः ।
ज्ञानशीलो वदान्यस्तु सङ्ग्रामेष्वपराजितः ॥१४३

यानि कर्माणि कृतवान् पृथुश्चापि महाबल ।
तानि शीलेन बद्धानि स्तुवद्भि सूतमागधैः ॥१४४
तत स्तवान्ते सुप्रीत पृथु प्रादात् प्रजेश्वर ।
अनूपदेश सूताय मगध मागधाय च ॥१४५
तथा वै पृथिवीपाला स्तूयन्ते सूतमागधै ।
आशीर्वाद प्रबोध्यन्त सूतमागधवन्दिभि ॥१४६
त दृष्ट्वा परमप्रीता प्रजा ऊचुर्महर्षय ।
एष वो वृत्तिदो वैन्यो भवति वति नराधिप ॥१४७
ततो वैन्य महाभाग प्रजा समभिदुद्रुवु ।
त्वन्नो वृत्ति विधत्स्वेति महर्षवचनात्तदा ।
सोऽभिद्रुत प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया ॥१४८
धनुर्गृहीत्वा बाणांश्च वसुधामार्दयद्बली ।
त्रस्याद्भयाभय नस्ता गौर्भूत्वा प्राद्रवन्मही ॥१४९

ऋषियों क द्वारा व दोनों नियुक्त किय गये थे कि कि आगे होने वाले कर्मों से इसका स्तवन करो। वह नित्य ही दान और धम म रत है—सत्यवान् है और इन्द्रियों को जीतने वाला है। ज्ञानशील और वदान्य अर्थात् दाता है तथा सग्रामों म पराजित न होने वाला है ॥१४३॥ महान् बल वाले पृथु ने भी जिन कर्मों को किया था वे सब स्तुति करने वाले सूत मागधों के द्वारा शील से बद्ध होते है ॥१४४॥ इसके अनन्तर स्तवन के अन्त म प्रजेश्वर पृथु ने बहुत प्रसन्न होकर सूत के लिये अनूप देश और मागध क लिये मगध देश दे दिया था ॥१४५॥ उस समय म पृथिवीपाल सूत और मागधों के द्वारा स्तुत किये जाते हैं और सूत मागध वन्दियों के द्वारा आशीर्वादों से प्रबोधित किये जाते हैं ॥१४६॥ उसको देखकर अत्यन्त प्रसन्न महर्षियों ने प्रजा से कहा—आप सबका यह नराधिप वैन्य वृत्ति देने वाला होवे ॥१४७॥ इसके अनन्तर समस्त प्रजा महाभाग वैन्य की ओर दौड़ी और कहा—आप हमारी वृत्ति करो। तब महर्षियों के वचन स प्रजाओं के द्वारा अभिद्रुत वह प्रजा के हित करने की इच्छा से उस बली ने धनुष और बाणों क लकर वसुधा का आर्दन किया

था। इसके आर्दन के भय से डरी हुई भूमि भी बनकर भाग निकली ॥१४८

ता पृथुर्धनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत ।
सा लोकान् ब्रह्मलोकादीन् गत्वा वैन्यभयात्तदा ।
ददर्श चाग्रतो वैन्य कार्मुकोद्यतधारिणम् ॥१५०
ज्वलद्भिर्विशिखैर्बाणैर्दीप्ततेजसमच्युतम् ।
महायोग महात्मान दुर्द्धर्षममरैरपि ॥१५१
अलभन्ती तदा त्राण वैन्यमेवान्वपद्यत ।
कृताञ्जलिपुटा देवी पूज्या लोकैस्त्रिभि सदा ॥१५२
उवाच वैन्य नाधर्म स्त्रीवधे परिपश्यसि ।
कथ धारयिता चासि प्रजा राजन् मया विना ॥१५३
मयि लोका स्थिता राजन् मयेद धार्यते जगत् ।
मद्कृते च विनश्येयु प्रजा पार्थिवसत्तम ॥१५४
न मामर्हसि वै हन्तु श्रेयश्चेत्त्व चिकीर्षसि ।
प्रजाना पृथिवीपाल शृणु चेद वचो मम ॥१५५
उपायत समारब्धा सर्वे सिद्धन्त्युपक्रमा ।
हत्वापि मा न शक्तस्त्व प्रजाना पालने नृप ॥१५६

राजा पृथु ने धनुष लेकर भागती हुई उसका अनुधावन किया था। वह उस समय वैन्य के भय से ब्रह्मादि लोकों में जाकर भी उसने आगे धनुष लेकर उद्यत वैन्य को देखा था ॥१४९ १५०॥ जलते हुए विशिख बाणों से दीप्त तेज वाल–महायोग–महान् आत्मा वाले और देवों के द्वारा भी दुधर्ष अच्युत को न प्राप्त करती हुई उस समय में रक्षक वैन्य की ही शरण में प्राप्त हुई थी। तीनों लोकों के द्वारा सदा पूजन के योग्य–अञ्जलि पुट किये हुए वैन्य से बोली—क्या आप स्त्री के वध में अधर्म को नहीं देख रहे हैं? हे राजन्! मेरे बिना प्रजा को कैसे धारण करने वाले होवेंगे ? ॥१५१ १५२ १५३॥ हे राजन्! मुझ पर ये सब लोक स्थित हैं और मेरे द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है। हे पार्थिवों में श्रेष्ठ ! मेरे बिना तो समस्त प्रजा नष्ट हो जायगी। ॥१५४॥ यदि आप कल्याण करने की इच्छा रखते हैं तो मुझे मारने के योग्य आप नहीं होते हैं। हे पृथ्वी के पालक ! हे प्रजा के पालक ! आप मेरे इस

वचन का श्रवण करो ॥१५५॥ उपाय से भली भाँति आरम्भ किये हुए समस्त उपक्रम सिद्ध होते हैं। हे नृप ! मुझे मार कर भी आप प्रजाओं के पालन में समर्थ नहीं हो सकते हैं ॥१५६॥

अन्नभूता भविष्यामि जहि कोपं महाद्युते ।
अवध्याश्च स्त्रियः प्राहुस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि ।
मत्वैवं पृथिवीपाल धर्मं न त्यक्तुमर्हसि ॥१५७
एवं बहुविधं वाक्यं श्रुत्वा राजा महामना ।
क्रोधं निगृह्य धर्मात्मा वसुधामिदमब्रवीद् ॥१५८
एकस्यार्थाय यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा ।
एकं प्राणं बहून् वापि कामं तस्यास्ति पातकम् ॥१५९
यस्मिंस्तु निहते भद्रे लभन्ते बहवः सुखम् ।
तस्मिन्हते शुभे नास्ति पातकं चोपपातकम् ॥१६०
सोऽहं प्रजानिमित्तं त्वां वधिष्यामि वसुन्धरे ।
यदि मे वचनं नाद्य करिष्यसि जगद्धितम् ॥१६१
त्वां निहत्याद्य बाणेन मच्छासनपराङ्मुखीम् ।
आत्मानं प्रथयित्वेह धारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥१६२
सा त्वं वचनमासाद्य मम धर्मभृतां वरे ।
सञ्जीवय प्रजा नित्यं शक्ता ह्यसि न संशयः ॥१६३

हे महान् द्युति वाले ! आप कोप को त्याग देवें—मैं अन्नभूता हो जाऊँगी। सैकड़ों तिर्यग योनियों में भी स्त्रियाँ अवध्या ही कही गई हैं। हे पृथ्वीपाल ! ऐसा मानकर आप धर्म का त्याग करने के योग्य नहीं होते हैं। ॥१५७॥ महान् मन वाले राजा ने इस प्रकार के वाक्यों को सुनकर धर्मात्मा ने क्रोध को रोककर पृथ्वी से यह कहा—॥१५८॥ एक के अपने या पराये अर्थ के लिये जो कोई हनन किया करता है चाहे किसी के एक प्राण का हनन करे या बहुतों का हनन करे उसका बड़ा भारी अवश्य ही पातक हुआ करता है ॥१५९॥ हे भद्रे ! जिस हनन में बहुत से प्राणी सुख की प्राप्ति किया करते हैं। हे शुभे ! उसके मारे जाने पर पातक और उपपातक कुछ भी नहीं होता

है ॥१६०॥ हे वसुन्धरे ! यह मैं प्रजा के कारण तुझे मारूँगा । यदि तू अब मेरे जगत के हित करने वाले वचन को नहीं करेगी ॥१६१॥ मेरे शासन के विरुद्ध जाने वाली तुझे आज बाण से मारकर यहाँ आत्मा की प्रार्थना करके मैं प्रजा को धारण करूँगा ॥१६२॥ हे धर्म धारण करने वालों में श्रेष्ठ ! वह तू आज मेरे वचन को प्राप्त कर प्रजा को नित्य सञ्जीवित कर, तू समर्थ है—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥१६३॥

दुहितृत्वञ्च मे गच्छ एवमेत महद्वरम् ।
नियच्छे त्वान्तु धर्मार्थं प्रयुक्त घोरदर्शने ॥१६४
प्रत्युवाच ततो वैन्यमेवमुक्ता सती मही ।
एवमेतदह राजन् विधास्यामि न सशय ॥१६५
वत्सन्तु मम त यच्छ क्षरेय येन वत्सला ।
समाञ्च कुरु सर्वत्र मा त्व धर्मभृता वर ।
यथा विष्यन्दमानञ्च क्षीर सर्वत्र भावये ॥१६६
तत उत्सारयामास शिलाजालानि सर्वश ।
धनुष्कोट्या ततो वैन्यस्तेन शैला विवर्द्धिता ॥१६७
मन्वन्तरेष्वतीतेषु विषमासीद्वसुन्धरा ।
स्वभावेनाभवत्तस्या समानि विषमाणि च ॥१६८
न हि पूर्वनिसर्गे वै विषमे पृथिवीतले ।
प्रविभाग पुराणा ग्रामाणा नापि विद्यते ॥१६९
न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्न वणिक्पथ ।
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमेतदासीत्पुरा किल ।
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन्सर्वस्यैतस्य सम्भव ॥१७०
समत्व यत्र यत्रासीद्भूयस्तस्मिस्तदेव हि ।
तत्र-तत्र प्रजास्ता वै निवसन्ति स्म सर्वदा ॥ ७१
आहार फलमूलन्तु प्रजानामभवत्किल ।
वैन्यात्प्रभृति लोकेऽस्मिन्सर्वस्यैतस्य सम्भव ॥१७२
कृच्छ्रेण महता सोऽपि प्रनष्टास्त्वोषधीषु वै ।

स कल्पयित्वा वत्सन्तु चाक्षुष मनुमीश्वर ।
पृथुर्दुदोह सस्यानि स्वतले पृथिवीं तत ॥१७३

हे धोर दर्शने ! तू मेरी बेटी बन जा धर्म के लिये प्रयोग में लाई हुई तुमको मैं इस प्रकार से यह एक बहुत बड़ा वरदान देता हूँ ॥१६४॥ उस तरह से कही गई पृथ्वी ने इसके पश्चात् वैन्य से कहा—हे राजन् ! इस तरह से मैं यह सब करूँगी इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१६५॥ हे धर्म धारण करने वालों में श्रेष्ठ ! आप मुझे उसे वत्स बनाकर दो जिससे मैं वत्सला होकर क्षरण करूँ और आप मुझे सब जगह सम कर देवें जिससे यह विष्यन्दमान क्षीर सर्वत्र भाविन करूँ ॥१६६॥ इसके अनन्तर वैन्य ने सब ओर से शिला के समूहों को उत्सारित किया था और यह कार्य धनुष की कोटि से किया और उससे शैल विशेष रूप से वर्द्धित हो गये थे ॥१६७॥ बीते हुए मन्वन्तरों में यह वसुन्धरा विषमा थी । उसके स्वभाव से ही सम और विषम भाग हुए थे ॥१६८॥ पहिले विसर्ग में इस विषम पृथ्वी के तल में नगरों अथवा ग्रामों का कोई प्रविभाग नहीं है ॥१६९॥ चाक्षुष मन्वन्तर में पहिले यह ऐसी आभार थी कि न तो यहाँ सस्य ही थे, न गौओं की रक्षा होती थी, न कृषि ही होती थी और न कोई वाणिज्य करने के मार्ग ही थे । फिर वैवस्वत मन्वन्तर में इस सबका यहाँ जन्म हुआ था ॥१७०॥ जहाँ-जहाँ पर समता थी वहाँ पर फिर यह सब हुआ और वहीं पर ही सर्वदा प्रजा निवास किया करती थी ॥१७१॥ प्रजाओं का आहार-फल और मूल भी हुआ था । वैन्य आदि राजा के होने के समय से लेकर इस लोक में इन सब वस्तुओं की उत्पत्ति हुई थी ॥१७२॥ समस्त ओषधियों के प्रनष्ट हो जाने पर महान् श्रम से उत्पन्न यह सब किया था । अधिपति पृथु ने चाक्षुष मनु का वत्स कल्पित करके स्वतल में सस्यों का पृथ्वी से दोहन किया था ॥१७३॥

सस्यानि तेन दुग्धानि वैन्येन तु वसुन्धराम् ।
मनुश्च चाक्षुष कृत्वा वत्सम्पात्रे च भूमये ।
तेनान्नेन तदा ता वै वर्त्तयन्ते प्रजा सदा ॥१७४

ऋषिभि स्नूयते चापि पुनर्दुग्या वसुन्धरा ।
वत्स सोमस्त्वभूत्तषा दोग्धा चापि वृहस्पति ॥१७५
पात्रमासीत्तु छन्दासि गायत्र्यादीनि सवश ।
क्षीरमासीत्तदा तेषा तपो ब्रह्म च शाश्वतम् ॥१७६
पुन स्तुत्वा देवगणं पुरन्दरपुरोगमै ।
सौवर्णं पात्रमादाय अमृत दुदुहे तदा ।
तेनैव वर्त्तयन्ते च देवा इन्द्रपुरोगमा ॥१७७
नागैश्च स्तूयते दुग्धा विष क्षीर तदा मही ।
तेषाञ्च वासुकिर्दोग्धा काद्रवेया महौजस ॥१७८
नागाना वै द्विजश्रेष्ठ सर्पाणाञ्चैव सर्वश ।
तनैव वर्त्तयन्त्युग्रा महाकाया महोल्वणा ।
तदाहारास्तदाचारास्तद्वीर्यास्तु सदाश्रया ॥१७९
आमपात्रे पुनर्दुग्धा त्वन्तर्द्धानमिय मही ।
वत्स वैश्रवण कृत्वा यक्षै पुण्यजनैस्तथा ॥१८०
दोग्धा च जतुनाभस्तु पिता मणिवरस्य स ।
यक्षात्मजो महातजा वशी स सुमहाबल ।
तन त वर्त्तयन्तीति परमर्षिरुवाच ह ॥१८१

उस राजा वैन्य ने इस वसुन्धरा से सस्यो का दोहन किया था उसने चाक्षुष मनु को वत्स बनाया तब इस भू मण्डल स्वरूप पात्र म उस समय उस अन्न स यह समस्त प्रजा अपना वर्तन सदा किया करती है ॥१७४॥ फिर यह वसुन्धरा ऋषियो के द्वारा स्तुत होती है और पुन दोहन की गई थी। उस समय सोम तो वत्स हुआ था और वृहस्पति दोहन करन वाले बने थे ॥१७५॥ उस समय सभी ओर छन्द तथा गायत्री आदि पात्र बना था और उस समय उनका शाश्वत तप तथा ब्रह्म ही क्षीर हुआ था ॥१७६॥ इसक पश्चात् देवगण के द्वारा जिसम पुरन्दर अग्रगामी थ स्तवन करके उस समय म सुवर्ण निर्मित पात्र लकर अमृत का दोहन किया गया था और उसी से इन्द्र आदि देवो ने अपना वर्त्तन (वृत्ति) किया था ॥१७७॥ नागो के द्वारा स्तुत हुई पृथ्वी ने

उस समय विष रूपी क्षीर दोहन मे दिया था। उनका दोग्धा वासुकि था और काद्रवेय महान् ओज वाले थे ॥१७८॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! नागो का और सभी सर्पों का उसी से वर्तन होता है। ये सब उग्र-महान् शरीर के धारण करने वाले और महान् उरवण थे। वही उनका आहार था और वैसा ही आचार वही वीर्य और वही आश्रय था ॥१७९॥ फिर यह पृथ्वी श्याम पात्र मे अन्तर्धान मे दोहन की गई थी और पुण्य जन यक्षो के द्वारा वैश्रवण को वत्स कल्पित कर दोहन किया गया था। उस समय मणिवर का पिता यक्षाधमज-महान् तेज वाला, वशी और महान् बल वाला था, इसका दो... था। उससे वे अपनी वृत्ति किया करते हैं यह परमर्षि ने कहा था ॥१८०॥ ॥

राक्षसैश्च पिशाचैश्च पुनर्दुग्धा वसुन्धरा।
ब्रह्मोपेतस्तु दोग्धा वै तेषामासीत्कुबेरक ॥१८२
रक्षः सुमाली बलवान्क्षीरं रुधिरमेव च।
कपालपात्रे निर्दुग्धा अन्तर्द्धानञ्च राक्षसैः।
तेन क्षीरेण रक्षांसि वर्त्तयन्तीह सर्वशः ॥१८३
पद्मपात्रे पुनर्दुग्धा गन्धर्वैरप्सरोगणैः।
वत्सं चित्ररथं कृत्वा शुचीन् गंधास्तथैव च ॥१८४
तेषां विश्वावसुस्त्वासीद्दोग्धा पुत्रो मुनेः शुचिः।
गन्धर्वराजोऽतिबलो महात्मा सूर्यसन्निभः ॥१८५
शैलैश्च स्तूयते दुग्धा पुनर्देवी वसुन्धरा।
तत्रौषधीर्मूर्त्तिमती रत्नानि विविधानि च ॥१८६
वत्सस्तु हिमवांस्तेषां मेरुर्दोग्धा महागिरिः।
पात्रन्तु शैलमेवासीत्तेन शैलाः प्रतिष्ठिताः ॥१८७
स्तूयते वृक्षवीरुद्भिः पुनर्दुग्धा वसुन्धरा।
पलाशपात्रमादाय दुग्धं छिन्नप्ररोहणम् ॥१८८
कामधुक् पुष्पितः शालः प्लक्षो वत्सो यशस्विनी।
सर्वकामदुघा दोग्ध्री पृथिवी भूतभाविनी ॥१८९
सैषा धात्री विधात्री च धारिणी च वसुन्धरा।

दुग्धा हितार्थं लोकानां पृथुना इति न श्रुतम् ।
चराचरस्य लोकस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ॥१९०

इसके पश्चात् यह वसुन्धरा राक्षस तथा पिशाचों के द्वारा दोहन की गई थी । उनका ब्रह्मोपेत कुबेर दोग्धा था ॥१८२॥ सुमाली बलवान् राक्षस था, और उनका क्षीर रुधिर ही था । राक्षसों के द्वारा कपाल के पात्र में अन्तर्धान दोहन की गई थी । उसी क्षीर से राक्षस लोग अपनी वृत्ति चलाया करते हैं ॥ ॥१८३॥ गन्धर्वों तथा अप्सराओं के समुदाय के द्वारा फिर यह वसुन्धरा दोहन की गई थी । उस समय चित्ररथ को वत्स बनाया था और शुचि गन्धों का दोहन किया गया था ॥१८४॥ मुनि का पवित्र पुत्र विश्वावसु उनका दोग्धा था, जो कि गन्धर्वराज अत्यन्त बलवान्-महान् आत्मा वाला और सूर्य के तुल्य था ॥१८५॥ फिर यह पृथ्वी शैलों के द्वारा स्तुत होती है और दोहन की गई थी । वहाँ पर मूर्त्तिमती बहुत सी औषधियाँ तथा अनेक प्रकार के रत्नों का दोहन हुआ था ॥१८६॥ उनका उस समय हिमाचल वत्स बना था और महान् गिरि मेरु उनका दोग्धा अर्थात् दोहन करने वाला था । पात्र उन सबका शैल ही था, उससे शैल प्रतिष्ठित हुए ॥१८७॥ फिर वृक्ष और लताओं के द्वारा यह भूमि स्तुत होती है और दोहन की गई थी । पलाश का पत्र लाकर छिन्न का प्ररोहण दुग्ध हुआ था ॥१८८॥ पुष्पित शैल कामधुक् था-प्लक्ष वत्स हुआ था- यशस्विनी भूत भाविनी पृथ्वी समस्त कामों की दुधा दोग्धी थी ॥१८९॥ वह यह धात्री-विधात्री और धारणी वसुन्धरा पृथु राजा के द्वारा समस्त लोकों के हित सम्पादन करने के लिये दोहन की गई थी—ऐसा हमने सुना है । यह इस समस्त चर और अचर लोक की प्रतिष्ठा तथा योनि है, अर्थात् यह सबके उद्भव का स्थान है ॥१९०॥



॥ प्रकरण ४–पृथु-वंश कीर्तन ॥

आसीदियं समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रुता ।
वसु धारयते यस्माद्वसुधा तेन चोच्यते ॥१

मधुकैटभयो पूर्वं मेदसा समपरिप्लुता ।
ततोऽभ्युपगमाद्राज्ञ पृथोर्वैन्यस्य धीमत ॥२
दुहित्वासीत् समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रु ता ।
दुहितृत्वमनुप्राप्ता पृथिवीत्युच्यते तत ॥३
प्रथिता प्रविभक्ता च शोभिता च वसुन्धरा ।
सस्याकरवती राज्ञा पत्तनाकरमालिनी ।
चातुर्वर्ण्यसमाकीर्णा रक्षिता तेन धीमता ॥४
एव प्रभावो राजासीद् वैन्य स नृपसत्तम ।
नमस्यश्चैव पूज्यश्च भूतग्रामेण सर्वश ॥५
ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगै. ।
पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनि सनातन ॥६
पार्थिवैश्च महाभागै प्रार्थयद्भिर्महद्यश ।
आदिराजा नमस्कार्य पृथुर्वैन्य प्रतापवान् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—यह समुद्र के अन्त तक है और मेदिनी इस नाम वाली सुनी गई है। क्योंकि यह वसु अर्थात् धनो को धारण किया करती है, इसी से वसुधा इस नाम से कही जाया करती है ॥१॥ यह पहिले समय में मधु और कैटभ के मेद से समपरिप्लुत थी फिर धीमान् वैन्य राजा पृथु के अभ्युपगम से यह समुद्र के अन्त तक हुई थी और मेदिनी इस नाम से परिश्रुत हुई। यह दुहिता के भाव को प्राप्त हुई थी, तब से ही यह पृथ्वी इस नाम से कही जाती है ॥२॥३। यह प्रथित हुई-प्रविभक्त हुई और शोभा से भी युक्त हुई वसुन्धरा थी, जो कि सस्या के आकरो वाली राजा के द्वारा पत्तनों के आकरो से माला वाली की गई थी। यह चारो वर्णों के समुदाय से समाकीर्ण उसी राजा के द्वारा जो कि परम बुद्धिमान् था, रक्षित हुई थी ॥४॥ वह नृपो मे परम श्रेष्ठ राजा वैन्य इस प्रकार के प्रभाव से युक्त था। वह प्राणियो के समूह के द्वारा सर्वत्र नमन करने के योग्य तथा पूजा करने के योग्य था ॥५॥ वेद और वेद के समस्त अङ्गो के पारगामी महान् भाग्य वाले ब्राह्मणो के द्वारा ब्रह्मयोनि एव सनातन केवल पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ॥६॥

जो राजा इस भू मण्डल में महान् यश प्राप्त करने के इच्छुक हों उन महाभागों के द्वारा भी परम प्रताप वाला आदि राजा वैन्य पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ।।७।।

योधैरपि च संग्रामे प्रार्थयानैर्जयं युधि ।
आदिकर्त्ता नराणां वै नमस्यः पृथुरेव हि ।।८
यो हि योद्धा रणं याति कीर्त्तयित्वा पृथुं नृपम् ।
स घोररूपे संग्रामे क्षेमी तरति कीर्तिमान् ।।९
वैश्यैरपि च राजर्षिर्वैश्यवृत्तिसमास्थितैः ।
पृथुरेव नमस्कार्यो वृत्तिदाता महायशाः ।।१०
एते वत्सविशेषाश्च दोग्धारः क्षीरमेव च ।
पात्राणि च मयोक्तानि सर्वाण्येव यथाक्रमम् ।।११
ब्रह्मणा प्रथमं दुग्धा पुरा पृथ्वी महात्मना ।
वायुं कृत्वा तदा वत्सं बीजानि वसुधातले ।।१२
ततः स्वायम्भुवे पूर्वं तदा मन्वन्तरे पुनः ।
वत्सं स्वायम्भुवं कृत्वा दुग्धा ग्रीष्मेण वै मही ।।१३
मनौ स्वारोचिषे दुग्धा मही चैत्रेण धीमता ।
मनुं स्वारोचिषं कृत्वा वत्सं सस्यानि वै पुरा ।।१४

जो योधा संग्राम भूमि में अपना जय प्राप्त करने की कामना रखते हैं, उनके द्वारा भी मानवों का आदिकर्त्ता पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ।।८।। जो योधा रणभूमि में पहिले पृथु राजा का गुण गान करके जाया करता है वह फिर वहाँ घोर स्वरूप वाले संग्राम में क्षेम वाला होता हुआ कीर्त्ति प्राप्त करने वाला पार उतरता है ।।९।। वैश्यों की वृत्ति में समास्थित रहने वाले वैश्यों के द्वारा भी वह राजर्षि वृत्ति के देने वाला और महान् यश वाला पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ।।१०।। ये सब वत्स विशेष, दोहन करने वाले दोग्धा गण और पात्र तथा क्षीर सभी वस्तुएँ क्रम के अनुसार मैंने कह दी हैं ।।११।। पहिले महान् आत्मा वाले ब्रह्माजी ने इस पृथ्वी का दोहन किया था । उस समय ब्रह्मा ने वायु को वत्स बनाया था और इस वसुधा के

तस मे बीजो को दुहा था ।।१२।। इसके पश्चात् फिर पहिले स्वायम्भुव मन्वन्तर में स्वायम्भुव को वत्स बनाकर ग्रीष्म के द्वारा इस मही का दोहन किया गया था ।।१३।। स्वारोचिष मन्वन्तर मे धीमान् चैत्र ने मही का दोहन किया था। स्वारोचिष मनु को वत्स बनाकर सस्यो का दोहन किया गया था ।।१४।।

उत्तमेऽनुत्तमेनापि दुग्धा देवभुजेन तु ।
मनु कृत्वोत्तम वत्स सर्वसस्यानि धीमता ।।१५
पुनश्च पञ्चमे पृथ्वी तामसस्यान्तरे मनो ।
दुग्धेय तामस वत्स कृत्वा तु बलबन्धुना ।।१६
चारिष्णवस्य देवस्य सप्राप्ते चान्तरे मनो ।
दुग्धा मही पुराणेन वत्सञ्चारिष्णव प्रति ।।१७
चाक्षुषेऽपि च सम्प्राप्ते तदा मन्वन्तरे पुन ।
दुग्धा मही पुराणेन वत्स कृत्वा तु चाक्षुषम् ।।१८
चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वते पुन ।
वैन्येनेय मही दुग्धा यथा ते कीर्तित मया ।।१६
एतैर्दु ग्धा पुरा पृथ्वी व्यतीतेष्वन्तरेषु वै ।
देवादिभिमनुष्यैश्च तथा भूतादिभिश्च या ।।२०
एव सर्वेषु विज्ञेया ह्यतीतानागतेष्विह ।
देवा मन्वन्तरेष्वस्य पृथोस्तु शृणुत प्रजा ।।२१

उत्तम और धीमान् अनुत्तम देवभुज के द्वारा उत्तम मनु को वत्स बनाकर धीमान् ने समस्त सस्यो का दोहन किया था ।।१५।। फिर तामस मन्वन्तर से जो कि पाँचवाँ मन्वन्तर था बलबन्धु के द्वारा यह पृथ्वी तामस मनु को वत्स बनाकर दोहन की गई ।।१६।। फिर चारिष्णव देव के मन्वन्तर प्राप्त होने पर पुराण ने चारिष्णव को वत्स बनाकर इस पृथ्वी का दोहन किया था ।१७। फिर चाक्षुष मन्वन्तर के आजाने पर पुराण के द्वारा ही चाक्षुष को वत्स कल्पित कर इस मही का दोहन किया गया ।।१८।। फिर चाक्षुष मन्तर के व्यतीत हो जाने पर इस वैवस्वत मन्वन्तर के सम्प्राप्त हो जाने पर यह मही वैन्य राजा के द्वारा दोहन की गई है जैसा कि मैंने तुमको अभी सब बताया

था ।।१६।। पहिले इन सबके द्वारा मन्वन्तरों के व्यतीत हो जाने पर देव आदि-मानव और भूतादि के द्वारा यह भूमि दोहन की गई थी ।।२०।। इस प्रकार से अतीत एवं अनागत सभी में मन्वन्तरों में देवों को जान लेना चाहिए। अब इस राजा पृथु की प्रजा का श्रवण आप लोग करें ।।२१।।

पृथोस्तु पुत्रौ विक्रान्तौ जज्ञातेऽन्तर्द्धिपालिनौ ।
शिखण्डिनी हविर्द्धानमन्तर्द्धानाद्व्यजायत ।।२२
हविर्द्धानात्षडाग्नेयी धिषणाऽजनयत्सुतान् ।
प्राचीनबर्हिष शुक्रं गयं कृष्णं व्रजाजिनौ ।।२३
प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत् प्रजापतिः ।
बलश्रुततपोवीर्यैः पृथिव्यामेकराडसौ ।
प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य तस्मात्प्राचीनबर्ह्यसौ ।।२४
समुद्रतनयायान्तु कृतदारः स वै प्रभुः ।
महतस्तपसः पारे सवर्णायां प्रजापतेः ।
सवर्णाऽधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः ।।२५
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ।
अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः ।
दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ।।२६
तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतःसु महीरुहाः ।
अरक्ष्यमाणामावव्रुर्बभूवाथ प्रजाक्षयः ।।२७
प्रत्याहृते तदा तस्मिश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।
नाशकन् मारुतो वातुं वृतं खमभवद्द्रुमैः ।
दशवर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः ।।२८

पृथु राजा के दो विक्रान्त पुत्र उत्पन्न हुए वे दोनों अन्तर्द्धिपालो थे। शिखण्डिनी हविर्धान अन्तर्द्धान से उत्पन्न हुआ ।।२२।। हविर्धान से षड्आग्नेयी धिषणा ने पुत्रों को जन्म दिया था। जिनके नाम प्राचीन बर्हि-शुक्र-गय-कृष्ण-व्रज और अजिन थे ।।२३।। प्राचीन बर्हि भगवान् महान् प्रजापति थे। वह बल-श्रुत-तप और वीर्य से पृथिवी में एकराट् थे। प्राचीनाग्र कुशा उसके

थे इसीसे यह प्राचीन वर्हि नाम वाला हुआ था ॥२४॥ वह प्रभु समुद्र तनया में सुनदार हुआ था अर्थात् समुद्र तनया को अपनी दारा बनाया था। महान् तप से पार म प्रचापनि म सावर्णा म दश नासुद्री प्राचीन वर्हियों को सवर्णा ने पारण किया था ॥२५॥ ये सब धनुर्वेद के पारगामी प्रचेतस थे। पृथक् धर्म के आचरण करने वाले उनने दश सहस्र वर्ष तक महान् तपश्चर्या की थी जो कि समुद्र के जल में शयन करने वाले थे ॥२६॥ प्रचेताओं के तपश्चर्या करने पर महीरुह अरण्ययाएं पृथ्वी में बोने। इसके अनन्तर प्रजाक्षय हो गया था ॥२७॥ उस समय चाक्षुष मन्वन्तर के अपगाहन हो जाने पर आदन बहुत न कर सका और द्रुमो से आवाद आवृत होगया था। दश सहस्र वर्ष तक प्रजा कुछ भी चेष्टा न कर सकी थी ॥२८॥

तदुपश्रुत्य तपसा सर्वे युक्ता प्रचेतस ।
मुखेभ्यो वायुमग्निञ्च समृजुर्जातमन्यव ॥२६
उन्मूलानथ तान् वृक्षान् कृत्वा वायुरशोषयत् ।
तानग्निरदहद्धार एवमासीद्द्रुमक्षय ॥३०
द्रुमक्षयमथो बुद्ध्वा किञ्चिच्छेषेषु शाखिषु ।
उपगम्याब्रवीदेतान् राजा सोमः प्रचेतसः ॥३१
दृष्ट्वा प्रयोजन सर्वं लोकसन्तानकारणात् ।
कोपन्त्यजत राजान सर्वं प्राचीनवर्हिष ॥३२
वृक्षा क्षित्या जनिष्यन्ति शाम्येतामग्निमारुतौ ।
रत्नभूता तु कन्येय वृक्षाणा वरवर्णिनी ॥३३
भविष्य जानता ह्येषा मया गोभिर्विवर्द्धिता ।
मारिषा नाम नाम्नैषा वृक्षैरेव विनिर्मिता ।
भार्या भवतु वो ह्येषा सोमगर्भविवर्द्धिता ॥३४
युष्माकं तेजसोऽर्द्धेन मम चार्द्धेन तेजसः ।
अस्यामुत्पत्स्यते विद्वान् दक्षो नाम प्रजापति ॥३५

तपस्या म युक्त समस्त प्रचेताओ ने यह सुनकर क्रोधित होते हुए मुखो से वायु और अग्नि को उत्सर्जन किया था ॥२६॥ वायु ने उन समस्त वृक्षों

को उन्मूलित कर गिरवा दिया था और अग्नि ने उनको दग्ध कर दिया था। इस प्रकार से घोर द्रुमों का क्षय हुआ था ॥३०॥ कुछ शाखियों के शेष रह जाने पर द्रुमों के क्षय को जानकर प्रचेतस सोम राजा उनके पास आकर उनसे कहने लगा ॥३१॥ लोक सन्तान के कारण से समस्त प्रयोजन जानकर प्राचीन बर्हिष राजा लोग कोप को छोड दो ॥३२॥ क्षिति में वृक्ष उत्पन्न होंगे। अग्नि और वायु शान्त हो जावे। रत्नभूता यह कन्या वृक्षों की वर वर्णिनी है ॥३३॥ भविष्य अर्थात् आगे आने वाले समय को जानने वाले मैंने गौओं से विवर्द्धित की है। नाम से यह मारिषा नाम वाली है और यह वृक्षों के द्वारा ही विनिर्मित हुई है। यह सोम के गर्भ से विवर्द्धित हुई आपकी भार्या होवे ॥३४॥ आपके आधे तेज से और आधे मेरे तेज से इसमें परम विद्वान् दक्ष नाम वाला प्रजापति उत्पन्न होगा ॥३५॥

रा इमा दग्धभूयिष्ठा युष्मत्तेजोमयेन वै ।
अग्निनाग्निसमो भूयः प्रजा संवर्द्धयिष्यति ॥३६
ततः सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतस ।
संहृत्य कोप वृक्षेभ्य पत्नी धर्मेण मारिषाम् ॥३७
मारिषायां ततस्ते वै मनसा गर्भमादधुः ।
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापति ॥३८
दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन वीर्यवान् ।
असृजन्मानसानादौ प्रजा दक्षोऽथ मैथुनात् ॥३९
अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदान् ।
विसृज्य मनसा दक्ष पश्चादसृजत स्त्रियः ॥४०
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
कालस्य नयने युक्ताः सप्तविंशतिमिन्दवे ॥४१
एभ्यो दत्त्वा ततोऽन्या वै चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।
द्वे चैव बाहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ।
कन्यामेकां कृशाश्वाय तेभ्योऽपत्य निबोधत ॥४२

आपके तेजोमय अग्नि से दग्ध भूयिष्ठा इसको यह अग्नि सम होकर फिर

प्रजा का सम्वर्द्धन करेगा ॥३६॥ इसके पश्चात् सोम के वचन से उन प्रचेताओं ने वृक्षों से कोप का संहार करके धर्म से मारिषा को पत्नी रूप में ग्रहण किया था ॥३६॥ इसके अनन्तर उन्होंने मारिषा में मन से गर्भ धारण कराया था। दश प्रचेताओं से मारिषा में प्रजापति महान् तेज वाला सोम के अंश से वीर्यवान् दक्ष उत्पन्न हुआ था। आदि में मानस प्रजाओं का सृजन किया था इसके अनन्तर दक्ष ने मैथुन से सृजन किया ॥३८-३६॥ दक्ष ने चर-अचर-द्विरद और चतुष्पदों का मन से विशेष रूप से सृजन करके पीछे स्त्रियों का सृजन किया था ॥४०॥ उसने अर्थात् दक्ष ने दशतो धर्म के लिए दी-कश्यप को तेरह और काल के नयन में युक्त सत्ताईस इन्दु के लिए दी थीं ॥४१॥ इनको देकर फिर अन्य चार अरिष्टनेमि को दी—दो बाहु पुत्र के लिए-दो आङ्गिरस के लिये और एक कन्या कृशाश्व के लिये दी। अब उनसे जो सन्तति हुई उसे भी आप लोग भली भांति समझ लो ॥४२॥

अन्तरं चाक्षुषस्यात्र मनो षष्ठन्तु हीयते।
मनोर्वैवस्वतस्यापि सप्तमस्य प्रजापते ॥४३
तासु देवाः खगा गावो नागा दितिजदानवाः।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ॥४४
ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन् प्रजा मैथुनसम्भवा।
सङ्कल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषा सृष्टिरुच्यते ॥४५
देवानां दानवानाञ्च देवर्षीणाञ्च ते शुभ।
सम्भवः कथितः पूर्वं दक्षस्य च महात्मन ॥४६
प्राणात्प्रजापतेर्जन्म दक्षस्य कथित त्वया।
कथ प्राचेतसत्वञ्च पुनर्लेभे महातपाः ॥४७
एतन्नः संशय सूत व्याख्यातु त्वमिहार्हसि।
स दौहित्रश्च सोमस्य कथं श्वशुरताङ्गतः ॥४८
उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्य भूतेषु सत्तमा।
ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्यावन्तश्च ये नराः ॥४६

यहाँ पर चाक्षुष मनु का छठवाँ अन्तर हीयमान होता है। प्रजापति

रात्रम वैवस्वत मनु का भी समस्त होता है। उन में देव–खग–गौ–नाग–दितिज–दानव–गन्धर्व–अप्सरा और अन्य जातियाँ उत्पन्न हुई थी ॥४३-४४॥ इसके पश्चाद् तभी से लेकर इस लोक में मैथुनसे जन्म ग्रहण करनेवाली प्रजा हुई थी। इससे पहिले जो हुए थे उन पूर्व में होने वालो की सृष्टि सङ्कल्प–दर्शन–स्पर्शन से ही कही जाती है ॥४५॥ ऋषियों ने कहा—आपने देवों का–दानवों का और देवर्षियों का शुभ जन्म महात्मा दक्ष के पहिले बतलाया है ॥४६॥ आपने प्रजापति दक्ष का जन्म प्राण से बतलाया है। फिर महातपा ने प्राचेतसत्व को कैसे प्राप्त किया था ॥४७॥ हे सूत! यह हमको बड़ा संशय होता है। आप इसकी पूरी व्याख्या करने के योग्य होते हैं। वह सोम का दौहित्र श्वसुर कैसे बन गया था? ॥४८॥ श्री सूतजी ने कहा—हे सत्तमो! प्राणियों में उत्पत्ति और निरोध नित्य ही होता है। इस विषय में ऋषि लोग और जो विद्या वाले मनुष्य हैं वे मोह को प्राप्त नहीं होते हैं ॥४६॥

युगे युगे भवन्त्येते सर्वे दक्षादयो द्विजा ।
पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वांस्तत्र न मुह्यति ॥५०
ज्यैष्ठ्य कानिष्ठ्यमप्येषा पूर्वं नासीद्द्विजोत्तमा ।
तप एव गरीयोऽभूत् प्रभावश्चैव कारणम् ॥५१
इमा विसृष्टि यो वेद चाक्षुषस्य चराचरम् ।
प्रजानामायुरुत्तीर्ण स्वर्गलोके महीयते ॥५२
एष सर्ग समाख्यातश्चाक्षुषस्य समा सत ।
इत्येते षड्विसर्गा हि क्रान्ता मन्वन्तरात्मका ।
स्वायम्भुवाद्याः सङ्क्षेपाच्चाक्षुषान्ता यथाक्रमम् ॥५३
एते सर्गा यथाप्रज्ञ प्रोक्ता वै द्विजसत्तमा ।
वैवस्वतनिसर्गेण तेषा ज्ञेयस्तु विस्तर ॥५४
अनन्ता नातिरिक्ताश्च सर्वे सर्गा विवस्वत ।
आरोग्यायुष्प्रमाणेन धर्मत कामतोऽर्थतः।
एतानेव गुणान्नेति य पठत्यनसूयक ॥५५

वैवस्वतस्य वक्ष्यामि साम्प्रतस्य महात्मन. ।
समासाद्व्यासत सर्गं भ्रुवतो मे निबोधत ॥५६

हे द्विज वृन्द ! ये समस्त दक्ष आदि युग-युग मे होते हैं और फिर निरुद्ध हुआ करते हैं। उसमे विद्वान् पुरुष कभी मोहित नहीं होता है ॥५०॥ हे द्विजोत्तमो ! पहिले इनकी ज्येष्ठता और कनिष्ठता अर्थात् छुटपन और बड़प्पन नहीं होती थी। तप ही एक बड़ा हुआ था और प्रभाव ही कारण था ॥५१॥ जो चाक्षुष की इस चराचर विशेष सृष्टि को जानता है वह प्रजाओं की आयु को उत्तीर्ण होगया और स्वर्ग लोक मे प्रतिष्ठित होता है ॥५२॥ मैंने यह चाक्षुष मन्वन्तर का सर्ग सक्षेप से कहा है। ये मन्वन्तरात्मक अर्थात् मन्वन्तर के स्वरूप वाले छै विसर्ग क्रान्त होते हैं। स्वायम्भुव के साथ वाले चाक्षुष के अन्त वाले यथाक्रम सक्षेप मे वर्णित हैं। अर्थात् इनमें से छै मे स्वायम्भुव प्रथम है और चाक्षुष अन्तिम है ॥५३॥ ये समस्त सर्ग प्रजा के अनुसार हे द्विजोत्तमो ! मैंने कहे हैं। वैवस्वत निसर्ग से ही उनका विस्तार जान लेना चाहिये ॥५४॥ ये समस्त सर्ग विवस्वान् से न तो अनन्त हैं और न अतिरिक्त ही हैं। आरोग्य और आयुष् प्रमाण से-धर्म से तथा काम से इनके ही गुण से जो अनसूयक इसे पढ़ता है हो जाता है। अब साम्प्रत महात्मा वैवस्वत का सर्ग समास और विस्तार दोनो से मैं कहूँगा उसे आप लोग बताने वाले मुझसे जान लो ।५५-५६।

प्रकरण ४६—वैवस्वत-सर्ग वर्णन

सप्तमे त्वथ पर्याये मनोर्वैवस्वतस्य ह ।
मारीचात्कश्यपाद् देवा जज्ञिरे परमर्षय. ॥१
आदित्या वसवो रुद्रा साध्या विश्वे मरुद्गणा ।
भृगवोऽङ्गिरसश्चैव ह्यष्टौ देवगणाः स्मृताः ॥२
आदित्या मरुतो रुद्रा विज्ञेया कश्यपात्मजा: ।
साध्याश्च वसवो विश्वे धर्मपुत्रास्त्रयो गणाः ॥३

भृगोस्तु भार्गवो देवो ह्याङ्गिरोऽङ्गिरस सुत.।
वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन् नित्यं ते छन्दजा सुराः ॥४
एद सर्गस्तु मारीचो विज्ञेयः साम्प्रतः शुभ ।
तेजस्वी साम्प्रतस्तेषामिन्द्रो नाम्ना महाबल ॥५
अतीतानागता ये च वर्त्तन्ते ये च साम्प्रतम् ।
सर्वे मन्वन्तरेन्द्रास्तु विज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः ॥६
भूतभव्यभवन्नाथ सहस्राक्षः पुरन्दर ।
मघवन्तश्च ते सर्वे शृङ्गिणो वज्रपाणयः ।
सर्वे क्रतुशतेनेष्ट्वा पृथक् शतगुणेन तु ॥७

श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर वैवस्वत मनु के सप्तम पर्याय में मारीच से कश्यप से देव और परमर्षिगण उत्पन्न हुए ॥१॥ आदित्य–वसुगण–रुद्र–साध्य–विश्वे–मरुद्गण–भृगु–अङ्गिरस ये आठ देवगण कहे गये हैं ॥२॥ आदित्य-मरुत और रुद्र ये कश्यप के पुत्र जानने चाहिए। साध्य–वसुगण–विश्वे ये तीन गण धर्म के पुत्र हैं ॥३॥ भृगु का भार्गव देव पुत्र है और अङ्गिरस का आङ्गिरा पुत्र हुआ। इस वैवस्वत अन्तर में नित्य छन्दज सुर हैं ॥४॥ यह मारीच सर्ग जानना चाहिए जो कि साम्प्रत और शुभ है। साम्प्रत अर्थात् इस वर्त्तमान समय में होने वाला उनमें तेजस्वी और नाम से महाबल इन्द्र है ॥५॥ जो अतीत और अनागत है और जो इस समय में वर्त्तमान हैं वे सब मन्वन्तरेन्द्र तुल्य लक्षण वाले ही जानने चाहिए ॥६॥ भूत भव्य और भवत् के सहस्राक्ष-पुरन्दर और मघवन्त वे सब शृङ्गी–वज्र पाणि हैं। सभी के द्वारा शतक्रतु से यजन किया गया है जो कि पृथक् शत गुण से युक्त हैं ॥७॥

त्रैलोक्ये यानि सत्त्वानि गतिमन्त्यबलानि च ।
अभिभूयावतिष्ठन्ते धर्माद्यैः कारणैरपि ॥८
तेजसा तपसा बुद्धया बलश्रुतपराक्रमैः ।
भूतभव्यभवन्नाथा यथा ते प्रभविष्णव ।
एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामि ब्रुवतो मे निबोधत । ९

भूत भव्यं भविष्यं तत् लोकत्रय द्विजै ।
भूर्लोकोऽय स्मृतो भूमिरन्तरिक्ष भुव स्मृतम् ।
भव्यं स्मृत दिव ह्य तत्तेषा वक्ष्यामि साधनम् ॥१०
ध्यायतः पुत्रकामेन ब्रह्मणाग्रे विभाषितम् ।
भूरिति व्याहृत पूर्व भूर्लोकोऽयमभूत्तदा ॥११
भूसत्ताया स्मृतो धातुस्तथाऽसौ लोकदर्शने ।
भूतत्वाद्दर्शनत्वाच्च भूर्लोकोऽयमभूत्तत. ।
मतोऽय प्रथमो लोको भूतत्वाद्भूर्द्विजै स्मृत ॥१२
भूतेऽस्मिन् भवदित्युक्त द्वितीय ब्रह्मण पुनः ।
भवत्युत्पद्यमानेन कालशब्दोऽयमुच्यते ॥१३
भवनात्तुभुवर्लोको निरुक्तज्ञैर्निरुच्यते ।
अन्तरिक्ष भुवस्तस्माद्द्वितीयो लोक उच्यते ॥१४

त्रैलोक्य मे जो सत्त्व गतिमान् और प्रबल हैं उनका अभिभव करके अवस्थित होते है। धर्माधि कारणो से-तेज से-स्पर्श बुद्धिसे और बल-भूत और पराक्रम से भूत-भव्य और भवभाव होते हैं वे उसी प्रकार से प्रभविष्णु भी हैं। यह सब मैं बतलाऊँगा बोलने वाले मुझसे आप लोग सब जानकारी कर लो ॥८॥९॥ भूत-भव्य और भविष्य यह द्विजो के द्वारा लोकत्रय कहा गया। यह भूमि भूर्लोक कहा गया है और अन्तरिक्ष भुवर्लोक इस नाम से कहा गया है। भव्य यह दिव कहा गया है अब उनके साधन बतलाऊँगा ॥१०॥ पुत्र की कामना वाले ध्यान करते हुए ब्रह्मा ने सबसे आगे "भू" यह बोला था तबसे ही यह भूर्लोक हो गया था ॥११॥ 'भू' यह धातु सत्ता अर्थ मे कहा गया है तथा यह लोक दर्शन मे भूतत्व और दर्शनत्व होने के कारण से तभी से यह भूर्लोक हुआ था। इसीलिये यह प्रथम लोक भूतत्व होने से द्विजो के द्वारा भू कहा गया है। इस भूत मे ब्रह्मा के द्वारा पुन द्वितीय भवत् यह कहा गया है। भवति इस उत्पद्यमान के द्वारा यह काल शब्द कहा जाता है ॥१२॥१३॥ भवन होने से निरुक्त के ज्ञाताओ के द्वारा भुवर्लोक कहा जाता है। अन्तरिक्ष भुव होता है इससे यह द्वितीय लोक कहा जाता है ॥१४॥

उत्पन्ने तु भुवर्लोके तृतीयं ब्रह्मणा पुनः ।
भव्येति व्याहृतं यस्माद्भव्यो लोकस्तदाऽभवत् ॥१५
अनागते भव्य इति शब्द एष विभाव्यते ।
तस्माद्भव्यो ह्यसौ लोको नामतस्तु दिव स्मृतम् ॥१६
स्वरित्युक्त तृतीयोऽन्यो भाव्यो लोकस्तदाभवत् ।
भाव्य इत्येष धातुर्वै भाव्ये काले विभाव्यते ॥१७
भूरितीयं स्मृता भूमिरन्तरिक्षं भुवं स्मृतम् ।
दिवं स्मृतं तथा भाव्यं त्रैलोक्यस्यैष संग्रहः ॥१८
त्रैलोक्ययुक्तैर्व्याहारैस्तिस्रो व्याहृतयोऽभवन् ।
नाथ इत्येष धातुर्वै पातुर्वै पालने स्मृतः ॥१९
यस्माद् भूतस्य लोकस्य भव्यस्य भवतस्तदा ।
लोकत्रयस्य नाथास्ते तस्मादिन्द्रा द्विजैः स्मृताः ॥२०
प्रधानभूता देवेन्द्रा गुणभूतास्तथैव च ।
मन्वन्तरेषु ये देवा यज्ञभाजो भवन्ति हि ॥२१

भुवर्लोक के उत्पन्न होने पर ब्रह्मा ने फिर तृतीय को भव्य ऐसा कहा जिस कारण से तब यह भव्य लोक हो गया था ॥१५॥ अनागत में भव्य यह शब्द विभाजित होता है। इससे यह लोक भव्य नाम से कहा गया है ॥१६॥ स्व यह कहा गया है तब अन्य तृतीय भाव्यलोक हुआ था। भाव्य यह धातु भाव्य काल में विभाजित होता है ॥१७॥ यह भूमि भू इस नाम से कही गई है—अन्तरिक्ष भुव इस नाम से कहा गया और भाव्य दिव इस नाम से कहा गया है—यही त्रैलोक्य का संग्रह होता है ॥१८॥ त्रैलोक्य से युक्त व्याहारों से "भूर्भुव स्व" तीन व्याहृतियाँ हो गई हैं। 'नाथ'—इस नाम से एक धातु है यह धातु के ज्ञान रखने वालों के द्वारा पालन अर्थ में कही गई है ॥१९॥ जिस में भूत-भव्य और भवत् लोक थे उस समय में तीन लोक के वे जो नाथ थे द्विजों के द्वारा वे इन्द्र कहे गये हैं ॥२०॥ प्रधान भूत देवेन्द्र तथा गुणभूत मन्वन्तरों में जो देव हैं वे यज्ञ के भागभागी होते हैं ॥२१॥

यक्षगन्धर्वरक्षांसि पिशाचोरगदानवाः ।
महिमानः स्मृता ह्येते देवेन्द्राणान्तु सर्वश ॥२२
देवेन्द्रा गुरवो नाथा राजानः पितरो हि ते ।
रक्षन्तीमा प्रजाः सर्वा धर्मेणेह सुरोत्तमा ॥२३
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं देवेन्द्राणां समासतः ।
सप्तर्षीन् सम्प्रवक्ष्यामि साम्प्रतं ये दिवि स्थिताः ॥२४
गाधिजः कौशिको धीमान् विश्वामित्रो महातपा ।
भार्गवो जमदग्निश्च ऊरुपुत्र प्रतापवान् ॥२५
बृहस्पतिसुतश्चापि भारद्वाजो महातपा ।
औतथ्यो गौतमो विद्वाञ्छरद्वान्नाम धार्मिक ॥२६
स्वायम्भुवोऽत्रिर्भगवान् ब्रह्मकोशस्तु पञ्चम ।
षष्ठो वासिष्ठपुत्रस्तु वसुमान् लोकविश्रुतः ॥२७
वत्सार काश्यपश्चैव सप्तैते साधुसम्मता ।
एते सप्तर्षय सिद्धा वर्त्तन्ते साम्प्रतेऽन्तरे ॥२८

यक्ष-गन्धर्व-राक्षस-पिशाच-उरग-दानव-ये देवेन्द्रों के सब ओर से महिमायें कही गई हैं ॥२२॥ हे सुरोत्तमो ! देवेन्द्र-गुरु-नाथ-राजा-पितर ये सभी यहाँ पर धर्म से प्रजा की रक्षा किया करते हैं ॥२३॥ यह देवेन्द्रों का लक्षण संक्षेप से बतला दिया है। अब सप्तर्षियों के विषय में बतलाते हैं जो कि इस समय दिवि म स्थित रहते हैं ॥२४॥ गाधि से उत्पन्न होने वाले, कौशिक और धीमान् महान् तपस्वी विश्वामित्र—भार्गव जमदग्नि प्रताप वाला ऊरु का पुत्र-बृहस्पति का पुत्र महान् तपस्वी भारद्वाज-औतथ्य गौतम जो कि बड़ा विद्वान् शरद्वान् नाम वाला परम धार्मिक है-स्वायम्भुव भगवान् अत्रि जो ब्रह्म का कोश और पाँचवा है-छठवें वासिष्ठ पुत्र जो वसुमान् और लोक में परम विश्रुत हैं-वत्सार काश्यप ये साधुओं के द्वारा सहमत मान ऋषिवृन्द हैं। ये वर्तमान इस अन्तर में सिद्ध हुए सप्तर्षि होते हैं ॥२५॥२६॥२७॥२८॥

इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्ट शर्यातिरेव च ।
नरिष्यन्तश्च मिरयातो नाभ उद्दिष्ट एव च ॥२९

करुपश्च पृषध्रश्च वसुमान्नवम स्मृत' ।
मनोर्वैवस्तस्यैते दश पुत्रा प्रकीर्त्तिता ।
कीर्त्तिता वै मया ह्येते सप्तमञ्चैतदन्तरम् ॥३०
इत्येष वो मया पादो द्वितीय कथितो द्विजा ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च भूय किं वर्णयाम्यहम् ॥३१

इक्ष्वाकु–नाभाग–धृष्ट–शर्याति–नरिष्यन्त–विख्यात और उद्दिष्ट नाभ–पृषध्र और नवम वसुमान् ये इस वैवस्वत मनु के दस पुत्र कहे गये हैं। मैंने इनको कीर्तित कर दिया है और यह सप्तम अन्तर है। हे द्विजगण, यह मैंने द्वितीय पाद कहा है। अब आप लोग ही मुझे बतलाइये पुन विस्तार से तथा आनुपूर्वी से मैं क्या वर्णन करूँ ॥२६॥३०॥३१॥

॥ प्रकरण ४७—प्रजापति वंशानु कीर्तन ॥

श्रुत्वा पाद द्वितीयन्तु क्रान्त सूतेन धीमता ।
ततस्तृतीय पप्रच्छ पाद वै शांशपायन ॥१
पाद क्रान्तो द्वितीयोऽयमनुषङ्गेण यस्त्वया ।
तृतीय विस्तरात्पाद सोपोद्घात प्रकीर्त्तय ।
एवमुक्तोऽब्रवीत्सूत प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥२
कीर्त्तयिष्ये तृतीयञ्च सोपोद्घात सविस्तरम् ।
पाद समुदयाद्विप्रा गदतो मे निबोधत ॥३
मनोर्वैवस्वतस्येम साम्प्रतस्य महात्मन ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च निसर्ग श्रृणुत द्विजा ॥४
चतुर्युगैकसप्तत्या सङ्ख्यात पूर्वमेव तु ।
सह देवगणैश्चैव ऋषिभिर्दानवै सह ॥५
पितृगन्धर्वयक्षैश्च रक्षोभूतगणैस्तथा ।
मानुषै पशुभिश्चैव पक्षिभि स्थावरै सह ॥६

ऊचुः सर्वे ततोऽन्योन्यं जनलोके महर्षयः ।
ऊचुरेव महाभागा वारुणे वितते क्रतौ ॥१८
सर्वे वयं प्रसूयामश्चाक्षुषस्यान्तरे मनो ।
पितामहात्मजा सर्वे तत श्रेयो भविष्यति ॥१९
स्वायम्भुवेऽन्तरे शप्ता सप्तार्थं ते भवेन तु ।
जज्ञिरे वै पुनस्ते ह जनलोकाद्दिवं गता ॥२०
देवस्य महतो यज्ञे वारुणीं बिभ्रतस्तनुम् ।
ब्रह्मणो जुह्वत: शुक्रमग्नौ पूर्वं प्रजेप्सया ।
ऋषयो जज्ञिरे पूर्वं द्वितीयमिति न श्रुतम् ॥२१

ऋषियों ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! पहिले सभूतस सप्तर्षिगण कैसे सात मानस पुत्रत्व से कल्पित हुए ? यह हमें बतलाइये । इसके पश्चात् महान् तेज-वाले पौराणिक सूतजी ने शुभ वचन बोले ॥१५॥ सप्तर्षिगण कैसे सिद्ध हुए जो स्वायम्भुव मन्वन्तर में थे म:वन्तर को प्राप्तकर जोकि वैवस्वत नाम वाला था भव के अभिशाप से सविद्ध होकर उन्होंने उस समय में तप को प्राप्त नहीं किया था । एकबार आगामी वे जनलोक में उपपन्न थे ॥१६॥१७॥ तब जनलोक में सब महर्षिलोग आपस में एक–दूसरे से बोले और वितत वारुण क्रतु में महाभाग बोले ॥१८॥ हम सब चाक्षुष मनु के अन्तर में प्रसूयमान होते हैं । सब पितामह के आत्मज हैं । इससे श्रेय होगा ॥१९॥ स्वायम्भुव अन्तर में सात के लिये वे शिव के द्वारा अभिशप्त हुए वे पुनः यहाँ जनलोक से दिव को गये हुओं ने जन्म लिया था ॥२०॥ यज्ञमें वरुण के शरीर को धारण करने वाले महान् देव प्रजा की इच्छा से पहिले अग्नि में शुक्रका हवन करते हुए ब्रह्मा से पूर्व में ऋषिलोग उत्पन्न हुए थे । यह हमारा द्वितीय श्रुत है ॥२१॥

भृगुरङ्गिरा मरीचिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च अष्टौ ते ब्रह्मणः सुता ॥२२
तथास्य वितते यज्ञे देवाः सर्वे समागताः ।
यज्ञाङ्गानि च सर्वाणि वषट्कारश्च मूर्तिमान् ॥२३
मूर्तिमन्ति च सामानि यजूंषि च सहस्रशः ।

ऋग्वेदश्चाभवत्तत्र पदक्रमविभूषितः ॥२४
यजुर्वेदश्च वृत्ताढ्य ओङ्कारवदनोज्ज्वल ।
स्थितो यज्ञार्थसपृक्तसूक्तब्राह्मणमन्त्रवान् ॥२५
सामवेदश्च वृत्ताढ्य सर्वगेयपुर सरः ।
विश्वावस्वादिभिः सार्द्धं गन्धर्वैः सम्भृतोऽभवत् ॥२६
ब्रह्म वेदस्तथा घोरैः कृत्याविधिभिरन्वित ।
प्रत्यङ्गिरसयोगैश्च द्विशरीरशिरोऽभवत् ॥२७
लक्षणानि स्वराः स्तोभा निरुक्तस्वरभक्तयः ।
आश्रयस्तु वषट्कारो निग्रहप्रग्रहावपि ॥२८

भृगु–अङ्गिरा–मरीचि–पुलस्त्य–पुलह–क्रतु–अत्रि और वसिष्ठ ये आठ ब्रह्मा के पुत्र हैं ॥२२॥ उसी प्रकार से यज्ञ के वितत होने पर समस्त देवगण वहाँ आये थे । समस्त यज्ञ के प्रङ्ग और मूर्तिमान् वषट्कार–मूर्तिमान् साम–सहस्रों यजु और पद–क्रम आदि से विभूषित ऋग्वेद वहाँ पर था ॥२३॥२४॥ वृत्त से आढ्य और ओङ्कार के मुख से उज्ज्वल यजुर्वेद यज्ञ के अर्थ से सपृक्त सूक्त–ब्राह्मण और मन्त्रो वाला वहाँ पर स्थित है ॥२५॥ समस्त गाने के योग्यो मे अग्रणी वृत्त से आढ्य सामवेद विश्वावस्वादि के साथ गन्धर्वों के द्वारा सम्भृत था ॥२६॥ ब्रह्मवेद घोरकृत्या विधियो से युक्त और प्रत्यङ्गिरस योगो के द्वारा दो शरीर एव शिर वाला था ॥२७॥ लक्षण स्वर हैं, स्तोम निरुक्त स्वर और भक्ति हैं । आश्रय वषट्कार है और निग्रह तथा प्रग्रह भी हैं ॥१८॥

दीप्ता दीप्तिरिलादेवी दिश प्रदिशमीश्वरा ।
देवकन्याश्च पत्न्यश्च तथा मातर एव च ॥२९
आयु सर्वत एवैते देवस्य यजतो मुखे ।
मूर्तिमन्तः स्वरूपाख्या वरुणस्य वपुर्भृत ॥३०
स्वयम्भुवस्तु ता दृष्ट्वा रेत समपतद्भुवि ।
ब्रह्मर्षिभाविभूतस्य विधानाद्व न सशय ॥३१
कृत्वा जुहाव स्रुग्भ्या च स्रुवेण परिगृह्य च ।
आज्यवज्जुहवाञ्चक्रे मन्त्रवञ्च पितामह ॥३२

ऊचु सर्वे ततोऽन्योन्य जनलोके महर्षय ।
ऊचुरेव महाभागा वारुणे वितते क्रतौ ॥१८
सर्वे वय प्रसूयामश्चाक्षुषस्यान्तरे मनो ।
पितामहात्मजा सर्वे तत श्रेयो भविष्यति ॥१९
स्वायम्भुवेऽन्तरे शप्ता सप्तार्थं ते भवेन तु ।
जज्ञिरे ऐ पुनस्ते ह जनलोकादिह गता ॥२०
देवस्य महतो यज्ञे वारुणी बिभ्रतस्तनुम् ।
ब्रह्मणो जुह्वत शुक्रमग्नौ पूर्वं प्रजेप्सया ।
ऋषयो जज्ञिरे पूर्व द्वितीयमिति न श्रुतम् ॥२१

ऋषियो ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! पहिले समुत्पन्न सप्तर्षिगण कैसे सात मानस पुत्रत्व से कल्पित हुए ? यह हमें बतलाइये । इसके पश्चात् महान् तेज वाले पौराणिक सूतजी ने शुभ वचन बोले ॥१५॥ सप्तर्षिगण कैसे सिद्ध हुए जो स्वायम्भुव अन्तर मे थे मन्वन्तर को प्राप्तकर जोकि वैवस्वत नाम वाला था भव के अभिशाप से सविद्ध होकर उन्होने उस समय मे तप को प्राप्त नही किया था । एकबार आगामी वे जनलोक मे उपपन्न थे ॥१६॥१७॥ तब जनलोक मे सब महर्षिलोग आपस मे एक-दूसरे से बोले और वितत वारुण क्रतु मे महाभाग बोले ॥१८॥ हम सब चाक्षुष मनु के अन्तर म प्रसूयमान होते है । सब पितामह के आत्मज हैं । इससे श्रेय होगा ॥१९॥ स्वायम्भुव अन्तर मे सात के लिये वे शिव के द्वारा अभिशप्त हुए वे पुन यहाँ जनलोक से दिव को गये हुओं ने जन्म लिया था ॥२०॥ यज्ञमे वरुण के शरीर को धारण करने वाले महान् देव प्रजा की इच्छा से पहिले अग्नि मे शुक्रका हवन करते हुए ब्रह्मा से पूव म ऋषिलोग उत्पन्न हुए थे । यह हमारा द्वितीय श्रुत है ॥२१॥

भृगुरङ्गिरा मरीचि पुलस्त्य पुलह क्रतु ।
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च अष्टौ ते ब्रह्मण सुता ॥२२
तथास्य वितते यज्ञ देवा सर्वे समागता ।
यज्ञाङ्गानि च सर्वाणि वषट्कारश्च मूर्तिमान् ॥२३
मूर्तिमन्ति च सामानि यजूंषि च सहस्रश ।

पुनस्त्वे कल्पयामास महादेवस्तथा भृगुम् ।
वारुणा भृगवस्तस्मात्तदपत्यञ्च स प्रभु ॥३९
द्वितीयन्तु तत शुक्रमङ्गारेष्वपतत्प्रभु ।
अङ्गारेष्वङ्गिरोऽङ्गानि सहितानि ततोऽङ्गिरा ॥४०
सम्भूति तस्य ता दृष्ट्वा वह्निर्ब्रह्माणमब्रवीत् ।
रेतोधास्तुभ्यमेवाह द्वितीयोऽय ममास्त्विति ॥४१
एवमस्त्विति सोऽप्युक्तो ब्रह्मणा सदसस्पति ।
तस्मादङ्गिरसश्चापि आग्नेया इति न श्रुतम् ॥४२

उसमे शुक्र के सुत होने पर इसके अनन्तर महर्षिगण प्रादुर्भूत हुए थे जो शरीर से ज्वलत थे और वे सात प्रसव गुणो से युक्त थे ॥३६॥ अग्नि मे एक बार शुक्र के हुत किये जाने पर ज्वाला से कवि नि सृत हुए । ज्वाला का भेदन कर उसको निकला हुआ ब्रह्मा ने देखा और तू भृगु है ऐसा कहा इसीसे वह भृगु हुए हैं ॥३७॥ महादेव ने उसे इस प्रकार से उत्पन्न होता हुआ देखकर ब्रह्माजी से कहा हे प्रभो ! पुत्र की कामना वाले दीक्षित मेरा यह है जो यह भृगुदेव उत्पन्न हुआ है यह मेरा पुत्र होजावे ॥३८॥ ब्रह्माजी ने—ऐसा ही होवे—इस तरह से अनुज्ञा प्राप्त होजाने वाले महादेव ने भृगु को अपना पुत्र मान लिया था। इससे वारुण भृगु हुए और उनकी सन्तति प्रभु हैं ॥३९॥ इसके अनन्तर प्रभु ने द्वितीय शुक्र को अङ्गारो म डाला था। अङ्गारो मे अङ्गिर–अङ्ग सहित फिर उससे अङ्गिरा हुआ। उसकी इस प्रकार की सम्भूति को देखकर अग्नि ने ब्रह्माजी से कहा मैं तुम्हारे लिये ही रेतोधा हुआ हूँ। यह दूसरा मेरा होजावे ॥४०॥४१॥ ऐसाही होवे–इस प्रकार से वह सदसस्पति ब्रह्मा के द्वारा समनुज्ञात होगये थे। इससे अङ्गिरस आग्नेय हुए ऐसा हमने श्रुत किया है ॥४२॥

षट्कृत्वस्तु पुन शुक्र ब्रह्मणा लोककारिणा ।
हुत समभवस्तत्र षड् ब्रह्माण इति श्रुति ॥४३
मरीचि प्रथमस्तत्र मरीचिभ्य समुत्थित ।
क्रतौ तस्मिन् सुतो जज्ञे यतस्तस्मात्स वै क्रतु ॥४४

अहं तृतीय इत्यर्थस्तस्मादत्रि स कीर्त्यते ।
केशैश्च निशितैर्भूत पुलस्त्यस्तेन स स्मृत ॥४५
केशैर्लम्बे समुद्भूतस्तस्मात्तु पुलह स्मृत ।
वसुमध्यात्समुत्पन्नो वसुमान् वसुधाश्रय ॥४६
वसिष्ठ इति तत्त्वज्ञै प्रोच्यते ब्रह्मवादिभि ।
इत्येते ब्रह्मण पुत्रा मानसाः षण्महर्षयः ॥४७
लोकस्य सन्तानकरास्तैरिमा वर्द्धिता प्रजा ।
प्रजापतय इत्येव पठ्यन्ते ब्रह्मण सुता ॥४८
अपरे पितरो नाम एतैरेव महर्षिभि ।
उत्पादिता ऋषिगणा सप्त लोकेषु विश्रुताः ॥४९

लोक के धारण करने वाले ब्रह्मा के द्वारा शुक्र के छै भाग कर हवन करने पर वहाँ छै ब्रह्मा हुए ये ऐसी स्तुति है ॥४३॥ उनमे मरीचि प्रथम है जो मरीचियो से समुत्थित हुए हैं। उस क्रतु मे सुत उत्पन्न हुआ इसीलिए वह क्रतु नाम वाले हुए थे ॥४४॥ मैं तीसरा हूँ इस अर्थ वाला इसीसे वह अत्रि कहा जाता है। निशित केशा से हुआ इससे वह पुलस्त्य कहा गया है ॥४५॥ लम्बे केशो से समुद्भूत हुआ था इससे वह पुलह–इस नाम से कहा गया है। वसु के मध्य से उत्पन्न हुआ इससे वसुधा का आश्रय वाला वसुमान् हुआ था ॥४६॥ ब्रह्मवादी तत्त्वज्ञो ने वसिष्ठ ऐसा कहा है। इतने ये ब्रह्मा के छै मानस महर्षि उत्पन्न हुए थे ॥४७॥ ये इस लोक के सन्तति के करने वाले थे और उनके द्वारा ही यह वर्द्धित हुई है। ये ब्रह्मा के पुत्र प्रजापति इस प्रकार से भी पढे जाया करते हैं ॥४८॥ दूसरे पितर भी इन्ही महर्षियो के द्वारा उत्पादित हैं जो सात लोको मे विश्रुत ऋषिगण हैं ॥४९॥

मारीचा भार्गवाश्चैव तथैवाङ्गिरसोऽपरे ।
पौलस्त्या पौलहाश्चैव वासिष्ठाश्चैव विश्रुता ।
आत्रेयाश्च गणा प्रोक्ता पितृणा लोकविश्रुता ॥५०
एते समासतस्तात पुरैव तु गुणास्त्रय ।
अपूर्वाश्च प्रकाशाश्च ज्योतिष्मन्तश्च विश्रुता ॥५१

तेषा राजा यमो देवो यमैर्विहितकल्मषा ।
अपरे प्रजाना पतयस्ताञ्छृणुष्वमतन्द्रिता ॥५२
कर्दम कश्यप शेषो विक्रान्त सुश्रुवास्तथा ।
बहुपुत्र कुमारश्च विवस्वान् स शुचिश्रवा ॥५३
प्रचेतसोऽरिष्टनेमिर्बहुलश्च प्रजापति ।
इत्येवमादयोऽन्येऽपि बहवश्च प्रजेश्वरा ॥५४
कुशोच्चया वालखिल्या सम्भूता परमर्षय ।
मनोजवा सर्वगता सार्वभौमाश्च तेऽभवन् ॥५५
जाता भस्मव्यपोहिन्या ब्रह्मर्षिगणसम्मता ।
वैखानसा मुनिगणास्तप श्रुतपरायणा ॥५६
स्रोतोभ्यस्तस्य चोत्पन्नावश्विनो रूपसम्मितौ ।
विदुर्जन्माक्षरजसो विमला नेत्रसम्भवा ॥५७
ज्येष्ठा प्रजाना पतय स्रोतोभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।
ऋषयो रोमकूपेभ्यस्तथा स्वेदमलोद्भवा ५८

मारीच–भार्गव–आङ्गिरस–पौलस्त्य–पौलह–वाशिष्ठ और प्रात्रेय ये गए लोकों में प्रसिद्ध पितरो में कहे गये हैं ॥५०॥ हे तात ! ये सबीय से पहिले ही तीन गुण से अपूर्व–प्रकाश और विश्रुत ज्योतिष्मन्त ये कहे जाते हैं उनका राजा देवयम है। यमा के द्वारा विहित कल्मष दूसरे प्रजाओं के पति होते हैं उनको अब अतन्द्रित होकर सुनो मैं कहता हूँ इसलिए तुम्हें सुनना चाहिये यह भावार्थ है ॥५१॥५२॥ कर्दम–कश्यप–शेष–विक्रान्त–सुश्रुवा–बहुपुत्र–कुमार–विवस्वान्–शुचिश्रवा–प्रचेतस–अरिष्टनेमि–बहुल और प्रजापति एवमादि तथा अन्य भी बहुत से प्रजेश्वर होते हैं ॥५३॥५४॥ कुशोच्चय–वालखिल्य परमर्षि उत्पन्न हुए तथा मनोजव–सर्वगत और सार्वभौम वे हुए हैं ॥५५॥ ब्रह्मर्षिगण सम्मत तप और श्रुत में परायण वैखानस मुनिगण भस्मव्यपोहिनी से उत्पन्न हुए थे ॥५६॥ उसके स्रोतों से रूप सम्मित अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए। उसके स्रोतों से विदुर्जन्मार जस–विमल–नेत्र सम्भव–ज्येष्ठ प्रजाओं के पति उत्पन्न हुए। तथा स्वेदमल से उद्भव वाले ऋषि रोम कूपों से उत्पन्न हुए ॥५७॥५८॥

दारुणा हि स्ते मासा निर्यांशा पक्षसन्धय ।
वत्सरा ये स्वहोरात्रा पित्र्यं ज्योतिश्च दारुणम् ॥५९
रौद्र लोहितमित्याहुर्लोहित कनक स्मृतम् ।
तन्मैत्रमिति विज्ञेय धूमश्च पशवः स्मृता ॥६०
येऽर्च्चिषस्तस्य रुद्रास्तथादित्या समुद्भवा ।
अङ्गारेभ्य समुत्पन्ना ज्योतिषो दिव्यमानुषा ॥६१
आदिमानस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मसमुद्भव ।
सर्वकामदमित्याहुस्तत्र कन्यामुदाहरन् ॥६२
ब्रह्मा सुरगुरुस्तत्र त्रिदशैं सम्प्रसीदति ।
इमे वै जनयिष्यन्ति प्रजा सर्वा प्रजेश्वरा ॥६३
सर्वे प्रजानां पतय सर्वे चापि तपस्विन ।
तत्प्रसादादिमाल्लोकान्धारयेयुरिमा क्रिया ॥६४
इन्द्र सवर्द्धयामास तव तेजोविवर्द्धनम् ।
देवेषु वेदविद्वास सर्वे राजर्षयस्तथा ॥६५

इन में मास दारुण थे, जो निर्यांश थे वे पक्षो की सन्धियाँ थीं, जो वत्सर और अहोरात्र, पित्र दारुण ज्योति रौद्र को लोहित कहते थे लोहित को कनक कहा गया है। उसे मैत्र ऐसा जानना चाहिए और धूम पशु कहे गये हैं ॥५९-६०॥ उसकी अर्चियाँ थीं वे रुद्र तथा आदित्य उत्पन्न हुए। अङ्गारों से दिव्य मानुष ज्योतियाँ समुत्पन्न हुई ॥६१॥ आदिमान लोक का ब्रह्मा ब्रह्म से समुद्भूत हुआ। वहीं पर कन्या को उदाहृत करते हुए सर्व कामद ऐसा कहते हैं ॥६२॥ वहाँ देवों के साथ सुरगुरु ब्रह्मा सम्प्रसन्न होते हैं। ये प्रजेश्वर समस्त प्रजाओं को उत्पन्न करेंगे ॥६३॥ ये सब प्रजाओं के पति थे और ये सब तपस्वी थे। उनके प्रसाद से ये क्रियाएँ इन लोकों को धारण करती हैं ॥६४॥ आपके तेज के विवर्द्धन करते हुए इन्द्र का सवर्धन किया था। देवों में समस्त राजर्षिगण वेद के विद्वान् थे ॥६५॥

वेदमन्त्र परा सर्वे प्रजापतिगुणोद्भवा ।
अनन्तं ब्रह्म सत्यञ्च तपश्च परमं शुचि ॥६६

सर्वे हि वयमेते च तवैव प्रसव प्रभो ।
ब्रह्म च ब्राह्मणाश्चैव लोकाश्चैव चराचरा ॥६७
मरीचिमादित कृत्वा देवाश्च ऋषिभि सह ।
अपत्यानीय सञ्चिन्त्य तेऽपत्यङ्कामयामहे ॥६८
तस्मिन् यज्ञ महाभागा देवाश्च ऋषिभि सह ।
एतद्व शसमुद्भूता स्थानकालाभिमानिन ॥६९
न च तेनैव रूपेण स्थापयेयुरिमा प्रजा ।
युगादिनिधनाश्चैव स्थापयेयुरिमा प्रजा ॥७०
ततोऽब्रवील्लोकगुरु परमित्यविचारयन् ।
एव देवा विनिश्चित्य मया सृष्टा न सशय ।
भवता वशसम्भूता पुनरेते महर्षय ॥७१
तेषा भृगो कीर्तयिष्ये वश पूर्वमहात्मन ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च प्रथमस्य प्रजापते ॥७२

सब प्रजापति के गुणो से उद्भव होने वाले वेदो के मन्त्रो म परायण ॥ । अनन्त और सत्य ब्रह्म—भू मे परम तप ये सब और हम हे प्रभो ! आपका ही प्रसव है जिनमे ब्रह्म और ब्राह्मण तथा चराचर लोक हैं ॥६६-६७॥ मरीचि आदि लेकर ऋषियो के साथ देवगण यहाँ पर सन्तति की चिन्ता कर उन सबने अपत्य (सन्तान) की कामना की थी ॥६८। उस यज्ञ मे महान् भाग वाले देवता ऋषियो के साथ स्थान और काम के अभिमानी इस वश म समुद्भूत थे ॥६९॥ और उसी रूप से इन प्रजाओ की स्थापना नही करनी चाहिए किन्तु युगादि निधन से इनको स्थापित करो ॥७०॥ इसके अनन्तर लोक गुरु से विचार न करते हुए कहा—मैंने इस प्रकार का विनिश्चय करके देवताओ को सृष्ट किया है इसमे सशय नही है । फिर ये महर्षिगण सबके वश मे सम्भूत हुए हैं ॥७१॥ उनमे से महात्मा भृगु के वश को पहिले बतलाऊँगा जो कि प्रथम प्रजापति है इसे विस्तारानुपूर्वी से कहूगा ॥७२॥

भार्या भृगोरप्रतिमे उत्तमेऽभिजने शुभे ।
हिरण्यकशिपो कन्या दिव्या नाम परिश्रुता ।
पुलोम्नश्चापि पौलोमी दुहिता वर वर्णिनी ॥७३

भृगोस्त्वजनयद्दिव्या काव्य वेदविदा वरम् ।
देवासुराणामाचार्यं शुक्रङ्कविसुत ग्रहम् ॥७४
स शुक्रश्चोशना स्यात स्मृत काव्योऽपि नामत ।
पितृणा मानसी कन्या सोमपाना यशस्विनी ।
शुक्रस्य भार्याङ्गी नाम विजज्ञे चतुर सुतान् ॥७५
ब्राह्मेण तेजसा युक्त स जातो ब्रह्मवित्तम ।
तस्यामेव तु चत्वार पुत्रा शुक्रस्य जज्ञिरे ॥७६
त्वष्टा वरुत्री द्वावेतौ शण्डामर्कौ च तावुभौ ।
ते तदादित्यसङ्काशा ब्रह्म कल्पा प्रभावत ॥७७
रञ्जन पृथुरश्मिश्च विद्वान्यश्च बृहद्गिरा ।
वरुत्रिण सुता ह्येते वर्हिष्ठा. सुरयाजका ॥७८
इज्याधर्मविनाशार्थं मनु मेत्याभ्ययोजयन् ।
निरस्यमान वै धर्म दृष्ट्वेन्द्रो मनुमब्रवीत् ॥७९
एतैरेव तु काम त्वा प्रापयिष्यामि याजनम् ।
श्रुत्वेन्द्रस्य तु तद्वाक्य तस्माद् देशादपाक्रमन् ॥८०

भृगु की भार्या हिरण्यकशिपु के उत्तम–शुभ–अप्रतिम अभिजन मे दिव्या इस नाम से परिश्रुत होने वाली कन्या से वेदो के ज्ञाताओ मे परमश्रेष्ठ काव्य को उत्पन्न किया था जो कि देवासुरो के आचार्य थे और कविसुत शुक्र ग्रह है ॥७४॥ वह शुक्र उशना इस नाम से प्रसिद्ध हुआ और नाम से काव्य भी कहा गया है । सो मय पितृगण की मानसी यशस्विनी कन्या जो कि शुक्र की अङ्गी नाम वाली भार्या थी उसने चार पुत्र उत्पन्न किये थे ॥७५॥ ब्रह्म तेज से युक्त वह ब्रह्मवेत्ताओ मे श्रेष्ठ वह उत्पन्न हुआ था । शुक्र के चार पुत्र उसी मे से हुए हैं ॥७६॥ त्वष्टा–वरुत्री दो थे और शण्डा तथा मर्क ये दोनो उत्पन्न हुए । वे उस समय आदित्य के तुल्य और प्रभाव से ब्रह्मा के ही तुल्य थे ।७७। रञ्जन–पृथुरश्मि और बृहद्गिरा ये वरुत्री के वर्हिष्ठ और सुरो के यजन कराने वाले पुत्र थे ॥७८॥ इज्या के धर्म को विनाश करने के लिये मनु के समीप जाकर योजना की । इन्द्र ने धर्म को निरस्यमान देखकर मनु से कहा—।७९।

इनके द्वारा ही इच्छापूर्वक याजन तुमको प्राप्त कराऊँगा। इस इन्द्र के वाक्य को सुनकर उस देश से अपाक्रान्त होगये ॥८०॥

तिरोभूतेषु तेष्विन्द्रो धर्मपत्नीश्च चेतनाम् ।
ग्रहेण मोचयित्वा तु तत. सोऽनुससार ताम् ॥८१
तत इन्द्रविनाशाय यतमानान् यतीस्तु तान् ।
तत्रागतान् पुनर्दृष्ट्वा दुष्टानिन्द्र प्रहन्यतु ।
सुष्वाप देवदेवस्य वेद्या वै दक्षिणे तत ॥८२
तेषान्तु भक्ष्यमाणाना तत्र शालावृकैं सह ।
शीर्षाणि न्यपतस्तानि खर्जूराण्यभवस्तत ॥८३
एव वरुत्रिण पुत्रा इन्द्रेण निहता पुरा ।
यजन्या देवयानी च शुक्रस्य दुहिताऽभवत् ॥८४
त्रिशिरा विश्वरूपस्तु त्वष्टु पुत्रोऽभवन्महान् ।
विश्वरूपानुजश्चापि विश्वकर्मा यम स्मृत ॥८५
भृगोस्तु भृगवो देवा जज्ञिरे द्वादशात्मजा ।
देव्या तान्सुषुवे सर्वान्काव्यश्चैवात्मजान्प्रभु ॥८६
भुवनो भावनश्चैव अन्यश्चान्यायतस्तथा ।
क्रतु श्रवाश्च मूर्दा च व्यजयो व्यश्रु पश्च य ।
प्रसव श्चाव्ययश्चैव द्वादशोऽधिपति स्मृत ॥८७
इत्येते भृगवो देवा स्मृता द्वादश याज्ञिका ।
पौलोम्यजनयत्पुत्र ब्रह्मिष्ठ वशिन विभुम् ॥८८
च्यावित सोऽष्टमे मासि गर्भं क्रूरेण कर्मणा ।
च्यवनाच्च्यवनासोऽय चेतनस्तु प्रचेतस ।
प्राचेतसाच्च्यवनक्रोधादध्यान पुष्पादज: ॥८९
जनयामास पुत्रौ द्वौ सुकन्यायाश्च भार्गव ।
आत्मवान दधीचञ्च तावुभौ साधुसम्मतौ ॥९०

उनके तिरोभूत हो जाने पर इन्द्र ने धर्म की पत्नी चेतना को ग्रह से छुड़ाकर इसके पश्चात् वह उसका ही अनुसरण करने लगा था ॥८१॥ इसके

पश्चात् इन्द्र के विनाश करने के लिये यत्न करते हुए उन पनियों को वहाँ आये हुए पुत्रों को पुन देखकर इन्द्र उनका हनन कर देवे। फिर दक्षिण में देवदेव की वेदी में सो गया था ॥८२॥ शाला वृक्षों के साथ आये हुए उनके वहाँ पर शीर्ष गिर गये थे जो कि फिर अङ्कुर होगये थे ॥८३॥ इस प्रकार से पहिले बहुत्री में पुत्र इन्द्र के द्वारा मारे गये थे। यजनी में देवयानी शुक्र की बेटी हुई थी ॥८४॥ त्वष्टा के त्रिशिरा और विश्वरूप महान् पुत्र उत्पन्न हुआ। विश्वरूप का अनुज भी विश्वकर्माख्य कहा गया है ॥८५॥ भृगु के भृगव देव बारह पुत्र उत्पन्न हुए थे। प्रभु काव्य ने उन समस्त पुत्रों को देवी में उत्पन्न किया था ॥८६॥ भुवन-भावन-अन्त्य-मायायन-अनुभुवा-मूर्द्धा-व्यजय-अश्रुप-प्रसव-प्रज और बारहवाँ अधिपति कहा गया है ॥८७॥ ये इतने बारह याज्ञिक भृगव देव कहे गये हैं। पौलोमी ने ब्रह्मिष्ठ-वशी-विभु पुत्र को उत्पन्न किया था ॥८८॥ गर्भ क्रूर कर्म से वह अष्टम मास में व्याधि से युक्त हुआ था। च्यवन से च्यवनाप्त और प्रचेता से चेतन-प्राचेतस च्यवन क्रोध से पुत्र से प्रज ने शुक्र को इस प्रकार भार्गव ने सुकन्या में दो पुत्रों को उत्पन्न किया था जोकि आत्मवान और दधीच ये दोनों बहुत ही साधु सम्मत हुए थे ॥८९-९०।

सारस्वत सरस्वत्यां दधीचाच्चोपपद्यते।
शची पत्नी महाभागा आत्मवानस्य नाहुषी ॥९१
तस्य ऊर्वोऽर्द्ध पिर्जज्ञे ऊरू भित्वा महायशा.।
और्वश्चासीदृचीकस्तु दीप्ताग्निसदृशप्रभ. ॥९२
जमदग्निश्चर्चीकस्य सत्यवत्यां व्यजायत।
भृगोश्च रुचिपर्याये रौद्रवैष्णवयोस्तथा ॥९३
जमनाद्वैष्णवस्याग्नेर्जमदग्निरजायत ।
रेणुका जमदग्नेस्तु शक्रतुल्यपराक्रमम्।
ब्रह्मक्षत्रमय राम सुषुवेऽमिततेजसम् ॥९४
और्वस्यासीत्पुत्रशत जमदग्निपुरोगमम् ।
तेषा पुत्रसहस्राणि भार्गवाणा परस्परात् ॥९५

ऋष्यन्तरेषु वै वाह्या वह्वो भार्गवा स्मृता. ।
वत्सो विदश्चोऽर्ष्टिषेणश्च पाण्ड: पथ्य शशौनक ।
गोत्रेण सप्तमा ह्येते पक्षा ज्ञेयास्तु भार्गवा: ॥९६
शृणुताङ्गिरसो वंशमग्ने पुत्रस्य धीमत ।
यस्यान्ववाये सम्भूता भारद्वाजा. सगौतमा: ।
देवाश्चाङ्गिरसो मुख्यास्त्विषुमन्तो महौजस. ॥९७

दधीच से सरस्वती मे सारस्वत पुत्र उत्पन्न होता है। भाग्यवान की महान् भाग वाली नहुष की पुत्री रुचि पत्नी हुई थी ॥९१॥ महान् यश वाले ऋषि ने उसके ऊरुओ का भेदन करके ऊरुओं से और्व ऋचीक दीप्त अग्नि की प्रभा से सहत हुआ था ॥९२॥ ऋचीक के सत्यवती में जमदग्नि उत्पन्न हुए। उसी प्रकार से रौद्र वैष्णवो के रुचि पर्याय में भृगु से हुए ॥९३॥ वैष्णव अग्नि के जमन से जमदग्नि उत्पन्न हुए। जमदग्नि से रेणुका ने इन्द्र के समान पराक्रम वाले ब्रह्म और क्षत्र मे पूर्ण अमित तेज वाले राम (परशुराम) को उत्पन्न किया था ॥९४॥ और्वंके जमदग्नि स पहिले होने वाले सौ पुत्र हुए थे उन भार्गवों के आपस मे एक सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥९५॥ ऋष्यन्तरो मे बहुत से बाह्य थ वे भार्गव कहे गये हैं। वत्स–विदव–अर्ष्टिषेण–पाण्ड–पथ्या–शशौनक गोत्र से ये भार्गव सातमा पक्ष जानने के योग्य होते हैं ॥९६॥ अब अग्नि के धीमान् पुत्र अङ्गिरस के वंश का श्रवण करो जिसके वंश में सगौतम भारद्वाज उत्पन्न हुए थे। इषुमान् महान् ओज वाले अङ्गिरस देव मुख्य थे ॥९७॥

सुरूपा चैव मारीचो कार्दमी च तथा स्वराट् ।
पथ्या च मानवी कन्या तिस्रो भार्गा ह्यथर्वण ।
इत्येताङ्गिरस पत्न्यस्तासु वक्ष्यामि सन्ततिम् ॥९८
अथर्वणस्तु दायादास्तासु जाता कुलोद्वहा ।
उत्पन्ना महता चैव तपसा भावितात्मनाम् ॥९९
बृहस्पति सुरूपाया गौतम सुषुवे स्वराट् ।
अवन्ध्य वामदेवश्च उतथ्यमुशिजन्तथा ॥१००

धिष्णु पुत्रस्तु पथ्याया सवर्त्तश्चैव मानस ।
विचित्तश्च तथायस्य शरद्वाश्चाप्युतथ्यज ॥१०१
अशिजो दीर्घतमा बृहदुत्थो वामदेवज ।
धिष्णो पुत्र सुधन्वान ऋषभश्च सुधन्वन ॥१०२
रथकारा स्मृता देवा ऋषयो ये परिश्रुता ।
बृहस्पतेभरद्वाजो विश्रुत सुमहायशा ॥१०३
अङ्गिरसस्तु सवर्त्तो देवानङ्गिरस शृणु ।
बृहस्पतेर्यवीयासो देवा ह्याङ्गिरस स्मृता ॥१०४
औरसाङ्गिरस पुत्रा सुरूपाया विजज्ञिरे ।
औदायायुर्दनुर्दक्षो दर्भ प्राणस्तथैव च ।
हविष्माश्च हविष्णुश्च ऋनु सत्यश्च ते दश ॥१०५
अयस्यस्तु उतथ्यश्च वामदेवस्तथोशिज ।
भारद्वाजा शाङ्कृतिका गार्ग्यकाण्वरथीतरा ॥१०६
मुद्गला विष्णुवृद्धाश्च हरिता वायवस्तथा ।
तथा भाक्षा भरद्वाजा आर्षभा किम्भयास्तथा ॥१०७
एते ह्याङ्गिरस पक्षा विज्ञया दश पञ्च च ।
ऋष्यन्तरेषु वै याह्या बहवोऽङ्गिरस स्मृता ॥१०८

सुरूपा–मारीची–कादभी तथा स्वराट्–पथ्या–मानवी और कन्या ये तीन अथर्वा की भार्या थी। ये इनकी अगिरस की भाया थी उनम जो सन्तति हुई उसको मैं अब बतलाता हूँ ॥९८॥ अथर्वा के दायाद कुलोद्वह उनम उत्पन्न हुए थे और भावित आत्मा वाला के महान् तप स उत्पन्न हुए थे ॥९९॥ सुरूपा मे बृहस्पति ने गौतम ने स्वराट प्रसूत किया। उसी प्रकार से अवन्ध्य–वामदेव उतथ्य और उशिज को उत्पन्न किया था ॥१००॥ पथ्या म धिष्णु पुत्र हुआ सवर्त्त मानस हुआ। विचित्त–तथा यस्य–शरद्वान्–उतथाज–अशिज–दीर्घतमा–बृहदुत्थ ये वामदेव से जन्म लेने वाले थे। धिष्णु के पुत्र सुधन्वान–ऋषभ और सुधन्वन थे ॥१०१॥१०२॥ ये देव रथकार कहे गये हैं जो कि ऋषि परिश्रुत थे। बृहस्पति से महान् यश वाला भरद्वाज विश्रुत हुआ था ॥१०३॥ अङ्गिरस

से सम्वर्त्त हुआ अब अङ्गिरस देवों का श्रवण करो। वृहस्पति के जो छोटे देव हैं वे ही अंगिरस कहे गये हैं ॥१०४॥ अङ्गिरा के और पुत्र सुरूपा नाम वाली में उत्पन्न हुए थे। श्रौदार्यायु–दनु–दक्ष–दर्भ–प्राण–हविष्मान्–हविष्णु–क्रतु और सत्व ये दश थे ॥१०५॥ श्रयस्य–उतथ्य–वामदेव–उशिज–भारद्वाज–शाकृतिक–गार्ग्य–काव्य–रथीतर–मुद्गल–विष्णु वृद्धहरित–वायव–भाक्ष–भरद्वाज–आर्षभ–किम्बय ये अंगिरस दश और पाँच पक्ष जानने के योग्य होते हैं। ऋष्यन्तरों में बहुत से ब्राह्म अंगिरस कहे गये हैं ॥१०६-१०७-१०८॥

मारीचं परिवक्ष्यामि वंशमुत्तमपूरुषम् ।
यस्यान्ववाये सम्भूतं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥१०९
मरीचिरापश्चक्रमे ताभिध्यायन्प्रजेप्सया ।
पुत्रं सर्वगुणोपेतं प्रजावान् सुरुचिर्दिति ।
सपूज्यते प्रशस्ताया मनसा भाविता प्रभु ॥११०
आहूताश्च ततः सर्वा आप समवसत्प्रभुः ।
तासु प्रणिहितात्मानमेकं सोऽजनयत्प्रभुः ॥१११
पुत्रमप्रतिमप्राम्नारिष्टनेमिं प्रजापतिं ।
पुत्रं मरीचं मूर्याभं वर्षौवेशो व्यजीजनत् ॥११२
अध्यायन् हि सता वाच पुत्रार्थी सलिले स्थितः ।
सप्तवर्षसहस्राणि ततः सोऽप्रतिमोऽभवत् ॥११३
कश्यपः सवितुर्विद्वान्स्तेन स ब्रह्मणः समः ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ब्राह्मणस्तेन जायते ॥११४
कन्यानिमित्तमित्युक्ते दक्षेण कुपिता प्रजा ।
अपिवत्स तदा वश्य वश्य मद्यमिहोच्यते ॥११५
हास्चेरगा हि विज्ञेया ब्रह्मणा वश्य उच्यते ।
वश्य मद्यं स्मृतं विप्रै कश्यपानात्तु कश्यपः ॥११६

अब मारीच उत्तम पुरुषों वाले वंश को बतलाता हैं जिसके समस्त स्थावर और जङ्गम जगत् उत्पन्न हुआ था ॥१०९॥ मरीचि उत्पन्न किये और प्रजा की इच्छा से उनके द्वारा ध्यान करते हुए

यदास्य मनसा सृष्टा न व्यवर्द्धन्त ता प्रजा ।
अपध्याता भगवता महादेवेन धीमता ॥१२७
मैथुनेन च भावेन सिसृक्षुर्विविधा प्रजा ।
असिक्नी चावहत् पत्नी वीरणस्य प्रजापतेः ॥१२८
सुता सुमहता युक्ता तपसा लोकधारिणीम् ।
यया धृतमिदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥१२९
अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोकौ प्राचेतसं प्रति ।
दक्षस्योद्वहतो भार्यामसिक्नी वीरिणी पराम् ॥१३०

फिर धीमान् ने अपने मनको मनुष्य-उरग-राक्षस देव-असुर-गन्धर्व-दिव्य सहननप्रजा-ईश्वर रूप-धन और तेज से अपने ही तुल्य विभाजित किया था ॥१२४॥ उसी प्रकार से परम मुदित होते हुए अन्य गतिमान् और ध्रुव मानस ही प्राणियों को एवं अनेक प्रकार की प्रजाओं का सृजन किया था ।१२५। ऋषियों को-देवों को-गन्धर्वों को-मनुष्य-उरग और राक्षसों को, यक्ष-भूत और पिशाचों को पक्षी-पशु और मृगों को जिस समय इसने मनसे सृजन किया था तो वह प्रजा की वृद्धि नहीं हुई थी । क्योंकि वह प्रजा धीमान् महादेव भगवान् के द्वारा अपध्यान थी ॥१२७॥ फिर मैथुन के भाव से अनेक प्रकार की प्रजा का सृजन किया था । प्रजापति वीरण की असिक्नी पत्नी को वहन किया था ॥१२८॥ प्रजापति वीरण की सुता सुमहान् तपसे युक्त थी और लोकोंको धारण करने वाली थी जिसने इस सम्पूर्ण स्थावर और जङ्गम जगत् को धारण किया था ॥१२९॥ परम वीरिणी असिक्नी भार्या का उद्वहन करने वाले दक्ष प्राचेतस के प्रगति ये दो श्लोक हैं जिनको यहाँ पर भी उदाहृत किया जाता है ॥१३०॥

कूपाना नियुतं दक्षं सर्पिणा साभिमानिनाम् ।
नदीगिरिषु सर्ज्जस्ता पृष्टतोऽनुययौ प्रभुः ॥१३१
स दृष्ट्वा ऋषिभिः प्रोक्त प्रतिष्ठास्यति वै प्रजा ।
प्रथमात्र द्वितीया तु दक्षस्येह प्रजापते ॥१३२
तथागच्छद्यथाकालं कूपाना नियुते तु सः ।
असिक्नी वीरिणी यत्र दक्ष प्राचेतसोऽवहत् ॥१३३

अथ पुत्रसहस्र स वैरिण्याममितौजसा ।
असिक्न्या जनयामास दक्ष प्राचेतस प्रभु ॥१३४
तास्तु दृष्ट्वा महातेजा स विवर्द्ध यिपून् प्रजा ।
देवर्षि प्रियसवादो नारदो ब्रह्मण. सुत. ।
नाशाय वचन तेषा शापायैवात्मनोऽब्रवीत् ॥१३५
य. स वै प्रोच्यते विप्र. कश्यपस्येति कृत्रिम ।
दक्षशापभयाद्भीतो ब्रह्मर्षिस्तेन कर्मणा ॥१३६
य कश्यपसुतस्याथ परमेष्ठी व्यजायत ।
मानस. कश्यपस्येह दक्षशापभयात् पुन १३७
तस्मात् स कश्यपस्याथ द्वितीय मानसोऽभवत् ।
सहि पूर्वसमुत्पन्नो नारद परमेष्ठिन ॥१३८
येन दक्षस्य पुत्रास्ते हर्यश्वा इति विश्रुता ।
निन्दार्थं नाशिता सर्वे विनष्टाश्च न सशय १३९
तस्योद्यतस्तदा दक्ष क्रुद्धो नाशाय वो प्रभु ।
ब्रह्मर्षीन् वै पुरस्कृत्य याचित परमेष्ठिना ॥१४०

शाभिमानी सर्पों कूपो का एवं निपुन नदी और पर्वतों मे सर्जन करते हुए प्रभु दक्ष ने उनके पीछे अनुगमन किया था ॥१३१॥ उसको देखकर ऋषियों ने कहा प्रजाओं को प्रतिष्ठित करेगा। यहाँ प्रजापति दक्ष की प्रथमा है, द्वितीया तो यथाकाल उसी प्रकार से कूपों के निपुन मे चली गई उस प्राचेतस दक्ष ने जहाँ पर वैरिणी असिक्नी का उद्वहन किया था ॥१३२॥१३३॥ इसके अनन्तर उस प्राचेतस दक्ष ने वैरिणी असिक्नी मे अपरिमित ओज से एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये थे ॥१३४॥ महान् तेजवाले उनके प्रजाओं के बढ़ाने की इच्छा वाले उनको देखकर ब्रह्मा के पुत्र देवर्षि प्रिय सम्वाद वाले नारद ने उनके नाश के लिये ही वचन बोला ॥१३५॥ जो वह कश्यप का कृत्रिम विप्र है यह कहा जाता है। ब्रह्मर्षि उस कर्म से दक्ष के शाप के भय से डरगया ॥१३६॥ इसके अनन्तर जो कश्यप सुतका परमेष्ठी उत्पन्न हुआ था दक्ष के शाप के भय से फिर यहाँ कश्यप का मानस पुत्र हुआ ॥१३७॥ इससे वह कश्यप का द्वितीय मानस हुआ

था। वह परमेष्ठी का नारद पूर्व में समुत्पन्न हुआ ॥१३८॥ जिससे दक्ष के वे पुत्र हर्यश्व इस नगर से प्रसिद्ध हुए थे। निन्दा के लिये नाश कर दिये गये थे और सभी विनष्ट होगये इसमें संशय नहीं है ॥१३६॥ उस समय प्रभु दक्ष क्रुद्ध होकर उसके नाश के लिये उद्यत होगये थे। तब परमेष्ठी के द्वारा ब्रह्मर्षियों को आगे करके उससे याचना की गई थी ॥१४०॥

ततोऽभिसन्धितं चक्रे दक्षस्तु परमेष्ठिना ।
कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रो भवत्विति ॥१४१
ततो दक्ष सुतां प्रादात् प्रियां वै परमेष्ठिने ।
तस्मात् स नारदो जज्ञे भूय शान्तो भयादृषि ॥१४२
तदुपश्रुत्य विप्रास्ते जातकौतूहलाः पुन ।
अपृच्छन् वदतां श्रेष्ठं सूतं तत्त्वार्थदर्शिनम् ॥१४३
कथं विनाशिता पुत्रा नारदेन महात्मना ।
प्रजापतिसुतास्तेन वै प्रजा प्राचेतसात्मजा ॥१४४
स तथ्यं वचनं श्रुत्वा जिज्ञासासम्भवं शुभम् ।
प्रोवाच मधुरं वाक्यं तेषां सर्वगुणान्वितम् ॥१४५
दक्षपुत्राश्च हर्यश्वा विवर्द्धयिषव प्रजा ।
समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह ॥१४६
बालिशा बत यूयं वै न प्रजानीथ भूतलम् ।
अन्तमूर्द्धमधश्चैव कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजा ॥१४७
किं प्रमाणन्तु मेदिन्या स्रष्टव्यानि तथैव च ।
अविज्ञायेह स्रष्टव्यमन्यथा किं नु स्रक्ष्यथ ।
अल्पं वापि बहूर्वापि तत्र दोषस्तु दृश्यते ॥१४८

इसके पश्चात् दक्ष ने परमेष्ठी के साथ अभिसन्धित किया कन्या में नारद मेरे लिये तुम्हारा पुत्र होजावे ॥१४१॥ इसके अनन्तर दक्ष ने प्यारी पुत्री को परमेष्ठी के लिये दे दिया उससे वह नारद ऋषि फिर भय से शान्त उत्पन्न हुए ॥१४२॥ उन विप्रों ने यह सुनकर कौतूहल वाले होते हुए बोलने वालों में श्रेष्ठ और तत्वार्थ को देखने वाले सूतजी से पूछा ॥१४३॥ ऋषियों ने कहा—महान्

आत्मा वाले नारद ने पुत्रों को कैसे विनाशित किया था वे तो सब प्रजापति के पुत्र और प्राचेतस के आत्मज थे ॥१४४॥ उनने शुभ और जानने की इच्छा से होने वाले ऋषियों के तथ्य वचनों को सुनकर उनको मधुर समस्त गुणों से अन्वित वाक्य बोले ॥१४५॥ प्रजा के विवर्द्धन करने की इच्छा वाले हर्यश्व नाम वाले दक्ष के पुत्र जो महान् वीर्य वाले वहाँ आये और नारद ने उनसे कहा—॥१४६॥ तुम सब महामूर्ख हो अन्त—ऊर्द्ध और अधस्तल अर्थात् नीचे का भाग इस भूतल को नहीं जानते हो फिर तुम कैसे प्रजा का सृजन करोगे ? ॥१४७॥ इस मेदिनी का क्या प्रमाण है तथा क्या प्रमाण वाले सृजन करने के योग्य हैं। यहाँ पर यह न जानकर अन्यथा सृजन करना चाहिये, क्या तुम सृजन करोगे ? अल्प है या बहुत है, वहाँ पर दोष स्पष्ट दिखलाई देता है ॥१४८॥

ते तु तद्वचनं श्रु त्वा प्रयाताः सर्वतोदिशम् ।
वायुन्तु समनुप्राप्य गतास्ते वै पराभवम् ॥१४६
अद्यापि न निवर्त्तन्ते भ्रमन्तो वायुमिश्रिता ।
एव वायुपथ प्राप्य भ्रमन्ते ते महपय ॥१५०
हर्येपु पुत्रेपु नष्टेपु दक्ष प्राचेतस पुन ।
वैरिण्यामेव पुत्राणा सहस्रमसृजत् प्रभु ॥१५१
प्रजा विवर्द्धयिपव शवलाश्वा पुनस्तु तें ।
पूर्वमुक्त वचस्तत्र श्राविता नारदेन ह ॥१५२
तच्छ्रु त्वा वचन सर्वे कुमारास्ते महौजस ।
अन्योन्यमूचुस्ते सर्वे सम्यगाह महानृपि ।
भ्रातृणा पदवी चैव गन्तव्या नात्र सशय ॥१५३
ज्ञात्वा प्रमाण पृथ्व्याश्च सुख स्रक्ष्यामहे प्रजा ।
तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाता सर्वतोदिशम् ।
अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगा ॥१५४
तत प्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे रत ।
प्रयातो नश्यति तथा तन्न कार्यं विजानता ॥१५५

उन लोगों ने नारद का यह वचन सुना और उसे सुनकर वे सब दिशाओं में चले गये। वायु को समनुप्राप्त कर वे पराभव को प्राप्त हुए ।।१४६। वे वायु में मिश्रित होते हुए आज तक भी भ्रमण करते हुए ही हैं और नहीं लौट पा रहे हैं। इस प्रकार से वायु के पथ को प्राप्त होकर वे महर्षिगण भ्रमण किया करते हैं ।।१५०।। अपने पुत्रों के नष्ट हो जाने पर प्राचेतस दक्ष ने फिर वैरिणी पत्नी में ही उस प्रभु ने एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये थे ।।१५१।। प्रजा के विवर्द्धन करने की इच्छा वाले वे शबलाश्व फिर नारद के द्वारा वहाँ पर वह पूर्व में कहा हुआ वचन सुनाये गये थे ।।१५२।। महान् ओज वाले वे सब कुमारों ने उस वचन को सुनकर आपस में एक दूसरे से बोले महर्षि ने ठीक ही कहा है। भाइयों की पदवी अर्थात् मार्ग को जानना चाहिए, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।१५३।। पृथ्वी का प्रमाण जानकर प्रजा का सुख पूर्वक सृजन करेंगे। वे सब भी उसी मार्ग से सम्पूर्ण दिशाओं की ओर चले गये थे। समुद्रों में गई हुई नदियों की भाँति वे भी अभी तक नहीं लौट रहे हैं ।।१५४।। तभी से लेकर भाई-भाई के अन्वेषण करने में रत होता हुआ प्रमाण करता था और वहाँ नष्ट हो जाता है क्योंकि उस प्रकार से कार्य की जानकारी नहीं रहती थी ।।१५५।।

नष्टेषु शबलाश्वेषु दक्षः क्रुद्धोऽभवद्विभुः ।
नारदं नाशमेहीति गर्भवासं वसेति च ।।१५६
तथा तेष्वपि नष्टेषु महात्मसु पुरा किल ।
षष्टिकन्याऽसृजद्दक्षो वैरिण्यामेव विश्रुता ।।१५७
तास्तदा प्रतिजग्राह पत्न्यर्थे कश्यपः प्रभुः ।
धर्मः सोमस्तु भगवांस्तथैवान्ये महर्षयः ।।१५८
इमां विसृष्टिं दक्षस्य कृत्स्नां यो वेद तत्वतः ।
आयुष्मान् कीर्तिमान् धन्यः प्रजावांश्च भवत्युत ।।१५९

सबलाश्व पुत्रों के नष्ट होजाने पर विभु दक्ष बहुत ही अधिक क्रोधित हुआ था और 'नारद नाश को प्राप्त होजा तथा गर्भ में आवास अर्थात् गर्भ में निवास प्राप्त कर' ऐसा शाप दे दिया था ।।१५६।। पहिले समय में उस प्रकार

से उन महान् आत्मा वालों के नष्ट हो जाने पर दक्ष ने वैरिणी पत्नी में ही प्रसिद्ध साठ कन्याओं का सृजन किया था ॥१५७॥ उन समस्त कन्याओं ने पत्नी के रूप में प्राप्त होने के लिये प्रभु कश्यप को स्वीकार किया था। भगवान् धर्म-सोम और उसी प्रकार से अन्य महर्षिगण थे ॥१५८॥ जो कोई पुरुष दक्ष प्रजापति की इस विशेष रूप वाली सृष्टि को सम्पूर्ण रूप से तत्त्वपूर्वक जानता है वह परमायु वाला—कीर्तिवाला और प्रजावाला धन्य होता है ॥१५९॥

प्रकरण ४८—ऋषि वंशानु कीर्तन

एवं प्रजासु सृष्टासु कश्यपेन महात्मना।
प्रतिष्ठितासु सर्वासु स्थावरासु चरासु च ॥१
अभिषिच्याधिपत्येषु तेषां मुख्यं प्रजापतिं।
ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥२
द्विजातीनां वीरुधाञ्च नक्षत्राणां ग्रहैः सह।
यज्ञानां तपसाञ्चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥३
बृहस्पतिं तु विश्वेषां ददावङ्गिरसां पतिम्।
भृगूणामधिपत्ये च काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥४
आदित्यानां पुनर्विष्णुं वसूनामथ पावकम्।
प्रजापतीनां दक्षञ्च मरुतामथ वासवम् ॥५
दैत्यानामथ राजानं प्रह्लादं दितिनन्दनम्।
नारायणं तु साध्यानां रुद्राणां वृषभध्वजम् ॥६
विप्रचित्तिञ्च राजानं दानवानामथादिशत्।
अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं पतिम्।
यक्षाणां राक्षसानाञ्च पार्थिवानां धनस्य च ॥७

श्री सूतजी ने कहा—महान् आत्मा वाले कश्यप के द्वारा इस प्रकार से प्रजाओं का सृजन करने पर और समस्त स्थावर तथा जङ्गम प्रजाओं के प्रतिष्ठित किये जाने पर उनके आधिपत्य के स्थान पर उनमें से मुख्य को प्रजापति

का अभिषेक करके इसके पश्चात् क्रम से राज्यों का आदेश करने का उपक्रम किया था ॥१-२॥ द्विजातियों के वीरुधों के ग्रहों और नक्षत्रों के साथ यज्ञों का और तपों का राज्य में सोम को अभिषिक्त किया था अर्थात् उक्त सबका अधिपति चन्द्र को बनाया था ॥३॥ अङ्गिरस विश्वेदों का पति बृहस्पति और भृगुओं का अधिप काव्य को राज्य में अभिषिक्त किया था ॥४॥ आदित्यों का विष्णु को—वसुओं के पावक को—प्रजापतियों का दक्ष को और मरुतों का इन्द्र को राज्य में अधिप अभिषिक्त किया था ॥५॥ इसके पश्चात् दैत्यों का राजा दितिनन्दन प्रह्लाद को—साध्यों का अधिप नारायण को—रुद्रों का अधिप वृषभध्वज को बनाया था ॥६॥ दानवों का अधिप राजा विप्रचित्ति को आदिष्ट किया था—जलों का स्वामी वरुण को और सब राजाओं के राज्य में वैश्रवण (कुबेर) को पति बनाया था यक्षों और राक्षसों का—पार्थिवों का और धन का भी अधिप भी कुबेर को ही अभिषिक्त किया था ॥७॥

वैवस्वतं पितॄणाञ्च यमं राज्येऽभ्यषेचयत् ।
सर्वभूतपिशाचानां गिरिशं शूलपाणिनम् ॥८
शैलानां हिमवन्तञ्च नदीनामथ सागरम् ।
गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं तदा ॥९
उच्चैः श्रवसमश्वानां राजानञ्चाभ्यषेचयत् ।
मृगाणामथ शार्दूलं गोवृषञ्च चतुष्पदाम् ॥१०
पक्षिणामथ सर्वेषां गरुडं पततां वरम् ।
गन्धानां मारुतञ्चैव भूतानामशरीरिणाम् ॥११
शब्दाकाशबलानाञ्च वायुं बलवतां वरम् ।
सर्वेषां दंष्ट्रिणां शेषं नागानामथ वासुकिम् ॥१२
सरीसृपाणां सर्पाणां नागानाञ्चैव तक्षकम् ।
सागराणां नदीनाञ्च मेघानां वर्षितस्य च ।
आदित्यानामन्यतमं पर्जन्यमभिषिक्तवान् ॥१३
सर्वाप्सरोगणानाञ्च कामदेवं तथैव च ।
ऋतूनामथ मासानामार्त्तवानां तथैव च ॥१४

पक्षाणाञ्च विपक्षाणां मुहूर्तानाञ्च पर्वणाम् ।
कलाकाष्ठप्रमाणानां गते रयनयोस्तथा ।
गणितस्याथ योगस्य चक्रे संवत्सरं प्रभुम् ॥१५

पितृगण का स्वामी वैवस्वत यम का राज्य म अधिप अभिषिक्त किया था। समस्त भूतगणों और पिशाचों का स्वामी शूल पाणि गिरिश को बनाया ॥८॥ शैलो का स्वामी हिमाचल को—नदियों का पति सागर को—गन्धर्वों का अधिपति उस समय मे चित्ररथ को बनाया था ॥९॥ अश्वों का राजा उच्चैःश्रवा को राजा बनाकर अभिषिक्त किया था। समस्त मृग अर्थात् पशुओं का राजा शार्दूल को और चतुष्पदों का अधिप गोवृष को बनाया था ॥१०॥ समस्त पक्षियों का स्वामी पक्षियों मे परमश्रेष्ठ गरुड को बनाया। गन्धों के स्वामी को और बिना शरीर वाले प्राणी शब्द—आकाश और बल इन सबका स्वामी बलवानो म श्रेष्ठ वायु का तथा सम्पूर्ण दंष्ट्राधारी जीवों का अधिप शेष को और नागो का स्वामी वासुकि को अभिषिक्त किया था ॥११-१२॥ सरीसृप-नाग और सर्पों का राजा तक्षक को बनाया था। सागरो का—नदियों का—मेघो का—वर्षिन का आदित्यो का अ यतम पर्जन्य को स्वामी अभिषिक्त किया था ॥१३॥ समस्त अ सराओ के समुदाय का राजा कामदेव को अभिषिक्त किया था। ऋतुओ का—मासो का—आर्तवो का—पक्षो का—विपक्षो का—मुहूर्तों का—पर्वों का—कला एव काष्ठा प्रमाणो का—गति का तथा दोनो अयनो का—गणित का और योग का स्वामी सम्वत्सर को बनाया था ॥१३ १४ १५॥

प्रजापतिर्वै रजस पूर्वस्यान्दिशि विश्रुतम् ।
पुत्र नाम्ना सुधामान राजान सोऽभ्यषेचयत् ॥१६
पश्चिमायां दिशि तथा रजस पुत्रमच्युतम् ।
केतुमन्त महात्मान राजान सोऽभ्यषेचयत् ॥१७
मनुष्याणामधिपति चक्रे चैव सुत मनुम् ।
तेनेय पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।
यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण परिपाल्यते ॥१८

स्वायम्भुवेऽन्तरेपूर्वं ब्रह्मणा तेऽभिषेचिताः ।
नृपा ह्य तेऽभिषिच्यन्ते मनवो ये भवन्ति वै ॥१६
मन्वन्तरेष्वतीतेषु गता ह्य तेषु पार्थिवा ।
एवमन्येऽभिषिच्यन्ते प्राप्ते मन्वन्तरे पुन ।
अतीतानागता सर्वे स्मृता मन्वन्तरेश्वरा ॥२०
राजसूयेऽभिषिक्तश्च पृथुरेभिर्नरोत्तमैः ।
वेददृष्टेन विधिना कृतो राजा प्रतापवान् ॥२१
एतानुत्पाद्य पुत्रांस्तु प्रजासन्तानकारणात् ।

रजस प्रजापति पूर्व दिशा मे बहुत ही प्रसिद्ध सुधामा नाम वाले पुत्रको उसने राजा अभिषिक्त किया था ।।१६॥ पश्चिम दिशा में रजस के पुत्र अच्युत की महान् आत्मा वाले केतुमान् को उसने राजा अभिषिक्त किया था ॥१७॥ और समस्त मनुष्यो का स्वामी मनु पुत्र को बनाया । उसके द्वारा यह समस्त सात द्वीपो वाली भूमि और पत्तनो(नगर)के सहित प्रदेशके अनुसार आजतक थी धर्म के साथ परिपालित की जाती है ॥१८॥ स्वायम्भुव अन्तर ॥ पहिले ये सब ब्रह्मा ने अभिषिक्त किये थे । जो मनु होते हैं ये नृप अभिषिञ्चित किये जाते हैं ॥१६॥ इन मन्वन्तरो के अतीत होजाने पर पार्थिव चले गये थे । फिर अन्य मन्वन्तर प्राप्त होने पर अन्य इसी प्रकार से अभिषिक्त किये जाते हैं । अतीत तथा अनागत समस्त मन्वन्तरेश्वर कह गये हैं ॥२०॥ इन श्रेष्ठ मानवो के द्वारा राजसूय मे पृथु अभिषिक्त किया गया था जोकि वेदोक्त विधि से प्रतापवान् राजा बनाया गया है ॥२१॥

पुनरेव महाभाग प्रजाना पतिरीश्वर ॥२२
कश्यपो गोत्रकामस्तु चचार परम तप ।
पुत्रो गोत्रकरो मह्य भवेतामित्यचिन्तयत् ॥२३
तस्य प्रध्यायमानस्य कश्यपस्य महात्मन ।
ब्रह्मणोऽशौ सुतौ पश्चात् प्रादुर्भूतौ महौजसौ ॥२४
वत्सारश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ ।
वत्सारान्निध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्च स महायशा. ॥२५

रैभ्यस्य रैभ्या विज्ञेया निध्रुवस्य निवोधत ।
च्यवनस्य सुकन्यायां सुमेधाः समपद्यत ॥२६
निध्रुवस्य तु या पत्नी माता वै कुण्डपायिनाम् ।
असितस्यैवपर्णाया ब्रह्मिष्ठ समपद्यत ॥२७
शाण्डिल्यानां वचः श्रुत्वा देवलः सुमहायशा ।
निध्रुवा शाण्डिल्या रैभ्यास्त्रय पश्चात्तु कश्यपा ॥२८
वरप्रभृतयो देवा देवलस्य प्रजास्त्विमा ॥२६

प्रजा की वृद्धि के कारण से इन पुत्रों को उत्पन्न कराकर पुन प्रजाओं के पति महान् भाग वाले–ईश्वर कश्यप कोई गोत्र की कामना रखते थे, परम तपस्या को धारण किया था और मनम यह सकल्प सोचा था कि दो पुत्र मेरे गोत्र के चलाने वाले उत्पन्न होजावें ॥२२॥२३॥ प्रवृष्ट रुप से ध्यान करने वाले महात्मा कश्यप के पीछे ब्रह्मा क ध्यान स्वरूप दो पुत्र महान् ओज वाले प्रादुर्भूत हुए ॥२४॥ वत्सार और असित य दोनों ही ब्रह्मवादी थे। वत्सार से निध्रुव उत्पन्न हुआ और महान् यश वाला वह रैभ्य हुआ ॥२५॥ रैभ्य के जो हुए व रैभ्य कहलाये और निध्रुव की अब जानकारी करो। च्यवन की सुकन्या म सुमेधा समुत्पन्न हुए ॥२६॥ निध्रुव की जो पत्नी थी वह कुण्डपायियों की माता थी। असित की एकपर्णा म ब्रह्मिष्ठ उत्पन्न हुआ ॥२७॥ शाण्डिल्यों के वचन को सुनकर सुन्दर एव महान् यशवाले देवल ने निध्रुव–शाण्डिल्य और रैभ्य ये तीन और पीछे कश्यप और वर प्रभृति देव ये सब देवल की प्रजा थी ॥२८॥२६॥

मानसस्य वशिष्ठ्यत्तस्तस्य पुत्रो दम किल ।
मानसस्तस्य दायादस्तृणविन्दुरिति श्रुत ॥३०
त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये सम्बभूव ह ।
तस्य कन्या त्विडविडा रूपेणाप्रतिमाऽभवत् ।
पुलस्त्याय स राजर्षिस्ता कन्या प्रत्यपादयत् ॥३१
ऋषिरिडविडायान्तु विश्रवाः समपद्यत ।
तस्य पत्न्यश्चतस्रस्तु पौलस्त्यकुलवर्द्धना ॥३२

बृहस्पतेर्बृहत्कीर्तिर्देवाचार्यस्य कीर्त्तितः ।
कन्या तस्योपयेमे स नाम्ना वै देववर्णिनीम् ॥३३
पुष्पोत्कटाश्च वाकाश्च सुते माल्यवतः स्थितौ ।
कैकसी मालिनः कन्या तासान्तु शृणुत प्रजा ॥३४
ज्येष्ठं वैश्रवणं तस्य सुषुवे देववर्णिनी ।
दिव्येन विधिना युक्तमार्षेणैव श्रुतेन च ।
राक्षसेन च रूपेण आसुरेण बलेन च ॥३५
त्रिपाद सुमहाकाय स्थूलशीर्षं महाहनुम् ।
अष्टदंष्ट्रं हरिच्छ्मश्रुं शङ्कुकर्णं विलोहितम् ॥३६
ह्रस्वबाहुं प्रबाहुञ्च पिङ्गलं सुविभीषणम् ।
वैवर्तज्ञानसम्पन्नं सम्बुद्धं ज्ञानसम्पदा ॥३७
एवंविधं सुतं दृष्ट्वा विश्वरूपधरं तथा ।
पिता दृष्ट्वाब्रवीत्तत्र कुबेरोऽयमिति स्वयम् ॥३८

चरिष्ण मरण मानस उसके दस पुत्र हुआ । उसका दामाद मानस था जोकि तृणबिन्दु इस नामसे विश्रुत हुआ था ॥३०॥ तृतीय त्रेता युग के मुख में राजा हुआ था । उसकी इडविडा थी जोकि रूप में अप्रतिमा थी । उस राजर्षि ने उस परम सुन्दरी कन्या को पुलस्त्य के लिए देदी थी ॥३१॥ ऋषि पुलस्त्य ने इडविडा में विश्रवा को जन्म दिया । पौलस्त्य कुल के बढाने वाली उसकी चार पत्नियाँ थी ॥३२॥ देवों के आचार्य बृहस्पति का बृहत्कीर्ति कहा गया है । नाम से देववर्णिनी उसकी कन्या के साथ उसने विवाह किया था ॥३३॥ माल्यवान् की पुष्पोत्कटा और वाका दो सुताएं थीं—मालीकी कैकसी कन्या थी, अब उनकी प्रजाओं का श्रवण करो ॥३४॥ देव वर्णिनी ने उसके सबसे बड़े वैश्रवण को उत्पन्न किया जोकि दिव्य विधि और आर्षश्रुत से पूर्णतया सम्पन्न था । साथ ही उसमें राक्षस का रूप था और असुर बल भी था ॥३५॥ तीन पैरों वाले—बहुत बडे शरीर वाले—स्थूल शीर्ष से युक्त—महान् हनुसे सम्पन्न—आठ दाढ़ा वाले—हरी रंग की श्मश्रु से युक्त—शङ्कुकर्ण—विलोहित—छोटी भुजाओं वाले—प्रबाहु—पिङ्गल—सुविभीषण—वैवर्त ज्ञान से युक्त तथा ज्ञान की सम्पत्ति से

प्रमुद इस प्रकार के विरूपता को धारण करने वाले पुत्र को देखकर पिता ने वहाँ पर देखते हुए कहा यह तो स्वयं कुवेर है ॥३६॥३७॥३८॥

कुत्सायां विश्रुतिशब्दोऽयं शरीरं वेरमुच्यते ।
कुवेरः कुशरीरत्वान्नाम्ना तेन च सोऽङ्कितः ॥३९
यस्माद्विश्रवसोऽपत्यं सादृश्याद्विश्रवा इव ।
तस्माद्वैश्रवणो नाम नाम्ना लोके भविष्यति ॥४०
कैकस्यां कुरुतेऽजनयद्विश्रुत नन्दनम् ।
रावणं कुम्भकर्णं च कन्यां शूर्पणखां तथा ।
विभीषणं चतुर्थं च तांश्चैव जनयत् सुतान् ॥४१
शङ्कुकर्णो दशग्रीवः पिङ्गलो रक्तमूर्द्धज ।
चतुष्पाद्विंशतिभुजो महाकायो महाबल ॥४२
जात्याञ्जननिभो दंष्ट्री लोहितग्रीव एव च ।
राक्षसेनो जययुक्तो रूपेण च बलेन च ॥४३
गम्यबुद्धिर्हृष्टतनू राक्षसेन्द्र रावण ।
निसर्गाद्दारुणः क्रूरो रावणाद्रावणस्तु सः ॥४४
हिरण्यकशिपुस्त्वासीत् राजा पूर्वजन्मनि ।
चतुर्युगानि राजा च वर्षाणि स राक्षस ॥४५

क्रूर था, रावण करने से ही वह रावण कहलाया है ॥४२॥४३॥४४॥ तेरह वह राक्षस हैं ॥४५॥

ता पञ्चकोट्यो वर्षाणामाख्याता सङ्ख्यया द्विजैः ।
नियुतान्येकषष्टिश्च सङ्ख्याविद्भिरदाहृता ॥४६
षष्टिशतसहस्राणि वर्षाणान्तु स रावणः ।
देवतानां ऋषीणाञ्च घोरं कृत्वा प्रजागरम् ॥४७
त्रेतायुगे चतुर्विंशे रावणस्तपसः क्षयात् ।
रामं दाशरथिं प्राप्य सगणः क्षयमीयिवान् ॥४८
महोदयः प्रहस्तश्च महापार्श्वखरस्तथा ।
पुष्पोत्कटाया पुत्रास्ते कन्या कुम्भीनसी तथा ॥४९
त्रिशिरा दूषणश्चैव विद्युज्जिह्वश्च राक्षसः ।
कन्या ह्यसलिका चैव वाकाया प्रसवाः स्मृताः ॥५०
इत्येते क्रूरकर्माणः पौलस्त्याः राक्षसा दश ।
दारुणाभिजनाः सर्वे देवैरपि दुरासदाः ॥५१
सर्वे लब्धवराश्चैव पुत्रपौत्रसमन्विताः ।
यक्षाणाञ्चैव सर्वेषां पौलस्त्या ये च राक्षसाः ॥५२

वे वर्षों की पाँच करोड़ द्विजो के द्वारा संख्या से कही गई हैं। संख्या के ज्ञाताओ के द्वारा इक्सठ नियुत कही गई है ॥४६॥ साठसौ हजार वर्ष तक उस रावण ने देवताओं और ऋषियों का घोर प्रजागर करके चौबीसवें त्रेता-युग में तपस्या का क्षय होने से दशरथ के पुत्र श्रीराम का प्राप्त किया और वह रावण गणों के साथ क्षय को प्राप्त हुआ था ॥४७-४८॥ पुष्पोत्कटा के महोदय प्रहस्त—महापार्श्वखर पुत्र थे तथा कुम्भीनसी नाम वाली एक कन्या हुई थी ।४९। त्रिशिरा—दूषण—विद्युज्जिह्व राक्षस तथा वाका के असलिका नाम वाली कन्या ये सब प्रसव कहे गये है ॥५०॥ ये दश पौलस्त्य राक्षस क्रूर कर्म करने वाले थे। ये सब दारुण अभिजन वाले और देवो के द्वारा भी दुरासद थे ॥५१॥ ये सभी वरदान प्राप्त करने वाले और पुत्रो तथा पौत्रो से युक्त थे अर्थात् पुत्र पौत्र वाले थे। और समस्त यक्षो के ये पौलस्त्य राक्षस थे ॥५२॥

आगस्त्यवैश्वामित्राणां क्रूराणां ब्रह्मरक्षसाम् ।
वेदाध्ययनशीलानां तपोव्रतनिषेविणाम् ॥५३
तेषामैडविडो राजा पौलस्त्य सब्यपिङ्गल ।
इतरे वै यज्ञमुषास्तेन रक्षोगण स्त्रय ॥५४
यातु धाना ब्रह्मधाना वार्ताश्चैव दिवाचरा ।
निशाचरगणास्तेषां चत्वार पविभि स्मृता ॥५५
पौलस्त्या नैर्ऋतास्चैव आगस्त्या कौशिकास्तथा ।
इत्येताः सप्त तेषां वै जातयो राक्षसा स्मृता ॥५६
तेषां रूप प्रवक्ष्यामि स्वभावेन व्यवस्थितम् ।
वृत्ताक्षा पिङ्गलाक्षश्चैव महाकाया महोदरा ॥५७
अष्टदंष्ट्रा शङ्कुकर्णा ऊर्द्ध्वरोमाण एव च ।
आकर्णदारितास्याश्च मुञ्जधूमार्द्धमूर्द्धजा ॥५८
स्थूलशीर्षा सिताभाश्च ह्रस्वराश्च प्रवाहुका ।
ताम्रास्या लम्बजिह्वोष्ठा लम्बभ्रू स्थूलनासिका ॥५९
नीलाङ्गा लोहितग्रीवा गम्भीराक्षा विभीषणा ।
महाघोरस्वराश्चैव विकटा घटपिण्डिका ॥६०
स्थूलाश्च तुङ्गनासाश्च शिलासंहनना दृढा ।
दारुणाभिजना क्रूरा प्रायश विलष्टकर्मिण ॥६१
सकुण्डलाङ्गदापीडा मुकुटोष्णीषधारिण ।
विचित्र वस्त्रासग्माल्याश्चित्रस्रगनुलेपना ॥६२
पञ्चाशा पिशिताशाश्च पुरुषादाश्च ते स्मृता ।
इत्येतद् समासर्म्य राक्षसानां मुप स्मृतम् ।
न ममम्भवन युद्ध यश मायाकृत [illegible] मन् ॥६३

गण कवियों के द्वारा कहे गये हैं ॥५५॥ पौलस्त्य-नैर्ऋत-आगस्त्य-कौशिक ये उनकी सात जातियाँ हैं जो राक्षस कहे गये हैं ॥५६॥ अब उनका स्वभाव से व्यवस्थित रूप बतलाऊँगा। गोल आँखों वाले-पिङ्गल वर्ण वाले-महान् काय से युक्त-महान् उदर वाले-गाढ़ दाढ़ा वाले-शंकु के समान कानों वाले-ऊपर को उठे हुए रोमों से युक्त-कानों तक फटे हुए मुखों वाले-मूँज तथा धूँआ जैसे ऊर्ध्व केशों वाले-स्थूल माथे वाले-सित आभा वाले-छोटे कद वाले-प्रवाहुक-तामस दश मुखों से युक्त-लम्बी जीभ और लम्बे होठों वाले-लम्बी और मोटी नाक वाले-नीले भ्रुओं वाले-लोहित वर्ण की ग्रीवा (गर्दन) वाले-गहरे नेत्रों से युक्त-विशेष रूप से डरावने-महान् घोर ध्वनि वाले-विकट-वृद्ध पीढ़ी वाले-मोटे-तुङ्ग नासिका वाले-शिला के समान संहनन वाले-मजबूत दारुण अभिजन वाले-क्रूर और बहुधा क्लिष्ट कर्म करने वाले तथा कुण्डल-अङ्गद और आपीड धारण करने वाले एवं मुकुट और उष्णीष को धारण करने वाले विचित्र वस्त्र एवं आभरण वाले-चित्र माला और अनुलेपन वाले-अन्न भक्षण करने वाले तथा माँस खाने वाले एवं पुरुषों का भक्षण करने वाले ये सब बताये गये हैं। इस प्रकार का राक्षसों के रूप का साधर्म्य बुधजनों के द्वारा कहा गया है। वह समस्त बल युद्ध नहीं है किन्तु वह माया कृत भी होता है ॥५७-५८-५९-६०-६१-६२-६३॥

पुलहस्य मृगा पुत्रा सर्व व्यालाश्च दंष्ट्रिण ।
भूताः पिशाचा सर्पाश्च शूकरा हस्तिनस्तथा ॥६४
वानराः किन्नराश्चैव मयकिम्पुरुषास्तथा ।
येऽन्ये चैव परिक्रान्ता मायानाधवशानुगा ॥६५
अनपत्यः क्रतुस्तस्मिन् स्मृतो वैवस्वतेऽन्तरे ।
न तस्य पुत्र पौत्रा वा तेज सशिष्य वा स्थित ॥६६
अत्रेर्वंश प्रवक्ष्यामि तृतीयस्य प्रजापते ।
तस्य पत्न्यश्च सुन्दर्यो दशैवासन्पतिव्रता ॥६७
भद्राश्वस्य घृताच्यां वै दशाप्सरसि सूनव ।
भद्रा शूद्रा च मद्रा च नन्दा मलदा तथा ॥६८

वेला खला च सप्तैता या च गोचपला स्मृता ।
तथा मानरसा चैव रत्नकूटा च ता दश ॥६९
आत्रेयवंशकृत्तासां भर्ता नाम्ना प्रभाकरः ।
भद्रायां जनयामास सोमं पुत्रं यशस्विनम् ॥७०
स्वर्भानुना हते सूर्ये पतमानो दिवो महीम् ।

पुलह के पुत्र समस्त मृग व्याल–दाढ़ों वाले–भूत पिशाच–सर्प–भ्रमर–हाथी–वानर–किन्नर–यक्ष–किम्पुरुष और जो भी माया तथा क्रोध के वशानुग होते हैं तथा कहे गये हैं वे सब पुलह के पुत्र हुए थे ॥६४-६५॥ उस वैवस्वत मन्वन्तर में क्रतु एक ऐसा था जो अपत्य हीन हुआ था । उसके न तो कोई पुत्र था और न कोई पौत्र ही था । वह तेज का संक्षेप करके स्थित रहता था ।६६। अब तृतीय प्रजापति अत्रि के वंश को बतलाऊँगा । उसकी दश, परम पतिव्रता सुन्दरी पत्नियाँ थीं ॥६७॥ भद्राश्व से घृताची नाम वाली अप्सरा में दश सन्तान हुए । उनके नाम—भद्रा–शूद्रा–मद्रा–शालदा–मलदा–वेला और खला ये सात और गो चपला तथा मानरसा और रत्न कूटा ये दश हैं ॥६८-६९॥ आत्रेय वंश का करने वाला उनका भर्ता नाम से प्रभाकर था जिसने भद्रा में यश वाले सोम पुत्र को जन्म दिया था ॥७०॥

तमोऽभिभूते लोकेऽस्मिन् प्रभा येन प्रवर्त्तिता ॥७१
स्वस्ति तेऽस्त्विति चोक्त स पतन्निह दिवाकरः ।
ब्रह्मर्षेर्वचनात्तस्य न पपात दिवो महीम् ॥७२
अत्रिश्रेष्ठानि गोत्राणि यश्चकार महातपाः ।
यज्ञेष्वत्रिधनञ्चैव सुरैर्यश्च प्रवर्त्तितः ॥७३
स तास्वजनयत् पुत्रानात्मतुल्याननामकान् ।
दश तास्वेव महता तपसा भावितप्रभा ॥७४
स्वस्त्यात्रेया इति ख्याता ऋषयो वेदपारगाः ।
तेषां विख्यातयशसौ ब्रह्मिष्ठौ सुमहौजसौ ॥७५
दत्तात्रेयस्तस्य ज्येष्ठो दुर्वासास्तस्य चानुजः ।

यवीयसी सुता तस्याभवला ब्रह्मवादिनी ।
अत्राप्युदाहरन्तीम श्लोकं पौराणिका पुरा ॥७६
अत्रे पुत्रं महात्मानं शान्तात्मानमकल्मषम् ।
दत्तात्रेय तनु विष्णो पुराणज्ञा प्रचक्षते ॥७७

स्वर्भानु के द्वारा सूर्य के हत होने पर दिव मे मही पर पतमान हुआ था। इस लोक के उस समय अन्धकार मे एकदम अभिभूत होने पर जिसने प्रभा को प्रवर्तित किया था ॥७१॥ यहाँ गिरता हुआ वह दिवाकर उस समय तेरा कल्याण हो—इस प्रकार से कहा गया था। उस ब्रह्मर्षि के वचन से दिव से मही पर नही गिरा ॥७२॥ जिस महान् तपस्वी ने अतिश्रेष्ठ गोत्रो को किया था और जो अविघन यज्ञा मे देवो के द्वारा प्रवर्तित किया गया था। उसने महान् तप मे भावित प्रभा वाले उनमे ही भद्रानन्द अपने समान दश पुत्रो को उत्पन्न किया था ॥७३-७४॥ स्वस्त्यात्रेय इस नाम से विख्यात वेद के पारगामी ऋषिगण थे उनमे विख्यात बल वाले महान् ओज से युक्त परम ब्रह्मिष्ठ दो पुत्र थे ॥७५॥ उनमे दत्तात्रेय सबसे बडा था और उसका छोटा भाई दुर्वासा थे। उसकी छोटी अबला और ब्रह्मवाद वाली पुत्री थी। यहाँ पर भी पहिले पौराणिक लोग इस श्लोक को कहा करते है ॥७६॥ महान् आत्मा वाले कल्मष रहित और शान्तात्मा अत्रि के पुत्र को जिसका नाम दत्तात्रेय था, पुराणो के ज्ञाता लोग उन्हे विष्णु का तनु कहा करते हैं ॥७७॥

तस्य गोत्रान्त्रये जाताश्चत्वारः प्रथिता भुवि ।
श्यामाश्चमुद्गलाश्चैव बलारकगविष्ठिरा ।
एते नृणान्तु चत्वारः स्मृता पक्षा महौजसाम् ॥७८
कश्यपान्नारदश्चैव पर्वतोऽरुन्धती तथा ।
जज्ञिरे च त्वरुन्धत्यास्तान्निबोधत सत्तमा ॥७९
नारदस्तु वसिष्ठायारुन्धती प्रत्यपादयत् ।
ऊर्ध्वरेता महातेजा वृक्षशापात्तु नारद ॥८०
पुरा देवासुरे तस्मिन्संग्रामे तारकामये ।

श्वेता कृष्णाश्च गौराश्च श्यामा धूम्रा सपुलिका ।
उप्मपा दारुकाश्चैव नीलाश्चैव पराशरा ।
पराशरगणामष्टौ ते पक्षा प्रोक्ता महात्मनाम् ॥८७
अत ऊर्द्ध्वं निबोधध्वमिन्द्रप्रतिमसम्भवम् ।
वसिष्ठस्य कपिञ्जल्या घृताच्या समपद्यत ।
कुशीतिथ समाख्यात इन्द्रप्रतिम उच्यते ॥८८
पृथो सुताया सम्भूत पुत्रस्तस्या भवद्वसु ।
उपमन्यु सुतस्तस्य यस्येमे उपमन्यव ॥८९
मित्रावरुणयोश्चैव कुण्डिनो ये परिश्रुता ।
एकार्षेयास्तथैवान्ये वसिष्ठा नाम विश्रुता ।
एते पक्षा वसिष्ठाना स्मृता एकादशैव तु ॥९०
इत्येते ब्रह्मण पुत्रा मानसा ह्यष्ट विश्रुता ।
भ्रातर सुमहाभागा तेषा वशा प्रतिष्ठिता ॥९१
त्रीँल्लोकान्धारयन्तीमान्देवर्षिगणसकुलान् ।
तेषा पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रश ।
यैर्व्याप्ता पृथिवी सर्वा सूर्य्यस्येव गभस्तिभि ॥९२

य छ पुत्र के पौत्रो म उत्पन्न हुए हैं—भूरिश्रवा-प्रभु-शम्भु-कृष्ण और पञ्चम गौर और कीर्तिमती कन्या जो योगमाता हढ व्रत वाली ब्रह्मदत्त की माता थी और सात्व गुह की पत्नी थी ॥८५॥८६॥ श्वेत-कृष्ण-गौर-श्याम-धूम्र-सपुलिक-उप्मप-दारक-नील और पराशर-महान् आत्मा वाले पराशरो के ये आठ पक्ष कहे गये है ॥८७॥ इसके आगे इन्द्र प्रतिम सम्भव का ज्ञान लो । वसिष्ठ की कपिञ्जली घृताची म कुशीतिथ कहा गया उत्पन्न हुआ जोकि इन्द्र प्रतिम कहा जाता है ॥८८॥ पृथु की सुता से उसका वसु पुत्र हुआ। उसका पुत्र उपमन्यु था जिसके ये सब उपमन्यु गण हैं ॥८९॥ और मित्रावरुणो के कुण्डिन हुए जो एकार्षेय परिश्रुत हुए थ। उसी प्रकार से अन्य वसिष्ठ नाम से विश्रुत हुए थे। ये ग्यारह पक्ष वसिष्ठो के कहे गये हैं ॥९०॥ ये आठ पुत्र ब्रह्मा के मानस प्रसिद्ध हुए हैं। भाई सुन्दर एव महान् भाग वालेहैं और उनके वश

एक ही प्रजानि–इस नाम से प्रसिद्ध पुत्र हुआ था ॥४॥ प्रजानि के खनित्र नाम वाला वीर्यवान् पुत्र हुआ था। उसके श्रीमान् महान् यश वाला क्षुप–इस नाम का पुत्र हुआ ॥५॥ क्षुप का पुत्र विंश हुआ जिसकी कोई प्रतिमा नहीं थी। विंश का पुत्र कल्याण जिसका नाम विविंश था और वह बहुत धार्मिक था ॥६॥ विविंश का पुत्र धर्मात्मा और प्रताप वाला खनिनेत्र था। उसका पुत्र करन्धम हुआ जोकि त्रेता युग के प्रारम्भ में हुआ था ॥७॥

करन्धमसुतश्चापि आविक्षिन्नाम वीर्यवान् ।
आविक्षितो व्यतिक्रामत् पितरं गुणवत्तया ॥८
मरुत्तो नाम धर्मात्मा चक्रवर्तिसमो नृपः ।
संवर्त्तेन दिवं नीतः ससुहृत् सह बान्धवः ॥९
विवादोऽत्र महानासीत् संवर्त्तस्य बृहस्पतेः ।
ऋद्धिं दृष्ट्वा तु यज्ञस्य क्रुद्धस्तस्य बृहस्पतिः ॥१०
संवर्त्तेन हृते यज्ञे चुकोप सुभृशन्तदा ।
लोकानां स हि नाशाय दैवतैर्हि प्रसादितः ॥११
मरुत्तश्चक्रवर्त्ती स नरिष्यं तमवाप्तवान् ।
नरिष्यन्तस्य दायादो राजा दण्डधरो दमः ॥१२
तस्य पुत्रस्तु विक्रान्तो राजा सीमाष्ट्रवर्द्धनः ।
सुधृती तस्य पुत्रस्तु नरः सुधृतिनः सुतः ॥१३
केवलस्तस्य पुत्रस्तु बन्धुमान् केवलात्मजः ।
अथ बन्धुमतः पुत्रो धर्मात्मा वेगवान् नृपः ॥१४

करन्धम का पुत्र वीर्यवान् आविक्षित नाम वाला था। गुणों की सत्ता से आविक्षित ने अपने पिता को भी व्यतिक्रान्त कर दिया था ॥८॥ मरुत्त नाम वाला राजा चक्रवर्त्ती के समान हुआ था। मित्रों और बान्धवों के सहित वह संवर्त्त के द्वारा दिव लोक को ले जाया गया था ॥९॥ इसमें संवर्त्त बृहस्पति का महान् विवाद था। यज्ञ की ऋद्धि को देखकर बृहस्पति उससे बहुत क्रुद्ध हुआ था ॥१०॥ संवर्त्त के द्वारा यज्ञ के हृत हो जाने पर उस समय वह बहुत ही अधिक कुपित हुआ और वह लोकों के नाश करने के लिए उद्यत

होगया था। देवगण के द्वारा उसे प्रमन्न किया गया था ॥११॥ चक्रवर्ती जो मरुत्त था उसने नरिष्यन्त को प्राप्त किया था। नरिष्यन्त का दायाद् दण्डधरद्दम राजा था ॥१२॥ उसका पुत्र परम विक्रम वाला राष्ट्रवर्धन राजा था। उसका पुत्र सुधृती था और उसका पुत्र नर था ॥१३॥ उसका केवल पुत्र था और केवल का आत्मज बन्धुमान् था। इसके पश्चात् बन्धुमान् का पुत्र धर्मात्मा राजा वेगवान् हुआ ॥१४॥

बुधो वेगवत पुत्रस्तृणविन्दुर्बुधात्मज ।
त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये सबभूव ह ॥१५
कन्या तु तस्य द्रविडा माता विश्रवसो हि सा।
पुत्रश्चास्य विशालोऽभूद् राजा परमधार्मिक ॥१६
विशालस्य समुत्पन्ना विशाला नयनिर्मिता।
विशालस्य सुतो राजा हेमचन्द्रो महाबलः ॥१७
सुचन्द्र इति विख्यातो हेमचन्द्रादनन्तरम्।
सुचन्द्रतनयो राजा धूम्राश्व इति विश्रुतः ॥१८
धूम्राश्वतनयो विद्वान् सृञ्जय समपद्यत।
सृञ्जयस्य सुत श्रीमान् सहदेव प्रतापवान् ॥१९
कृशाश्व सहदेवस्य पुत्र परमधार्मिक ।
कृशाश्वस्य महातेजा सोमदत्त प्रतापवान् ॥२०
सोमदत्तस्य राजर्षे सुतोभूज्जनमेजय ।
जनमेजयात्मजश्चैव प्रमतिर्नाम विश्रुत ॥२१

वेगवान् का पुत्र बुध हुआ और बुध का पुत्र तृणविन्दु हुआ था जो कि तृतीय त्रेतायुग के मुख (आरम्भ) में राजा हुआ था ॥१५॥ उसकी कन्या द्रविडा थी जो कि विश्रवा की माता हुई थी। इसका पुत्र परम धार्मिक राजा विशाल हुआ था ॥१६॥ विशाल को नय निर्मित विशाला उत्पन्न हुई थी और विशाल का पुत्र महाबलवान् हेमचन्द्र राजा हुआ था ॥१७॥ हेमचन्द्र के अनन्तर सुचन्द्र इस नाम से विख्यात पुत्र हुआ। सुचन्द्र का पुत्र राजा धूम्राश्व परम विख्यात हुआ ॥१८॥ धूम्राश्व का पुत्र बहुत विद्वान् सृञ्जय समुत्पन्न हुआ

था। सृञ्जय का पुत्र श्रीमान् एवं प्रताप वाला सहदेव हुआ ॥१९॥ सहदेव का पुत्र परम धार्मिक कृशाश्व हुआ और कृशाश्व का पुत्र महान् तेजवाला एवं प्रतापी सोमदत्त हुआ ॥२०॥ राजर्षि सोमदत्त के जनमेजय पुत्र उत्पन्न हुआ था। जनमेजय के प्रमति इस नाम से प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२१॥

तृणबिन्दुप्रसादेन सर्वे वैशालका नृपाः ।
दीर्घायुषो महात्मानो वीर्यवन्तः सुधार्मिकाः ॥२२
शर्यातेर्मिथुनं त्वासीदानार्तो नाम विश्रुतः ।
पुत्रः सुकन्या कन्या च भार्या या च्यवनस्य तु ॥२३
आनार्तस्य तु दायादो रेवो नाम्ना तु वीर्यवान् ।
आनर्त्तो विषयो यस्य पुरी चापि कुशस्थली ॥२४
रैवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्मिकः ।
ज्येष्ठो भ्रातृशतस्यासीद्राजा प्राप्य कुशस्थलीम् ॥२५
कन्यया सह श्रुत्वा च गान्धर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके ।
मुहूर्तं देवदेवस्य मार्त्यं बहुयुगं विभो ॥२६
आजगाम युवा चैव स्वां पुरीं यादवैर्वृताम् ।
कृतां द्वारवतीं नाम बहुद्वारां मनोरमाम् ॥२७
भोजवृष्ट्यन्धकैर्गुप्तां वसुदेवपुरोगमैः ।
ताङ्कथां रैवतः श्रुत्वा यथातत्त्वमरिन्दम ॥२८
कन्यां तु बलदेवाय सुव्रतां नाम रेवतीम् ।
दत्त्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः ॥२९

ये समस्त राजा तृणबिन्दु के प्रसाद से वैशालक हुए थे। ये समस्त दीर्घ आयु वाले–महान् आत्मा से युक्त–वीर्य वाले और भली भाँति से धर्म के मानने वाले हुए थे ॥२२॥ शर्याति के एक जोडा हुआ था–एक पुत्र था जो आनार्त इस नाम से प्रथित था और एक कन्या थी जिसका नाम सुकन्या था और वह च्यवन ऋषि की भार्या हुई थी ॥२३॥ आनार्त का दायाद अर्थात् दाय के ग्रहण करने वाला पुत्र वीर्यवान् रेव नाम वाला हुआ जिसका देश तो आनर्त्त था और पुरी कुशस्थली थी ॥२४॥ रेव का पुत्र रैवत हुआ था जिसका नाम

ककुद्मी था और वह परम धार्मिक हुआ था जो सौ भाइयों का ज्येष्ठ था और कुशस्थली को प्राप्त कर राजा हुआ था ॥२५॥ विभु देवों के देव के एक मुहूर्त्त मात्र समय तक जोकि मर्त्यों के बहुत से युग थे, ब्रह्मा के समीप में गन्धर्व को *कन्या के साथ में* सुनकर युवा यादवों से वृत अपनी पुरी में आगया जोकि बहुत द्वारों वाली बहुत सुन्दर द्वारवती नाम वाली की गई थी, वसुदेव जिनमें अग्रणी थे ऐसे भोज वृष्टि और अन्धकों के द्वारा वह पुरी सुरक्षित थी। उस कथा को शत्रुओं के दमन करने वाले रैवत ने यथातत्त्व सुना था।२६-२७-२८। सुन्दर व्रत वाली रेवती नाम से युक्त कन्या को बलदेव को देकर तपश्चर्या में संस्थित होता हुआ मेरुगिरि के शिखर पर चला गया ॥२९॥

रेमे रामश्च धर्मात्मा रेवत्या सहित किल ।
ता कथामृषय श्रुत्वा पप्रच्छुस्तदनन्तरम् ॥३०
कथ बहुयुगे काले व्यतीते सूतनन्दन ।
न जरा रेवती प्राप्ता पलितञ्च कुत प्रभो ॥३१
मेरु गतस्य वा तस्य शर्य्याते सन्तति कथम् ।
स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वत ॥३२
क्रियन्ता वा सुरगणा गन्धर्व्वास्तत्र कीदृशा ।
यच्छ्रुत्वा रैवत कालान् मुहूर्तमिव मन्यते ॥३३
न जरा क्षुत्पिपासा वा न च मृत्युभय तत ।
न च रोग प्रभवति ब्रह्मलोकगतस्य हि ॥३४
गान्धर्व्व प्रति यच्चापि पृष्टस्तु मुनिसत्तमा ।
ततोऽह सम्प्रवक्ष्यामि याथातथ्येन सुव्रताः ॥३५
सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशति ।
तालाश्चैकोनपञ्चाशदित्येतत् स्वरमण्डलम् ॥३६
षड्जर्षभो च गान्धारो मध्यम पञ्चमस्तथा ।
धैवतश्चापि विज्ञेयस्तथा चापि निषादवान् ॥३७

धर्मात्मा बलराम ने रेवती के साथ रमण किया। उस कथा को सुन कर इसके अनन्तर ऋषियों ने पूछा ॥३०॥ ऋषिगण बोले—हे सूत नन्दन !

हे प्रभो ! बहुत युगो वाले काल के व्यतीत हो जाने पर रेवती वृद्धावस्था को प्राप्त नहीं हुई और पलित कैसे प्राप्त नही हुआ है ? ॥३१॥ जब शर्याति मेरु पर चला गया तो उसकी सन्तति कैसे हुई जोकि आज तक भी इस भू मण्डल पर स्थित है। यह तत्त्व पूर्वक सब वृत्त सुनना चाहते हैं ॥३२॥ कितने सुरगण थे और किस तरह के गन्धर्व थे जिसको सुनकर रैवत कालों को मुहूर्त्त की भाँति मानता था ॥३३॥ श्री सूतजी ने कहा—ब्रह्मलोक में जाने वाले को न बुढ़ापा होता है और न भूख-प्यास ही लगती है। मृत्यु का भय भी नही होता है और न किसी रोग का भय ही रहा करता है ॥३४॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! गान्धर्व के विषय में जैसा भी मुझसे पूछा गया है वह मैं हे सुव्रता ! यथातथ्य से अर्थात् बिल्कुल ठीक ठीक बतलाऊँगा ॥३५॥ सात स्वर षड्जादि होते हैं, तीन ग्राम और इक्कीस मूर्च्छनाऐ होती हैं। उनचास ताल होते हैं—यह इतना स्वर मण्डल होता है ॥३६॥ स्वरो के नाम—षड्ज–ऋषभ–गान्धार–मध्यम–पञ्चम धैवत और निषाद ये सात हैं ॥३७॥

सौवीरी मध्यमग्रामो हरिणास्या तथैव च ।
स्यात्कलोपनलोपेता चतुर्थी शुद्धमध्यमा ॥३८
शार्ङ्गी च पावनी चैव हृष्टाका च यथाक्रमम् ।
मध्यमग्रामिका ख्याता षड्जग्राम निबोधत ॥३९
उत्तरमन्द्रा रजनी तथा या चोत्तरायता ।
शुद्धषड्जा तथा चैव जानीयात् सप्तमां च ताम् ॥४०
गान्धारग्रामिकाश्चान्यान् कीर्त्यमानान् निबोधत ।
अग्निष्टोममिवमाद्यन्तु द्वितीय वाजपेयिकम् ॥४१
तृतीय पौण्ड्रक प्रोक्त चतुर्थं चाश्वमेधिकम् ।
पञ्चम राजसूय च षष्ठ चक्रसुवर्णकम् ॥४२
सप्तम गोसव नाम महावृष्टिकमष्टमम् ।
ब्रह्मदानञ्च नवम प्राजापत्यमनन्तरम् ॥४३
नागपक्षाश्रय विद्याद्गोतरञ्च तथैव च ।
हयक्रान्त मृगक्रान्त विष्णुक्रान्त मनोहरम् ॥४४

सूर्य्यक्रान्त वरेण्यञ्च मत्तकोकिलवादिनम् ।
सावित्रमर्द्धसावित्र सर्वतो भद्रमेव च ॥४५
सुवर्णञ्च सुनन्दश्च विष्णुर्वैष्णुवरावुभौ ।
सागर विजयश्चैव सर्वभूतमनोहरम् ॥४६
हंस ज्येष्ठ विजानीमस्तुम्बुरुप्रियमेव च ।
मनोहरमधाख्यश्च गन्धर्वानुगतश्च यः ॥४७
अलम्बुपेष्टश्च तथा नारदप्रिय एव च ।
कथितो भीमसेनेन नागराणां यथा प्रिय ॥४८
करोपनीत विनता श्रीराख्यो भार्गवप्रिय ।
विंशतिर्मध्यमग्राम षड्जग्रामश्चतुर्दश ॥४९

सौवीरी–मध्यम ग्राम–हरिणास्या–कलोपवतोपेता–शुद्धमध्यमा चतुर्थी–शार्ङ्गी–पावनी–हृष्टाका ये यथाक्रम मध्यम स्वर की ग्रामिका हैं और इन्ही नामो से प्रसिद्ध हैं। अब षड्ज ग्राम को समझो ॥३८॥३९॥ उत्तर मन्द्रा–रजनी–उत्तरायता–शुद्धषड्जा और सप्तमा ये जाननी चाहिये ॥४०॥ अब बतलाई जाने वाली अन्य जो गान्धार की ग्रामिका हैं उन्हें समझ लेनी चाहिये। अग्निष्टोमिका प्रथम है और द्वितीय वाजपेयिक है। तीसरी पौण्ड्रक कही गई है। चौथी आश्वमेधिक है। पांचवी राजसूय और छटी चक्र सुवर्णक है। सातवी गोसव महावृष्टिक आठवी होती है। नवम ब्रह्मदान है इनके अनन्तर प्राजास्य है ॥४०॥४१॥४२॥४३॥ नाग पक्षाश्रय–गोतर–हयकान्त–मनोहर–मृगकान्त–सूर्यकान्त–वरेण्य–मत्तकोकिल वादी–सावित्र–अर्द्धसावित्र–सर्वतोभद्र–सुवर्ण–सुनन्द्र–विष्णु वैष्णुवर–सागर–विजय–सर्वभूत मनोहर–हंस को ज्येष्ठ जानते हैं–तुम्बुरुप्रिय–मनोहर–अधाख्य–गन्धर्वानुगत–अलम्बुपेष्ट नारद प्रिय–भीमसेन के द्वारा नागरों को प्रिय कही गई है—करोपनीत विनता श्री–इस नाम वाली–भार्गव प्रिय–ये बीस मध्यम स्वर के ग्राम हैं। षड्ज के चौदह ग्राम हैं ॥४४॥४५॥४६॥४७॥४८॥४९॥

तथा पञ्चदशेच्छन्ति गान्धारग्रामसंस्थितान् ।
ससौवीरा तु गान्धारी ब्रह्मणा ह्युपगीयते ॥५०

उत्तरादिस्वरस्यैव ब्रह्मा वै देवतात्र च ।
हरिदेशसमुत्पन्ना हरिणास्या व्यजायत ।
मूर्च्छना हरिणास्यैव अस्या इन्द्रोऽधिदैवतम् ॥५१
करोपनीतविनता मरुद्भिः स्वरमण्डले ।
सा कालोपनता तस्मान्मारुतश्चात्र दैवतम् ॥५२
मनुदेशसमुत्पन्ना मूर्च्छना शुद्धमध्यमा ।
मध्यमोऽत्र स्वरः शुद्धो गन्धर्वश्चात्र देवता ॥५३
मृगैः सह सञ्चरते सिद्धाना मार्गदर्शने ।
यस्मात्तस्मात् स्मृता मार्गी मृगेन्द्रोऽस्याश्च देवता ५४
सा चाश्रममसायुक्ता ग्रनेकान् पौरवान् रवान् ।
मूर्च्छना योजना ह्येषा रजसा रजनी तत ॥५५
ताल उत्तरमन्द्रास्तां षड्जदैवतका विदु ।
तस्मादुत्तरतालञ्च प्रथम स्वायतं विदु ।
तस्मादुत्तरमन्द्रोऽस्य देवतास्य ध्रुवो ध्रुवः ॥५६

इसी प्रकार से गान्धार स्वर के ग्राम संस्थित पन्द्रह चाहते हैं। सौवीरा-गान्धारी जो ब्रह्मा के द्वारा उपगीत हुआ करती है। उत्तरादि स्वर का यहाँ पर ब्रह्मा ही देवता होता है। हरिदेश समुत्पन्ना-हरिणास्या ही मूर्च्छना है और इन्द्र इसका अधिकारी देवता होता है ॥५०॥५१॥ स्वरों के मण्डल में मरुतों के द्वारा करोपनीत विनता होती है। वह कालोपनता है इससे मारुत ही यहाँ पर अधिदैवत होता है ॥५२॥ मनु देश में समुत्पन्न मूर्च्छना शुद्ध मध्यमा है। यहाँ मध्यम स्वर है और शुद्ध गन्धर्व देवता है ॥५३॥ सिद्धों के मार्ग के दर्शन में मृगों के साथ सञ्चरण करती है। इसी कारण से यह मार्गी कही गई है और इसका मृगेन्द्र देवता होता है ॥५४॥ और वह आश्रम में समायुक्त होती है और अनेक पौरवों को रव वाले कर देती है। यह मूर्च्छना योजना है, रजसे रजनी होती है ॥५५॥ इसका ताल उत्तर मन्द्रा होता है और इसको षड्ज देवता वाली जाननी चाहिये। इससे उत्तर ताल प्रथम स्वायत जान लेवें। इससे यह उत्तर मन्द्र है और इसका ध्रुव निश्चित देवता है ॥५६॥

अपानादुत्तरत्वाच्च धैवतस्योत्तरायण ।
स्यादियं मूर्च्छना ह्येव पितर श्राद्धदेवता ॥५७
शुद्धषड्जस्वरं कृत्वा यस्मादग्नि महर्षय ।
उपतिष्ठन्ति तस्मात्तां जानीयाच्छुद्धषड्जिकम् ॥५८
य सता मूर्च्छना कृत्वा पञ्चमस्वरको भवेत् ।
यक्षीणा मूर्च्छना सा तु याक्षिका मूर्च्छना स्मृता ॥५९
नागदृष्टिविषा गीता नोपसर्पन्ति मूर्च्छनाम् ।
भवन्तीव हृता ह्येते ब्रह्मणा नागदेवता ।
अहीना मूर्च्छना ह्येषा वरुणश्चात्र देवता ॥६०
शकुन्तकाना कृत्वा च उपमा यान्ति किन्नरा ।
उत्तमा मूर्च्छना तस्मात् पक्षिराजोऽत्र देवता ॥६१
गान्धाररागशब्देन गा च धारयनेऽर्थत ।
तस्माद्विशुद्धगान्धारी गन्धर्वश्चाधिदैवतम् ॥६२

अपान और उत्तरत्व होने से धैवत का उत्तरायण यह मूर्च्छना है । इस प्रकार से श्राद्ध देवता पितर होते हैं ॥५७॥ जिस कारण से महर्षिगण शुद्ध षड्ज स्वर को करके फिर अग्नि का उपस्थान किया करते हैं। इसलिये उसे शुद्ध षड्जिक जानना चाहिये । जो सत्पुरुषों की मूर्च्छना को करके पञ्चम स्वर होता है वह यक्षियों की मूर्च्छना है और वह याक्षिका मूर्च्छना कही गई है ।५८। ॥५९॥ विषागीता नागदृष्टि मूर्च्छना का उपसर्पण नहीं करती है और ये नाग-देवता ब्रह्मा के द्वारा हृत होजाते हैं । यह अहियों अर्थात् नागों की मूर्च्छना होती है और वरुण यहाँ देवता है ॥६०॥ किन्नर पक्षियों की उपमा करके जाते हैं । इससे उत्तमा मूर्च्छना है और इससे पक्षिराज यहाँ देवता है ॥६१॥ गान्धार राग के शब्द से गा को अर्थ से धारण करता है इससे वह विशुद्ध गान्धारी होता है और उसका गन्धर्व अधिदेवता होता है ॥६२॥

गान्धारानन्तरं गत्वा सृष्टेयं मूर्च्छना यत ।
तस्मादुत्तरगान्धारी वसवश्चात्र देवता ॥६३

सेय खलु महाभूता पितामहमुपस्थिता ।
षड् जेय मूर्च्छना तस्मात् स्मृता ह्यनलदेवता ॥६४
दिव्येय चायता तेन मन्दपष्ठा च मूर्च्छने ।
निवृत्तगुणनामान पञ्चमञ्चात्र धैवतम् ॥६५
पूर्णा सप्त स्वरा ह्येव मूर्च्छना सप्रकीर्त्तिता ।
नानासाधारणाश्चैव षडेवानुविदस्तथा ॥६६

जिससे गान्धार के अनन्तर यह मूर्च्छना सृष्ट हुई उस कारण से उत्तर गान्धारी हुई और यहाँ वसु अधिष्ठात्री देवता है ॥६३॥ वह यह महाभूता पितामह को उपस्थित हुई यह षड्ज मूर्च्छना है और इससे यह अनल देवता वाली कही गई है ॥६४॥ यह दिव्या और आयता है इससे मन्द षष्ठा मूर्च्छनायें पञ्चम और धैवत की होती हैं जोकि निवृत्त गुण और नाम वाले हैं। इस प्रकार से सात स्वरों वाली पूर्ण मूर्च्छना कही गई है। यह अनेका और साधारण छै ही अनुविद होती हैं ॥६६॥)

प्रकरण ५०—गीता लंकार निर्देश

पूर्व्वाचार्य्यमतं बुद्धा प्रवक्ष्याम्यनुपूर्व्वश ।
त्रिंशत् वै अलङ्कारास्तान् मे निगदत शृणु ॥१
अलङ्कारास्तु वक्तव्या स्वै स्वैर्वर्णै प्रहेतव ।
सस्थानयोगैश्च तथा पादाना चान्ववेक्षया ॥२
वाक्यार्थपदयोगार्थं रलङ्कारस्य पूरणम् ।
पदानि गीतकस्याहु पुरस्तात् पृष्टतोऽथवा ॥३
स्थानानि त्रीणि जानीयादुर कण्ठशिरस्तथा ।
एतेषु त्रिषु स्थानेषु प्रवृत्तो विधिरुत्तम ॥४
चत्वार प्रकृतौ वर्णा प्रविचारश्चतुर्विध ।
विकल्पमष्टधा चैव देवा षोडशधा विदु ॥५

स्थायी वर्णं प्रसचारी तृतीयमवरोहणम् ।
आरोहण चतुर्थन्तु वर्णं वर्णविदो विदु ॥६
तत्रैक सचरस्थायी सचरास्तत्वरीभवन् ।
अथ रोहणवर्णानामवरोह विनिर्दिशेत् ॥७

अब पूर्व मे हुए आचार्यों के मत को जानकर आनुपूर्वी के साथ तीन सौ अलङ्कारो को बतलाया जाता है। उन्हे बतलाने वाले मुझसे आप लोग भली भाँति जानकारी कर लेवें और श्रवण करे ॥१॥ अपने अपने वर्णों मे प्रवृद्ध हेतु वाले अलङ्कार स्वस्थान योगो से और पादो की अन्ववेक्षा से कथन करने के योग्य होते है ॥२॥ वाक्य–अर्थ–पद और योगार्थो से अलङ्कार की पूर्णता होती है। पूर्व से और आगे गीतक के पद कहे गये हैं ॥३॥ स्थान उर स्थल–कण्ठ और शिर ये तीन जानने चाहिए। इन तीन स्थानो मे उत्तम विधि प्रवृत्त होती है ॥४॥ प्रकृति मे चार वर्ण और चार प्रकार का प्रविचार होता है। विस्तर आठ प्रकार के तथा देव सोलह प्रकार के माने गये हैं ॥५॥ स्थायी वर्ण प्रसचारी और तीसरा अवरोहण चतुर्थ आरोहण वर्ण वर्णो के वेत्ता लोग जानते है ॥६॥ यहाँ एक सचरास्तचरी होता हुआ सचर स्थायी होता है। इसके अनन्तर रोहण वर्णों का अवरोहण विनिर्दिष्ट करना चाहिए ॥७॥

आरोहणेन चारोहवर्णं वर्णविदो विदु ।
एतेषामेव वर्णानामलङ्काराश्निबोधत ॥८
अलङ्कारास्तु चत्वार स्थापनी क्रमरेजितः ।
प्रमादश्चाप्रमादश्च तेषा वक्ष्यामि लक्षणम् ॥९
विस्वरोष्टकलाश्चैव स्थानादेकान्तर गता ।
आवर्त्तस्याक्रमोत्पत्ती द्वे कार्य्ये परिमाणत ॥१०
कुमारमपर विद्याद्विस्तर वमन गतम् ।
एष वै चाप्यपाङ्गस्तु कुतारेकः कलाधिक ॥११
श्येनस्त्वेकान्तरे जात कलामात्रान्तरे स्थित ।
तस्मिश्चैव स्वरे वृद्धिस्त्रिउने तद्विलक्षणा ॥१२

श्येनस्तु अपरोहस्तु उत्तरः परिकीर्त्तितः ।
यत्नाकलप्रमाणाच्च स बिन्दुर्नाम जायते ॥१३
बिन्दुरेककला कार्या वर्णान्तस्थायिनी भवेत् ।
विपर्ययस्वरोऽपि स्याद्यस्य दुर्घटितोऽपि न ॥१४

वर्णों के ज्ञाता लोग आरोहण से आरोह वर्ण जाना करते हैं। अब इन्हीं वर्णों के अलङ्कारों को समझ लो ॥८॥ अलङ्कार चार होते हैं—स्थापनी-क्रमरेगी-प्रमाद और अप्रमाद ये चार उनके नाम होते हैं। अब उनके लक्षण बतलाता हूँ ॥९॥ विस्वरोश्वसा स्थान में एक के अन्तर में गये हुए आवर्त्त को अक्रम और उत्पत्ति परिणाम से दो करने चाहिए ॥१०॥ अपर को विस्तर वमन को गया हुआ कुमार जानना चाहिए। और यही कुमारेक बलाधिप अपाङ्ग है ॥११॥ जो श्येन होता है वह स्थित रहता है। और उसी स्वर में उसमें विलक्षण वृद्धि स्थित हुआ करती है ॥१२॥ श्येन और अपरोह उत्तर कहा गया है और यत्नाकल प्रमाण से वह बिन्दु नाम वाला होता है ॥१३॥ बिन्दु एक कला करनी चाहिए और वर्णान्त स्थायिनी होती है। विपर्यय स्वर भी होता है जिसका दुर्घटित भी नहीं होता है ॥१४॥

एकान्तरा तु वायन्तु षड्जनः परमः स्वरः ।
आरोहावरन्दनं कार्यं वाक्यमेवोपपुष्पकम् ॥१५
गन्धारौ तौ तु सञ्चारौ कार्यं वा कारण तथा ।
पाक्षितभरगोह्यापि प्रोक्षमवन्नयेन च ॥१६
द्वादशाच कलास्थानमेवान्तरगतन्तत ।
प्रक्रीलितमलङ्कारमेव स्वरसमन्वितम् ॥१७
स्वरसग्रामराज्ञैव तत प्रोक्तन्तु पुष्कलम् ।
प्रशितमेव मन्यया पादानीनरयोर्भवेत् ॥१८
द्विरन वा यथा भून यत्तद् ह्लादितमुच्यते ।
उद्गागद्विस्वरान्मृा तथा षाडस्वरान्तगम् ॥१९
यन्तु स्यादवरोहो वा गान्तो मन्द्रनोऽपि वा ।
एकान्तरहिता हागे गभेर स्वरमन्तरः ॥२०

अतिप्रच्छेदनो नाम चतुर्थस्त्वगणः स्मृतः ।
अलङ्कारा भवन्त्येते त्रिदश ये प्रकीर्तिताः ।
वर्णस्थानप्रयोगेण कलामात्रा प्रमाणतः ॥२१

एकान्तरा काय तो षड्ज से पंचम स्वर होता है। आक्षेपारन्दन बार की भांति उच्च पुलन्न करना चाहिए ॥१५॥ ये दोनों सन्धार सम्पार करने के योग्य हैं, कारण हो अथवा कार्य हो। आक्षिप्त का अवरोहण करने भी उसी प्रकार से ओतप्रोत होना चाहिए ॥१६॥ एकान्तर में गया हुआ बारहवाँ कला का स्थान होता है। इसके आगे इस प्रकार से प्रेङ्खोलित अलङ्कार स्वर से समन्वित होता है ॥१७॥ स्वर के मन्द्रमन्द होने से ही वह फिर पुलक कहा गया है। आवलीयों व कला के द्वारा प्रणिहत ही होता है ॥१८॥ अथवा दो कला वाला जैसे हुआ वह ह्रादित कहा जाता है। उच्चार से विश्रान्त तथा यह स्वरान्तर वाला होता है ॥१९॥ जो तार से अथवा मन्द्र से अवरोह होता है वे गमान्त रहित सम्पत् उसी स्वर में होते हैं ॥२०॥ अतिप्रच्छेदन नाम वाला चतुर्थस्वगण कहा गया है। ये अलङ्कार जो कि तीस कहे गए हैं, होते हैं, वे वर्ण और स्थान के प्रयोग से कलामात्र के प्रमाण से होते हैं ॥२१॥

सन्ध्यानन्दच प्रमाणं च विचारो लक्षणान्यथा ।
चतुर्विधमिदं ज्ञेयं स्थानप्रयोजनम् ॥२२
यथात्मना ह्यलङ्कारा विवर्णोऽभिनिर्हिता ।
यथास्थानं त्वं विषमं वामपञ्चमात् ॥२३
नानाभरणसंयोगाद्यथा नार्यो विभूषणम् ।

अयोविंशत्य शीतिस्तु तेषामेतद्विपर्यय ।
षडजपक्षोऽपि तत्त्वादौ मध्यो हीनस्वरो भवेत् ॥२८

अलङ्कार का प्रयोजन चार प्रकार का जानना चाहिए जो कि सस्थान-प्रमाण-विकार और लक्षण होता है ॥२२॥ जिस प्रकार से अपने शरीर का अलङ्कार विपर्यस्त अर्थात् उल्टा-पल्टा हुआ अत्यन्त गर्हित अर्थात् बुरा हो जाता है। अतस सम्भव होने से वर्णों को भी अलकृत करने में विषम हो जाता है ॥२३॥ अनेक प्रकार के आभरणो के योग से जिस तरह नारी का विभूषण हुआ करता है उसी प्रकार से वर्ण का भी अलङ्कार होता है और यह भी यदि विपर्यस्त होता है तो अत्यन्त गर्हित हो जाता है ॥२४॥ जिस तरह चरण में कुण्डल कभी नही पहिने हुए देखे गये हैं और कभी कण्ठ में रसना अर्थात् करधनी (कौंधनी) नही पहिनी जाया करती है। इसी तरह से विपरीत स्थिति में रहने वाला अलङ्कार अत्यन्त बुरा हुआ करता है ॥२५॥ किया हुआ भी अलङ्कार जो राग को दिखा देवे यथादिष्ट मार्ग वाले कर्त्तव्य के लिए जिसका विधान किया जाता है ॥२६॥ लक्षण-पर्यवस्था और वर्णिकाओ द्वारा प्रवर्त्तन मासोद्भव और मुखोद्भव ठीक ठीक रूप से बतलाता है ॥२७॥ उनका यह विपर्यय तेईस और अस्सी होता है। तत्व के आदि मे षड्ज पक्ष भी मध्य और हीन स्वर वाला हो जाता है ॥२८॥

षड्जमध्यमयोश्चैव ग्रामयो पर्य्ययस्तथा ।
मानोयोत्तरमन्द्रस्य षडेवात्राविकस्य च ॥२६
स्वरालप्रत्ययश्चैव सर्व्वथा प्रत्यय स्मृत ।
अनुगम्य वहिर्गीत विज्ञात पञ्चदैवतम् ॥३०
गोरूपाणा पुरस्तात्तु मध्यमांशस्तु पर्य्यय ।
तयोर्विभागो गीताना तावण्यमांसस्थित ॥३१
अनुषङ्ग मयोद्दिष्ट स्वसारञ्च स्वरान्तःम् ।
पर्य्यय सप्रवर्त्तेत सप्तस्वरपदक्रमम् ॥३२
गान्धारांशेन गीयन्ते चत्वारि मन्द्रकाणि च ।

पञ्चमो मध्यमश्चैव धैवते तु निषादजे ।
षड्जऋषभेश्च जानीमो मन्द्रकेष्वेव नान्तरे ॥३३
द्वे चापरान्तिके विद्याद्वयशुल्लाष्टकस्य तु ।
प्राकृते वैणवेश्चैव गान्धाराशे प्रयुज्यते ॥३४
पदस्य तु त्रय रूप सप्तरूपन्तु कौशिकम् ।
गान्धाराशेन कात्स्न्येन पर्ययस्य विधिः स्मृतः ।
एवञ्चैव क्रमोद्दिष्टो मध्यमाशस्य मध्यम. ॥३५

षड्ज और मध्यम ग्रामो का पर्यय मानोयोत्तर मन्द्र का और मात्रा-विक का छै होना है ॥२६॥ स्वराल प्रत्यय सबका प्रत्यय कहा गया है। बहिर्गीत का अनुगमन करके पाँच देवता जाने गये हैं ॥३०॥ गोरूपो के पहिले मध्यमाश पर्यय होना है। उन दोनो का विभाग गीतो के लावण्य मार्ग मे सस्थित होना है ॥३१॥ मैंने स्वरान्तर स्वमार और अनुराङ्ग को उद्दिष्ट किया है। पर्यय सप्तस्वर पदक्रम को सप्रवर्तित होता है ॥३२॥ चार मन्द्रक गान्धा-राश से गाये जाते हैं। पञ्चम और मध्यम ही धैवत निषादज-षड्ज और ऋषभो से मन्द्रको ही मे जानते हैं, अन्तर मे नहीं ॥३३॥ और दो अपरान्तिक जानने चाहिए। द्वय शुल्लाष्टक का प्राकृत मे वैणवों से ही गान्धाराश मे प्रयोग किया जाता है ॥३४॥ पद के तीन रूप हैं और कौशिक सात रूप वाला होता है। पूर्ण गान्धाराश से पर्यय की विधि कही गई है। इसी प्रकार से क्रमोद्दिष्ट और मध्यमाश का मध्यम होना है ॥३५॥

यानि गीतानि प्रोक्तानि रूपेण तु विशेषत ।
तत्तु सप्तस्वर कार्यं सप्तरूपञ्च कौशिकम् ॥३६
अङ्गदर्शनमित्याहुर्मनि द्वे समके तथा ।
द्वितीयभावाचरणा मात्रा नाभिप्रतिष्ठिता ॥३७
उत्तरे च प्रकृत्येव मात्रा तल्लीयते तथा ।
हृत्तारः पिण्डको यत्र मात्राया नातिवर्त्तते ॥३८
पादेनैकेन मात्रायां पादोनामति धीरणा ।
शस्यायाश्चोपहननं तत्र मानमिति स्मृतम् ॥३९

द्वितीय पादभङ्गश्च ग्रहेणाभिप्रतिष्ठितम् ।
पूर्व्वमष्टतृतीये तु द्वितीयं चापरीतके ॥४०
अर्द्धेन पादसाम्यस्य पादभागाश्च पञ्चके ।
पादभाग सपादं तु प्रकृत्यामपि संस्थितम् ॥४१
चतुर्थमुत्तरे चैव मद्रवत्या च मद्रके ।
मद्रके दक्षिणस्यापि यथोक्ता वर्त्तते कला ॥४२

जो गीत विशेषता से रूप से कहे गये हैं वह तो सप्त स्वर करना चाहिए और कौशिक सप्त रूप करना चाहिये ॥३६॥ सम दो मान भङ्गदर्शन यह कहते हैं। द्वितीयभावावरण मात्र अभिप्रतिष्ठिता नहीं है ॥३७॥ और उत्तर में प्रकृति से ही इस तरह मात्रा तल्लीन होती है जहाँ पर हुत्तार पिण्डक मात्रा मे प्रतिवृत्तंन नहीं करता है ॥३८॥ एक पाद से मात्रा ■ पादोना मतिवीरणा है और सन्ध्या का उपहनन होता है यहाँ पर यानम्—यह कहा गया है ॥३९॥ द्वितीय पादभङ्ग है जो ग्रह से अभि प्रतिष्ठित होता है। अष्ट तृतीय म तो पूर्व है और अपरीतक म द्वितीय है ॥४०॥ अर्द्ध से पाद साम्य का और पञ्चक म पाद भाग मे, पाद भाग सपाद तो प्रकृति मे भी संस्थित होता है ॥४१॥ उत्तर मे चतुर्थ और मद्रवती म मद्रक और मद्रक म दक्षिण की भी यथोक्त कला होती है ॥४२॥

पूर्व्वमेवानुयोगन्तु द्वितीया वृद्धिरिष्यते ।
पादो चाहरणं चास्मत् पार नात्र विधीयते ॥४३
एकत्वमुपयोगस्य द्वयोयद्धि द्विजोत्तम ।
अनेकसमवायस्तु पताकाहरिणं स्मृतम् ॥४४
तिसृणां चैव वृत्तीना वृत्तौ वृत्ता च दक्षिणा ।
अष्टौ तु समवायास्ते सौवीरा मूर्च्छना तथा ।
कुदारयनुत्तरं सत्य सप्त सत्वस्वरं तु यः ॥४५

पूर्व ही अनुयोग ता है द्वितीया वृद्धि इच्छित होती है। पाद और चाहरण यहाँ पर असमत् पार बार का विधान नहीं होना है ॥४३॥ हे द्विजोत्तम ! उपयोग का एकत्व और जो दोना है तथा अनेक का समवाय है वह

पताका हरिण कहा गया है ॥४४॥ और तीन वृत्तियों का और वृत्ति में दक्षिणा वृत्ता के आठ समवाय हैं और सौवीरा मूर्च्छना होती है। कुणित्यनुत्तर जो सत्य सात मत्स्वस्वर होता है ॥४५॥

प्रकरण ५१—वैवस्वत मनु वंश वर्णन

ककुद्मिनस्तु तं लोकं रैवतस्य गतस्य ह।
हृता पुण्यजनैः सर्व्वा राक्षसैः सा कुशस्थली ॥१
तद्वै भ्रातृशतं तस्य धार्म्मिकस्य महात्मनः।
निवध्यमाना रक्षोभिर्दिशः सम्प्राद्रवन् भयात् ॥२
तेषान्तु ते भयाक्रान्ता क्षत्रियास्तत्र तत्र हि।
अन्ववायस्तु सुमहान् महास्तत्र द्विजोत्तमा ॥३
प्रथता इति विख्याता दिक्षु सर्व्वासु धार्म्मिकाः।
धृष्टस्य धाष्टकं क्षत्रं रणधृष्टं बभूव ह ॥४
त्रिसाहस्रन्तु सगणं क्षत्रियाणां महात्मनाम्।
नभगस्य च दायादो नाभागो नाम वीर्यवान् ॥५
अम्बरीषस्तु नाभागिर्विरूपस्तस्य चात्मजः।
पृषदश्वो विरूपस्य तस्य पुत्रो रथीतर ॥६
एते क्षत्रप्रसूता व पुनश्चाङ्गिरसः स्मृताः।
रथीतराणां प्रवराः क्षात्रोपेता द्विजातयः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—ककुद्मी के उस लोक का रैवत के चले जाने में उसकी जो कुशस्थली थी वह सब पुण्यजनों राक्षसों के द्वारा हृत होगई ॥१॥ उसके जो सौ भाई थे जोकि बड़ा धर्म के मानने वाला और महान् आत्मा वाला था राक्षसों के द्वारा निवध्य मान होते हुए भय से दिशाओं में भाग गये थे।२। हे द्विजों में उत्तम! उनके भय से आक्रान्त वे क्षत्रिय वहाँ-वहाँ होगये और वह सुमहान् अन्ववाय महान् हो गया ॥३॥ समस्त दिशाओं में धार्मिक लोग प्रथता इस नाम से विख्यात हुए। धृष्ट्का रणभूमि में उन वाला धाष्टक

क्षत्रिय हुआ था ॥४॥ महान् आत्मा वाले क्षत्रियों का सगण तीन हजार था। नभग के दाय का हक्दार बड़ा पराक्रमी नाभाग नाम वाला हुआ ॥५॥ नाभागि अम्बरीष हुआ और उसका पुत्र विरूप हुआ। विरूप का पुत्र पृषदश्व और उसका पुत्र रथीतर नाम वाला हुआ था ॥६॥ ये सब क्षत्रियों की सतति आङ्गिरस कही गयी है। रथीतरों में जो प्रवर थे और क्षात्र धर्म से समन्वित थे वे द्विजाति थे ॥७॥

क्षवतस्तु मनो पूर्वमिक्ष्वाकुरभिनिःसृतः।
तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम् ॥८
तेषां ज्येष्ठो विकुक्षिश्च नेमिर्दण्डश्च ते त्रयः।
शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्रा पचाशतस्तु ते ॥९
उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महीक्षितः।
चत्वा रिंशत्तथाष्टौ च दक्षिणस्याञ्च ते दिशि ॥१०
विंशतिप्रमुखास्ते तु दक्षिणापथरक्षिणः।
इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिं वै अष्टकायामथादिशेत् ॥११
मासमानय श्राद्धेयं मृगान् हत्वा महाबल।
श्राद्धमद्य नु कर्तव्यमष्टकाया न सक्षय ॥१२
स गतस्तु मृगव्या वै वचनात्तस्य धीमतः।
मृगान् सहस्रशो हत्वा परिश्रान्तश्च वीर्यवान्।
भक्षयच्छशकन्तत्र विकुक्षिर्मृगयाङ्गतः ॥१३
आगते स विकुक्षौ तु समासे सहसंनिके।
वसिष्ठञ्चोदयामास मास प्रोक्षयतामिति ॥१४

मनु के पूर्व क्षुव से इक्ष्वाकु अभिनिःसृत हुए। उस इक्ष्वाकु के सौ पुत्र थे जोकि भूरि दक्षिणा वाले थे ॥८॥ उन एक शत पुत्रों में जो सबसे बड़ा पुत्र था उसका नाम विकुक्षि था और नेमिदण्ड थो वे तीन थे। उसके शकुनि जिनमें प्रधान था ऐसी रीति से पाँचसौ पुत्र हुए थे ॥९॥ वे सब नृप उत्तरापथ के रक्षा करने वाले थे। उनमें चालीस और आठ दक्षिण दिशा में गये थे ॥१०॥ जिसमें विंशति सबमें प्रमुख थे ऐसे वे दक्षिणा पथ के रक्षा करने

वाले हुए थे। इक्ष्वाकु ने विकुक्षि को अष्टका मे आदेश दिया था ॥११॥ राजा बोले—हे महान् बल वाले! जगल मे जाकर श्राद्ध करने के योग्य सामग्री लाना चाहिए। आज अष्टका मे श्राद्ध करना चाहिए। इसमे कुछ भी सशय नही है ॥१२॥ वह बुद्धिमान् इस वाक्य को ग्रहण कर वन मे जा पहुँचा। वह परम वीर्यवान् शिकार करते करते परिश्रान्त होगया था। मृगया करने गये हुए विकुक्षि ने वहाँ पर कुछ आहार कर लिया था ॥१३॥ सैनिका के सहित विकुक्षि के आने पर राजा ने वसिष्ठ जी को प्रेरित किया कि वे सामग्री का प्रोक्षण करे ॥१४॥

तथेति चोदितो राजा विधिवत्समुपस्थितः ।
स दृष्ट्वोपहृत मास क्रुद्धो राजानमब्रवीत् ॥१५
शूद्रे णोपहृत मास पुत्रेण तव पार्थिव ।
शशभक्षादभोज्य वै तव मास महाद्युते ॥१६
शशो दुरात्मना पूर्वमरण्ये भक्षितोऽनघ ।
तेन मासमिद दुष्ट पितृणा नृपसत्तम ॥१७
इक्ष्वाकुस्तु तत क्रुद्धो विकुक्षिमिदमब्रवीत् ।
पितृकर्मणि निर्दिष्टो मया त्व मृगयाङ्गत ।
शश भक्षयसेऽरण्ये निर्घृ ण पूर्वमद्य नु ॥१८
तस्मात्परित्यजामि त्वा गच्छ त्व स्वेन कर्मणा ।
एवमिक्ष्वाकुना त्यक्तो वसिष्ठवचनात् सुत ॥१९
इक्ष्वाकौ सस्थिते तस्मिञ्छशी स पृथिवीमिमाम् ।
प्राप्त परमधर्मात्मा स चायोध्याधिपोऽभवत् ॥२०
तदाकरोत्स राज्य वै वसिष्ठपरिनोदित ।
तत स्तेनेन सा पूर्णा राज्यावस्था महीपते ॥२१

राजा के द्वारा उस प्रकार प्रेरित वसिष्ठ मुनि विधिपूर्वक उपस्थित हुए। सामग्री का देखकर कुपित होते हुए राजा से कहा—॥१५॥ हे पार्थिव! हे महान् द्युति वाले! आपके पुत्र शूद्र ने सामग्री को उपहृत कर दिया है। शशन भक्षण कर लेने से यह सामग्री भोजन करने के योग्य नहीं है ॥१६॥ हे अनघ!

हे नृपो म श्रेष्ठ ! इस दुरात्मा ने पहिले ही जगत में आहार कर लिया है। इससे यह समस्त सामग्री दूषित होगयी है और पितरों के योग्य नहीं रही है ॥१७॥ तब तो इक्ष्वाकु बहुत ही क्रुद्ध हुआ और विकुक्षि से बोला—मैंने तुझे पितृ–कर्म मे निदिष्ट किया था और तभी तू शिकार करने यहाँ से गया था। निर्घृण तूने आज पहिले ही जगल म आहार कर लिया है ॥१८॥ इस कारण से मैं आज तेरा त्याग करता हूँ और त्याग तेरे ही अपने कर्म से किया जा रहा है। इस प्रकार से वह पुत्र वसिष्ठ के वचन से इक्ष्वाकु के द्वारा त्याग दिया गया था ॥१९॥ इस इक्ष्वाकु के संस्थित होने पर उस शशी ने इस पृथ्वी को प्राप्त किया और परम धर्मात्मा वह अयोध्या का स्वामी हुआ था ॥२०॥ वसिष्ठ के द्वारा परिप्रेरित हुए उसने उस समय राज्य किया था। इसके अनन्तर राजा की वह राज्यावस्था स्नेन से पूर्ण हुई ॥२१॥

कालेन गतवांस्तत्र स च न्यूनतराङ्गतिम् ।
ज्ञात्वैवमेतदाख्यान ना विधिभक्षयेत्तु वै ॥२२
मांस भक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्व प्रवदन्ति मनीषिण ॥२३
शशादस्य तु दायाद ककुत्स्थो नाम वीर्यवान् ।
इन्द्रस्य वृषभूतस्य ककुत्स्थो जायत पुरा ॥२४
पूर्व्वमार्डीवके युद्धे ककुत्स्थस्तेन स स्मृत ।
अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुरोमा च स स्मृत ॥२५॥
पृथदश्व पृथो पुत्रस्तस्मादन्ध्रस्तु वीर्यवान् ।
आन्ध्रस्तु यवनाश्वस्तु श्रावस्तस्तस्य चात्मज ॥२६॥
जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्मिता ।
श्रावस्तस्य तु दायादो वृहदश्वो महायशा ॥२७॥
वृहदश्वसुतश्चापि कुवलाश्व इति श्रुति ।
य स धुन्धुवधाद्राजा धुन्धुमारत्वमागत ॥२८॥

काल क व्यतीत होने म वहाँ पर वह न्यूनतर गति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से इस आख्यान को जानकर विना विधि के भक्षण नहीं करना चाहिये

॥२२॥ परलोक में मांस आदि के भक्षण करने वालों में जिसके मास को मैं यहाँ भक्षण करता हूँ। वह इसमें मांस को खायगा इस मांस का मासत्व मनीषीगण कहा करते हैं ॥२३॥ शशाद का दायाद (पुत्र) वीर्यवान् ककुत्स्थ हुआ। पहिले वृषभूत इन्द्र का ककुत्स्थ उत्पन्न होता है ॥२४॥ पहिले आडीवक युद्ध में उसके द्वारा वह ककुत्स्थ स्मरण किया गया था—अर्थात् कहा गया था। इसके द्वारा ककुत्स्थ के पृथुरोमा हुआ ॥२५॥ पृथु का पुत्र वृषदश्व और उससे वीर्यवान् अन्ध्र हुआ। उसके आन्ध्र-यवनस्व और श्रावस्त ये पुत्र हुए ॥२६॥ श्रावस्तक राजा हुआ जिसने श्रावस्ती नाम वाली पुरी का निर्माण किया था। श्रावस्त का दायाद महान् यश वाला बृहदश्व हुआ था ॥२७॥ बृहदश्व का पुत्र भी कुवलाश्व हुआ यह श्रुति है। जो वह राजा धुन्धु के वध से धुन्धु मारत्व को प्राप्त होगया था ॥२८॥

धुन्धुवध महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छामि विस्तरात् ।
यदर्थं कुवलाश्व स धुन्धुमारत्वमागत ॥२९॥
बृहदश्वस्य पुत्राणा सहस्राण्येकविंशति ।
सर्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदा ॥३०॥
बभूवुर्धार्मिका सर्वे यज्वाना भूरिदक्षिणा ।
कुवलाश्व महावीर्यं शूरमुत्तमधार्मिकम् ॥३१॥
बृहदश्वोऽभ्यषिञ्चत्त तस्मिन् राष्ट्रे नराधिप ।
पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वन राजा विवेश ह ॥३२॥
बृहदश्व महाराज शूरमुत्तमधार्मिकम् ।
प्रयात तमुत्तङ्कस्तु ब्रह्मर्षि प्रत्यवारयत् ॥३३॥
भवतो रक्षण कार्यं तत्तावत् कर्तुमर्हति ।
निरुद्विग्नस्तप कर्तुं न हि शक्नोमि पार्थिव ॥३४॥
ममाश्रममभीपेषु समेषु मरुधन्वसु ।
समुद्रो वालुकापूर्णस्तत्र तिष्ठति भूपते ॥३५॥

ऋषियों ने कहा—हे महान् परिज्ञ ! हम धुन्धु के वध को सुनना चाहते हैं और विस्तारपूर्वक श्रवण करने की इच्छा करते हैं जिसके लिये वह

कुबलाश्व धुन्धु मारत्व को प्राप्त होगया था ॥२६॥ श्री सूतजी ने कहा—बृहदश्व के एक बीस सहस्र पुत्र थे। वे सब विद्याओं में निष्णात, बड़े ही बलवाले और दुरासद थे ॥३०॥ सब बहुत दक्षिण वाले यज्वा परम धार्मिक हुए थे। बृहदश्व राजा ने महान् वीर्य वाले-शूरवीर-उत्तम धर्म के मानने वाले उस कुवलाश्व को उस राष्ट्र में राजा अभिषिक्त किया था। जब पुत्र ने समस्त राज्य भी प्राप्त करलीया था तब राजा ने बनमें प्रवेश कर लिया था ॥३१-३२॥ उत्तम धार्मिक और शूर महाराज बृहदश्व को वन में प्रयाण करने वाले को ब्रह्मर्षि उत्तङ्क ने उसको रोका था ॥३३॥ उत्तङ्क ने कहा—हे पार्थिव ! आपका रक्षा करना कार्य है, आपको उसे करना चाहिये। मैं उद्वेग रहित होकर तप नहीं कर सकता हूँ ॥३४॥ हे नृपते ! मेरे आश्रम के समीप सम मरुधन्वाओं में बालुका से परिपूर्ण समुद्र वहाँ पर स्थित रहता है ॥३५॥

देवतानामवध्यस्तु महाकायो महाबल ।
अन्तर्भूमि गतस्तत्र बालुकान्तर्हितो महान् ॥३६॥
स मनोस्तनय क्रूरो धुन्धुर्नाम सुदारुणः ।
शत लोक विनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ॥३७॥
संवत्सरस्य पर्यन्ते स निश्वास प्रमुञ्चति ।
यदा तदा मही तत्र चलिता स्म सकानना ॥३८॥
तस्य निश्वासवातेन रज उद्धूयते महत् ।
आदित्यपथमावृत्य सप्ताह भूमिकम्पनम् ॥३९
सविस्फुलिङ्ग सज्वाल सधूममतिदारुणम् ।
तेन राजन्न शक्नोमि तस्मिन् स्थातु स्व आश्रमे ॥४०
त वारय महाबाहो लोकाना हितकाम्यया ।
तेजस्ते सुमहाविष्णुस्तेजसाप्याययिष्यति ॥४१
लोका स्वस्था भवन्त्वद्य तस्मिन् विनिहतेऽसुरे ।
त्व हि तस्य वधायाद्य समर्थ. पृथिवीपते ॥४२

यह महान् काया वाला और महान् बल वाला देवताओं का अवध्य है अर्थात् देवों के द्वारा वध करने के योग्य नहीं है। यह भूमि के अन्तर्गत वहाँ

वालुकाओं से छिपा हुआ रहता है ॥३६॥ वह मनुका पुत्र है, धुन्धु उसका नाम है और वह बड़ा दारुण है। वह सबलोकों के विनाश करने के लिये दारुण रूप में स्थित होकर रहता है ॥३७॥ वह सम्वत्सर पर्यन्त में नि श्वास का मोचन किया करता है। जब वह अपना नि स्वास छोड़ता है तब यह समस्त भूमि वनों के सहित चलायमान होजाया करती है ॥३८॥ उसके नि स्वास की वायु से बहुत रज उड़ती है और सूर्य के मार्ग को आवृत करलेती है तथा सप्ताह तक भूमि का कम्पन हुआ करता है ॥३६॥ वह कम्पन भी सामान्य नहीं होता है उसमें स्फुलिङ्ग अर्थात् अग्निकण होते हैं ज्वाला युक्त, धूम से समन्वित और अत्यन्त ही दारुण होता है। हे राजन् ! इस कारण से उस अपने आश्रम में मैं ठहर नहीं सकता हूँ ॥४०॥ हे महान् बाहुओं वाले ! उसका निवारण करो और हमारे हितकी कामना से उसे हटाओ। आपका तेज महाविष्णु है आप तेजसे भी गोक दे गे ॥४१॥ उस असुर के मृत होजाने पर आज लोक स्वस्थ होवें। हे पृथिवी के पति ! आपही उसके वध करने में समर्थ होते हैं ॥४२॥

विष्णुना च वरो दत्तो मम पूर्व्वं ततोऽनघ ।
न हि धुन्धुर्महावीर्यस्तेजसाल्पेन शक्यते ॥४३
निर्द्दग्धु पृथिवीपाल अपि वर्षशतैरिह ।
वीर्य्यं हि सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासहम् ॥४४
एवमुक्तस्तु राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना ।
कुवलाश्व सुत प्रादात्तस्मिन् धुन्धुनिवारणे ॥४५
राजा सन्यस्तशस्त्रोऽहमयन्तु तनयो मम ।
भविष्यति द्विज श्रेष्ट धुन्धुमारो न संशय ॥४६
स त व्यादिश्य तनय धुन्धुमारणमुद्यतम् ।
जगाम पर्व्वतायैव तपसे शंसितव्रत ॥४७
कुवलाश्वस्तु धर्मात्मा पितुर्वचनमास्थित ।
सहस्रं रेकविंशत्या पुत्राणां सह पार्थिव ।
प्रायादुत्तङ्क सहितो धुन्धोस्तस्य निवारणे ॥४८

समाविशत्ततो विष्णुर्भगवान् स्वेन तेजसा ।
उत्तङ्कस्य नियोगात्तु लोकाना हितकाम्यया ॥४६

हे अनघ ! विष्णु ने मुझे पहिले वरदान दिया था महान् वीर्य वाला धुन्धु प्रत्य तेज वाले किसी के भी द्वारा मारा नही जा सकता है ॥४३॥ हे पृथिवी पाल ! सौ वर्षों मे भी वह निदग्ध नही किया जा सकता है। उसका पराक्रम बहुत ही अधिक है जिसको कि देवगण भी सहन नहीं कर सकते हैं ॥४४॥ महात्मा उत्तङ्क के द्वारा इस प्रकार से कहने पर उस राजर्षि ने उस धुन्धु को हटाने के कार्य के लिये अपने पुत्र कुवलाश्व को दे दिया था ॥४५॥ मैं शस्त्र त्याग करने वाला होगया यह मेरा पुत्र राजा है। यह धुन्धु के मारने वाला होगा, हे द्विज श्रेष्ठ ! इसमे कुछ भी संशय नही है ॥४६॥ वह धुन्धु के मारण मे उद्यत उस पुत्र को आज्ञा देकर स्वय संशित व्रतवाला होते हुए तप करने के लिये पर्वत पर चला गया था ॥४७॥ धर्मात्मा कुवलाश्व पिता के वचनो मे आस्थित होकर एक विशति सहस्र पुत्रो के साथ वह राजा उत्तङ्क के साथ धुन्धु के निवारण करने के कार्य मे दिया था ॥४८॥ इसके पश्चात् भगवान् विष्णु ने तेज के द्वारा उत्तङ्क के नियोग से लोको के हित की कामना से उसमे प्रवेश किया था ॥४६॥

तस्मिन् प्रयाते दुर्द्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत् ।
अद्यप्रभृत्येष नृपो धुन्धुमारो भविष्यति ॥५०
दिव्यैं पुष्पैश्च त देवा समन्तत अद्भुतम् ।
स गत्वा पुरुष व्याघ्रस्तनयै सह वीर्य्यवान् ॥५१
समुद्र खनयामास वालुकार्णवमव्ययम् ।
नारायणेन राजर्षिस्तेजसाप्यायितो हि स ॥५२
बभूवातिबलो भूय उत्तङ्कस्य वचो स्थित ।
तस्य पुत्रैः खनद्भिश्च वालुकान्तर्हितस्तदा ॥५३
धुन्धुरासादितस्तत्र दिशमाश्रित्य पश्चिमाम् ।
मुखजेनाग्निना मुद्धो लोकानूद्वर्त्त यन्निव ॥५४

वारि सुस्राव योगेन महोदधिरिवोदये।
सोमस्य सोमपथ्र ष धारोर्मिकलिलो महान् ॥५५
तस्य पुत्रास्तु निर्दग्धास्त्रिभिरूनास्त राक्षसा ।
तत स राजातिबलो धुन्धुबन्धुनिबर्हण ॥५६
तस्य वारिमय वेगमपिवत् स नराधिप ।
योगी योगेन वह्निं वा शमयामास वारिणा ॥५७
निरस्यत्त महाकाय बलेनोदकराक्षसम् ।
उत्तङ्क दर्शयामास कृतकर्मा नराधिप ॥५८

उस धुन्धु के प्रयाण करने पर दिव से एक महान् शब्द हुआ कि आज से लेकर यह राजा धुन्धुमार इस नाम से प्रथित हो जायगा। यह आकाशवाणी हुई थी ॥५०॥ देवगण ने दिव्य पुष्पों के द्वारा अति अद्भुत उसका समर्चन किया था और वह पुरुष व्याघ्र वीर्य वाला पुत्रों के साथ वहाँ गया था ॥५१॥ नारायण के तेज से आप्यायित उस राजर्षि ने वहाँ उस बालुकामय अव्यय समुद्र का खनन किया था ॥५२॥ वह अत्यन्त बलवान् राजा उत्तङ्क के वश में स्थित हुआ था। उस समय खनन करने वाले उस राजा के पुत्रों ने बालुकाओं में छिपा हुआ वह धुन्धु प्राप्त कर लिया था जोकि पश्चिम दिशा में आश्रम बना कर मुख से उत्पन्न अग्नि से मानो लोकों का उद्वर्तन करता हुआ था बहुत ही क्रुद्ध हो रहा था ॥५३ ५४॥ सोम के उदय में समुद्र की भाँति योग से जल छोड़ता है सोम पान करने वालों में श्रेष्ठ ! महान् धार की उर्मियों से परिप्लुत होगया था ॥५५॥ उसके पुत्र निर्दग्ध हो गये थे राक्षस तीन ही कम थे इसके अनन्तर धुन्धु के बन्धुओं का निबर्हण करने वाले अति बलवान् नराधिप ने उसके जलमय वेग को पी लिया था। योगी ने योग के द्वारा अग्नि पर जल से शमन कर लिया था ॥५६ ५७॥ बल से उदक राक्षस महान् काय वाले उसका निरसन कर लिया और नराधिप ने अपना कार्य समाप्त कर उत्तङ्क को दिखला दिया था ॥५८॥

उत्तङ्क्श्च वरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने ।
अदात्तस्याक्षय वित्त शत्रुभिश्चाप्यधृष्यताम् ॥५९

धर्म्मे रतिश्च सततं स्वर्गे वासं तथाक्षयम् ।
पुत्राणां चाक्षयाल्लोकान् स्वर्गे ये राक्षसा हताः ॥६०
तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते ।
भद्राश्व कपिलाश्वश्च कनीयांसौ तु तौ स्मृतौ ॥६१
धौन्धुमारिर्दृढाश्वस्तु हर्यश्वस्तस्य चात्मजः ।
हर्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत् क्षत्रधर्मरतः सदा ॥६२
संहताश्वो निकुम्भस्य श्रुतो रणविशारदः ।
कृशाश्वश्चाक्षयाश्वश्च संहताश्व सुतावुभौ ॥६३
तस्य पत्नी हैमवती सतां मतिदृषद्वती ।
विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रस्तस्याः प्रसेनजित् ॥६४
युवनाश्वः सुतस्तस्य त्रिषु लोकेष्वतिद्युतिः ।
अत्यन्तधार्मिको गौरी तस्य पत्नी पतिव्रता ॥६५
अभिशस्ता तु सा भर्त्रा नदी सा बाहुदा कृता ।
तस्यास्तु गौरिकः पुत्रश्चक्रवर्त्ती बभूव ह ॥६६
मान्धाता यौवनाश्वो वै त्रैलोक्यविजयी नृपः ।
अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोकौ पौराणिका द्विजाः ॥६७
यावत्सूर्य उदयति यावच्च प्रतितिष्ठति ।
सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते ॥६८

उत्तङ्क ने उस महान् आत्मा वाले राजा को वरदान दिया था और उसे अक्षय धन तथा शत्रुओं के द्वारा अधर्षित होने का भी वर दिया था।५६। मुनि ने राजा को धर्म मे प्रेम सदा स्वर्ग मे निवास जोकि कभी क्षीण न हो, पुत्रों को अक्षय लोक जोकि स्वर्ग मे राक्षस दग्ध हुए, दिया था ॥६०॥ उसके तीन पुत्र शेष रहे उनमे दृढाश्व कहा जाता है। भद्राश्व और कपिलाश्व दो छोटे कहे गये हैं ॥६१॥ दृढाश्व धौन्धुमारि था और उसका हर्यश्व हुआ था। हर्यश्व का क्षत्रधर्म मे रति रखने वाला निकुम्भ पुत्र हुआ था ॥६१-६२॥ निकुम्भ का रण विशारद परम पण्डित संहताश्व पुत्र हुआ था। संहताश्व के कृशाश्व और अक्षयाश्व ये दो पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥६३॥ सत्पुरुषों की मति

दृषद्वती हैमवती नाम वाली उसकी पत्नी थी जो कि तीनों लोकों में परम विख्यात थी, उसका पुत्र प्रसेनजित् हुआ था ॥६४॥ उसका पुत्र तीनों लोकों में अत्यन्त द्युतिवाला युवनाश्व हुआ था जोकि अत्यन्त धार्मिक था उसकी पतिव्रता पत्नी गौरी थी ॥६५॥ वह उसके स्वामी के द्वारा अभिशप्त हुई और वह बाहुदा नदी कर दी गई थी। उसका पुत्र गौरिक चक्रवर्ती हुआ था ॥६६॥ मान्धाता यौवनाश्व त्रैलोक्य के विजय करने वाला राजा हुआ था। यहाँ पर भी पौराणिक द्विज दो श्लोकों को कहा करते हैं ॥६७॥ जब तक सूर्य उदित होता है और जब तक वह यहाँ प्रतिष्ठित रहता है वह समस्त यौवनाश्व मान्धाता का क्षेत्र कहा जाता है ॥६८॥

अत्राप्युदाहरन्तीम श्लोकं वंशविदो जनाः ।
यौवनाश्वं महात्मानं यज्वानममितौजसम् ।
मान्धाता तु तनुर्विष्णोः पुराणज्ञा प्रचक्षते ॥६९
तस्य चैत्ररथी भार्या शशबिन्दोः सुताऽभवत् ।
साध्वी बिन्दुमती नाम रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥७०
पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातृणामयुतस्य सा ।
तस्यामुत्पादयामास मान्धाता त्रीन् सुतान् प्रभुः ॥७१
पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दञ्च विश्रुतम् ।
अम्बरीषस्य दायादो युवनाश्वोऽपरः स्मृतः ॥७२
हरितो युवनाश्वस्य हारिता यस्य स्मृताः ।
एते ह्याङ्गिरसः पुत्राः क्षात्रोपेता द्विजातयः ॥७३
पुरुकुत्सस्य दायादस्त्रसदस्युर्महायशाः ।
नर्मदायां समुत्पन्नः सम्भूतस्तस्य चात्मजः ॥७४
सम्भूतस्यात्मजः पुत्रो ह्यनरण्यः प्रतापवान् ।
रावणेन हतो येन त्रिलोकीविजये पुरा ॥७५

यहाँ पर वंश के वेत्ताजन इस श्लोक को उदाहृत करते हैं। महान् आत्मा वाला—यज्ञ—अमित बलवाला यौवनाश्व का मान्धाता तो विष्णु का तनु था पुराणों के ज्ञाता ऐसा कहते हैं ॥६९॥ उसकी चैत्ररथी भार्या हुई थी

सोऽभवद्गालवो नाम गले वद्धो महातपा ।
महर्षिः कौशिकस्तातस्तेन वीर्येण मोक्षित ॥९०

भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने इसको आश्रम नहीं दिया और धीमान् वह सत्यव्रत पिता के द्वारा मुक्त किया गया। और श्वपाकों के घर के समीप में रहने लगा और इसका पिता वन में चला गया था ॥८४॥ उसके उस देश में इन्द्र ने वर्षा नहीं की और उस समय उस अधर्म से बारह वर्ष पूरे वर्षा नहीं हुई ॥८५॥ महान् तपस्वी विश्वामित्र ने उसके देश में स्त्रियों को छोड़ कर सागरानूप में बड़ा भारी तप किया था ॥८६॥ उसकी पत्नी ने मध्यम और सपुत्र को गले में बाँधकर शिखा से मरणार्थ के लिये सौ गौएँ बेचदिया था। नरों में श्रेष्ठ सुव्रत ने उसको गले में बंधा हुआ और विक्रीत देख कर उस महर्षि पुत्र को धर्मात्मा ने मुक्त करा दिया था ॥८७-८८॥ महान् बुद्धि वाले सत्य व्रतने उनका भरण किया था और यह विश्वामित्र के सन्तोष तथा अनुकम्पा के लिये ही किया था ॥८९॥ वह महा तपस्वी गले में बद्ध गालव नाम वाला हुआ था। महर्षि कौशिक उसके तात थे क्योंकि उसने पराक्रम से मुक्त कराया था ॥९०॥

तस्य व्रतेन भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया ।
विश्वामित्रकलत्रञ्च बभार विनये स्थित ॥९१
हत्वा मृगान् वराहाश्च महिषाश्च वनेचरान् ।
विश्वामित्राश्रमाभ्याशे तन्मांसमपचत्ततः ॥९२
उपांशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ।
पितुर्नियोगादभजन्नृपे तु वनमास्थिते ॥९३
अयोध्याञ्चैव राज्यञ्च तथैवान्त पुर मुनिः ।
याज्योपाध्यायसम्बन्धाद्वसिष्ठ परिरक्षित ॥९४
सत्यव्रतस्तु बाल्यात्तु भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ।
वसिष्ठेऽप्यधिक मन्यु धारयामास मन्युना ॥९५
पित्रा स्वदस्तदा राष्ट्रात् परित्यक्त स्वमात्मजम् ।
न वारयामास मुनिर्वसिष्ठ कारणेन वै ॥९६

उसके वध से-भक्ति से-कृपा से और प्रतिज्ञा से विनय से स्थित होकर विश्वामित्र की स्त्री का भरण किया था ॥६१॥ मृगों को वराहों को और वनमें विचरण करने वाले महिषों को मार कर विश्वामित्र के आश्रम के समीप में उनके मांस को पकाया था ॥६२॥ उपांशु व्रत से आश्रित होकर बारह वर्ष की दीक्षा को राजा के वनमें चले जाने पर पिता की आज्ञा से सेवन किया था ।६३। अयोध्या को-राज्य से तथा अन्तःपुर को याज्योपाध्याय के योग से मुनि वसिष्ठ ने परिरक्षित किया था ॥६४॥ सत्यव्रत ने बाल्यकाल से भावि अर्थ के बल से वसिष्ठ पर अत्यधिक क्रोध धारण किया था ॥६५॥ पिता के द्वारा रोते हुए उस समय राष्ट्र से परित्यक्त अपने आत्मज को मुनि वसिष्ठ ने कारण वश वारण नहीं किया था ॥६६॥

पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे ।
एव सत्यव्रतस्तान् वै हृतवान् सप्तमे पदे ॥६७
जानन् धर्म्मान् वसिष्ठस्तु न च मन्त्रानिहेच्छति ।
इति सत्यव्रते रोषं वसिष्ठो मनसाकरोत् ॥६८
गुरुबुद्ध्या तु भगवान् वसिष्ठः कृतवांस्तदा ।
न तु सत्यव्रतो बुद्ध्वा उपांशुव्रतमस्य वै ॥६९
तस्मिन्नपरते यो वै पितुरासीन्महात्मना ।
तेन द्वादशवर्षाणि नावर्षत् पाकशासनः ॥१००
तेन दिव्यानी यद्दीक्षा दीक्षा सा दुर्वला भुवि ।
कुलस्य निष्कृतिं न्यस्य कृतेयं च भवेदिति ॥१०१
ततो वसिष्ठो भगवान् पित्रा त्यक्तं न्यवारयत् ।
अभिषेक्ष्याम्यहं राज्ये पश्चादेनमिति प्रभुः ॥१०२
स तु द्वादशवर्षाणि दीक्षान्तामुद्वहन् बली ।
अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः ॥१०३
सर्वकामदुघां धेनुं स ददर्श नृपात्मजः ।
तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्च क्षुधान्वितः ॥१०४
पाणिग्रहण के मन्त्रों की निष्ठा सात पद में होती है । इसी प्रकार से

सत्यव्रत ने सप्तम पद में उनको किया था ॥९७॥ वसिष्ठ मुनि धर्मों को जानते हुए वहाँ पर मन्त्रों को नहीं चाहते हैं। इसलिये वसिष्ठ ने सत्यव्रत पर मन से रोष किया था ॥९८॥ भगवान् वसिष्ठ ने उस समय बुद्धि से गुरू किया था। सत्यव्रत ने इसकी बुद्धि से उपांशुव्रत नहीं किया था ॥९९॥ उसके उपरत होने पर जो जिसके पिता का महामना था उससे इन्द्रदेव बारह वर्ष तक नहीं बरसे थे ॥१००॥ इससे इस समय प्राय उस दुर्बल दीक्षा को भूमि पर कुलकर्ता और अपनी निष्कृति यह की हुई होनी चाहिए ॥१०१॥ इसके पश्चात् भगवान् वसिष्ठ ने पिता के द्वारा त्यक्त को निवारण किया था और प्रभु ने पीछे से इसको राज्यासन पर अभिषिक्त करूँगा–कहा—॥१०२॥ बली उसने द्वादश वर्ष तक दीक्षान्ता को उद्वहन करते हुए महात्मा वसिष्ठ के मास के अविद्यमान होने पर नृपात्मज ने समस्त कामनाओं के दोहन करने वाली धेनु को देखा था और उसको देखकर क्रोधसे–मोहसे और श्रमसे क्षुधा से युक्त हुआ ॥१०४॥

दस्युधर्म्मं गतो दृष्ट्वा जघान बलिना वरः।
स तु मास स्वय चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान् १०५
भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठस्त तदात्यजत्।
प्रोवाच चैव भगवान् वसिष्ठस्त नृपात्मजम् ॥१०६
पातये क्रूर हे क्रूर तव शकुमयोमयम्।
यदि ते त्रीणि शकूनि न स्युर्हि पुरुषाधम ॥१०७
पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च।
अप्रोषितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रम ॥१०८
एव स त्रीणि शकूनि दृष्ट्वा तस्य महातपा।
त्रिशकुरिति होवाच त्रिशकुस्तेन स स्मृत ॥१०९
विश्वामित्रस्तु दाराणामागतो भरणे कृते।
ततस्तस्मै वर प्रादात्तदा प्रीतस्त्रिशङ्कवे ॥११०

बलियों में श्रेष्ठ ने देखकर दस्यु के धर्म को प्राप्त हुए धेनु हनन किया और उसने स्वय माँस को विश्वामित्र के आत्मजों को खिलाया था। यह श्रवण करके वसिष्ठ ने उसे उसी समय त्याग दिया था और भगवान् उस नृप के

आत्मज से बोले ॥१०८-१०६॥ हे क्रूर ! हे पुरुषों मे अधम ! यदि तुझे तीन शकु नही हो तो तुझे शकुमय भय मे पालन करता हू ॥१०७॥ पिता के अपरितोप होने मे—गुरु की दोग्ध्री धेनु के वध करने से और अप्रोषित के उपयोग से तेरा तीन प्रकार का व्यतिक्रम है ॥१०८॥ इस प्रकार से उसके तीन शकुओ को देखकर महातपस्वी उसे त्रिशकु इस नाम स बोले और इससे वह त्रिशकु कहा गया है ॥१०६॥ आये हुए विश्वामित्र ने दाराओ के भरण करने पर तब त्रिशकु स प्रसन्न होते हुए उसे वरदान दिया था ॥११०॥

छन्द्यमानो वरेणाथ गुरु ब्रवे नृपात्मज ।
अनावृष्टिभये तस्मिन् गते द्वादशवार्षिके ॥१११
अभिषिच्य राज्ये पित्र्ये याजयामास त मुनि ।
मिपता दैवतानाञ्च वसिष्ठस्य च कौशिक ।
सशरीर तदा त वै दिवमारोपयत् प्रभु ॥११२
मिपतस्तु वसिष्ठस्य तदद्भुतमिवाभवत् ।
अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोकौ पौराणिका जना ॥११३
विश्वामित्रप्रसादेन त्रिशकुर्दिवि राजते ।
देवै सार्द्ध महातेजानुग्रहात्तस्य धीमत ॥११४
शनैर्यात्यबला रम्या हेमन्ते चन्द्रमण्डिता ।
अलकृता त्रिभिर्भावैस्त्रिशकुग्रहभूपिता ॥११५
तस्य सत्यरता नाम भार्य्या केकमवशजा ।
कुमार जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मपम् ॥११६

बारह वप के अनावृष्टि के भय के चले आने पर वर से छन्द्यमान होते हुए नृपात्मज गुरु से बोला ॥१११॥ पिता के राज्य पर अभिषेक करके कौशिक मुनि ने मिप होने वाले देवताओ के और वसिष्ठ के लिए यजन कराया था। तब प्रभु विश्वामित्र ने उस त्रिशकु को शरीर के सहित स्वग म आरोपित कराया था ॥११२॥ मिप होते हुए वसिष्ठ को वह एक अद्भुत काय जैसा हुआ था। यहाँ पर भी पौराणिक पुरुष इन दो श्लोको को उदाहृत किया करत हैं ॥११३॥ विश्वामित्र मुनि के प्रसाद से त्रिशकु स्वग म शोभा देता है। परा

धीमान् उसके अनुग्रह से जोकि महान् तेज से युक्त है वह त्रिशकु देवो के साथ स्वर्ग मे विराजमान होता है ।।११४।। त्रिशकु ग्रह से भूषित तीन भावो से अलङ्कृत चन्द्र से मण्डित रम्य प्रजला हेमन्त मे शनै शनै जाती है ।।११५।। उसकी सत्य मे रत रहने वाली अर्थात् सत्यरता इस नाम वाली भार्या जोकि केकय के वश मे जन्मी थी उसने कल्मष से रहित हरिश्चन्द्र कुमार को जन्म दिया था ।।११६।।

स तु राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कव इति श्रुत ।
आहर्त्ता राजसूयस्य सम्राडिति परिश्रुत ।।११७
हरिश्चन्द्रस्य तु सुतो रोहितो नाम वीर्य्यवान् ।
हरितो रोहितस्याथ चञ्चुहारीत उच्यते ।।११८
विजयश्च सुदेवश्च चञ्चुपुत्रौ बभूवतु ।
जेता सर्व्वस्य क्षत्रस्य विजयस्तेन स स्मृत ।।११९
रुरुकस्तनयस्तस्य राजा धर्मार्थकोविद ।
रुरुकाद्धृतक: पुत्रस्तस्माद्बाहुश्च जज्ञिवान् ।।१२०
हैहयैस्तालजङ्घैश्च निरस्तो व्यसनो नृप ।
शकैर्यवनकाम्बोजै पारदै पह्लवैस्तथा ।।१२१
नात्यर्थं धार्म्मिकोऽभूत् स धर्म्म्ये सत्ययुगे तथा ।
सगरस्तु सुतो बाहोर्जज्ञे सह गरेण वै ।
भृगोराश्रममासाद्य तुर्वेण परिरक्षित ।।१२२
आग्नेय मस्त्र लब्ध्वा तु भार्गवात् सगरो नृप ।
जघान पृथिवीं हत्वा तालजघान् सहैहयान् ।।१२३

वह राजा हरिश्चन्द्र त्रैशङ्कव इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था। वह राजसूय का आहरण करने वाला तथा सम्राट् परिश्रुत हुआ था ।।११७।। सम्राट् हरिश्चन्द्र का पुत्र वीर्यवान् रोहित नाम वाला था। रोहित का हरित पश्चात् चञ्चुहारीत कहा जाता है ।।११८।। चञ्चु हारीत के विजय और सुदेव दो पुत्र हुए थे। समस्त क्षत्रियों को वह जीतने वाला था इसलिए वह विजय कहा गया है ।।११९। वही रुरुक पुत्र हुआ जोकि धर्म और अर्थ का पण्डित राजा था। रुरुक से

हृतक पुत्र हुआ और उससे बाहु उत्पन्न हुआ ॥१२०॥ वह व्यसनी राजा हैहय–तालजङ्घ–शक–यवन–काम्बोज–पारद और पह्लवों के द्वारा निरस्त किया गया था ॥१२१॥ वह अत्यन्त धार्मिक उस धर्म युक्त सत्य युग में नहीं हुआ था। बाहु का पुत्र सगर गरके साथ उत्पन्न हुआ था। भृगु के आश्रम में पहुँच कर उन्हें के द्वारा परिरक्षित हुआ था ॥१२२॥ उस सागर नृप ने भार्गव से आग्नेय अस्त्र को प्राप्त कर पृथ्वी पर जाकर उसने तालजङ्घों को हैहयों का हनन किया था ॥१२३॥

शकानां पह्लवानाञ्च धर्म्मान्निरसदच्युत ।
क्षत्रियाणां तथा तेषां पारदानाञ्च धर्मवित् ॥१२४
कथं स सगरो राजा गरेण सह जज्ञिवान् ।
किमर्थञ्च शकादीनां क्षत्रियाणां महौजसाम् ।
धर्म्मान् कुलोचितान् क्रुद्धो राजा निरसदच्युत ॥१२५
बाहोर्व्यसनिनस्तस्य हृतं राज्यं पुरा किल ।
हैहयैस्तालजङ्घैश्च शकैः सार्द्धं समागतैः ॥१२६
यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्लवास्तथा ।
हैहयार्थे पराक्रान्ता एते पञ्चगणास्तदा ॥१२७
हृतं राज्यं वशीयोभिरेभिः क्षत्रियपुङ्गवैः ।
हृतराज्यस्तदा बाहुः सन्यस्य नु तदा नृपः ।
वनं प्रविश्य धर्म्मात्मा सह पत्न्या तपोऽचरत् ॥१२८
कस्यचित्त्वथ कालस्य तोयार्थं प्रस्थितो नृपः ।
वृद्धत्वाद् दुर्बलत्वाच्च अन्तरा स ममार च ॥१२९
पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात् ।
सपत्न्या तु गरस्तस्यै दत्तो गर्भजिघांसया ॥१३०

अच्युत ने शकों को तथा पह्लवों को धर्म से निरस्त कर दिया था। धर्म के ज्ञाता ने इसी प्रकार उन क्षत्रिय पारदों को भी कर दिया था ॥१२४॥ ऋषियों ने कहा—वह सगर राजा गर के साथ किस तरह उत्पन्न हुआ था? और किस लिए शकादि क्षत्रिय जो महान् ओज वाले थे, अच्युत राजा ने क्रुद्ध

होकर कुलोचितों को धर्मों को निरस्त किया था ॥१२५॥ श्री सूतजी ने कहा—पहिले समय से व्यसन वाले वस बाहु जा का सम्पूर्ण राज्य हरण कर लिया था और उसके हरण वाले शब्दों के साथ आये हुए हैहय और तालजङ्घ थे। ॥१२६॥ यवन—वारद—काम्बोज और पह्लव ये पाँच गण उसम श्रेष्ठ अधिक बल वालों के द्वारा उसके राज्य का हरण किया गया था। जब उस समय वह राज्य हीन होगया तो वह बाहु राजा सन्यास ग्रहण करके वन मे प्रविष्ट होगया और धर्मात्मा उसने अपनी पत्नी के साथ तपश्चर्या की थी ॥१२८॥ किसी काल के बल के लिये राजा ने प्रस्थान किया था किन्तु वह वृद्ध होने के तथा दुर्बल होने के कारण से बीच मे मर गया था ॥१२६॥ उसकी पत्नी यादवी गर्भ मे युक्त थी वह भी उसके पीछे से गई थी। उसकी सपत्नी ने गर्भ के मारने की इच्छा से उसे गर दे दिया था ॥१३०॥

सा तु भर्तुश्चितां कृत्वा वह्नौ त समरोहयत्।
औवंस्ता भार्गवो दृष्ट्वा कारुण्याद्विन्यवर्त्तयत् ॥१३१
तस्याश्रमे तु तद्गर्भं सा गरेण तदा सह।
व्यजायत महाबाहु सगर नाम धार्मिकम् ॥१३२
औवंस्तु जातकर्मादीन् कृत्वा तस्य महात्मन ।
अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्र प्रत्यपादयत् ॥१३३
जामदग्न्यात्तदाग्नेयमसुरैरपि दु सहम्।
स तेनास्त्रबलेनैव बलेन च समन्वित ।
जघान हैहयान् क्रुद्धो रुद्र पशुगणानिव ॥१३४
ततः शकान् सयवनान् काम्बोजान् पारदास्तथा।
पह्लवाश्चैव नि शेषान् कर्तुं व्यवसितो नृप ॥१३५
ते वध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना।
वसिष्ठ शरण सर्वे प्रपन्ना शरणैषिण ॥१३६
वसिष्ठस्तान् तथेत्युक्त्वा समयेन महामुनि ।
सगर वारयामास तेषान्दत्त्वाऽभयन्तदा ॥१३७

उस यादवी ने अपने स्वामी की चिता बनाकर अग्नि मे उसके साथ

समारूढ होगयी थी। और्व भार्गव ने उसे देखकर करुणा से उसे निवारण किया था ॥१३१॥ उसके आश्रम में उस समय उसने उस गर्भ को गर (विष) के साथ महान् बाहुओं वाले परम धार्मिक सगर नाम वाले को जन्म दिया था ॥१३२॥ और्व ने उस महात्मा के जात कर्मादि संस्कारों को करके फिर वेद शास्त्रों का पढाया और इसके अनन्तर अस्त्रों की विद्या सिखाकर अस्त्र दिये ॥१३३॥ जामदग्न्य से वह आग्नेय अस्त्र प्राप्त किया अतिक असुरों को भी दुसह था। उसने उस अस्त्र के बल से ही तथा बल से समन्वित होते हुए अत्यन्त क्रुद्ध होकर जैसे रुद्र पशुगणों को हनन करते हैं उसी भाँति उसने हैहयों का वध कर दिया ॥१३४॥ इसके अनन्तर शकों को–यवनों को–काम्बोजों को–पारदों को तथा पह्लवों को सबको निःशेष करने का राजा ने स्थिर कर लिया था ॥१३५॥ वीर और महान् आत्मा वाले सगर के द्वारा वध्यमान वे सब शरण की इच्छा वाले होते हुए वसिष्ठ मुनि की शरणागति में उपस्थित होगये थे ॥१३६॥ वसिष्ठ मुनि ने उनको 'तुम्हारी रक्षा होगी' तथास्तु यह कहकर महामुनि ने प्रतिज्ञा की और उन सबको अभय दान देकर सगर को वध करने से वारण कर दिया था ॥१३७॥

सगरः स्वां प्रतिज्ञाञ्च गुरोर्वाक्यं निशम्य च।
धर्मं जघान तेषां वै वेषान्यत्वं चकार ह ॥१३८
अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत्।
यवनानां शिरः सर्वं काम्बोजानान्तथैव ॥१३९
पारदा मुक्तकेशाश्च पह्लवाः श्मश्रुधारिणः।
निःस्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना ॥१४०
शका यवनकाम्बोजाः पह्लवाः पारदैः सह।
केलिस्पर्शा माहिषिका दार्वाश्चोला खसास्तथा ॥१४१
सर्वे ते क्षत्रियगणा धर्मस्तेषां निराकृतः।
वसिष्ठवचनात्पूर्वं सगरेण महात्मना ॥१४२
स धर्मविजयी राजा विजित्येमां वसुन्धराम्।
अश्वं विचारयामास वाजिमेधाय दीक्षितः ॥१४३

तस्य चारयत सोऽश्व समुद्रे पूर्वदक्षिणे ।
वेलासमीपेऽपहृतो भूमिश्चैव प्रवेशित ॥१४४

सगर ने अपनी प्रतिज्ञा को और गुरु के वाक्य को श्रवण कर उनके धर्म का हनन किया और वेषान्यत्व किया था ॥१३८॥ शक जाति वालों का आधा शिर मुंडवा कर उन्हें छोड दिया-यवन जाति वालो का समस्त शिर मुंडवा दिया और काम्बोजो को भी ऐसा ही किया था ॥१३६॥ पारदो को मुक्त केश और पह्लवो को श्मश्रुधारी-स्वाध्याय से हीन तथा वषट्कार से रहित उस महात्मा ने कर दिया था ॥१४०॥ शक-यवन-काम्बोज-पह्लव-पारद-कैलिसपर्श-माहिषिक-दार्व-चोल और खस ये समस्त क्षत्रियो के जो गण थे इन सबका वसिष्ठ मुनि के वचन से महात्मा सगर ने धर्म निराकृत कर दिया था ॥१४१॥ ॥१४२॥ उस धर्म से विजय प्राप्त करने वाले राजा सगरने इस समस्त भूमण्डल को जीत कर वाजिमेध यज्ञ के करने के लिये दीक्षित होते हुए उसने यज्ञ के अश्व को विचरण कराया था ॥१४३॥ उसका घुमाया जाने वाला वह अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा पूर्व दक्षिण समुद्र पर वेला के समीप मे अपहरण किया गया था और उसे अपहृत करके भूमि के अन्दर प्रवेशित कर दिया गया था ॥१४४॥

स तन्देश सुतै. सर्वैं खनयामास पार्थिवः ।
आसेदुश्च ततस्तस्मिस्तदन्तस्ते महार्णवे ॥१४५
तमादिपुरुष देव हरिं कृष्ण प्रजापतिम् ।
विष्णु कपिलरूपेण हस नारायण प्रभुम् ॥१४६
तस्य चक्षु समासाद्य तेजस्तत् प्रतिपद्यते ।
दग्धा पुनास्तदा सर्वे चत्वारस्त्ववशेषिता ॥१४७
बर्हिकेतुः सकेतुश्च तथा धर्मरतस्तय ।
शूर पञ्चवनश्चैव तस्य वशकरा प्रभो ॥१४८
प्रादाच्च तस्य भगवान् हरिर्नारायणो वरान् ।
अक्षयत्व स्ववशस्य वाजिमेधशत तथा ।
विभु पुत्र समुद्रञ्च स्वर्गे व स तथाक्षयम् ॥१४६

स समुद्रोऽश्वमादायव वन्दे (?) सरितांपतिः ।
सागरत्वं च लेभे स कर्मणा तेन तस्य वै ॥१५०
तं चाश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रात् प्राप्य पार्थिवः ।
आजहाराश्वमेधानां शतं चैव पुनः पुनः ॥१५१

तस्मात् सगर ने उसी स्थान को पुत्रों के द्वारा जो कि संख्या में साठ हजार थे खुदवाया था। इसके अनन्तर उस स्थान में उसके नीचे महार्णव में उन्होंने देखा कि वहाँ आदि पुरुष हरि–कृष्ण–प्रजापति–विष्णु–हर–प्रभु नारायण कपिल मुनि के स्वरूप में स्थित हैं ॥१४४-१४६॥ उनके नेत्र के सामने प्राप्त होते ही उनका तेज ऐसा तीव्र था कि उसी समय वे सब अशक्तर दग्ध एवं भस्मी भूत होगये थे केवल चार ही अवशिष्ट बचे थे ॥१४७॥ जो चार बचगये थे वे बर्हिकेतु–सुकेतु–धर्मरत ये तीन थे और शूर पञ्चजन था जो कि उसके वंश के करने वाले थे ॥१४८॥ भगवान् हरि नारायण ने उसको वरदान दिया था कि अपने वंश का अक्षयत्व–गो–वाजिमेध–शिशु पुत्र और समुद्र तथा स्वर्ग में अक्षीण निवास हो ॥१४९॥ यह नदियों का पति समुद्र अश्व को लेकर आया और वन्दना की। उस कर्म से उसने सागरत्व की प्राप्ति की थी ॥१५०॥ उस राजा ने समुद्र से उस आश्वमेधिक अश्व की प्राप्ति कर फिर बार-बार सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे ॥१५१॥

षष्टिपुत्रसहस्राणि दग्धान्यश्वानुसारिणाम् ।
तेषां नारायणं तेजः प्रविष्टानां महात्मनाम् ।
पुत्राणान्तु सहस्राणि षष्टिस्तु इति नः श्रुतम् ॥१५२
सगरस्यात्मजा राजन् कथं जाता महाबला ।
विक्रान्ता षष्टिसाहस्रा विधिना केन वा वद ॥१५३
द्वे पत्न्यौ सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्बिषे ।
ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम नामतः ॥१५४
कनीयसी तु या तस्य पत्नी परमधर्मिणी ।
अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥१५५

और्वस्ताभ्यां वरं प्रादात् तपसाराधितः प्रभुः ।
एका जनिष्यते पुत्रं वंशकर्त्तारमीप्सितम् ।
षष्टिपुत्रं सहस्राणि द्वितीया जनयिष्यति ॥१५६
मुनेस्तु वचनं श्रुत्वा केशिनी पुत्रमेककम् ।
वंशस्य कारणं श्रेष्ठा जग्राह नृपसंसदि ॥१५७
षष्टिपुत्रसहस्राणि सुपर्णभगिनी तथा ।
महात्मनस्तु जग्राह सुमतिः स्वमतिर्यथा ॥१५८

उस अश्वमेध यज्ञ के अश्व के पीछे अनुसरण करने वाले उस राजा के साठ सहस्र पुत्र दग्ध होगये और उन महात्माओं में नारायण के तेज ने प्रवेश किया था। वे पुत्र साठ हजार थे ऐसा हमने सुना है ॥१५२॥ ऋषियों ने कहा—राजा सगर के महान् बलवाले परम विक्रान्त साठ सहस्र किस विधि से उत्पन्न हुए थे कृपा करके यह हमें बतलाइये ॥१५३॥ श्री सूतजी ने कहा—राजा सगर की तपस्या से पापों को दग्ध करने वाली दो पत्नियाँ थीं। उनमें जो ज्येष्ठ थी वह विदर्भ की पुत्री नाम से केशिनी थी ॥१५४॥ छोटी जो उस राजा सगर की पत्नी थी वह बहुत ही अधिक धर्म वाली थी और अरिष्ट नेमि की पुत्री थी जो कि इस भूमि में अत्यन्त अप्रतिम रूप-सौन्दर्य से युक्त थी ॥१५५॥ तप से आराधना किये हुए प्रभु और्व ने उन दोनों को वरदान दिया था कि उनमें से एक तो वंश के चलाने वाला अभीष्ट पुत्र जनेगी और दूसरी साठ हजार पुत्रों को जनन देगी ॥१५६॥ केशिनी ने मुनि के वचन को सुनकर जो कि एक पुत्र वंश चलाने वाला बताया था उसी वरदान को नृप सभा में उसने स्वीकार कर लिया था ॥१५७॥ सुपर्ण की भगिनी ने जैसी अच्छी अपनी मति थी उसके अनुसार महात्मा के साठ सहस्र पुत्रों वाले वरदान को ग्रहण किया था ॥१५८॥

अथ काले गते ज्येष्ठा ज्येष्ठं पुत्रं व्यजायत ।
असमञ्ज इति ख्यातं काकुत्स्थं सगरात्मजम् ॥१५६
सुमतिस्त्वपि जज्ञे वै गर्भतुम्बं यशस्विनी ।
षष्टिपुत्रसहस्राणि तुम्बमध्याद्विनिःसृता ॥१६०

घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान् गर्भान् न्यदधत्तत ।
धात्रीश्चैकैकशः प्रादात् तावती पोषणे नृप ॥१६१
ततो नवसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथासुखम् ।
कुमारास्ते महाभागा सगरप्रीतिवर्द्धना ॥१६२
कालेन महता चैव यौवनं प्रतिपेदिरे ।
पुत्रषष्टिसहस्राणि तेषामश्वानुसारिणाम् ॥१६३
स तु ज्येष्ठो नरव्याघ्र सगरस्यात्मसम्भवः ।
असमञ्ज इति ख्यातो बहिर्केतुर्महाबलः ॥१६४
पौराणामहिते युक्त पित्रा निर्वासित पुरा ।
तस्य पुत्रोऽशुमानाम असमञ्जस्य वीर्यवान् ॥१६५

इसके अनन्तर समय आने पर जो बड़ी रानी थी उसने ज्येष्ठ पुत्र को उत्पन्न किया और वह सगर का पुत्र ककुत्स्थ असमञ्जस इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥१५९॥ यशस्विनी सुमति ने भी गर्भ का एक तूमा पैदा किया जिस तुम्ब से साठ हजार पुत्र निकल पड़े थे ॥१६०॥ घृत से भरे हुए कलशों में उन गर्भों को रख दिया गया था। राजा ने एक एक धाय उन सब के पोषण करने के लिये रखी थी ॥१६१॥ इसके बाद नौमास के समाप्त होने पर सगर की प्रीति के बढ़ाने वाले महाभाग वे सुख पूर्वक वे समस्त कुमार उठ खड़े हुए थे ॥१६२॥ महान् काल के व्यतीत हो जाने पर वे सब यौवनावस्था को प्राप्त हुए थे। उन अश्वमेध के अश्व का अनुसरण करने वाले ये ही साठ सहस्र सगर के पुत्र थे ॥१६३॥ जो सब में बड़ा सगर का नर व्याघ्र पुत्र था वह 'असमञ्जस'-इस नाम से ख्यात हुआ था। बहिर्केतु महान् बलवान् था ॥१६४॥ वह क्योंकि नगर निवासी जनों का अहित किया करता था। इसलिये पिता ने उसको निकाल दिया अर्थात् देश निकाला दे दिया था। उस असमञ्जस का महा पराक्रमी अंशुमान् नाम वाला पुत्र हुआ था ॥१६५॥

तस्य पुत्रस्तु धर्मात्मा दिलीप इति विश्रुत ।
दिलीपात्तु महातेजा वीरो जातो भगीरथ ॥१६६

येन गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा विमानैरुपशोभिता ।
ईजाऽनेन समुद्राद्वै दुहितृत्वेन कल्पिता ।
अत्राप्युदाहरन्तीमं श्लोकं पौराणिका जनाः ॥१६७
भगीरथस्तु तां गङ्गामानयामास कर्मभिः ।
तस्माद्भागीरथी गङ्गा कथ्यते वंशवित्तमैः ॥१६८
भगीरथसुतश्चापि श्रुतो नाम बभूव ह ।
नाभागस्तस्य दायादो नित्यं धर्मपरायणः ॥१६९
अम्बरीषः सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत् ।
एवं वंशपुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् ॥१७०
नाभागेरम्बरीषस्य भुजाभ्यां परिपालिता ।
बभूव वसुधात्यर्थं तापत्रयविवर्जिता ॥१७१
अयुतायुः सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान् ।
अयुतायास्तु दायाद ऋतुपर्णो महायशाः ॥१७२

उस अंशुमान् का का पुत्र राजा दिलीप हुआ जोकि अत्यन्त प्रसिद्ध और परम धर्मात्मा हुआ था। दिलीप से महान् तेज के धारण करने वाला राजा भगीरथ उत्पन्न हुआ ॥१६६॥ जिसने समस्त नदियों में परमश्रेष्ठ गङ्गा को जो कि विमानों से उपशोभित इसने समुद्र से दुहिता के स्वरूप में कल्पित की थी। यहाँ पर भी पौराणिक लोग इस श्लोक को उदाहृत किया करते हैं ॥१६७॥ भगीरथ कर्मों के द्वारा उस गङ्गा को यहाँ लाया था। इसीलिये उसके वंश के ज्ञाताओं के द्वारा गङ्गा भगीरथी इस नाम से कही जाती है ॥१६८॥ भगीरथ का पुत्र श्रुत नाम वाला हुआ था और उसका दायाद नित्य ही धर्म में परायण नाभाग-इस नाम वाला हुआ था ॥१६९॥ उसका पुत्र राजा अम्बरीष हुआ उसका पुत्र सिन्धुद्वीप हुआ था। इस तरह वंश के पुराण को जानने वाले गान करते हैं—यह सुना है नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुआ जिसकी भुजाओं से यह वसुधा तीनों तापों से रहित होती हुई परिपालित हुई थी ॥१७१॥ उस सिन्धुद्वीप का पुत्र अयुतायु बड़ा वीर्यवान् हुआ था और अयुतायु का दायाद महान् यश वाला ऋतुपर्ण हुआ था ॥१७२॥

जन्म ग्रहण किया था ॥१७६॥ ऐडविड प्रतापवान् श्रीमान् कुनधर्मा था। उस पुत्रीक का पुत्र विश्व महान् उत्पन्न हुआ ॥१८०॥

दितीयस्तस्य पुत्रोऽभूत् खट्वाङ्ग इति विश्रुत ।
येन स्वर्गादिहागम्य मुहूर्त्तं प्राप्य जीवितम् ।
अयोऽभिसहिता लोका बुद्धया सत्येन चैव हि ॥१८१
दीर्घबाहु सुतस्तस्य रघुस्तस्मादजायत ।
अज पुत्रो रघोश्चापि तस्माज्जज्ञे स वीर्यवान् ।
राजा दशरथो नाम इक्ष्वाकुकुलनन्दन ॥१८२
रामो दाशरथिर्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः ।
भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबल ॥१८३
माधव लवण हत्वा गत्वा मधुवनञ्च तत् ।
शत्रुघ्नेन पुरी तस्य मधुरा सन्निवेशिता ॥१८४
सुबाहुः शूरसेनश्च शत्रुघ्नसहितावुभौ ।
पालयामासतु सूनू वैदेह्यौ मधुरा पुरीम् ॥१८५
अङ्गदश्चन्द्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजावुभौ ।
हिमवत्पर्वताभ्याशे स्फीतौ जनपदौ तयो ॥१८६
अङ्गदस्याङ्गदीया तु देशे कारपथे पुरी ।
चन्द्रकेतोस्तु मल्लस्य चन्द्रवक्त्रा पुरी शुभा ॥१८७

उसका पुत्र दिलीप हुआ जो खट्वाङ्ग इस नाम से प्रसिद्ध था जिसने स्वर्ग से यहाँ भूमण्डल में आकर मुहूर्त्तभर जीवन पाकर बुद्धि से और सत्य से तीनों लोकों को अभिसहित कर दिया था ॥१८१॥ उस खट्वाङ्ग का पुत्र दीर्घबाहु हुआ और फिर उस दीर्घबाहु रघु ने जन्म ग्रहण किया था। राजा रघु का पुत्र महान् पराक्रमी अज हुआ और उस अज से इक्ष्वाकु कुल का नन्दन दशरथ राजा हुआ ॥१८२॥ दशरथ के पुत्र दाशरथि राम बड़े वीर–धर्मज्ञ और लोकविश्रुत हुए और महान् बलवान् भरत–लक्ष्मण और शत्रुघ्न हुए ॥१८३॥ माधव लवण को मारकर और मधुवन को जाकर शत्रुघ्न ने उसकी पुरी मधुरा को सन्निवेशित किया था ॥१८४॥ शत्रुघ्न के साथ सुबाहु और शूरसेन वैदेह्य

दोनों पुत्रों ने मथुरापुरी का शासन किया था ॥१८५॥ अङ्गद और चन्द्रकेतु ये दो लक्ष्मण के पुत्र हुए थे और उन दोनों के जनपद हिमालय पर्वत के समीप में विस्तृत हुए थे ॥१८६॥ अङ्गद की कारुपथ देश में अङ्गदीया नाम वाली पुरी थी और चन्द्रकेतु की जो कि मल्ल थे शुभ चन्द्रवक्ता नाम की पुरी थी ॥१८७॥

भरतस्यात्मजौ वीरौ तक्षः पुष्कर एव च ।
गान्धारविषये सिद्धे तयोः पुर्यौ महात्मनोः ॥१८८
तक्षस्य दिक्षु विख्याता रम्या तक्षशिला पुरी ।
पुष्करस्यापि वीरस्य विख्याता पुष्करावती ॥१८९
गाथा चैवात्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ।
रामे निबद्धास्तत्त्वार्था माहात्म्यात्तस्य धीमतः ॥१९०
श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषितः ।
आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः ॥१९१
दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् ।
ऋक्सामयजुषां घोषो ज्याघोषश्च महास्वनः ॥१९२
अविच्छिन्नोऽभवद्राष्ट्रे दीयतां भुज्यतामिति ।
जनस्थाने वसन् कार्यं त्रिदशानाञ्चकार सः ॥१९३
तमागस्कारिणं पूर्वं पौलस्त्यं मनुजर्षभः ।
सीतायाः पदमन्विच्छन् निजघान महायशाः ॥१९४

भरत के पुत्र बहुत वीर तक्ष और पुष्कर नाम वाले दो थे । उन दोनों महान् आत्मा वालों की गान्धार देश में सिद्ध पुरियाँ थीं ॥१८८॥ तक्ष की समस्त दिशाओं में विख्यात तक्षशिला नाम से परम सुन्दर पुरी थी । और पुष्कर की भी पुष्करावती नाम वाली पुरी विख्यात हुई थी ॥१८९॥ जो पुराणों के ज्ञान रखने वाले विद्वान् हैं वे यहाँ इस विषय में गाथा का गान किया करते हैं । धीमान् राम के माहात्म्य से राम में समस्त सत्त्वार्थ निबद्ध थे ॥१९०॥ श्याम वर्ण वाले-युवावस्था से समन्वित-लोहित नेत्रों से युक्त-दीप्तियुक्त मुख वाले-मित भाषण करने वाले-जानु पर्यन्त लम्बी भुजाओं वाले-सुन्दर मुख की आकृति से समन्वित-सिंह के समान कन्धों वाले-महान् भुजाओं वाले श्रीराम

थे ॥१६१॥ उन श्रीराम ने दस सहस्र वर्ष तक राज्य किया। श्रीराम के राज्य मे ऋक्–साम और यजुर्वेद की ध्वनि सर्वत्र होती थी और धनुष की प्रत्यञ्चाओं की भी महान् ध्वनि होती थी ॥१६२॥ श्रीराम के राज्य म उनके शासन के समय मे सर्वत्र सर्वदा 'दान दो–भोजन करो' यह ध्वनि अविच्छिन्न रूप से निरन्तर होती रहती थी। जनो के स्थान म निवास करते हुए उन्होने देवो का कार्य किया था ॥१६३॥ मनुजो म परमश्रेष्ठ महान् यश वाले श्रीराम ने सीता के पद अर्थात् स्थान को खोजते हुए पहिले अपराध करने वाले उस पुलस्त्य के नाती पौलस्त्य रावण का वध किया था ॥१६४॥

सत्त्वात् गुणसम्पन्नो दीप्यमान स्वतेजसा।
अति सूर्यञ्च वह्निञ्च रामो दाशरथिर्विभो ॥१६५
एवमेव महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दन।
रावण सगण हत्वा दिवमाचक्रमे विभु ॥१६६
श्रीरामस्यात्मजो जज्ञ कुश इत्यभिधीयते।
लवश्चान्यो महावीर्यस्तयोर्देशो निबोधत ॥१६७
कुशस्य कोशला राज्य पुरी चापि कुशस्थली।
रम्या निवेशिता तेन विन्ध्यपर्वतसानुषु ॥१६८
उत्तराकोशले राज्य लवस्य च महात्मन।
श्रावस्ती लोकविख्याता कशवश निबोधत ॥१६९
कुशस्य पुत्रो धर्मात्मा ह्यतिथि सुप्रियातिथि।
अतिथेरपि विख्यातो निषधो नाम पार्थिव ॥२००
निषधस्य नल पुत्रो नभ पुत्रो नलस्य तु।
नभस पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा तत स्मृत ॥२०१

सत्त्ववान् और समस्त गुणगण से सम्पन्न एव दीप्यमान दाशरथि श्रीराम ने सूर्य को और वह्नि क अपन तेज से दीप्त किया था ॥१६५॥ इसी प्रकार से महान् बाहु वाले और इक्ष्वाकु राजा के कुल को आनन्द देने वाले विभु राम न अपन गणो के साथ रावण को मारकर स्वग म भेज दिया था ॥१६६॥ श्रीराम का पुत्र कुश इस नाम वाले उत्पन्न हुए। और लव अन्य

महान् वीर्य वाले पुत्र थे । अब उनके देशों को भी जान लेना चाहिए ॥१९७॥ कुश का राज्य कोशल था और उसकी पुरी का नाम कुशस्थली थी जिसको कि बहुत ही सुन्दर विन्ध्य पर्वत के शिखरों में उसने निवेशित किया था ॥१९८॥ महात्मा लव का राज्य उत्तरा कोशल में था और उसकी पुरी श्रावस्ती नाम वाली लोक में परम विख्यात थी । अब कुश के वंश को श्रवण करो ॥१९९॥ कुश का धर्मात्मा सुप्रिय अतिथि नाम वाला अतिथि पुत्र था । अतिथि का निषध नाम वाला पार्थिव पुत्र था ॥२००॥ निषध का नल पुत्र हुआ और नल का नभ नाम वाला पुत्र हुआ था । नभ का पुण्डरीक हुआ और उसका क्षेमधन्वा हुआ ॥२०१॥

क्षेमधन्वसुतो राजा देवानीकः प्रतापवान् ।
आसीदहीनगुर्नाम देवानीकात्मजः प्रभुः ॥२०२
अहीनगोस्तु दायादः पारियात्रो महायशाः ।
दलस्तस्यात्मजश्चापि तस्माज्जज्ञे बलो नृपः ॥२०३
औको नाम स धर्मात्मा बलपुत्रो बभूव ह ।
वज्रनाभः सुतस्तस्य शङ्खणस्तस्य चात्मजः ॥२०४
शङ्खणस्य सुतो विद्वान् व्युषिताश्व इति श्रुतः ।
व्युषिताश्वसुतश्चापि राजा विश्वसहः किल ॥२०५
हिरण्यनाभः कौसल्यो वसिष्ठस्तत्सुतोऽभवत् ।
पौत्रस्य जैमिनेः शिष्यः स्मृतः सर्वेषु शर्मसु ॥२०६
शतानि संहितानान्तु पञ्च योऽधीतवांस्ततः ।
तस्मादधिगतो योगो याज्ञवल्क्येन धीमता ॥२०७
पुष्यस्तस्य सुतो विद्वान् ध्रुवसन्धिश्च तत्सुतः ।
सुदर्शनस्तस्य सुतो ह्यग्निवर्णः सुदर्शनात् ॥२०८

क्षेमधन्वा का पुत्र प्रतापी देवानीक राजा हुआ और देवानीक का अहीनगु नाम वाला पुत्र था ॥२०२॥ अहीनगु का दायाद महान् यश वाला पारियात्र था और इसका पुत्र दल नामक था तथा इससे बल नाम वाला नृप उत्पन्न हुआ था ॥२०३॥ इसके पश्चात् औक—इस नाम वाला परम धार्मि

वल का पुत्र हुआ था। उसका पुत्र वज्रनाभ हुआ और वज्र नाभ के पुत्र शङ्खण उत्पन्न हुआ था ॥२०४॥ शङ्खण का पुत्र परम विद्वान् ध्युषिताश्व का पुत्र राजा विश्वसह हुआ ॥२०५॥ हिरण्यनाभ कौशल्य वसिष्ठ उसका पुत्र हुआ जो समस्त शर्मों में जैमिनि के पौत्र का शिष्य कहा गया है ।२०६। जिसने पाँच सौ संहिताओं का अध्ययन किया था और उससे धीमान् याज्ञवल्क्य ने योग का ज्ञान प्राप्त किया था ॥२०७॥ उसका पुत्र पुष्य था जो विद्वान् था और उसका पुत्र ध्रुव सन्धि नाम वाला था। उसका पुत्र सुदर्शन और सुदर्शन से अग्निवर्ण उत्पन्न हुआ था ॥२०८॥

अग्निवर्णस्य शीघ्रस्तु शीघ्रकस्य मनुः स्मृतः ।
मनुस्तु योगमास्थाय कलापग्राममास्थितः ।
एकानविंशप्रयुगे क्षत्रप्रावर्त्तकः प्रभुः ॥२०९
प्रसुश्रुतो मनो पुत्रः सुसन्धिस्तस्य चात्मजः ।
सुमन्धेश्च तथामर्षः सहस्वान्नाम नामतः ॥२१०
आसीत्सहस्वतः पुत्रो राजा विश्रुतवानिति ।
तस्यासीद्विश्रुतवतः पुत्रो राजा बृहद्बलः ॥२११
एते इक्ष्वाकुदायदा राजानः प्रायशः स्मृताः ।
वंशे प्रधाना ये तेऽस्मिन् प्राधान्येन तु कीर्त्तिताः ॥२१२
पठन् सम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः ।
प्रजावानेति सायुज्यं मनोर्वैवस्वतस्य सः ॥२१३
श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च ।
विपाप्मा विरजाश्चैव आयुष्मान् भवतेऽच्युतः ॥२१४

राजा अग्निवर्ण के शीघ्र हुआ और शीघ्रक के मनु उत्पन्न हुआ। मनु तो योग में आस्थित होकर कलाप ग्राम में आस्थित होगया था। यह उन्नीसवें प्रयुग में क्षात्र प्रावर्त्तक प्रभु हुआ है ॥२०९॥ मनु का पुत्र प्रसुश्रुत और उसका पुत्र सुसन्धि हुआ। सुसन्धि का अमर्ष नाम से सहस्वान् था सहस्वान् का पुत्र राजा विश्रुतवान् था और विश्रुतवान् का पुत्र राजा बृहद्बल हुआ। ये सब इक्ष्वाकु वंश के दायाद राजा प्राय कहे गये हैं। जो वंश में प्रधान थे वे यहाँ

बताये गये हैं । इस आदित्य की स्तुति को भली भाँति पढ़ते हुए प्रजावान् और वैवस्वत मनु के तथा प्रजाओं की पुष्टि देने वाले देव श्राद्धदेव के सायुज्य को प्राप्त होता है । विपाप्मा विरज तथा आयुष्मान् एवं अच्युत होता है । २१० से २१४।

प्रकरण ५२—सामोत्पत्तिवर्णन

योऽसौ निवेशयामास पुरं देवपुरोपमम् ॥१
जयन्तमिति विख्यातं गौतमस्याश्रमाभितः ।
यस्यान्ववाये यज्ञे वै जनकादृषिसत्तमात् ॥२
नमिर्नाम सुधर्मात्मा सर्वसत्वनमस्कृतः ।
आसीत् पुत्रो महाप्राज्ञ इक्ष्वाकोर्भूरितेजसः ॥३
स शापेन वशिष्ठस्य विदेहः समपद्यत ।
तस्य पुत्रो मिथिर्नाम जनितः पर्वभिस्त्रिभिः ॥४
अरण्यां मथ्यमानायां प्रादुर्भूतो महायशाः ।
नाम्ना मिथिरिति ख्यातो जननाज्जनकोऽभवत् ॥५
मिथिर्नाम महावीर्यो येनासौ मिथिलाभवत् ।
राजासौ जनको नाम जनकाच्चाप्युदवसुः ॥६
उदावसोः सुधर्मात्मा जनितो नन्दिवर्द्धनः ।
नन्दिवर्द्धनतः शूरः सुकेतुर्नाम धार्मिकः ॥७
सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः ।
देवरातस्य धर्मात्मा बृहदुक्थ इति श्रुतिः ॥८

सूतजी बोले—विशुद्धि के द्योतक भाई निमि के वंश को समझना । जो इसने देवपुर के समान पुर का निवेशित किया था ॥१॥ जो गौतम के आश्रम के सामने जयन्त—इस नाम से विख्यात था । जिसके अन्ववाय यज्ञ में ऋषियों में श्रेष्ठ जनक से नमि—इस नाम वाला अत्यधिक तेज वाले इक्ष्वाकु का पुत्र था जो भली प्रकार से धर्मात्मा समस्त प्राणियों के द्वारा नमस्कृत अर्थात् समादर

प्राप्त करने वाला और महान् पण्डित था ।।२।।३।। वह वसिष्ठ के शाप से विदेह हो गये । उसका पुत्र मिथि नाम वाला तीन पर्वों से जन्मा था ।।४।। अरणी के मथन करने पर यह महान् यश वाला प्रादुर्भूत हुआ था । नाम से मिथि प्रसिद्ध हुआ और जनन होने से जनक हुए थे ।।५।। मिथि नाम वाले महान् पराक्रम वाले थे जिससे यह मिथिला हुई थी । यह जनक नाम वाला राजा था और जनक से उदावसु हुआ ।।६।। उदावसु से सुन्दर धर्ममय आत्मा वाला नन्दिवर्द्धन जन्मा । नन्दिवर्द्धन से धार्मिक और शूरवीर सुकेतु उत्पन्न हुआ ।।७।। सुकेतु से महान् बलवाला धर्मात्मा देवरात हुआ और देवरात के धर्मात्मा वृहदुक्थ हुआ—यह श्रुति है ।।८।।

वृहदुक्थस्य तनयो महावीर्यः प्रतापवान् ।
महावीर्यस्य धृतिमान् सुधृतिस्तस्य चात्मजः ।।९
सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतुः परन्तपः ।
धृष्टकेतु सुतश्चापि हर्यश्वो नाम विश्रुतः ।।१०
हर्यश्वस्य मरुः पुत्रो मरो पुत्रः प्रतित्वकः ।
प्रतित्वकस्य धर्मात्मा राजा कीर्त्तिरथः सुतः ।।११
पुत्रः कीर्त्तिरथस्यापि देवमीढ इति श्रुतः ।
देवमीढस्य विबुधो विबुधस्य सुतो धृतिः ।।१२
महाधृतिसुतो राजा कीर्तिराजः प्रतापवान् ।
कीर्तिराजात्मजो विद्वान् महारोमेति विश्रुतः ।।१३
महारोम्णस्तु विख्यातः स्वर्णरोमा व्यजायत ।
स्वर्णरोमात्मजश्चापि ह्रस्वरामाभवन्नृप ।।१४
ह्रस्वरोमात्मजो विद्वान् सीरध्वज इति श्रुतिः ।
उद्भिन्ना कृषता यन सीता राज्ञा यशस्विनी ।
रामस्य महिषी साध्वी सुव्रतातिपतिव्रता ।।१५
अथ सीता समुत्पन्ना कृष्यमाणा यशस्विनी ।
विमर्षश्चात्रपद्राजा क्षेत्रं यस्मिन् बभूव ह ।।१६

बृहदुच्च का पुत्र प्रताप वाला महावीर्य हुआ और महावीर्य के धृतिमान् हुआ और उसके सुधृति पुत्र हुआ था ॥६॥ सुधृति के धार्मिक और शत्रुओं को तपाने वाला धृष्टकेतु पुत्र हुआ। धृष्टकेतु का पुत्र भी हर्यश्व-इस नाम से विश्रुत होने वाला उत्पन्न हुआ था ॥१०॥ राजा हर्यश्व के मरु पुत्र उत्पन्न हुआ और मरु के प्रतित्वक हुआ तथा प्रतित्वक के परम धार्मिक राजा कीर्तिरथ पुत्र हुआ था ॥११॥ कीर्तिरथ का पुत्र देवमीढ हुआ और देवमीढ के विबुध तथा विबुध के धृति नाम वाला सुत उत्पन्न हुआ था ॥१२॥ महाधृति का पुत्र प्रतापी राजा कीर्तिराज हुआ। कीर्तिराज का आत्मज अत्यन्त विद्वान् महारोमा परम प्रसिद्ध हुआ था ॥१३॥ महारोमा राजा का पुत्र परम प्रसिद्ध स्वर्णरोमा उत्पन्न हुआ था। स्वर्णरोमा का पुत्र राजा ह्रस्वरोमा हुआ ॥१४॥ ह्रस्वरोमा का आत्मज विद्वान् सीरध्वज नाम वाला हुआ था—ऐसी श्रुति है। जिस राजा ने भूमिका कर्षण करते हुए अर्थात् जोतते हुए परम यशस्विनी सीता को उद्भिन्न किया था जो सीता श्रीराम की पटरानी हुई थी और अत्यन्त साध्वी-अति पातिव्रत धर्म का पालन करने वाली एवं सुन्दर व्रत वाली थी ॥१५॥ शांशपायन ने कहा—कृष्यमाण होती हुई सीता किस प्रकार से समुत्पन्न हुई थी ? जो कि परम यश-स्विनी थी। राजा ने किस लिये भूमिका कर्षण किया था जिसके करने में वह हुई थी ? ॥१६॥

अग्निक्षेत्रे कृष्यमाणे अश्वमेध महात्मन ।
विधिना सुप्रयुक्तेन तस्मात्सा तु समुत्थिता ॥१७
सीरध्वजात्तु जातस्तु भानुमान्नाम मैथिल ।
भ्राता कुशध्वजस्तस्य स काश्यधिपतिर्नृप ॥१८
तस्य भानुमत पुत्र प्रद्युम्नश्चप्रतापवान् ।
मुनिस्तस्य सुतश्चापि तस्मादूर्जवह स्मृत ॥१९
ऊर्जवहात् सुतद्वाज शकुनि स्तस्य चात्मज ।
स्वागत शकुने पुत्र सुवर्चास्तत्सुत स्मृत ॥२०
श्रुतो यस्तस्य दायाद सुश्रुतस्तस्य चात्मज ।
सुश्रुतस्य जय पुत्रो जयस्य विजय सुतः ॥२१

विजयस्य ऋत पुत्त ऋतस्य सुनय स्मृत ।
सुनयाद्वीतहव्यस्तु वीतहव्यात्मजो धृति ॥२२
धृतेस्तु बहुलाश्वोऽभूद्बहुलाश्वसुत कृति- ।
इत्येते मैथिला प्रोक्ता सोमस्यापि निबोधत ॥२३

श्री सूतजी ने कहा—महान् आत्मा वाल के अश्वमेध म अग्नि क्षेत्र के कर्षण करने पर और विधि को भली भाँति सुन्दरता के साथ प्रयुक्त करन से उसमे से वह सीता समुत्थित हुई थी ॥१७॥ सीरध्वज मे भानुमान् नाम वाला मैथिल उत्पन्न हुआ था। उसका भाई कुशध्वज था और वह काशी का स्वामी नृप था ॥१८॥ उस भानुमान् का पुत्र प्रताप वाला प्रद्युम्न था। उसका पुत्र मुनि हुआ और उसमे ऊर्जवह हुआ था ॥१९॥ ऊर्जवह से सुनद्वाज हुआ और उसका पुत्र शकुनि हुआ था। शकुनि का स्वागत हुआ और स्वागत का सुवर्चा नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥२०॥ उसका अर्थात् सुवर्चा का दायाद (पुत्र) श्रुत हुआ और उसका पुत्र सुश्रुत हुआ था। सुश्रुत का पुत्र जय हुआ जय का पुत्र विजय हुआ ॥२१॥ विजय के ऋत नामक पुत्र था और ऋत के सुनय पुत्र उत्पन्न हुआ था। सुनय से वीत हव्य हुआ और वीतहव्य का पुत्र धृति हुआ ॥२२॥ धृति से बहुलाश्व हुआ और बहुलाश्व का पुत्र कृति नाम वाला था। उनम महान् आत्मा वाल जनकों का वंश सन्निहित रहता है। ये इतने मैथिल बताये गये हैं। अब सोम का वंश जान लो ॥२३॥

प्रकरण ५३—सोमोत्पत्तिवर्णन

पिता सोमस्य वै विप्रा जज्ञेऽत्रिर्भगवानृषि ।
सोऽतिष्ठत्स्यौ सर्वलोकान्भगवान्स्वेन तेजसा ॥१
कर्मणा मनसा वाचा शुभान्येव समाचरन् ।
काष्ठकुड्यशिलाभूत ऊर्द्ध्वबाहुर्महाद्युति ॥२
सुदुश्चर नाम तपो येन तप्तं महत्पुरा ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि नः श्रुतम् ॥३

तस्योर्द्ध रेतसस्तत्र स्थितस्यानिमिषस्पृहम् ।
सोमत्वतनुरापेदे महाबुद्धि स वै द्विज ॥४
ऊर्द्ध माचक्रमे तस्य सोमत्व भावितात्मन ।
सोम सुस्राव नेत्राभ्या दश वा द्योतयन् दिश ॥५
त गर्भं विधिनादिष्टा दश देव्यो दधुस्तदा ।
समेत्य धारयामासुर्न च ता समशक्नुवन् ।
स ताभ्य सहसैवाथ दिग्भ्यो गर्भ प्रभान्वित ।
पपावभासयँल्लोकाञ्छीतांशु सर्वभावन ॥७
यदा न धारणे शक्तास्तस्य गर्भस्य ता स्त्रिय ।
तत स ताभि शीतांशुर्निपपात वसुन्धराम् ॥८

श्री सूतजी ने कहा—हे विप्रो ! सोम के पिता ऋषि अत्रिभगवान् ने जन्म ग्रहण किया था। वह अत्रि भगवान् अपने तेज से समस्त लोकों मे प्रतिस्थित हुए थे ॥१॥ कर्म-मन और वचन के द्वारा शुभ का भी समाचरण करते हुए महान् मुनि वाले ऊर्ध्वबाहु होकर काष्ठ और कुड्य शिला के समान होगये ॥२॥ हमने यह सुना है कि तीन हजार दिव्य वर्षों तक जिसने पहिले महान् कठिन तप किया था ॥३॥ वहाँ पर स्थित ऊर्द्धरेता उनके अनिमिष स्पृह सोमत्व तनु को महान् बुद्धि वाले उस द्विज ने प्राप्त किया था ॥४॥ भावित आत्मा वाले उनके ऊपर सोमत्व चलता था। नेत्रों से दशों दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ सोम श्रवण करता था ॥५॥ उस गर्भ को उस समय ब्रह्मा के द्वारा आदेश प्राप्त करने वाली दश देवियाँ ने एकत्रित होकर धारण किया था किन्तु वे उसे न सहन कर सकी ॥६॥ इस के अनन्तर उन दिशाओं से वह गर्भ सहसा ही प्रभा से युक्त हो गया जिससे सबको सन्तुष्ट करने वाला शीतांशु लोकों को अवभासित कर रहा था ॥७॥ जब वे स्त्रियाँ उस गर्भ के धारण करने में समर्थ न हुई तो फिर वह शीतांशु उनसे पृथ्वी पर गिर गया था। ॥८॥

पतन्त सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामह ।
रथमारोपयामास लोकाना हितकाम्यया ॥९

स हि देवमयो विप्रा धर्म्मार्थी सत्य सङ्गर ।
युक्तो वाजिसहस्रेण सितेनेति हि न श्रुतम् ॥१०
तस्मिन्निपतिते देवा पुत्रेऽत्रे परमात्मनि ।
तुष्टुवुर्ब्रह्मण पुत्रा मानसा सप्त विश्रुता ।
तत्र वाङ्गिरसस्तस्य भृगोश्चैवात्मजस्तथा ।
ऋग्भिर्यजुर्भिर्बहुभिरथर्वाङ्गिरसैरपि ॥१२
तत सस्तूयमानस्य तेज सोमस्य भास्वत ।
आप्यायमाना लोकास्त्रीन् भावयामास सर्व्वश ॥१३
समेन रथमुख्येन सागरान्ता वसुन्धराम् ।
त्रि सप्तकृत्वो विपुलश्चकाराभिप्रदक्षिणम् ॥१४
तस्य यच्चापि तत्तेज पृथिवीमन्वपद्यत ।
ओषध्यस्ता' समुद्भूतास्तेजसा सज्वलन्त्युत ॥१५
ताभिर्धार्यत्यय लोकान् प्रजाश्चापि चतुर्विधा ।
पोष्टा हि भगवान् सोमो जगतो हि द्विजोत्तमा ।

समस्त लोको के पिता यह ब्रह्माजी ने सोम को गिरता हुआ देखकर लोको के हित की कामना से रथ को आरोपित कर दिया था ॥११॥ हे विप्र-वृन्द ! वह देवो से परिपूर्ण, धर्म का अर्थी, सत्य सङ्गर और श्वेत वर्ण वाले सहस्र अश्वो से युक्त था–ऐसा हमने सुना है ॥१०॥ उस परमात्मा अत्रि के पुत्र के निपतित होने पर जो सात ब्रह्मा के प्रसिद्ध मानस पुत्र है उन्होने स्तुति की थी ॥११॥ वहाँ पर ही आङ्गिरस और उस भृगु के पुत्र ने उसी प्रकार से ऋग्वेद–यजुर्वेद और बहुत से अङ्गिरसो मे स्तवन किया ॥१२॥ इसके अनन्तर भली-भाँति स्तुति किये गये उस भासमान सोम के तेज ने लोको को आप्यायित करते हुए सब ओर से भावित किया था ॥१३॥ उसने सम मुख्यरथ के द्वारा सागर पर्यन्त वसुन्धरा की इक्कीस बार प्रदक्षिणा की थी ॥१४॥ उसका जो भी तेज था वह पृथ्वी मे अनुपम हो गया और वे औषधियो के स्वरूप मे समुत्पन्न हुई जो कि अपने तेज से भली भाँति ज्वलित हो रही हैं ॥१५॥ हे द्विजो

समवृन्द ! उन औषधियों में यह लोकों को धारण करता है और भगवान् सोम चारों प्रकार की प्रजाओं को तथा जगत् का भी परम पोषक है ॥१६॥

स लब्धतेजास्तपसा सस्तवैस्तैश्च कर्मभिः ।
तपस्तेपे महाभाग पद्मानां दशतीर्दश ॥१७
हिरण्यवर्णा या देव्यो धारयन्त्यात्मना जगत् ।
विभुस्तासामभवत्सोम प्रख्यात स्वेन कर्मणा ॥१८
ततस्तस्मै ददौ राज्य ब्रह्मा ब्रह्मविदा वरः ।
बीजौषधिषु विप्राणामपाञ्च द्विजसत्तमाः ॥१९
सोऽभिषिक्तो महातेजा महाराज्येन राजराट् ।
लोकान्भावयामास स्वभासात्तपता वर ॥२०
सप्तविंशतिरिन्दोस्तु दाक्षायण्यो महाव्रता ।
ददौ प्राचेतसो दक्षो नक्षत्राणीति या विदुः ॥२१
स तत्प्राप्य महद्राज्य सोम सोमवता प्रभु ।
समाजह्रे राजसूय सहस्रशतदक्षिणम् ॥२२
हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्मा ब्रह्मत्वमेयिवान् ।
सदस्यस्तत्र भगवान् हरिर्नारायणः प्रभुः ।
सनत्कुमारप्रमुखैराद्यं ब्रह्मर्षिभिर्वृत ॥२३
दक्षिणामददत्सोमस्त्रीँल्लोकानिति न श्रु तम् ।
तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्य सदस्येभ्यश्च वै द्विजा ॥२४

वह संस्तवों और उन कर्मों के द्वारा तथा तप से तेज प्राप्त करने वाला होगया और उस महाभाग ने दशती दश पद्मो तक तपस्या की थी ॥१७॥ जो हिरण्य वर्ण वाली देवियाँ थी उन्होंने जगत् का धारण किया है उनका विभु सोम हुआ जो अपने कर्म के द्वारा प्रख्यात है ॥१८॥ ब्रह्म वेत्ताओं मे श्रेष्ठ ब्रह्मा ने हे द्विजा मे श्रेष्ठ ! बीजौषधियो मे विप्रो का और जलों का राज्य उसे देदिया था ॥१९॥ तपस्या करने वालो मे श्रेष्ठ वह अभिषिक्त होता हुआ इस महान् राज्य से राजाओं का राज्य तथा महान् तेजस्वी स्वभाव मे लोगो को आनन्दित किया करता था । २०॥ प्राचेतस दक्ष ने इन्दु को महान् व्रत वाली सत्ताईस

दाक्षायणी दे दी जो कि नक्षत्र नाम से जानी गई हैं ॥२१॥ सोम पालों के स्वामी उस सोमने उस महान् राज्य को प्राप्त करके सहस्र शत दक्षिणा वाला राजसूय यज्ञ किया था ॥२२॥, उसमें हिरण्य गर्भ उद्गाता हुए और ब्रह्मा ब्रह्मत्व को प्राप्त हुए अर्थात् ब्रह्मा बने तथा सनत्कुमार आदि प्रमुख ब्रह्मर्षियों से व्रत भगवान् नारायण प्रभु हरि सदस्य हुए थे ॥२३॥ हमने ऐसा सुना है कि सोम ने उन ब्रह्मर्षि मुख्य सदस्यों के लिये, हे द्विज वृन्द ! तीनों लोकों को दक्षिणा में था ॥ २४ ॥

त सिनी च कुहूश्चैव वपुः पुष्टि प्रभा वसु ।
कीर्त्तिर्धृ तिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्य सिषेविरे ॥२५
प्राप्यावभृथम-यग्र सर्व्वदेवर्षिपूजित ।
अतिराजातिराजेन्द्रो दशधातापयद्दिश ॥२६
तदा तत् प्राप्य दुष्प्रापमैश्वर्यमृषिमस्तुतम् ।
स विभ्रममतिर्विप्रा विनयं विनयो हृत ॥२७
बृहस्पते स वै भार्यास्तारा नाम यशस्विनीम् ।
जहार सहसा सर्व्वानवमत्याङ्गिरःसुतात् ॥२८
स याच्यमानो देवैश्च तथा देवर्षिभिश्च ह ।
नैव व्यसर्जयत्तारा तस्मायाङ्गिरसे तदा ॥२९
उशनास्तस्य जग्राह पार्ष्णिमङ्गिरसो द्विजाः ।
स हि शिष्यो महातेजा पितु पूर्वं बृहस्पते ॥३०
तेन स्नेहेन भगवान् रुद्रस्तस्य बृहस्पते ।
पार्ष्णिग्राहोऽभद्‌वै प्रगृह्याजगवन्धनु ॥३१
तैन ब्रह्मर्षिमुख्येभ्य परमास्त्र महात्मना ।
उद्दिश्य देवानुत्सृष्ट येनैषा नाशित यश ॥३२

उस राजा सोम की सिनी–कुहू–वपु–पुष्टि–प्रभा–वसु–कीर्त्ति–धृति और लक्ष्मी इन नौ देवियों ने सेवा की थी ॥२५॥ अवभृत को प्राप्त करके व्यग्रता से रहित और समस्त देव तथा ऋषियों के द्वारा पूजित अति राजाओं का अति राजेन्द्र उसने दश प्रकार से दिशाओं को तापित किया था ॥२६॥ हे विप्रो !

उस समय में ऋषियों के द्वारा संस्तुत उस दुष्प्राप्य ऐश्वर्य को प्राप्त करके वह विनय से हत एवं नीतिहीन विशेष रूप से भ्रान्त मतिवाला होगया था ॥२७॥ उसने समस्त आङ्गिरस पुत्रों को अपमानित कर बृहस्पति की भार्या परम यशस्विनी तारा नाम वाली का सहसा हरण किया था ॥२८॥ उस समय में देवों के द्वारा तथा समस्त देवर्षियों के द्वारा वह याचित किया गया अर्थात् तारा के वापिस दे देने की याचना की गई थी किन्तु उसने उस आङ्गिरस का तारा नहीं छोड़ी थी ॥२९॥ हे द्विज वृन्द ! उस समय उस आङ्गिरस का पक्ष भयवा साथ उशना ने ग्रहण किया था वह महान् तेजस्वी बृहस्पति के पिता का पहिला शिष्य था ॥३०॥ उस स्नेह से भगवान् रुद्र देव अजगव धनुष ग्रहण करके उस बृहस्पति के पार्ष्णिग्राह अर्थात् सहायता करने वाले हुए थे ॥३१॥ उस महात्मा ने ब्रह्मर्षि प्रमुखों के लिये परम अस्त्र देवों को उद्देश करके छोड़ा था जिसने इनके यश को नष्ट कर दिया था ॥३२॥

तत्र तद्युद्धमभवत् प्रख्यातन्तारकामयम् ।
देवानां दानवानाञ्च लोकक्षयकरं महत् ॥३३
तत्र शिष्टास्तया देवास्तुषिताश्चैव ये स्मृताः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं पितामहम् ॥३४
ततो निवार्योशनसं रुद्रं ज्येष्ठञ्च शङ्करम् ।
ददावाङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः ॥३५
अन्तर्वत्नीं च तां दृष्ट्वा ताराम्ताराधिपाननाम् ।
गर्भमुत्सृजते मा त्वं विप्र प्राह बृहस्पतिः ॥३६
मदीयायां तनौ योनौ गर्भो धार्यः कथञ्चन ।
अयोनावुत्सृजत्तं कुमारं दस्युहन्तमम् ॥३७
ईषिकास्तम्बमासाद्य ज्वलन्तमिव पावकम् ।
जातमात्रोऽथ भगवान् देवानामाक्षिपद्वपुः ॥३८
ततः संशयमापन्नास्तारामकथयन् सुराः ।
सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्याथ बृहस्पतेः ॥३९

ह्रीयमाणा यदा देवान्नाह सा साध्वसाधु वा ।
तदा तां शप्तुमारब्ध कुमारो दस्युहन्तमः ॥४०

उस समय वहाँ पर देव और दानवों का लोकों के क्षय को करने वाला महान् प्रत्यक्ष तारकामय युद्ध हुआ था ॥३३॥ उस समय में तीन शिष्ट देव जो वि तुषिता कहे जाते हैं आदि देव ब्रह्माजी पितामह की शरणागति में प्राप्त हुए थे ॥३४॥ इसके अनन्तर पितामह ने स्वयं ही उशना को और ज्येष्ठ शङ्कर रुद्र को निवारण कर आङ्गिरस के लिये तारा देदी थी ॥३५॥ उस चन्द्रमुखी तारा को उस समय गर्भवती देखकर विप्र बृहस्पति ने उससे कहा कि तू गर्भ का उत्सर्जन मत करे ॥३६॥ मेरे तनु योनि में किसी भी प्रकार से गर्भ-धारण करना चाहिये । इसके अनन्तर उस दस्यु हन्तम कुमार का उत्सर्जन नहीं किया था ॥३७॥ ईषिका—स्तम्ब को पाकर अग्नि की भाँति उत्पन्न होते ही भगवान् ने देवों के शरीर पर आक्षेप किया था ॥३८॥ तबनो संशय को प्राप्त होने वाले देवों ने तारा से कहा—तुम सत्य सत्य बतला दो—यह पुत्र किसका है ? बृहस्पति का है या सोम का है ? ॥३९॥ तब लज्जित होती हुई उसने जो ठीक या बेठीक था देवों को बतला दिया । उस समय कुमार दस्युहन्तम ने उसको शाप देने का आरम्भ किया था ॥४०॥

सन्निवार्य तदा ब्रह्मा तारां चन्द्रस्य संशयं ।
यदत्र तथ्यन्तद्ब्रू हि तारे कस्य सुतस्त्वयम् ॥४१
सा प्राञ्जलिरुवाचेदं ब्रह्माणं वरदं प्रभुम् ।
सोमस्येति महात्मानं कुमारन्दस्युहन्तमम् ॥४२
ततः स तमुपाघ्राय सोमो धाता प्रजापतिः ।
बुध इत्यकरोन्नाम तस्य पुत्रस्य धीमतः ॥४३
प्रतिपूर्व्वञ्च गगने समभ्युत्तिष्ठते बुधः ।
उत्पादयामास तदा पुत्रं वै राजपुत्रिका ॥४४
तस्य पुत्रो महातेजा बभूवैलः पुरूरवा ।
उर्वश्यां जज्ञिरे तस्य पुत्राः षट् सुमहौजसः ॥४५

प्रसह्य धर्षितस्तत्र विवशो राजयक्ष्मणा ।
ततो यक्ष्माभिभूतस्तु सोम प्रक्षीणमण्डल ।
जगाम शरणायाथ पितरं सोऽत्रिमेव तु ॥४६
तस्य तत्पापशमनं चकारात्रिर्महायशा ।
स राजयक्ष्मणा मुक्त श्रिया जज्वाल सर्वश ॥४७
एतत्सोमस्य वै जन्म कीर्तितं द्विजसत्तमा ।
वशन्तस्य द्विजश्रेष्ठा. कीर्त्यमानं निबोधत ॥४८
धन्यमारोग्यमायुष्यं पुण्य कल्मषशोधनम् ।
सोमस्य जन्म श्रुत्वैव सर्वपापै प्रमुच्यते ॥४९

उस समय मे ब्रह्माजी ने मनिवारण कर जो चन्द्र का समय था उसके विषय मे कहा—हे तारा ! यहाँ पर जो भी तथ्य हो वह बतादो कि यह किसका पुत्र है ॥४१॥ वह प्राञ्जलि होकर अर्थात् हाथ जोड़कर वर देने वाले प्रभु ब्रह्माजी से यह बोली कि कुमार दस्युहन्तम सोम का ही है ॥४२॥ इसके पश्चात् उनने अर्थात् ब्रह्मा ने उसका उपाघ्राण करके सोमदत्ता प्रजापति है और उनके धीमान् पुत्र का नाम बुध यह रक्खा था ॥४३॥ और प्रतिपूर्व से गमन मे बुधो से समभ्युत्थित होना है । तब राजिका ने पुत्र को उत्पन्न किया था ॥४४॥ उनका महान् तेज वाला पुरूरवा ऐल पुत्र हुआ । उसके उर्वशी मे महान् ओज वाले छै पुत्रो ने जन्म ग्रहण किया था ॥४५॥ वहाँ बलपूर्वक राजयक्ष्मा के द्वारा विवश होते हुए धर्षित किया गया था । इसके अनन्तर राजयक्ष्मा से अभिभव पाने वाला होकर सोम प्रक्षीण मण्डल वाला होगया । इसके पश्चात् वह पिता अत्रि के ही शरण मे गया था ॥४६॥ महान् यश वाले अत्रि ने उसके उस पाप का शमन किया था और वह राजयक्ष्मा से छुटकारा पाकर सर्व प्रकार से शोभा जाज्वल्यमान होगया था ॥४७॥ हे द्विज श्रेष्ठो ! यह मैंने सोम का जन्म बतला दिया है । अब उसका वंश द्विजो मे श्रेष्ठ आप समझलो जिसको कि मेरे द्वारा कहा जा रहा है ॥४८॥ यह सोम के जन्म की कथा का वर्णन परम धन्य-आरोग्य और आयु देने वाला पवित्र है । यह पापो का नाशक है । मनुष्य सोम के जन्म की कथा को सुनकर ही समस्त पापो से छूट जाता है ॥४९॥

प्रकरण ५३—चन्द्रवंश कीर्त्तन

सोमस्य तु बुध. पुत्रो बुधस्य तु पुरूरवा ।
तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिण ॥१
ब्रह्मवादी पराक्रान्त· शत्रुभिर्यु धि दुर्जय· ।
आहर्त्ता चाग्निहोत्रस्य यज्वनाञ्च ददौ महीम् ॥२
सत्यवाक् कर्म्मबुद्धिश्च कान्त सवृत्तमैथुन ।
अतीव पुत्रो लोकेपु रूपेणाप्रतिमोऽभवत् ॥३
त ब्रह्मवादिन दान्त धर्मज्ञ सत्यवादिनम् ।
उर्वशी वरयामास हित्वा मान यशस्विनी ॥४
तया सहावसद्राजा दशवर्षाणि चाष्ट च ।
सप्त षट् सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च वीर्यवान् ॥५
वने चैत्ररथे रम्ये तथा मन्दाकिनीतटे ।
अलकाया विशालाया नन्दने च वनोत्तमे ॥६
गन्धमादनपादेपु मेरुशृङ्गे नगोत्तमे ।
उत्तरांश्च कुरून् प्राप्य कलापग्राममेव च ॥७
एतेपु वनमुख्येपु सुरैराचरितेपु च ।
उर्वश्या महितो राजा रेमे परमया मुदा ॥८

श्री सूतजी ने कहा—सोम का पुत्र बुध हुआ और बुध का पुत्र पुरूरवा हुआ जो बहुत ही तेजस्वी–दान देने के स्वभाव वाला–यजन करने वाला तथा बहुत दक्षिणा देने वाला था ॥१॥ पुरूरवा ब्रह्मवादी था तथा शत्रुओं के द्वारा पराक्रान्त हुआ एव युद्ध में वह दुर्जय था अर्थात् रणभूमि में कोई भी आसानी से उसे जीत नहीं सकता था । वह अग्निहोत्र का आहरण करने वाला था और यज्वाओं को उसने भूमि का दान दिया था ॥२॥ वह सत्य वचन बोलने वाला, सवृत मैथुन, सुन्दर और कर्मों के सम्पादन में बुद्धि रखने वाला हुआ था । लोकों में वह पुत्र अत्यन्त ही रूप में अनुपम हुआ था ॥३॥ उस दमनशील धर्म के ज्ञान वाले–सत्यवादी और ब्रह्म की चर्चा करने वाले राजा को उर्वशी ने

मान का त्याग कर वरण किया जोकि उर्वशी बड़े ही यश वाली थी ॥४॥ वीर्य वाला राजा उसके साथ अठारह वर्ष तथा चरालोम-चौंसठ और चरसी वर्ष तक रहा था ॥५॥ मन्दाकिनी के तट पर, परम रम्य चैत्ररथ वन में, विशाल अलकापुरी में और वनों में सर्वश्रेष्ठ नन्दन वन में निवास किया था ।६। गन्धमादन पर्वत की चराई में, गिरियों म उत्तम मेरु के शिखरों पर और उत्तर कुरुओं को प्राप्त कर तथा कलाप ग्राम में जाकर वास किया था ॥७॥ इन उक्त मुख्य वनों में जोकि देवों के द्वारा सेवित थे राजा ने प्रेयसी उर्वशी के साथ रहते हुए परमानन्द के साथ रमण किया था ॥८॥

गन्धर्वी चोर्वशी देवी राजानं मानुषं कथम् ।
देवानुत्सृज्य सम्प्राप्ता तन्नो ब्रूहि बहुश्रुत ॥९
ब्रह्मशापाभिभूता सा मानुषं समुपस्थिता ।
ऐलं तु तं वरारोहा समयेन व्यवस्थिता ॥१०
आत्मनः शापमोक्षार्थं नियमं सा चकार तु ।
अनग्नदर्शनञ्चैव अकामात् सह मैथुनम् ॥११
द्वौ मेषौ शयनाभ्याशे मे तावद्व्यवतिष्ठते ।
घृतमात्रं तथाहारः कालमेकन्तु पार्थिव ॥१२
यद्य प समया राजन् यावत्कालञ्च ते दृढम् ।
ततःवस्यालन्तु वत्स्यामि एष नः समयः कृतः ॥१३
तस्यास्त समयं सर्वं स राजा पर्यपालयत् ।
एवं सा चावसत् तस्मिन् पुरूरवसि भामिनी ॥१४
वर्षाण्यथ चतुःषष्टि तद्भक्त्या शापमोहिता ।
उर्वशी मानुषं प्राप्ता गन्धर्वी श्रिन्नयान्विता ॥१५
चिन्तयध्वं महायोगा यथा सा तु वराङ्गना ।
आगच्छेत्तु पुनर्देवानुर्वशी स्वर्गभूषणा ॥१६

ऋषियों ने कहा—हे बहुश्रुत ! अर्थात् बहुत अधिक शास्त्रों के सुनने वाले या ज्ञान वाले ! उर्वशी देवी तो गन्धर्व जाति की थी जाकि देवों की ही एक गायन करने वाली विशेष जाति है, उसने मनुष्य जाति के राजा को समस्त

देवताओं को छोड़कर किस तरह वरण किया था अर्थात् वह देवाङ्गना होते हुए मनुष्य को कैसे प्राप्त होगई—यह स्पष्ट बतलाइये ॥९॥ श्री सूतजी ने कहा—वह उर्वशी ब्रह्म शाप से अभिभूत होकर मनुष्यता को प्राप्त हुई थी उस बरारोहा ने (वह जिसके शरीर के अङ्गों का यथेक्रम आरोहण होता है) कुछ समय तक नियम पालनपूर्वक व्यवस्थित होकर ऐल के पास निवास किया था ॥१०॥ उसने अपने शाप की मुक्ति के लिए कुछ नियम (शर्तें) किये थे और वे ये थे—एक तो नग्नावस्था में दर्शन नहीं करना था और दूसरा बिना काम की वासना के मैथुन करने का था ॥११॥ वह राजा शयनाभ्यास में दो मेष तक व्यवस्थित रहता था और राजा केवल एकबार घृत का ही आहार करने वाला रहता था ॥१२॥ उर्वशी ने ये शर्तें तय करली थी और राजा से कह दिया था कि हे राजन् ! आपकी ये शर्तें जब तक दृढ़ता के साथ पालन की जायँगी उतने ही समय तक मैं आपके साथ निवास करूँगी—यह हमारा किया हुआ समय अर्थात् नियम तथा शर्त है ॥१३॥ उस उर्वशी के द्वारा किए हुए उस नियम को उस राजा ने पूर्ण रूप से पालन किया था और इस प्रकार से वह भामिनी (उर्वशी) उस पुरुरवा के पास निवास करती थी ॥१४॥ इसके अनन्तर शाप मोहित उर्वशी की उसकी भक्ति से चौसठ वर्ष व्यतीत होगये थे। उर्वशी मनुष्य जाति के राजा के पास चली गई—इस बात से गन्धर्व लोग अत्यन्त चिन्ता से युक्त होगये थे ॥१५॥ गन्धर्वों ने कहा—हे महान् भाग वालो ? ऐसा कोई उपाय सोचो, कि वह वराङ्गना उर्वशी जिस रीति से फिर देवों के पास वापिस आजावे क्योंकि वह तो इस स्वर्गलोक की शोभा करने वाले भूषण के समान है ॥१६॥

ततो विश्वावसुर्नाम तत्राह वदतां वरः ।
तया तु समयस्तत्र क्रियमाणो मनोऽनघः ॥१७
समयव्युत्क्रमात् सा वै राजानं त्यक्ष्यते यथा ।
तदहं वच्मि वः सर्वं यथा त्यक्ष्यति सा नृपम् ॥१८
सहगा योगमेष्यामि युष्माकं कार्यसिद्धये ।
एवमुक्त्वा गतस्तत्र प्रतिष्ठानं महायशा ॥१९

स निशायामथागम्य मेषमेकं जहार वै ।
मातृवद्वर्त्तते सा तु मेषयोश्चारुहासिनी ॥२०
गन्धर्वागमनं ज्ञात्वा शयनस्था यशस्विनी ।
राजानमब्रवीत्सा तु पुत्रो मे ह्रियतेति वै ॥२१
एवमुक्तो विनिश्चित्य नग्नस्तिष्ठति वै नृप. ।
नग्नं द्रक्ष्यति मा देवी समयो वितथो भवेत् ॥२२
ततो भूयस्तु गन्धर्वा द्वितीयं मेषमाददुः ।
द्वितीयेऽपहृते मेषे ऐलं देवी तमब्रवीत् ॥२३
पुत्रौ मम हृतौ राजन्ननाथाया इव प्रभो ।
एवमुक्तस्तदोत्थाय नग्नो राजा प्रधावित ॥२४

इसके अनन्तर उस समय वहाँ पर बोलने वालो मे श्रेष्ठ विश्वावसु नाम वाला गन्धर्व बोला कि उसने वहाँ पर भय से रहित समय (नियम या शर्त) किया हुआ माना है ॥१७॥ उस किये हुए समय (नियम) के व्युत्क्रम होने से ही राजा को त्याग देगी और जिस तरह उस समय का व्युत्क्रम हो सकता है वह सब मैं तुमको बतलाता हूँ कि जिसके कारण वह राजा का त्याग करदे ॥१८॥ मैं तुरन्त ही आप लोगो के कार्य की सिद्धि के लिये योग को प्राप्त होऊँगा । यह कहकर वह महान् यशवाला विश्वावसु उस प्रतिष्ठान पर पहुँच गया था ॥१९॥ उसने रात्रि मे आकर उन दो मेषो मे से एक का हरण कर लिया था । वह चारु अर्थात् सुन्दर हास वाली उर्वशी उन दोनो मेषो की माता की भाँति रहती है ॥२०॥ शयन मे स्थित रहती हुई यशस्विनी उस उर्वशी ने राजा से कहा मेरा पुत्र का हरण होगया है ॥२१॥ इस तरह कहा गया राजा नग्न स्थित हो जाता है यह निश्चय करके कि वह देवी मुझे नग्न को देखेगी तो जो समय था (अर्थात् शर्त थी) वह असत्य हो जायगा ॥२२॥ इसके बाद पुन गन्धर्वो ने दूसरा मेष भी ले लिया था । दूसरे मेष के अपहृत होजाने पर वह देवी उर्वशी ऐल से बोली ॥२३॥ हे प्रभो ! हे राजन् ! अनाथा की भाँति मेरे दोनो पुत्र अपहृत होगये हैं । ऐसा कहा गया राजा उस समय नग्न हो उठ कर दौड़ा ॥ २४ ॥

मेपाख्या पदवी राजन् गन्धर्व्वैर्व्युत्थितामथ ।
उत्पादिता तु महती माया तद्भवन महत् ॥२५
प्रकाशितन्तु सहसा ततो नग्नमवेक्ष्य सा ।
नग्न दृष्ट्वा तिरोऽभूत्सा अप्सरा कामरूपिणी ॥२६
तिरोभूतान्तु ता ज्ञात्वा गन्धर्वास्तत्र तावुभौ ।
मेपौ त्यक्त्वा च ते सर्वे तत्रैवान्तर्हिताभवन् ॥२७
उत्सृष्टावुरणौ दृष्ट्वा राजा गृह्यागत प्रभु ।
अपश्यस्ता तु वै राजा विललाप मुदु खित ॥२८
चचार पृथिवी चैव मार्गमाणस्ततस्ततः ।
अथापश्यच्च ता राजा कुरुक्षेत्रे महाबल ॥२९
प्लक्षतीर्थे पुष्करिण्या विगाढेनाम्बुनाप्लुताम् ।
क्रीडन्तीमप्सरोभिश्च पञ्चभि सह शोभनाम् ॥३०
अपश्यत्सा तत सुभ्रू राजानमविदूरत ।
उर्वशी ता सखी प्राह अय स पुरुषोत्तम ॥३१
यस्मिन्नहमवात्स हि दर्शयामास त नृपम् ।
तत आविर्बभूवुस्ता पञ्चचूडाप्सरास्तु ता ॥३२

हे राजन् ! मेपा के द्वारा बनी हुई पदवी को अर्थात् मार्ग मे राजा ने दौड लगाई थी और गन्धर्वों के द्वारा बडी माया उत्पन्न करदी गई थी कि वह महान् भवन सहसा प्रकाश से युक्त होगया और फिर उस उर्वशी ने राजा को नग्न देख लिया था तथा नग्नावस्था म राजा को देखकर वह कामरूप धारण करने वाली अप्सरा तिरोभूत होगई थी ॥२५-२६॥ वहाँ पर उन गन्धर्वों ने जब यह जान लिया कि वह उर्वशी छिप गई है यानी तिरोहित होगई है तो ये दोनो मेपो को वहाँ पर छोड कर वे सब भी वही अन्तर्धान होगये थे ॥२७॥ उन त्यागे हुए मेपो को लेकर राजा आया तो वहाँ उस अप्सरा उर्वशी को न देखते हुए बहुत दु खित होकर विलाप करने लगा ॥२८॥ इसके पश्चात् वह राजा उसे इधर-उधर खोजता हुआ पृथिवी पर विचरण कर रहा था और इसके पश्चात् महा बलवान् राजा ने उसको कुरुक्षेत्र म देखा था ॥२९॥ वह उर्वशी

प्लक्ष तीर्थ में जो पुष्करिणी है उसमें खूब गहरे जल में आप्लुत थी और पाँच अप्सराओं के साथ क्रीडा करती हुई परम शोभा से युक्त वहाँ उस को राजा ने देखा था ॥३०॥ उस सुभ्रू ने निकट से राजा को देखा और इसके पश्चात् अपनी उन सहेलियों से उर्वशी ने कहा कि वह यह श्रेष्ठ पुरुष है ॥३१॥ जिसके साथ मैंने निवास किया था—यह कहकर उनको वह राजा दिखला दिया था। इसके अनन्तर वे सब प्रकट होगईं थीं। पञ्चचूडा अप्सरा थी ॥३२॥

दृष्ट्वा तु राजा ता प्रीत प्रलापान् कुरुते बहून्।
आयाहि तिष्ठ मनसा घोरे वचसि तिष्ठ हे ॥३३
एवमादीनि सूक्ष्माणि परस्परमभाषत।
उर्व्वशी त्वब्रवीच्चैल सगर्भाह त्वया प्रभो ॥३४
संवत्सरात् कुमारस्ते भविता नव संशय.।
निशामेकान्तु वै राजा ह्यवसत्तु तया सह ॥३५
सम्प्रहृष्टो जगामाथ स्वपुरन्तु महायशा।
गते संवत्सरे राजा उर्व्वशी पुनरागमत् ॥३६
उषित्वा तु तया सार्द्धमेकरात्रं महामनाः।
कामार्त्तश्चा प्रवीद्दीनो भव नित्यं ममेति वै ॥३७
उर्व्वश्ययाब्रवीच्चैल गन्धर्वास्ते वरं ददु।
त वृणीष्व महाराज ब्रूहि चैतांस्त्वमेव हि ॥३८
वृणे नित्य हि सालोक्यं गन्धर्वाणां महात्मनाम्।
ततस्तुवत्वा वर वव्रे गन्धर्वाश्च तथास्त्विति ॥३९
स्थालीमग्ने पूरयित्वा गन्धर्वाश्च तमब्रुवन्।
अनेन इष्ट्वा लोकन्त प्राप्स्यसि त्व नराधिप ॥४०

राजा ने उसको देखकर परम प्रसन्नता प्राप्त की और वह बहुत से प्रलाप करने लगा जैसे—आओ, ठहरो, मनसे घोर वचन मे स्थित होजा, इत्यादि अनर्थक वचन राजा ने कहे ॥३३॥ इस प्रकार से बहुत-सी सूक्ष्म बातें आपस मे बोली और फिर उर्वशी ने ऐल से कहा—हे प्रभो! मैं आपसे गर्भ वाली होगई हूँ ॥३४॥ एक वर्ष मे तुम्हारा कुमार उत्पन्न होगा—इसमें कोई भी संशय

मेषाख्या पदवी राजन् गन्धर्वैर्युं स्थितामथ ।
उत्पादिता तु महती माया तद्भुवन महत् ॥२५
प्रकाशितन्तु सहसा ततो नग्नमवेक्ष्य सा ।
नग्न दृष्ट्वा तिरोऽभूत्सा अप्सरा कामरूपिणी ॥२६
तिरोभूतान्तु ता ज्ञात्वा गन्धर्वास्तत्र तावुभौ ।
मेषो त्यक्त्वा च ते सर्वे तत्रैवान्तर्हिताभवन् ॥२७
उत्सृष्टावुरणौ दृष्ट्वा राजा गृह्यागत प्रभु ।
अपश्यस्ता तु वै राजा विललाप सुदु खित ॥२८
चचार पृथिवी चैव मार्गमाणस्ततस्ततः ।
अथापश्यच्च ता राजा कुरुक्षेत्रे महाबल ॥२९
प्लक्षतीर्थे पुष्करिण्या विगाहेनाम्बुनाप्लुताम् ।
क्रीडन्तीमप्सरोभिश्च पञ्चभि सह शोभनाम् ॥३०
अपश्यत्सा तत शुभ्र राजानमविदूरत ।
उर्वशी ता सखी प्राह मय स पुरुषोत्तम ॥३१
यस्मिन्नहमवात्स हि दर्शयामास त नृपम् ।
तत आविर्बभूवुस्ता पञ्चचूडाप्सरास्तु ता ॥३२

हे राजन् ! मेषा के द्वारा बनी हुई पदवी को अर्थात् मार्ग में राजा ने लगाई थी और गन्धर्वों के द्वारा बड़ी माया उत्पन्न करदी गई थी कि वह न् भवन सहसा प्रकाश से युक्त होगया और फिर उस उर्वशी ने राजा को देख लिया था तथा नग्नावस्था में राजा को देखकर वह कामरूप धारण न वाली अप्सरा तिरोभूत होगई थी ॥२५-२६॥ वहाँ पर उन गन्धर्वों ने यह जान लिया कि वह उर्वशी छिप गई है यानी तिरोहित होगई है तो वे ों मेषों को वहाँ पर छोड कर वे सब भी वहीं अन्तर्धान होगये थे ॥२७॥ त्यागे हुए मेषों को लेकर राजा आया तो वहाँ उस अप्सरा उर्वशी को न ते हुए बहुत दु खित होकर विलाप करने लगा ॥२८॥ इसके पश्चात् वह उसे इधर उधर खोजता हुआ पृथिवी पर विचरण कर रहा था और इसके बाद् महा बलवान् राजा ने उसको कुरुक्षेत्र में देखा था ॥२९॥ वह उर्वशी

प्लक्ष तीर्थ में जो पुष्करिणी है उसमें खूब गहरे जल में आप्लुत थी और पाँच अप्सराओं के साथ क्रीडा करती हुई परम शोभा से युक्त वहाँ उस को राजा ने देखा था ॥३०॥ उस सुभ्रू ने निकट से राजा को देखा और इसके पश्चात् अपनी उन सहेलियों से उर्वशी ने कहा कि वह यह श्रेष्ठ पुरुष है ॥३१॥ जिसके साथ मैंने निवास किया था—यह कहकर उनको वह राजा दिखला दिया था। इसके अनन्तर वे सब प्रकट होगई थी। पञ्चचूड़ा अप्सरा थी ॥३२॥

दृष्ट्वा तु राजा तां प्रीतः प्रलापान् कुरुते बहून्।
आयाहि तिष्ठ मनसा घोरे वचसि तिष्ठ हे ॥३३
एवमादीनि सूक्ष्माणि परस्परमभाषत।
उर्वशी त्वब्रवीच्चैलं सगर्भाहं त्वया प्रभो ॥३४
संवत्सरात् कुमारस्ते भविता नव संशय.।
निशामेकान्तु वै राजा ह्यवसत्तु तया सह ॥३५
सम्प्रहृष्टो जगामाथ स्वपुरन्तु महायशाः।
गते संवत्सरे राजा उर्वशी पुनरागमत् ॥३६
उषित्वा तु तया सार्द्धमेकरात्रं महामनाः।
कामार्त्तं त्वा ब्रवीद्दीनो भव नित्यं ममेति वै ॥३७
उर्वश्यथाब्रवीच्चैलं गन्धर्वास्ते वरं ददु।
तं वृणीष्व महाराज ब्रूहि चैतांस्त्वमेव हि ॥३८
वृणे नित्यं हि सालोक्यं गन्धर्वाणां महात्मनाम्।
ततेत्युक्त्वा वरं वव्रे गन्धर्वाश्च तथास्त्विति ॥३९
स्थालीमग्ने पूरयित्वा गन्धर्व्वाश्च तमब्रुवन्।
अनेन इष्ट्वा लोकन्त प्राप्स्यसि त्वं नराधिप ॥४०

राजा ने उसको देखकर परम प्रसन्नता प्राप्त की और वह बहुत से प्रलाप करने लगा जैसे—आओ, ठहरो, मनसे घोर वचन में स्थित होजा, इत्यादि अनर्थक वचन राजा ने कहे ॥३३॥ इस प्रकार से बहुत-सी सूक्ष्म बातें आपस में बोलीं और फिर उर्वशी ने ऐल से कहा—हे प्रभो ! मैं आपसे गर्भ वाली होगई हूँ ॥३४॥ एक वर्ष में तुम्हारा कुमार उत्पन्न होगा—इसमें कोई भी संशय

रही है। वह राजा एक रात वहाँ उनके साथ रहा ॥३५॥ वह राजा परम प्रसन्न होता हुआ महान् मन वाला अपने पुर को वापिस चला गया था। एक वर्ष के समाप्त होजाने पर राजा ऐल पुन वहीं उर्वशी के पास आया था ॥३६॥ महान् मन वाला वह राजा सार्ध एक रात्रि तक वहाँ उसके साथ निवास करके और काम से आर्त होता हुआ दीन होकर उर्वशी से बोला तुम मेरी नित्य ही रहने वाली होजाओ ॥३७॥ और इसके अन्तर्गत उर्वशी ने ऐल से कहा उन गन्धर्वों ने वरदान दिया है—उनका वरण कर—जो हे महाराज ! तुमही इनसे कहो ॥३८॥ महात्मा गन्धर्वों से नित्य सालोक्य को वरा। 'तथास्तु'—यह कह कर अर्थात् ऐसा ही होवे गन्धर्वों ने वर दिया ॥३९॥ और स्थाली को अग्नि से भर कर गन्धर्वों ने उससे कहा—नरो के स्वामी ! इससे यजन करके तू उस लोक को प्राप्त हो जायगा ॥४०॥

तमादाय कुमारन्तु नगरायोपचक्रमे ।
निःक्षिप्य समरण्याञ्च स पुत्रन्तु गृह ययौ ॥४१
पुनरादाय हृदयाग्निमश्वत्थ तत्र हृष्टवान् ।
समीपतस्तु त दृष्ट्वा ह्यश्वत्थ तत्र विस्मित. ॥४२
गन्धर्वेभ्यस्तदाख्यातुमग्निना गा गतस्तु स. ।
श्रुत्वातमर्थमखिलमरणिं तु समादिशत् ॥४३
अश्वत्थादरणिं कृत्वा मथित्वाग्नि यथाविधि ।
तेनेष्ट्वा तु सलोक न. प्राप्स्यसि त्व नराधिप ।
मथित्वाग्नि त्रिधा कृत्वाह्ययजत्स नराधिप ॥४४
इष्ट्वा यज्ञैर्बहुविधैर्गतस्तेषा सलोकताम् ।
वासाय च स गन्धर्वैस्त्रेतायां स महारथ ।
एकोऽग्नि पूर्वमासीद्धि ऐलस्त्री स्तानकल्पयत् ॥४५
एवप्रभावो राजासीदैलस्तु द्विजसत्तमा. ।
देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरलकृते ॥४६
राज्य स कारयामास प्रयागे पृथिवी पतिः ।
उत्तरे यामुने तीरे प्रतिष्ठाने महायशा ॥४७

तस्य पुत्रा बभूवुर्हि षडिन्द्रोपमतेजसः ।
गन्धर्वलोके विदिता आयुर्धीमानमावसुः ॥४८
विश्वायुश्च शतायुश्च गतायुश्चोर्वशीसुताः ।
अमावसोस्तु यं जातो भीमो राजाथ विश्वजित् ॥४९

उस कुमार को लेकर नगर के लिये चल दिया था वह उस पुत्र को अरणी में डालकर गृह चला गया ॥४१॥ फिर लाकर इसने अग्नि अश्वत्थ (पीपल) को वहाँ देखा था। समीप में उसे अश्वत्थ को देखकर वहाँ विस्मित होगया ॥४२॥ गन्धर्वों ने उस प्रकार से कहने के लिये अग्नि के द्वारा भूमि में गया हुआ वह उस समस्त अर्थ को श्रवण कर अरणि को आज्ञा दी ॥४३॥ अश्वत्थ से अरणी में करके और अग्नि को यथा विधि के अनुसार मन्थन कर हे नराधिप ! तुम उससे यजन करके आप हमारे लोक को प्राप्त हो जाओगे। अग्नि का मन्थन करके उस राजा ने उसके तीन भाग करके यजन किया था ॥४४॥ वह महात्मा गन्धर्व बहुत प्रकार के यज्ञों के द्वारा यजन करके ऐसा से उनकी सलोकता को प्राप्त हुआ और काम के लिये योग्य बना था। पहिले एक अग्नि था राजा ऐल ने उसे तीन बना दिया था ॥४५॥ इस प्रकार के प्रभाव वाला वह राजा ऐल हुआ है। हे द्विज श्रेष्ठो ! राजा ऐल महर्षियों के द्वारा [illegible] और परम पुण्य देश में हुआ था ॥४६॥ वह महान् यशवाला भूपति यमुना के उत्तर के तट पर प्रतिष्ठान में प्रयाग में राज्य किया करता था अर्थात् उसने अपनी राजधानी प्रयाग को बनाया था ॥४७॥ उसके इन्द्र के समान तेजस्वी छै पुत्र हुए थे जो कि गन्धर्वों के लोक में विदित थे। उनके नाम—आयु—धीमान्—अमावसु—विश्वायु—शतायु और गतायु थे जो कि उर्वशी के पुत्र थे। अमावसु से समस्त इस विश्व को जीतने वाला राजा भीम उत्पन्न हुआ ॥४८-४९॥

श्रीमान् भीमस्य दायादो राजासीत्काञ्चनप्रभः ।
विद्वांस्तु काञ्चनस्यापि सुहोत्रोऽभून्महाबलः ॥५०
सुहोत्रस्याभवज्जह्नुः केशिन्या गर्भसम्भवः ।
प्रविश्य ततो गङ्गा विनये यज्ञकर्मणि ॥५१

प्लावयामास त देश भाविनोर्थस्य दर्शनात् ।
गङ्गया प्लावित दृष्ट्वा यज्ञवाट समन्तत ॥५२
सौहोत्रिर्वरद क्रुद्धा गङ्गा सरक्तलोचन ।
अस्य गङ्गे ऽवलेपस्य सद्य फलमवाप्नुहि ॥५३
एतत्ते विफल सर्व्व पीतमम्म करोम्यहम् ।
राजर्षिणा तत. पीता गङ्गा दृष्ट्वा सुरर्षय ॥५४
उपनिन्युर्महाभागा दुहितृत्वेन जाह्नवीम् ।
यौवनाश्वस्य पौत्रीन्तु कावेरीञ्जह्नुरावहत् ॥५५
युवनाश्वस्य शापेन गङ्गा येन विनिर्ममे ।
कावेरी सरिता श्रेष्ठा जह्नुर्भार्य्यामनिन्दिताम् ॥५६
जह्नुश्च दयित पुत्र सुहोत्र नाम धार्मिकम् ।
कावेर्य्यां जनयामास अजकस्तस्य चात्मज ॥५७

श्रीमान् भीम का दायाद अर्थात् पुत्र काञ्चनप्रभ राजा था और काञ्चनप्रभ राजा का पुत्र महान् बलवान् तथा परम विद्वान् सुहोत्र नाम वाला हुआ था ॥५०॥ सुहोत्र का पुत्र केशिका के गर्भ से उत्पन्न होने वाला जह्नु नाम वाला हुआ । जिसके विस्तृत यज्ञ कर्म मे गङ्गा ने आकर उस भाग में होने वाले प्रयोजन के दर्शन के कारण से पूर्णत प्लावित कर दिया था। गङ्गा के द्वारा सब ओर से प्लावित यज्ञवाट को सुहोत्र के पुत्र जह्नु ने देखा ॥५१-५२॥ वरद जह्नु गङ्गा पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसके नेत्र क्रोधावेशसे लाल होगये थे—उसने कहा—हे गङ्गा ! इस घमण्ड का तू तुरन्त ही फल प्राप्त कर ।५३। यह तेरा जल सब पान कर मैं विफल कर देता हूँ। देवर्षियो ने उस राजर्षि के द्वारा गङ्गा को पीत अर्थात् पान की हुई देखा ॥५४॥ पीत गङ्गा को देखकर महान् भाग वाले सुरर्षियो ने उसको जह्नु राजा की पुत्री उपनीत किया था। जह्नु राजा ने यौवनाश्व की पौत्री कावेरी के साथ विवाह किया था ॥५५॥ युवनाश्व के जिस शाप से गङ्गा ने श्रेष्ठ सरिता कावेरी को जह्नु की अनिन्दित भार्या बनाया था ॥५६॥ जह्नु राजा ने दयित पुत्र जोकि परम धार्मिक था ऐसा सुहोत्र नाम वाला कावेरी मे उत्पन्न किया था और उसका आत्मज अजक हुआ था ॥५७॥

अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महायशा. ।
बभूवुश्च गय शील: कुशस्तस्यात्मज स्मृत ॥५८
कुशपुत्रा बभूवुश्च चत्वारो वेदवर्चस ।
कुशाश्व. कुशनाभश्च अमूर्त्तरयसोवसु: ॥५९
कुशस्तम्बस्तपस्तेपे पुत्रार्थी राजसत्तम. ।
पूर्णं वर्षसहस्रं वै शतक्रतुमपश्यत ॥६०
समुग्रतपसं दृष्ट्वा सहस्राक्ष पुरन्दर: ।
समर्थ पुत्रजनने स्वयमेवास्य शाश्वत: ॥६१
पुत्रत्व कल्पयामास स्वयमेव पुरन्दर. ।
गाधिर्नामाभवत्पुत्र कौशिक. पाकशासन: ॥६२
पौरुकुत्साभवद्भार्या गाधिस्तस्यामजायत ।
पूर्व्वं कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभाम् ।
ता गाधिपुत्र काव्याय ऋचीकाय ददौ प्रभु ॥६३
तस्या पुत्रस्तु वै भर्त्ता भार्गवो भृगुनन्दन ।
पुत्रार्थं साधयामास चरु गाधेस्तथैव च ॥६४
तथा चाहूय सुधृतिश्चर्चीको भार्गवस्तदा ।
उपयोज्यश्चरुरय त्वया माता च ते शुभे ॥६५

अजक का पुत्र महान् यश वाला बलाकाश्व हुआ था और उसने पुत्र गय-शील तथा कुशाश्व हुए ॥५८॥ कुश के वेदवर्चस वाले कुशाश्व-कुशनाभ-अमूर्त्तरि और वशोवसु ये चार पुत्र हुए थे ॥५९॥ राजाओं में परमश्रेष्ठ कुशस्तम्ब ने पुत्र की प्राप्ति का इच्छुक होते हुए पूरे एक सहस्र वर्ष तक तपस्या की थी और इन्द्र का दर्शन प्राप्त किया था ॥६०॥ सहस्र नेत्रों वाले इन्द्र ने उसको उग्र तपश्चर्या करने वाले को देखकर इसके पुत्र उत्पन्न होने में स्वय ही शाश्वत समर्थ होगया था ॥६१॥ इन्द्र ने स्वय ही पुत्रत्व की कल्पना की थी और पाकशासन (इन्द्र) गाधि नाम वाला कौशिक पुत्र हुआ था ॥६२॥ पौरुकुत्सा नाम वाली भार्या थी उसमें गाधि उत्पन्न हुए। पहिले महान् भाग वाली सत्यवती नाम वाली उस शुभ कन्या को प्रभु गाधि पुत्र ने ऋचीक काव्य का

दी थी ॥६३॥ उसमें भृगुनन्दन भरण करने वाले भार्गव पुत्र हुए। पुत्र के लिए गाधि से चरु का साधन किया था ॥६४॥ उस समय सुमुनि को बुलाकर ऋचीक भार्गव ने कहा—हे शुभे! इस चरु का तुझे और तेरी माता को उपयोग करना चाहिए ॥६५॥

तस्या जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान् क्षत्रियर्षभ ।
अजेयः क्षत्रियैर्युद्धे क्षत्रियर्षभसूदन ॥६६
तवापि पुत्रं कल्याणि धृतिमन्तं तपोधनम् ।
शमात्मकं द्विजश्रेष्ठं चरुरेष विधास्यति ॥६७
एवमुक्त्वा तु तां भार्य्यामृचीको भृगुनन्दन ।
तपस्यभिरतो नित्यमरण्यं प्रविवेश ह ॥६८
गाधिः सदारस्तु तदा ऋचीकाश्रममभ्यगात् ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुतां द्रष्टुं नरेश्वरः ॥६९
चरुद्वयं गृहीत्वा तु ऋषेः सत्यवती तदा ।
भर्तुर्वचनमव्यग्रा हृष्टा मात्रे न्यवेदयत् ॥७०
माता तु तस्यै दैवेन दुहित्रे स्वं चरुं ददौ ।
तस्याश्चरुमथाज्ञानादात्मनः सा चकार ह ॥७१
अथ सत्यवती गर्भं क्षत्रियान्तकरं शुभम् ।
धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शना ॥७२
तामृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाप्यनुसृत्य च ।
तदाब्रवीद्द्विजश्रेष्ठ स्वां भार्य्यां वरवर्णिनीम् ॥७३
मातुः सिद्धयति ते भद्रे चरुव्यत्यासहेतुना ।
जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्मातिदारुणः ॥७४

उसमें ऐसा एक पुत्र उत्पन्न होगा जो क्षत्रियों में परमश्रेष्ठ और दीप्तिमान् होगा जिसको युद्ध में क्षत्रियों के द्वारा जीता नहीं जा सकता है, वह क्षत्रियर्षभ सूदन होगा ॥६६॥ हे कल्याणि! तुझको भी यह चरु धृति वाला—तपोधन, शम के स्वरूप वाला और द्विजों में श्रेष्ठ पुत्र होगा ॥६७॥ इस प्रकार से भार्या से कहकर ऋचीक भृगुनन्दन नित्य ही तपस्या में अभिरति रखने वाला

होकर अरण्य में प्रविष्ट होगये थे ॥६८॥ उस समय गाधि पत्नी के साथ ऋचीक के आश्रम में गये। वह नरेश्वर तीर्थयात्रा करने से प्रसन्न में अपनी पुत्री को देखने के लिये आश्रम में पहुंचे थे ॥६६॥ सत्यवती ने ऋषि के चरुद्वय अर्थात् दोनों चरुओं को लेकर सदा स्वामी में वचन से अव्यग्र रहती हुई प्रमत्त होकर अपनी माता से निवेदन किया था ॥७०॥ माता ने दैववशात् उस बेटी के लिए अपना चरु दे दिया और अज्ञान से उसके चरु को अपना कर लिया था ॥७१॥ इसके अनन्तर सत्यवती ने क्षत्रियों के अन्त तक कर देने वाला शुभ गर्भ धारण किया था जिसका शरीर अति दीप्त था और उससे वह घोर दर्शन वाली थी ॥७२॥ ऋचीक ने उसे देखकर और फिर योग के द्वारा भी विचार कर तब वह द्विजों में श्रेष्ठ अपनी वरवर्णिनी भार्या से बोला ॥७३॥ हे भद्रे ! चरु के व्यत्यास (उलट-पलट) के कारण से तुझे माता का चरु प्राप्त हुआ है अतः तेरे क्रूरकर्म करने वाला अत्यन्त दारुण पुत्र पैदा होगा ॥७४॥

माता जनिष्यते वापि तथाभूत तपोधनम् ।
विश्व हि ब्रह्म तपसा मया तत्र समर्पितम् ॥७५
एवमुक्ता महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा ।
प्रसादयामास पति मुनो मे नेदृशो भवेत् ।
ब्राह्मणापसदस्त्वन्य इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ॥७६
नैष सङ्कल्पित कामो मया भद्रे तथा त्वया ।
उग्रकर्मा भवेत् पुत्र पितुर्मातुश्च कारणात् ॥७७
पुन सत्यवती वाक्यमेवमुक्ताब्रवीदिदम् ।
इच्छँल्लोकानपि मुने सृजेथाः किं पुन सुतम् ॥७८
शमात्मकमृजु भर्त्त पुत्र मे दातुमर्हसि ।
काममेवविध पुत्रो मम स्यात्तु वद प्रभो ॥७६
मय्यन्यथा न शक्य वै कर्तुं मेव द्विजोत्तम ।
तत प्रसादमकरोत् स तस्यास्तपसो बलात् ॥८०
पुत्रे नास्ति विशेषो मे पौत्रे वा वरवर्णिनि ।
त्वया यथोक्त वचन तथा भद्रे भविष्यति ॥८१

तस्मात् सत्यवती पुत्र जनयामास भार्गवम् ।
तपस्यभिरतन्दान्त जमदग्नि शमात्मकम् ॥८२

तेरी माता ऐसा परम तपस्वी पुत्र पैदा करेगी मैंने वहाँ तप के द्वारा ब्रह्म को समर्पित किया है ॥७५॥ इस प्रकार से अपने पति के द्वारा कही गई सत्यवती उस समय पति को प्रसन्न करने लगी कि मेरा पुत्र इस प्रकार का जन्म न लेवे । अन्य ब्राह्मणसद है इस प्रकार से कहे गये मुनि बोले ॥७६॥ हे भद्रे ! इस प्रकार की यह इच्छा मैंने नया तूने कभी नहीं की थी । उपक्रम करने वाला पुत्र पिता और माता के कारण से होता है ॥७७॥ फिर इस प्रकार से कही गई सत्यवती यह वचन बोली—हे मुने ! इच्छा करते हुए तो लोकों का भी सृजन करते हैं फिर पुत्र के विषय में क्या बात है ॥७८॥ हे स्वामिन् ! सीधा और शम स्वरूप वाला पुत्र मुझे देने के योग्य हैं । हे प्रभो ! इच्छानुकूल इस प्रकार का पुत्र मेरा हो जावे आप ऐसा कह देवें ॥७९॥ हे द्विजोत्तम ! मुझसे अन्यथा नहीं किया जा सकता है । इसके अनन्तर तप के बल से उसने उस पर प्रसन्नता की थी ॥८०॥ हे वरवर्णिनि ! मेरे पुत्र अथवा पौत्र में विशेषता नहीं है । तूने जैसा कहा है हे भद्रे ! वैसा ही वचन होगा ॥८१॥ इससे सत्यवती ने तप में अभिरति रखने वाला—दान्त और शमात्मक जमदग्नि नाम्न पुत्र को जन्म दिया था ॥८२॥

भृगोश्चरुविपर्यासे रौद्रवैष्णवयो पुरा ।
यमनाद्वैष्णवस्याग्नेर्जमदग्निरजायत ॥८३
विश्वामित्र तु दायाद गाधि कुशिकनन्दन ।
प्राप्य ब्रह्मर्षिसहितो (सविता) जगाम ब्रह्मणा वृत ॥८४
सा हि सत्यवती पुण्या सत्यव्रतपरायणा ।
कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तय महानदी ॥८५
परिख्याता महाभागा कौशिकी सरिता वरा ।
इक्ष्वाकुवंशे स्वभवत्सुवेणुर्नाम पार्थिव ॥८६
तस्या कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका ।

रेणुकायान्तु कामल्यां तपोधृतिसमन्वित ।
आर्चीको जनयामास जमदग्नि सुदारुणम् ॥८७
सर्वविद्यान्तग श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम् ।
राम क्षत्रियहन्तार प्रदीप्तमिव पावकम् ॥८८
ग्रौर्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्या महामना. ।
जमदग्निस्ततो वीर्य्याज्जज्ञे ब्रह्मविदा वरः ।
मध्यमश्च शुन.शेफः शुन.पुच्छ कनिष्ठक ॥८९
विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथ स्मृत. ।
जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाद्वंशवर्द्धन ॥९०

पहिले भृगु के रौद्र और वैष्णव के चरु के व्यत्यास होने पर वष्णव अग्नि के यमन से जमदग्नि उत्पन्न हुए थे ॥८३॥ कुशिक नन्दन गाधि ने दायाद विश्वामित्र को प्राप्त कर ब्रह्मर्षियो के सहित ब्रह्मा से वृत होकर गया था ।८४। वह सत्यवती परम पवित्र और सत्य के व्रत मे परायण थी जोकि कौशिकी इस नाम से प्रवृत्त वह महानदी कहलाई थी ॥८५॥ सरिताओ मे श्रेष्ठ महान् भाग वाली कौशिकी परिस्रुत हुई थी । इक्ष्वाकु के वश में वेणु नाम वाला राजा हुआ था ॥८६॥ उसकी महान् भाग वाली कन्या कामली नाम वाली रेणुका थी । रेणुका कामलीमे आर्चीक जमदग्नि ने जोकि तप और धृति मे समन्वित थे, सुदारुण को उत्पन्न किया था ॥८७॥ जोकि समस्त विद्याओ का पारगामी–श्रेष्ठ और धनुर्वेद के परम पण्डित थे जिनका नाम राम था तथा प्रदीप्त पावक (अग्नि) के समान एव क्षत्रियो का हनन करने वाले हुए थे ॥८८॥ ब्रह्मवेत्ताओ मे श्रेष्ठ, महान् मन वाले जमदग्नि ने सत्यवती मे और्व ऋचीक के वीर्य से राम को उत्पन्न किया था । और मध्यम शुन शेफ तथा सबसे छोटा शुन पुच्छ था ॥८९॥ विश्वामित्र तो बहुत ही धर्मात्मा थे और नाम से विश्वरथ कहे गये थे । भृगु के प्रसाद से कौशिक से वश के बढाने वाले उत्पन्न हुए थे ॥९०॥

विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुन शेफोऽभवन्मुनिः ।
हरिश्चन्द्रस्य यज्ञे तु पशुत्वे नियुत स वै ।
देवैर्दत्त वै यस्माद् वरातस्ततोऽभवत् ॥९१

विश्वामित्रस्य पुत्राणा शुन.शेफोऽग्रज. स्मृत ।
मधुच्छन्दो नयश्चैव कृतदेवो ध्रुवाष्टको ॥६२
कच्छप: पूरणश्चैव विश्वामित्रसुतास्तु वै ।
तेषां गोत्राणि बहुधा कौशिकाना महात्मनाम् ॥६३
पार्थिवा देवराताश्च याज्ञवल्क्या: समर्पणा ।
उदुम्बरा उदुम्वलानास्तारका यममुञ्चना. ॥६४
लोहिण्यो रेणवश्चैव तथा कारीषवः स्मृता ।
बभ्रव पाणिनश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च ॥६५
शालावत्या हिरण्याक्षा स्यङ्कृता गालवा स्मृता: ।
देवला यामदूताश्च शालङ्कायनवाष्कला. ॥६६
ददाति बादराश्चान्ये विश्वामित्रस्य धीमत ।
ऋष्यन्तरविवाह्यास्ते बहव. कौशिका स्मृता ॥६७
कौशिकासोश्रुमाश्चैव तथान्ये सैंधवायना: ।
पौरोरवस्य पुण्यस्य ब्रह्मर्षे: कौशिकस्य तु ॥६८

विश्वामित्र के पुत्र शुन शेफ मुनि हुए थे। वह राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ मे पशुत्व मे नियुक्त किये थे। देवो के द्वारा वह दिया गया था इससे तब देवराज हुए थे ॥६१॥ विश्वामित्र के पुत्रो मे शुन शेफ सबमे बडा कहा गया था। मधुमच्छन्द और नय, कृतदेव ध्रुवाष्टक—कच्छप और पूरण ये सब विश्वामित्र के पुत्र थे। उन महात्मा कौशिको के बहुत प्रकार के गोत्र हैं ॥६२-६३॥ पार्थिव—दे रात—याज्ञवल्क्य—समर्पण—उदुम्बर—उदुम्लान—तारक—यममुञ्चन—लोहिण्य—
[illegible]—बभ्रव—पाणिन—ध्यान जप्य—शालावत्य—हिरण्याक्ष—स्यकृत—[illegible]—यामदूत—शालङ्कायन—वाष्कल और बादर ये धीमान् विश्वामित्र पुत्रो के गोत्र कहे गये हैं। वे अन्य ऋषि के विवाह के योग्य बहुत कौशिक कहे गये हैं ॥६४ ६५-६६-६७॥ पौरोरव, पुण्य, ब्रह्मर्षि कौशिक के कौशिकासोश्रुम तथा अन्य सैंधवायन हैं ॥६८॥

दृषद्वतीसुतश्चापि विश्वामित्रात्तथाष्टक ।
अष्टकस्य सुतो यो हि प्रोक्तो जह्नुगणो मया ॥६६

कि लक्षणेन धर्मेण तपसेह श्रु तेन वा ।
ब्राह्मण्य समनुप्राप्त विश्वामित्रादिभिर्नृ पै ॥१००
येन येनाभिधानेन ब्राह्मण्य क्षत्रिया गता ।
विशेष ज्ञातुमिच्छामि तपसा दानतस्तथा ॥१०१
एवमुक्तस्ततो वाक्यमब्रवीदिदमर्थवत् ।
अन्यायोपगतैर्द्रव्यैराहृत्य यजते धिया ।
धर्माभिकाक्षी यजते न धर्मफलमश्नुते ॥१०२
धर्म्म चैत समाख्याय पापात्मा पुरुषाधम ।
ददाति दान विप्रेभ्यो लोकाना दम्भकारणात् ॥१०३
जप कृत्वा तथा तीव्र धनलाभान्निरकुश ।
रागमोहान्वितो ह्यन्ते पावनार्थं ददाति य ॥१०४
तेन दत्तानि दानानि अफलानि भवन्त्युत ।
तस्य धर्म्मप्रवृत्तस्य हिंसकस्य दुरात्मन ॥१०५
एव लब्ध्वा धन मोहाद्दनो यजतश्च ह ।
सक्लिष्टकर्मणो दान न तिष्ठति दुरात्मन ॥१०६

विश्वामित्र से दृषद्वती का पुत्र अष्टक हुआ । अष्टक का जो सुत था वह जह्नुगण मैंने कह दिया है ॥९९॥ ऋषियो ने कहा—विश्वामित्र आदि राजाओ ने किस लक्षण वाले धर्म्म के द्वारा तपस्या से अथवा श्रुत से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था ॥१००॥ जिस जिस अभिधान से क्षत्रिय लोग ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए थे तप के द्वारा या दान के द्वारा हुए उसके विशेष को जानने की इच्छा है ॥१०१॥ इस प्रकार से कहे गये वे इनके पश्चात् यह अर्थ से युक्त वाक्य बोले—अन्याय से उपगत द्रव्यो को लाकर उनसे यजन करने म जो बुद्धि धर्म का इच्छुक होकर यजन किया करता है वह धर्म का फल नही प्राप्त करता है ।१०२। इसको धर्म कहकर जो पापात्मा अधम पुरुष लोको को दम्भ दिखाने के कारण से विप्रों को दान दिया करता है ॥१०३॥ धन के लोभ मे निरकुश होकर तथा तीव्र तप करके राग और मोह से युक्त होता हुआ अन्त म पावन होने के लिये जो दान देता है ॥१०४॥ उसके द्वारा दिये हुए दान विफल हुआ करते हैं ।

हिमक–दुरात्मा और धर्म मे प्रवृत्ति रखने वाले उसके इस प्रकार मे (अन्याय से) धन को पाकर मोह से दान देने वाले और यजन करने वाले एवं जो विनष्ट धर्म से युक्त हो दुरात्मा का दान नहीं ठहरा करता है ॥१०५-१०६॥

न्यायागतानां द्रव्याणां तीर्थे सम्प्रतिपादनम् ।
कामानननभिसन्धाय यजते च ददाति च ॥१०७
स दानफलमाप्नोति तच्च दानं सुखोदयम् ।
दानेन भोगानाप्नोति स्वर्गं सत्येन गच्छति ॥१०८
तपसा तु सुतप्तेन लोकान् विष्टभ्य तिष्ठति ।
विष्टभ्य स तु तेजस्वी लोकेऽप्यानन्त्यमश्नुते ॥१०९
दानाच्छ्रेयस्तथा यज्ञो यज्ञाच्छ्रेयस्तथा तपः ।
सन्यासस्तपसः श्रेयास्तस्माज्ज्ञानं गुरु स्मृतम् ॥११०
श्रूयन्ते हि तपःसिद्धा क्षात्त्रोपेता द्विजातयः ।
विश्वामित्रो नरपतिर्मान्धाता सङ्कृतिः कपिः ॥१११
कपेश्च पुरुकुत्सश्च सत्यश्चानृहवानृगुः ।
आर्ष्टिषेणोऽजमीढश्च भागान्योऽन्यस्तथैव च ॥११२
यशीवश्चैव शिजयस्तथान्ये च महारथाः ।
रथीतरश्च रुन्दश्च विष्णुवृद्धादयो नृपाः ॥११३
क्षात्रोपेताः स्मृता ह्येते तपसा ऋषितां गताः ।
एते राजर्षयः सर्वे सिद्धिं सुमहतीं गताः ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि अयोर्वंशं महात्मनः ॥११४

न्याय से प्राप्त हुए द्रव्यों का तीर्थ स्थान मे भली-भाँति प्रतिपादन करना तथा अपनी कामनाओं का अभिसन्धान न करके जो यजन करता है और दान देता है ॥१०७॥ वह दान का फल प्राप्त करता है और वह दान सुख के उदय वाला होता है। दान से भोगो की प्राप्ति किया करता है और सत्य से स्वर्ग को जाता है ॥१०८॥ अच्छी प्रकार से तपे हुए तप से लोकों का विष्टम्भ करके रहा करता है। वह तेजस्वी विष्टम्भ करके लोकों में अनन्तता को प्राप्त किया करता है ॥१०९॥ दान से अधिक श्रेय करने वाला यज्ञ होता है और यज्ञ से

श्रेयस्कर तप होता है। तप से भी श्रेयान् सन्यास (अच्छी रीति से सबका त्याग करना) होता है। और उससे भी बड़ा ज्ञान कहा गया है ॥११०॥ सुने जाते हैं कि तपस्या से सिद्ध–क्षात्र धर्म से युक्त–द्विजाति राजा विश्वामित्र, मान्धाता, सङ्कृति, कपि और कपि का पुरुकुत्स,सत्य, आनुहवान्, ऋभु,आर्ष्टिषेण, अजमीढ तथा भागाम्योन्य, कक्षीव, शिजय एवं अन्य महारथ, रथीतर, रुन्द और विष्णु वृद्ध प्रभृति राजा ये सब क्षत्रिय थे तपस्या के द्वारा ऋषित्व को प्राप्त होगये थे। ये सब राजर्षि थे जोकि महती सिद्धि को प्राप्त कर चुके थे। इससे आगे महान् आत्मा वाले प्रभु के वंश का वर्णन करूँगा ॥१११ से ११४॥

प्रकरण५४—रजियुद्ध वर्णन

एते पुत्रा महात्मान पञ्चवासन् महावला ।
स्वर्भानुतनया विप्रा प्रभाया जज्ञिरे नृपा ॥१
नहुष प्रथमस्तेषा पुत्रधर्म्मा तत स्मृत ।
धर्म्मवृद्धात्मजश्चैव सुतहोत्रो महायशा ॥२
सुतहोत्रस्य दायादास्त्रय परमधार्म्मिका ।
काश्य शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समद प्रभु ॥३
पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनक ।
ब्राह्मणा क्षत्रियाश्चैव वैश्या शूद्रास्तथैव च ॥४
एतस्य वंशे सम्भूता विचित्रैः कर्म्मभिर्द्विजा ।
शलात्मजो ह्यार्ष्टिषेण श्चरन्तस्तस्य चात्मज ॥५
शौनकाश्चार्ष्टिषेणाश्च क्षात्रोपेता द्विजातय ।
काशस्य काशयो राष्ट्र पुत्रो दीर्घतपास्तथा ॥६
धर्म्मश्च दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिस्ततः ।
तपसा सुमहातेजा जातो वृद्धस्य धीमत ।
अथैनमृषयः प्रोचु सूत वाक्यमिम पुन ॥७

हिमव-दुरात्मा और धर्म म प्रवृत्ति रखने वाले उनके इस प्रकार से (अन्याय से) धन को पाकर मोह से दान देने वाले और यजन करने वाले एवं जो विनट कर्म से युक्त हो दुरात्मा का दान नहीं ठहरा करता है ॥१०५-१०६॥

न्यायागतानां द्रव्याणां तीर्थे सम्प्रतिपादनम् ।
कामाननभिसन्धाय यजते च ददाति च ॥१०७
स दानफलमाप्नोति तच्च दानं सुखोदयम् ।
दानेन भोगानाप्नोति स्वर्गं सत्येन गच्छति ॥१०८
तपसा तु सुतप्तेन लोकान् विष्टभ्या तिष्ठति ।
विष्टभ्य स तु तेजस्वी लोकेष्वानन्त्यमश्नुते ॥१०९
दानाच्छ्रेयास्तथा यज्ञो यज्ञाच्छ्रेयस्तथा तपः ।
सन्यासस्तपसः श्रेयास्तस्माज्ज्ञानं गुरु स्मृतम् ॥११०
श्रूयन्ते हि तपःसिद्धा क्षात्रोपेता द्विजातय ।
विश्वामित्रो नरपतिर्मान्धाता सङ्कृति कपि ॥१११
कपेश्च पुरुकुत्सश्च सत्यश्चानृहवानृगु ।
आर्ष्टिषेणोऽजमीढश्च भागान्योन्यस्तथैव च ॥११२
कक्षीवश्चैव शिजयस्तथान्ये च महारथा ।
रथीतरश्च रुन्दश्च विष्णुवृद्धादयो नृपा ॥११३
क्षात्रोपेताः स्मृता ह्येते तपसा ऋषिताङ्गता ।
एते राजर्षय सर्वे सिद्धिं सुमहतीङ्गताः ।
अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि ययोर्वंश महात्मन ॥११४

न्याय से आये हुए द्रव्यों का तीर्थ स्थान में भली-भांति प्रतिपादन करना तथा अपनी कामनाओं का अभिसन्धान न करके जो यजन करता है और दान देता है ॥१०७॥ वह दान का फल प्राप्त करता है और वह दान सुख के उदय वाला होता है । दान से भोगों की प्राप्ति किया करता म और सत्य से स्वर्ग को जाता है ॥१०८॥ अच्छी प्रकार से तपे हुए तप से लोकों का विष्टम्भ करके रहा करता है । वह तेजस्वी विष्टम्भ करके लोकों मे अनन्तता को प्राप्त किया करता है ॥१०९॥ दान से अधिक श्रेय करने वाला यज्ञ होता है और यज्ञ से

श्रेयस्कर तप होता है। तप से भी श्रेयान् सन्यास (अच्छी रीति से सबका त्याग करना) होता है। और उससे भी बड़ा ज्ञान कहा गया है ॥११०॥ सुने जाते हैं कि तपस्या से सिद्ध-क्षात्र धर्म से युक्त-द्विजाति राजा विश्वामित्र, मान्धाता, संकृति, कपि और कपि का पुरुकुत्स,सत्य, आनृहवान्, ऋभु,आर्ष्टिषेण, अजमीढ तथा भागान्वेय, कक्षीव, शिजय एवं अन्य महारथ, रथीतर, रुन्द और विष्णु वृद्ध प्रभृति राजा ये सब क्षत्रिय थे तपस्या के द्वारा ऋषित्व को प्राप्त होगये थे। ये सब राजर्षि थे जोकि महती सिद्धि को प्राप्त कर चुके थे। इससे आगे महान् आत्मा वाले मनु के वंश का वर्णन करूँगा ॥१११ से ११४॥

प्रकरण४४—रजियुद्ध वर्णन

एते पुत्रा महात्मानः पञ्चैवासन् महाबलाः ।
स्वर्भानुतनया विप्रा प्रभायां जज्ञिरे नृपाः ॥१
नहुषः प्रथमस्तेषां धुत्रधर्म्मा ततः स्मृतः ।
धर्म्म वृद्धात्मजश्चैव सुतहोत्रो महायशाः ॥२
सुतहोत्रस्य दायादास्त्रयः परमधार्म्मिकाः ।
काशः शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः ॥३
पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च ॥४
एतस्य वंशे सम्भूता विचित्रैः कर्म्मभिर्द्विजाः ।
शलात्मजो ह्यार्ष्टिषेणः अरन्तस्तस्य चात्मजः ॥५
शौनकाश्चार्ष्टिषेणाश्च क्षात्रोपेता द्विजातयः ।
काशस्य काशयो राष्ट्र पुत्रो दीर्घतपास्तथा ॥६
धर्मश्च दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिस्ततः ।
तपसा सुमहातेजा जातो वृद्धस्य धीमतः ।
अथैनमृषयः प्रोचुः सूत वाक्यमिमं पुनः ॥७

यथ धन्वन्तरिर्दे वो मानुषेष्विह जज्ञिवान् ।
एतद्वेदितुमिच्छामस्ततो ब्रूहि प्रिय तथा ॥८

श्री सूतजी ने कहा—ये महान् बलवान् महान् आत्मा वाले पाँच ही पुत्र थे। स्वर्भानु के पुत्र विप्र नृप प्रभा से उत्पन्न हुए थे ॥१॥ उनमें पुत्र धर्म वाला प्रथम न हुआ था। महान् यश वाला धर्म वृद्धा मज सुनहोत्र हुआ ॥२॥ सुनहोत्र के दायाद परम धार्मिक तीन हुए थे। काश और धूम दो हो ये थे तथा तृतीय प्रभु गृत्समद हुआ था ॥३॥ गृत्समद का भी पुत्र शुनक हुआ जिसका कि शौनक हुआ था। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र इनके वश में है द्विजगण ! अपने विविध कर्मों के द्वारा उत्पन्न हुए थे। उनका पुत्र आर्ष्टिषेण था और उसका पुत्र चरन्त हुआ था ॥४-५॥ शौनक और आर्ष्टिषेण ये क्षात्र धर्म से उपेत द्विजाति थे। काशका काशय-राष्ट्र तथा दीर्घतपा पुत्र हुए ॥६॥ दीर्घतपा का धर्म और इसके अनन्तर विद्वान् धन्वन्तरि हुआ जो तपसे महान् एव सुन्दर तेज वाला धीमान् वृद्ध से उत्पन्न हुआ था। इसके अनन्तर ऋषिवृन्द ने फिर श्री सूतजी से यह वाक्य बोले ॥७॥ ऋषियो ने कहा—देव धन्वन्तरि ने मनुष्यो मे कैसे यहाँ जन्म लिया था। हम लोग यह जानना चाहते हैं सो आप यह प्रिय बात कृपा करके बताइये ॥८॥

धन्वन्तरे सम्भवोऽयं श्रूयतामिह वै द्विजा ।
स सम्भूत समुद्रान्ते मथ्यमानेऽमृते पुरा ॥९
उत्पन्न सकलात् पूर्वं सर्व्वतश्च श्रियावृत ।
सर्व्वसिद्धकार्य त दृष्ट्वा विष्टम्भित स्थित ।
अजस्त्वमिति होवाच तस्मादजस्तु स स्मृत ॥१०
अज प्रोवाच विष्णु त तनयोऽस्मि तव प्रभो ।
विधत्स्व भाग स्थानञ्च मम लोके सुरोत्तम ॥११
एवमुक्तः स दृष्ट्वा तु तथा प्रोवाच स प्रभुः ।
कृतो यज्ञविभागस्तु यज्ञियैर्हि सुरैस्तथा ॥१२
वेदेषु विधियुक्तञ्च विधिहोत्र महर्षिभि ।
न शक्यमिह होमो वै तुल्य वक्तुं कदाचन ॥१३

अर्वाक्मुतोऽसि हे देव नाममन्त्रोऽसि वै प्रभो ।
द्वितीयायान्तु सम्भूत्या लोके ख्यातिङ्गमिष्यसि ॥१४
अणिमादियुता सिद्धिर्गर्भस्थस्य भविष्यति ।
तेनैव च शरीरेण देवत्वं प्राप्स्यसि प्रभो ।
चारुमन्त्रैर्घृतैर्गन्धैर्यक्ष्यन्ति त्वां द्विजातय. ॥१५
अथ च त्वं पुनश्चैव आयुर्वेदं विधास्यसि ।
अवश्यम्भावी ह्यर्थोऽयं प्राग्दिष्टस्त्वब्जयोनिना ॥१६
द्वितीयं द्वापरं प्राप्य भविता त्वं न संशय ।
तस्मात् तस्मै वरं दत्त्वा विष्णुरन्तर्दधे ततः ॥१७
द्वितीये द्वापरे प्राप्ते सौनहोत्र स काशिराट् ।
पुनर्वाम स्तपस्तेपे नृपो दीर्घतपास्तथा ॥१८

श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजगण ! यहाँ पर धन्वन्तरि का यह जन्म सुनो ! वह पहिले अमृत के लिये समुद्र का मन्थन करने पर समुद्र के मध्य से उत्पन्न हुए थे ॥६॥ सबसे पूर्व और सर्व प्रकार से श्री से आवृत वह उत्पन्न हुए थे। सब प्रकार से ससिद्ध काया वाले उनको देखकर सब विस्मित होगये थे। आप अज हैं-यह बोले-इस कारण से वह अज कहे गये थे ॥१०॥ अज उन विष्णु से बोले—हे प्रभो ! मैं आपका पुत्र हूँ। हे सुरों मे उत्तम ! आप लोक मे मेरा स्थान और भाग का विधान कर देवें ॥११॥ इस कारण से कहे गये वह प्रभु देखकर इस तरह से बोले—असिय सुरों के द्वारा यज्ञ का विभाग किया गया है ॥१२॥ वेदों में विधि से युक्त और विधिहोत्र महर्षियों के द्वारा यहाँ पर होम कभी तुल्य नहीं किया जा सकता है ॥१३॥ हे देव ! हे प्रभो ! आप अर्वाक्मुत हैं और नाम मन्त्र हैं। आप दूसरे जन्म में लोक में ख्याति को प्राप्त करेंगे ॥१४ आप जब गर्भ में स्थित रहेंगे तभी आपको अणिमा प्रभृति से युक्त सिद्धि प्राप्त हो जायगी और आप उसी शरीर से देवत्व को भी प्राप्त करेंगे। द्विजाति गण सुन्दर मन्त्रों से-घृत से और गन्धों के द्वारा आपका यजन करेंगे ॥१५॥ इसके अनन्तर फिर आप आयुर्वेद की रचना करेंगे। यह अवश्य ही होने वाला अर्थ है जो कि पहिले ही पद्मयोनि ब्रह्माने आदिष्ट कर दिया है ॥१६॥ दूसरे द्वापर को

पाकर आप होगे इसमे तनिक भी सशय नहीं है। इसने उनको वरदान देकर फिर विष्णु भगवान् वही पर अन्तर्धान होगये थे ॥१७॥ दूसरे द्वापर युग के आजाने पर काशिराट् वह धीन होत्र तथा दीर्घतपा नृप ने पुत्र की कामना वाला होते हुए तप किया था॥१८॥

अज देवन्तु पुत्रार्थ ह्यारिराधयिपुर्नृ प ।
वरेण च्छन्दयामास प्रीतो धन्वन्तरिर्नृ पम् ॥१९
भगवान् यदि तुष्टस्त्व पुत्रो मे धृतिमान् भव ।
तथेति समनुज्ञाय तत्रैवान्तरधीयत ॥२०
तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा ।
काशिराजो महाराज सर्व्वरोगप्रणाशन ॥२१
आयुर्वेद भरद्वाजश्चकार सभिषक्क्रियम् ।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्य प्रत्यपादयत् ॥२२
धन्वन्तरिसुतश्चापि केतुमानिति विश्रुत ।
अथ केतुमत पुत्रो विभो भीमरथो नृप ।
दिवोदास इति ख्यातो वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥२३
एतस्मिन्नेव काले तु पुरी वाराणसी पुरा ।
शून्या निवेशयामास क्षेमको नाम राक्षस ॥२४
शप्ता हि सा पुरी पूर्वं निकुम्भेन महात्मना ।
शून्या वर्षसहस्र वै भविश्रीति पुन. पुन ॥२५
तस्यान्तु शप्तमात्राया दिवोदास प्रजेश्वर ।
विषयान्ते पुरी रम्या गोमत्या सन्यवेशयत् ॥२६

पुत्र के लिये अज देव की आराधना करने वाले नृप को परम प्रसन्न धन्वन्तरि ने वरदान माँगने के लिये कहा था ॥१६॥ राजा बोला—हे भगवान्! यदि आप मुझपर सन्तुष्ट हैं तो धृतिमान् आप मेरे पुत्र होवें। तथास्तु (ऐसा ही होवे)—यह कहकर वहीं पर हो धन्वन्तरि अन्तर्हित होगये ॥२०॥ तब उसके घर मे देव धन्वन्तरि समुत्पन्न हुए। काशिराज महाराज समस्त रोगो के नाश करने वाले थे ॥२१॥ भरद्वाज ने भिषक् क्रिया के साथ आयुर्वेद को आठ

प्रकार से व्यसित करके शिष्यों के लिये प्रतिपादित किया था अर्थात् शिक्षा दी थी ॥२२॥ धन्वन्तरि का पुत्र भी केतुमान् इस नाम से विश्रुत हुआ। इसके अनन्तर केतुमान् का पुत्र विभु भीमरथ नृप हुआ था। वह दिवोदास इस नामसे विख्यात हुआ था और वाराणसी का स्वामी हुआ ॥२३॥ इस ही समय के बीच में पहिले वाराणसी पुरी में शून्य में क्षेमक नाम वाले राक्षस ने प्रवेश किया था ॥२४॥ पहिले समय में महात्मा निकुम्भ के द्वारा वह पुरी शाप से युक्त हुई थी कि बार-बार एक सहस्र वर्ष तक वह शून्य होगी ॥२५॥ उस पुरी के शाप मुक्त होने पर ही प्रजेश्वर दिवोदास ने विषयान्त में गोमती में रम्यपुरी को सन्निवेशित किया था ॥२६॥

वाराणसी विमर्यन्ता निकुम्भ शप्तवान् पुरा।
निकुम्भश्चापि धर्मात्मा सिद्धक्षेत्र शशाप यः ॥२७
दिवोदासस्तु राजर्षिर्नगरी प्राप्य पार्थिव।
वसते स महातेजा स्फीतायां वै नराधिप ॥२८
एतस्मिन्नेव काले तु कृतदारो महेश्वर।
देव्या स प्रियकामस्तु वसानश्च सुरान्तिके ॥२९
देवाज्ञया पारिषदा विश्वरूपास्तपोधना।
पूर्वोक्तं रूपविशेषैंस्तोषयन्ति महेश्वरीम् ॥३०
हृष्यति तैर्महादेवो मेना नैव तु हृष्यति।
जुगुप्सते सा नित्यञ्च देव देवी तथैव च ॥३१
मम पार्श्वे ह्यनाचारस्तव भर्ता महेश्वरः।
दरिद्र सर्व एवेह ह्यक्लिष्ट लडतेऽन्घे ॥३२
मात्रा तथोक्ता वचसा स्त्रीस्वभावान्न चाक्षमत्।
स्मितं कृत्वा तु वरदा हरपार्श्वमथागमत् ॥३३
विषण्णवदना देवी महादेवमभाषत।
नेह वत्स्याम्यहं देव नय मां स्व निवेशनम् ॥३४

ऋषियों ने कहा—पहिले निकुम्भ ने किसलिये वाराणसी पुरी को शाप दिया था। निकुम्भ भी बड़ा धर्मात्मा था जिसने कि उस सिद्ध क्षेत्र को शाप

दिया था ॥२७॥ सूतजी ने कहा—राजा दिवोदास ने जोकि राजर्षि था, उस नगरी को प्राप्त कर वह महान् तेज वाला राजा स्फीत अर्थात् फैली हुई पुरी मे निवास करता था ॥२८॥ इसी काल मे दारा को करने वाले महेश्वर देवी के प्रिय कामना वाले वह भृगु के समीप मे वास करने वाले थे ॥२९॥ देव की आज्ञा से तपोधन विश्वरूप परिषद् पूर्वोक्त रूप विशेषों के द्वारा महेश्वरी को तोष देते थे ॥३०॥ उनसे महादेव तो प्रसन्न होते हैं किन्तु मेना प्रसन्न नहीं होती है। वह नित्य ही देवी और देव की बुराई करती है ॥३१॥ मेरे समीप मे अनाचार है तुम्हारा स्वामी महेश्वर जो दरिद्र है। हे अनघे ! यहाँ सभी साधारण लाड करते हैं ॥३२॥ माता के द्वारा उस प्रकार से वाणी से कही गई देवी सती स्वभाव के कारण सहन करने मे समर्थ न हुई। वरदा ने स्मित करके उसके बाद हर के समीप मे गई थी ॥३३॥ विषाद से युक्त मुख वाली देवी ने महादेव से कहा—हे देव ! मैं यहाँ वास नहीं करूँगी आप मुझे अपने घर पर ले चलिये ॥३४॥

तथोक्तस्तु महादेव सर्वांल्लोकानवेक्ष्य ह ।
वासार्थं रोचयामास पृथिव्या तु द्विजोत्तमा ।
वाराणसी महातेजा सिद्धक्षेत्र महेश्वरः ॥३५
दिवो दासेन ता ज्ञात्वा निविष्टाम्नगरी भव ।
पार्श्वस्थ स समाहूय गणेश क्षेमक अब्रवीद् ॥३६
गणेश्वर पुरीङ्गत्वा शून्या वाराणसी कुरु ।
मृदुना चाभ्यु पायेन अतिवीर्यं स पार्थिव ॥३७
ततः गत्वा निकुम्भस्तु पुरी वाराणसी पुरा ।
स्वप्ने सन्दर्शयामास मङ्कन नाम नापितम् ॥३८
श्रेयस्तेऽह करिष्यामि स्थान मे रोचयानघ ।
मद्रूपा प्रतिमा कृत्वा नगर्यन्ते निवेशय ॥३९
तथा स्वप्ने यथा दृष्ट सर्व कारितवान् द्विजा ।
नगरीद्वार्यनुज्ञाप्य राजानन्तु यथाविधि ॥४०

उत्पन्न हुआ। उस बालक पुत्र ने उसका फिर हरण कर लिया था ॥६४॥ उस समय उस महान् राजा ने वैर का अन्त करते हुए ऐसा किया था। प्रतर्दन के दो पुत्र हुए। एक वत्स नाम वाला और दूसरा गर्ग इस नाम से प्रसिद्ध था।६५। वत्स का पुत्र अलर्क हुआ और उसका पुत्र सन्नति हुआ था। अलर्क के प्रति राजर्षि गीत श्लोक पुरातन थे ॥६६॥ काशिसत्तम अलर्क युवा रूपसे साठ हजार छै सौ साठ वर्ष तक सम्पन्न रहा था ॥६७॥ लोपामुद्रा के प्रसाद से अलर्क ने परमायु को प्राप्त किया था ॥६८॥

शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् ।
रम्यामावासयामास पुरीं वाराणसी नृप ॥६९
सन्नते रपि दायाद सुनीथो नाम धार्मिक ।
सुनीथस्य तु दायाद सुकेतुर्नाम धार्मिक ॥७०
सुकेतुतनयश्चापि धर्मकेतुरिति श्रुति ।
धर्मकेतोस्तु दायाद सत्यकेतुर्महारथ ॥७१
सत्यकेतुसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वर ।
सुविभुस्तु विभो पुत्र सुकुमारस्तत स्मृत ॥७२
सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतु स धार्मिक ।
धृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्र प्रजेश्वर ॥७३
वेणुहोत्रसुतश्चापि गार्ग्यो वै नाम विश्रुत ।
गार्ग्यस्य गर्गभूमिस्तु वात्स्यो वत्सस्य धीमत ॥७४
ब्राह्मणा क्षत्रियाश्चैव तयो पुत्रा सुधार्मिका ।
विश्रान्ता बलवन्तश्च सिंहतुल्यपराक्रमा ॥७५
इत्येते काश्यपा प्रोक्ता रजेरपि निबोधत ।
रजे पुत्रशतान्यासन् पञ्च वीर्यवतो भुवि ।
राजेयमिति विख्यात क्षत्रमिन्द्रभयावहम् ॥७६

शाप के अन्त होजाने पर महाबाहु ने क्षेमक राक्षस का वध करके राजा ने रम्य वाराणसी पुरी को बसाया था ॥६९॥ सन्नति का भी दायाद (पुत्र) सुनीथ नाम वाला बहुत ही धार्मिक था। सुनीथ का पुत्र सुकेतु नाम वाला

धार्मिक हुआ था ॥७०॥ सुकेतु का भी पुत्र धर्मकेतु हुआ—ऐसी श्रुति है। धर्मकेतु का दायाद महारथ सत्यकेतु हुआ था ॥७१॥ सत्यकेतु का भी पुत्र प्रजेश्वर विभु नाम वाला हुआ था। विभु का पुत्र सुविभु था और उसका पुत्र सुकुमार था ॥७२॥ सुकुमार के पुत्र का नाम धृष्टकेतु था वह बहुत ही धार्मिक था। धृष्टकेतु के दायाद प्रजेश्वर वेणुहोत्र हुआ था वेणुहोत्र के पुत्र का नाम गार्ग्य प्रख्यात था। गार्ग्य की गर्गभूमि और धीमान् वत्स का वात्स्य था ॥७४॥ इन दोनों के पुत्र सुन्दर धर्म के पालन करने वाले ब्राह्मण और क्षत्रिय थे वे बड़े विक्रम वाले तथा बलवान् एवं सिंह के समान पराक्रम वाले थे ॥७५॥ ये इतने काश्यप बतलाये गये हैं अब रजि के भी समझ लो। भूमण्डल में वीर्यवान् रजि के पाँचसौ पुत्र थे। इन्द्र के भय देने वाला वह क्षत्र राजय-इस नाम से विख्यात था ॥७६॥

तदा दैवा सुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारुणे ।
देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमथाब्रुवन् ॥७७
आवयोर्भगवान् युद्धे विजेता को भविष्यति ।
ब्रूहि न सर्वलोकेश श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥७८
येषामर्थाय संग्रामे रजिरात्तायुध प्रभु ।
योत्स्यते ते विजेष्यन्ति त्रीँल्लोकान्नात्र संशय ॥७९
रजिर्यतस्ततो लक्ष्मीर्यतो लक्ष्मीस्ततो धृति ।
यतो धृतिस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जय ॥८०
तद्देवा दानवाः सर्वे तत श्रुत्वा रजेर्जयम् ।
अभ्ययुर्जयमिच्छन्त स्तुवन्तो राजसत्तमम् ॥८१
ते हृष्टमनस सर्वे राजान देवदानवा ।
ऊचुरस्मज्जयाय त्व गृहाण वरकार्मुकम् ॥८२
अहङ्क्ष्यामि नो युद्धे देवान् शक्रपुरोगमान् ।
इन्द्रो भवामि धर्मात्मा ततो योत्स्यामि संयुगे ॥८३
अस्माकमिन्द्र प्रह्लादस्तस्यार्थे विजयामहे ।
अस्मिंस्तु समये राजंस्तिष्ठेथा देव नोऽदिते ॥८४

उस समय परम दारुण देवासुर युद्ध के उत्पन्न होने पर देवगण और असुरवृन्द इसके अनन्तर पितामह से बोले ॥७७॥ हे सर्व लोकेश ! भगवान् बतलावें कि हम दोनों के युद्ध में कौन विजयी होगा—यह हम सुनना चाहते हैं ॥७८॥ ब्रह्माजी ने कहा—जिनके लिये संग्राम में प्रभु रजि हथियार ग्रहण करके वाला होकर युद्ध करेगा वे तीन लोकों को जीत लेंगे—इसमें संशय नहीं है ।७६। जहाँ रजि है वहाँ लक्ष्मी है और जहाँ पर लक्ष्मी है वहाँ पर धृति होती है। वहाँ पर धृति है वहाँ धर्म रहता है और जहाँ धर्म है वहीं पर जय होती है ॥८०॥ तब तो देवता लोग और दानव सभी रजि की जय श्रवण कर जय की इच्छा करते हुए राजाओं में परम श्रेष्ठ रजि की स्तुति करते हुए वहाँ गये ।८१। वे सब देव और दानव प्रसन्न मन वाले राजा से बोले कि हमारे जय के लिये आप श्रेष्ठ धनुष ग्रहण करें ॥८२॥ रजि ने कहा—मैं इन्द्र जिनका अग्रगामी है ऐसे देवों को युद्ध में नहीं जीतूँगा। धर्मात्मा इन्द्र होना हूँ तब युद्धभूमि में लड़ूँगा ॥८३॥ दानवों ने कहा—हमारा इन्द्र प्रह्लाद है। उसके लिये हम विजय प्राप्त करते हैं। हे राजन् ! इस समय म यदिनि के यहाँ न ठहरिये ॥८४॥

स तथेति ब्रुवन्नेव देवैरप्यभिचोदितः ।
भविष्यसीन्द्रो जित्वे त देवं रपि निमन्त्रित ॥८५
जघान दानवान् सर्व्वान् समक्ष वज्रपाणिन ।
स विप्रनष्टां देवाना परमश्री· श्रिय वशी ॥८६
निहत्य दानवान् सर्व्वान् व्याजहार रजि प्रभु ।
त तथा तु रजि तत्र देवैस्सह शतक्रतु ।।८७
रजिपुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाब्रवीद्वच ।
इन्द्रोऽसि राजन् देवाना सर्वेषाम्नात्र सशय ।
यस्याहमिन्द्रपुत्रस्ते ख्याति यास्यामि शत्रुहन् ॥८८
स तु शक्रवच श्रुत्वा वञ्चितस्तेन मायया
तथेत्येवाब्रवीद्राजा प्रीयमाण शतक्रतुम् ॥८९
तस्मिंस्तु देवसदृशे दिव प्राप्ते महीपतौ
दायाद्यमिन्द्रादाजह्रु राचार तनया रजेः ॥९०

तानि पुत्रशतान्यस्य तत्र स्थानं शचीपतेः ।
समक्रामन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम् ॥६१
ततः काले बहुतिथे समतीते महाबलः ।
हृतराज्योऽब्रवीच्छक्रो हृतभागो बृहस्पतिम् ॥६२

वह तथास्तु अर्थात् ऐसा ही होवेगा—यह कहता हुआ तथा देवों के द्वारा भी बहुत प्रेरित हुआ और देवों के द्वारा निमन्त्रित होता हुआ जीतकर इन्द्र होगा यह कहा गया था ॥८५॥ वज्रपाणि (इन्द्र) के समक्ष में उसने समस्त दानवों का हनन किया था। देवों की विशेष रूप से नष्ट हुई श्री को वश रखने वाला वह परम श्री होगया ॥८६॥ समस्त दानवों को मारकर प्रभु रजि ने कहा वहाँ उस प्रकार से रजि को देवों के सहित इन्द्र ने मैं रजि का पुत्र हूँ—यह कहकर फिर वचन कहे। हे राजन्! आप समस्त देवों के इन्द्र हैं इसमें तनिक भी संशय नहीं है। हे नहुषन! जिस तेरा मैं इन्द्र पुत्र हूँ—यह ख्याति को प्राप्त करूँगा ॥८८॥ वह इन्द्र के वचन को सुनकर उसके द्वारा माया से वञ्चित किया गया था। राजा ने तथास्तु—यह ही शत क्रतु (इन्द्र) को प्रसन्न करते हुए कहा ॥८९॥ उस राजा के जोकि देव के तुल्य था स्वर्ग में प्राप्त होजाने पर रजि के पुत्रों ने इन्द्र से दायाद आचार को ले लिया था ॥९०॥ इसके उन पाँचसौ पुत्रों शची के पति इन्द्र के उस स्थान त्रिविष्टप स्वर्ग लोक को बहुत प्रकार से समाक्रान्त कर लिया था ॥९१॥ इसके अनन्तर बहुत काल के व्यतीत होजाने पर महान् बल वाला राज्य के छिन जाने वाला भाग्यहीन इन्द्र बृहस्पति से जाकर बोला ॥९२॥

बदरीफलमात्रं वै पुरोडाशं विधत्स्व मे ।
ब्रह्मर्षे येन तिष्ठेयं तेजसाप्यायितस्ततः ॥९३
ब्रह्मन् कृशोऽस्मि विमना हृतराज्यो हृताशनः ।
हृतौजा दुर्बलो मूढो रजिपुत्रैः प्रसीद मे ॥९४
यद्येव चोदितः शक्र त्वया स्यां पूर्वमेव हि ।
नाभविष्यत् त्वत्प्रियार्थं नाकर्तव्यं ममानघ ॥९५

पूजा तु महती चैव नित्यमेव प्रयुज्यते ।
गन्धैधू पैश्च माल्यैश्च प्रेक्षणीयैस्तथैव च ॥४१

हे द्विजोत्तमो ! उस प्रकार से कहे हुये महादेव ने समस्त लोकों को देखकर वास के लिए पृथिवी में महान् तेज वाले महेश्वर ने सिद्धक्षेत्र वाराणसी को पसन्द किया । दिवोदास के द्वारा उस नगरी को निविष्ट जानकर उन महादेव ने पास में स्थित क्षेमक गणेश से कहा ॥३६॥ हे गणेश्वर ! पुरी में जाकर वाराणसी को शून्य करदो । और मृदु अभ्युपाय से वह पार्थिव अतिवीर्य हो गया ॥३७॥ इसके अनन्तर निकुम्भ पुरी वाराणसी म जाकर पहिले मङ्कुन नाम नापित को स्वप्न में दिखाया था ॥३८॥ हे अनघ ! मैं तेरा श्रेय करूँगा, मेरे स्थान को गेहित करो । मेरे रूप वाली प्रतिमा को बनाकर नगरी के अन्त में निवेशित करदो ॥३६॥ हे द्विज वृन्द ! स्वप्न म जैसा देखा था उस प्रकार का सब करा दिया था । और यथा विधि राजा की नगरी के द्वार पर अनुज्ञापित करके नित्य ही महती पूजा गन्ध-धूप-दीप और प्रेक्षणीय माल्यों के द्वारा की जाती है ॥४० ४१॥

अन्नप्रदानयुक्तं श्च अत्यद्भुतमिवाभवत् ।
एव सम्पूज्यते तत्र नित्यमेव गणेश्वर ॥४२
ततो वरसहस्राणि नगराणा प्रयच्छति ।
पुत्रान् हिरण्यमायू पि सर्व्वकामास्तथैव च ॥४३
राज्ञस्तु महिषी श्रेष्ठा सुयशा नाम विश्रुता ।
पुत्रार्थमागता साध्वी राज्ञा देवी प्रचोदिता ॥४४
पूजान्तु विपुला कृत्वा देवी पुत्रानयाचत ।
पुन पुनरथागम्य बहुश पुत्रकारणात् ॥४५
न प्रयच्छति पुत्रास्तु निकुम्भ कारणेन तु ।
राजा यदि तत् क्रुध्येत तत किञ्चित् प्रवर्त्तते ॥४६
अथ दीर्घेण कालेन क्रोधो राजानमाविशत् ।
भूत त्विद महाद्वारि नगराणा प्रयच्छति ॥४७

प्रीत्या वराश्च शतशो न किञ्चित्तु प्रवर्त्तते ।
मामके. पूज्यते नित्य नगर्यां मम चैव तु ॥४८
तत्रार्चितश्च बहुशो देव्या मे तत्र कारणात् ।
न ददाति च पुत्र मे कृतघ्नो बहुभोजन ॥४९
अतो नार्हति पूजान्तु मत्सकाशात् कथञ्चन ।
तस्मात्तु नाशयिष्यामि तस्य स्थान दुरात्मन ॥५०
एवं तु स विनिश्चित्य दुरात्मा राज किल्विषी ।
स्थान गणपतेस्तस्य नाशयामास दुर्मति ॥५१
भग्नमायतन दृष्ट्वा राजानमगमत् प्रभु ।
यस्माद्धृतेऽपराध मे त्वया स्थान विनाशितम् ॥५२

और मन्त्र प्रदान से युक्तो के द्वारा मत्यद्युत की तरह होगया था । इस प्रकार से वहाँ पर नित्य ही गणेश्वर की बहुत अच्छी तरह पूजा की जाती है ॥४२॥ इसके पश्चात् नगरो को सहस्र वरदान देती है । पुत्रो को–हिरण्य को–आयु को और समस्त प्रकार के कामो का वरदान देती है । राजा की महिषी (पट्टाभिषिक्ता रानी) श्रेष्ठ थी जोकि सुयशा इस नाम से विश्रुत थी । राजा के द्वारा प्रेरित होकर साध्वी रानी पुत्र के लिये वहाँ आई थी ॥४३-४४॥ देवी ने विपुल पूजा करके उसने पुत्रो की याचना की थी और पुत्र के कारण से बहुत बार वह पुन पुन वहाँ आती थी ॥४५॥ निकुम्भ पुत्रो को तो कारणवश नहीं देता है । राजा यदि क्रुद्ध होगा तो इसके पश्चात् युद्ध प्रवृत्त होगा ॥४६॥ इसके अनन्तर लम्बे समय मे राजा के हृदय मे क्रोध ने प्रवेश किया था । नगरों के महा द्वार पर यह भूत को देता है ॥४७॥ प्रीति से सैकड़ो वरदान देता है किन्तु कुछ होता नही है । मेरी नगरी मे मेरे लोगो के द्वारा नित्य ही यह पूजित भी किया जाता है ॥४८॥ मेरे कारण से देवी के द्वारा यह बहुत बार पूजित हुआ है किन्तु कृतघ्न और बहुत भोजन करने वाला यह पुत्र नहीं देता है ॥४९॥ इसलिए मेरे द्वारा किसी भी प्रकार से यह पूजा करने के योग्य नहीं है । इससे इस दुरात्मा के स्थान को मैं नष्ट करता हूँगा ॥५०॥ इस तरह से राजाओ मे पापी हुए उसने निश्चय करके दुष्ट बुद्धि वालो ने उस गणपति के स्थान को नष्ट कर

दिया था ॥५१॥ प्रभु अपने आयतन को भग्न हुआ देखकर राजा के पास आये कि जिससे बिना किसी अपराध के तूने मेरे स्थान को नष्ट करा दिया है ॥५२॥

अकस्मात् तु पुरी शून्या भविवी ते नराधिपः।
ततस्तेन तु शापेन शून्या वाराणसी तथा ॥५३
शप्ता पुरी निकुम्भस्तु महादेवमथानयत्।
शून्या पुरी महादेवो निर्म्ममे परमात्मना ॥५४
तुल्या देवविभूत्यास्तु देव्याश्च व महात्मनः।
रमते तत्र वै देवी रममाणे महेश्वर ॥५५
न रतिं तत्र वं देवी लभते गृहविस्मयात्।
देव्याः क्रीडार्थमीशानो देवो वाक्यमथाब्रवीत् ॥५६
नाहं वेश्म विमोक्ष्यामि अविमुक्त हि मे गृहम्।
प्रहस्यंनामयोवाच अविमुक्त हि मे गृहम् ॥५७
नाहं देवि गमिष्यामि गच्छ्स्वेह रमाम्यहम्।
तस्मात्तदविमुक्तं हि प्रोक्तं देवेन वै स्वयम् ॥५८
एव वाराणसी शप्ता अविमुक्तं च कीर्त्तितम्।
यस्मिन् वसति वै देव सर्वदेवनमस्कृत।
युगेषु त्रिषु धर्मात्मा सह देव्या महेश्वर ॥५९
अन्तर्द्धान कलौ याति तत्पुरन्तु महात्मनः।
अन्तर्हिते पुरे तस्मिन् पुरी सा वसते पुनः ॥६०

उन्होंने राजा से कहा है नराधिप ! अचानक तेरी यह पुरी शून्य हो जायगी। इसके परव तु उस शाप से वाराणसी पुरी शून्य होगई थी ॥५३॥ निकुम्भ शाप से युक्त उस पुरी में महादेव को ले आये थे। महादेव ने उस शून्य पुरी का परमात्मा के द्वारा निर्माण किया था ॥५४॥ वह पुरी देवों की विभूति के तुल्य थी और महात्मा की देवी के भी तुल्य थी। वहाँ पर महेश्वर के रमण करने पर देवी रमण करती है ॥५५॥ गृह के विस्मय के कारण से देवी को रति प्राप्त नहीं होती है। देवी की क्रीडा के लिए देव ईशान (महादेव) यह वाक्य बोले ॥५६॥ मैं गृह का त्याग नहीं करूँगा। मेरा घर अविमुक्त है।

इसके अनन्तर हँस कर बोले मेरा गृह अविमुक्त होगा है ॥५७॥ हे देवि ! मैं नहीं जाऊँगा, तुम जाओ, मैं यहीं रमण करता हूँ। इससे देव ने स्वयं उसे विमुक्त कहा है ॥५८॥ इस प्रकार से वाराणसी पुरी शाप से युक्त है और वह अविमुक्त कही गई है। जिस पुरी में समस्त देवों के द्वारा नमस्कृत-तीनों युगों में धर्मात्मा महेश्वरदेव देवी के साथ निवास किया करते हैं ॥५९॥ कलियुग में महान् आत्मा वाले का वह पुर अन्तर्धान को प्राप्त हो जाता है और उस पुर के अन्तर्धान होने पर वह पुरी पुनः बस जाती है ॥६०॥

एवं वाराणसी शप्ता निवेशं पुनरागता ।
भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥६१
हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नराधिपः ।
भद्रश्रेण्यस्य राज्यन्तु हृतन्तेन बलीयसा ॥६२
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम नामतः ।
दिवोदासेन बालेति घृणया स विवर्जितः ॥६३
दिवोदासाद्दृषद्वत्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दनः ।
तेन पुत्रेण बालेन प्रहृतं तस्य वै पुनः ॥६४
वैरस्यान्तं महाराजा तदा तेन विधित्सता ।
प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सो गर्गश्च विश्रुतः ॥६५
वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मजः ।
अलर्कं प्रति राजर्षिर्गीतश्लोको पुरातनो ॥६६
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ।
युवा रूपेण सम्पन्नो ह्यलर्कः काशिसत्तम ॥६७
लोपामुद्रा प्रसादेन परमायुरवाप्तवान् ॥६८

इस तरह शाप युक्त हुई फिर निवेश को प्राप्त हुई भद्रश्रेण्य के उत्तम धनुषधारी सौ पुत्रों का हनन करके दिवोदास राजा ने पुनः इसे निवसित किया था। उस बलवान् ने भद्रश्रेण्य के राज्य का हरण कर लिया था ॥६१-६२॥ भद्रश्रेण्य का एक पुत्र नाम से दुर्दम था। दिवोदास ने उसे बालक है—इस घृणा से छोड़ दिया था ॥६३॥ दिवोदास से दृषद्वती में प्रतर्दन नामक वीर पुत्र

योवत्सुदेशप्रभव कौरवो जनमेजय ।
कुरो पुत्रस्य राज्ञस्तु राज्ञ पारिक्षितस्य ह ।
जगाम स रथो नाश शापाद्गार्ग्यस्य धीमत ॥२१
गार्ग्यस्य हि सुत बाल स राजा जनमेजय ।
दुर्बुद्धिर्हिंसयामास लोहगन्ध नराधिपम् ॥२२
स लोहगन्धो राजर्षि परिधावन्नितस्तत. ।
पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म कर्हिचित् ॥२३
तत स दु खसन्तप्तो नालभत्सविद क्वचित् ।
शशाप हेतुकमृषि शरण्य व्यथितस्तदा ॥२४

वह रथ मन के समान वेग वाले अश्वों से युक्त था जिससे कन्या समुद्वहन किया था । उसने उस मुख्य रथ के द्वारा मही को जीत लिया था ॥१६॥ ययाति देवता और दानवों के द्वारा युद्ध में अत्यन्त दुर्धर था । पौरवों में और राजाओं में सबमें वह रथ हुआ था ॥२०॥ योवत्सुदेश से उत्पन्न होने वाला कौरव जनमेजय था । राजा कुरु के पुत्र और राजा पारिक्षित का वह रथ धीमान् गार्ग्य के शाप से नाश को प्राप्त हुआ था ॥२१॥ उस राजा जनमेजय ने बालक की अवस्था में दुर्बुद्धि होकर गार्ग्य के पुत्र लोहगन्ध नराधिप की हिंसा की थी ॥२२॥ वह राजर्षि लोहगन्ध इधर उधर दौड़ता हुआ पौरजन पदों के द्वारा त्याग हुआ कहीं पर भी शान्ति को एवं कल्याण का प्राप्त नहीं हुआ ॥२३॥ इसके अनन्तर दुःख से सन्तप्त होते हुए कहीं पर भी संविद को प्राप्त नहीं किया था । तब अत्यन्त व्यथा से युक्त होकर उसने शरण्य हेतुक ऋषि का शाप दे दिया था ॥२४॥

इन्द्रोतो नाम विख्यातो योऽसौ मुनिरुदारधी ।
योजयामास चेन्द्रात शौनको जनमेजयम् ।
अश्वमेधेन राजान पावनार्थं द्विजोत्तम. ॥२५
स लोहगन्धो व्यनशत्तस्यावसथमेत्य ह ।
स च दिव्यो रथस्तस्माद्वसोश्चेदिपतेस्तथा ॥२६
तत शक्रात् तुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथ ।

ततो हृत्वा जरासन्धं भीमस्तं रथमुत्तमम् ।
प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दन ॥२७
स जरां प्राप्य राजर्षिर्ययातिर्नहुषात्मजः ।
पुत्रं ज्येष्ठं वरिष्ठञ्च यदुमित्यब्रवीद्वचः ॥२८
जरावली च मां तात पलितानि च पर्यगुः ।
काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने ॥२९
त्वं यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।
जरां मे प्रतिगृह्णीष्व तं यदुः प्रत्युवाच ह ॥३०
अनिर्दिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता ।
सा च व्यायामसाध्या वै न ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥३१
जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिणः ।
तस्माज्जरां न ते राजन् ग्रहीतुमहमुत्सहे ॥३२

जो उदार बुद्धि वाला मुनि इन्द्रोत नाम से विख्यात था उस इन्द्रोत और द्विजोत्तम शौनक ने जनमेजय राजा को पावन होने के लिये अश्वमेध यज्ञ करने के लिए योजित किया था ॥२५॥ उस ओहयन्ध ने उसके आवास में आकर उस रथ का विनाश कर दिया था। और वह दिव्य रथ चेदिपति वसु से और इसके अनन्तर उससे बृहद्रथ तुष्ट होने वाले इन्द्र ने प्राप्त किया था। इसके पश्चात् भीम ने जरासंध को मार कर उस उत्तम रथ को कौरव नन्दन ने परम प्रसन्नता से वासुदेव को दे दिया था ॥२६ २७॥ वह राजर्षि ययाति नहुष का पुत्र वृद्धावस्था को प्राप्त कर अपने ज्येष्ठ एवं वरिष्ठ पुत्र यदु से यह वचन बोला ॥२८॥ हे तात ! यह वृद्धता की अवस्था ने चारों ओर से मुझे घेर लिया है पलित बना दिया है मेरी यह दशा उशना काव्य के शाप हो गई है और यौवन में अभी तृप्त नहीं हुआ हूँ ॥२९॥ हे यदो ! तुम इस जरा अर्थात् के सहित पाप को ग्रहण करो तब यदु ने उत्तर दिया ॥३०॥ मैंने ब्राह्मण अनिर्दिष्ट भिक्षा की प्रतिज्ञा की है और वह व्यायाम के द्वारा ही साध्य है मैं इस आपकी वृद्धता को ग्रहण नहीं करूँगा ॥३१॥ इस वृद्धता के पान तथा भोजन करने वाले बहुत से दोष होते हैं इस कारण से हे राजन् ! मैं उसे ग्रहण करने भी उत्साहित नहीं होता हूँ ॥३२॥

सितश्मश्रुधरो दीनो जरया शिथिलीकृत ।
वलीसन्ततगात्रश्च दुर्दर्शो दुर्बलाकृति ॥३३
अशक्त कार्यकरणे परिभूतस्तु यौवने ।
महोपभीतिमिश्चैव तां जरां नाभिकामये ॥३४
सन्ति ते बहव पुत्रा मत्त प्रियतरा नृप ।
प्रतिगृह्य तु धर्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै ॥३५
स एवमुक्तो यदुना तीव्रकोपसमन्वित ।
उवाच वदतां श्रेष्ठो ज्येष्ठं त गर्हयन् सुतम् ॥३६
आश्रम कश्च वान्योऽस्ति को वा धर्मविधिस्तव ।
मामनादृत्य दुर्बुद्धे यदाहत्य नवदेशिक ॥३७
एवमुक्त्वा यदु राजा शशापैन स मन्युमान् ।
यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वय स्व न प्रयच्छसि ॥३८
तस्मात् राज्यभाग मूढ प्रजा ते व भविष्यति ।
तुर्वसो प्रतिपद्यस्व पाप्मान जरया सह ॥३९
न कामये जरां तात कामभोगप्रणाशिनीम् ।
जराया बहवो दोषा पानभोजनकारिण ।
तस्माज्जरा न ते राजन् ग्रहीतुमहमुत्सहे ॥४०

वृद्धता में सफेद दाढ़ी मूछ वाला होकर दीन और शिथिल सा रहने वाला-बलवान् भी सन्तत (झुके हुए) गात्रों वाला दुर्दर्शन से युक्त एवं दुर्बल आकृति वाला यौवन में ही परिभूत होकर कार्य करने में असमर्थ होजाता है और उस महान् उपभीतियाँ हुआ करती हैं इस कारण से मैं आपकी वृद्धता को नहीं लेना चाहता हूँ ॥३३ ३४॥ हे राजन् ! मुझसे भी अधिक प्रिय आपके बहुत से पुत्र हैं। हे धर्मज्ञ ! वे इसे ग्रहण करें इसलिये किसी अन्य पुत्र का वरण करें ॥३५॥ यदु के द्वारा इस प्रकार से कहा गया वह बहुत ही तीव्र क्रोध से युक्त होकर बोलने वालों में परम श्रेष्ठ अपने ज्येष्ठ पुत्र की निन्दा करता हुआ बोला ॥३६॥ कौनसा वह आश्रम है अथवा कौनसी यह तेरी धर्म की विधि है ? हे दुष्ट बुद्धि वाले ! हे नवदेशिक ! जोकि तू मेरा अनादर करके ऐसा बोल रहा

है ॥३७॥ क्रोधसे युक्त वह राजा इस प्रकार से बहुत्तर उसन यदु को शाप दे दिया कि तू मेरे हृदय से उत्पन्न हुआ था और तू अपना यौवन मुझे नहीं दे रहा है ॥३८॥ हे मूढ ! तू इस कारण से राज्य का भागी नहीं होगा। हे तुर्वसो ! तू मेरी वृद्धता के साथ मेरे दाम पापको ग्रहण कर ॥३९॥ तुर्वसु ने कहा—हे तात ! काम और भोगों का नाश करने वाली इस वृद्धता को मैं नहीं चाहता हूँ। पान तथा भोजन करने वाले इस जगमें बहुत से दोष हुआ करते हैं इसमें हे राजन् ! मैं इस जरा को ग्रहण नहीं करना चाहता हूँ ॥४०॥

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वन्न प्रयच्छसि ।
तस्मात् प्रजा समुच्छेद् तुर्वसो तव यास्यति ॥४१
सङ्कीर्णा च धर्मेण प्रतिलोमवरेषु च ।
पिशिताशिषु चान्येषु मूढ राजा भविष्यसि ॥४२
गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यग्योनिगतेषु वा ।
पशुधर्मेषु म्लेच्छेषु भविष्यति न संशयः ॥४३
एवन्तु तुर्वसुं शप्त्वा ययातिः सुतमात्मनः ।
शर्मिष्ठायाः सुतं द्रुह्युमिदं वचनमब्रवीत् ॥४४
द्रुह्यो त्वं प्रतिपद्यस्व वर्णरूपविनाशिनीम् ।
जरा वर्षसहस्रं मे यौवन स्वन्ददस्व मे ॥४५
पूर्णे वर्षसहस्रे ते प्रतिदास्यामि यौवनम् ।
स्वञ्चादास्यामि भूयोऽहं पाप्मानं जरया सह ॥४६
न गजं न रथं नाश्वं जीर्णो भुङ्क्ते न च स्त्रियम् ।
न सङ्गश्चास्य भवति न जरा तेन कामये ॥४७
यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वन्न प्रयच्छसि ।
तस्माद्द्रुह्यो प्रियः कामो न ते सम्पत्स्यते क्वचित् ॥४८

ययाति ने कहा—तू मेरे हृदय से उत्पन्न हुआ है और फिर भी अपना यौवन मुझे देना नहीं चाहता है इससे हे तुर्वसु ! तेरी सन्तान का समुच्छेद हो जायगा ॥४१॥ तेरी प्रजा धर्म से प्रतिलोम वरों में सङ्कीर्ण होगी। हे मूढ ! और अन्य पिशित आदि में राजा होगा ॥४२॥ गुरु की दारा में प्रसक्त अथवा

प्रयतिष्यामि देवेन्द्र तद्धितार्थं महाद्युते ।
यथा भागञ्च राज्यञ्च अचिरात् प्रतिपत्स्यसे ॥९६
तथा शक्र गमिष्यामि माभूत्ते विक्लव मन ।
तत कर्म्म चकारास्य तेज सवर्द्धन महत् ॥९७
तेषाञ्च बुद्धिसमोहमकरोद्बुद्धिसत्तम ।
ते यदा समुता मूढा रागोत्पन्ना विधर्म्मिण ॥९८
ब्रह्मद्विषश्च सवृत्ता हतवीर्य्यपराक्रमा ।
ततो लेभे सुरैश्वर्यमैन्द्रस्थान तयोत्तमम् ॥९९
हत्वा रजिसुतान् सर्वान्कामक्रोधपरायणान् ।
य इद पावन स्थान प्रतिष्ठान शतक्रतो ।
शृणुयाद्वा रजेर्वापि न स दौरात्म्यमाप्नुयात् ॥१००

हे ब्रह्मर्षे ! मेरे लिए अदरी फल (बेर) के बराबर पुरोडाश करो जिससे मैं तेज से आप्यायित (तृप्त) होता हुआ ठहरूँ ॥९३॥ हे महान् ! मैं कृश हूँ–उदास हूँ–छिने हुए राज्य वाला और छिने हुए भोजन वाला हूँ। रजि के पुत्रो के द्वारा हत ओज वाला–दुर्बल तथा मैं मूढ किया गया हूँ। आप मुझ पर प्रसन्न होइये ॥९४॥ बृहस्पति ने कहा—हे इन्द्र ! यदि इस प्रकार से तेरे द्वारा मैं पहिले ही प्रेरित होता तो हे अनघ ! तेरे प्रिय के लिये मेरा अकर्त्तव्य न होता ॥९५॥ हे देवेन्द्र ! हे महान् द्युति वाले ! उस तेरे हित के लिए प्रयत्न करूँगा जिससे शीघ्र ही तेरा भाग और राज्य प्राप्त हो जायगा ॥९६॥ हे शक्र ! उस तरह से मैं जाऊँगा तू अपना मन विक्लव पूर्ण मत करे। इसके पश्चात् इसके महान् तेज के बढ़ाने वाला कर्म किया था ॥९७॥ बुद्धि से परम श्रेष्ठ ने उनकी बुद्धि का समोह कर दिया कि जिस समय मे पुत्रो के सहित उत्पन्न राग वाले–मूढ तथा विधर्मी होगये ॥९८॥ वे ब्राह्मणो से द्वेष करने वाले और वीर्य तथा पराक्रम के नाश कर देने वाले होगये थे फिर इसके बाद देवो के ऐश्वर्य इन्द्र के स्थान को जोकि परमोत्तम था, प्राप्त कर लिया था ॥९९॥ कामवासना और क्रोध की भावना से तत्पर रजि के समस्त पुत्रो को मारकर जो यह पावन

स्थान और इन्द्र का प्रतिष्ठान था प्राप्त कर लिया था। रजि के इस इतिहास को जो भी कोई सुनता है वह कभी दुरात्मा को प्राप्त नहीं होता है ॥१००॥

प्रकरण ५५—चन्द्रवंश कीर्तन (७)

मरुतेन कथं कन्या राज्ञे दत्ता महात्मना।
किंवीर्याश्च महात्मानो जाता मरुतकन्यका ॥१
आहवन् त मरुत्सोममन्नकाम प्रजेश्वरम्।
मासि मासि महातेजा षष्टिमवत्सरान् नृप ॥२
तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सोमेन तोषिता।
अक्षय्यान्न ददु प्रीता सर्वकामपरिच्छदम् ॥३
अन्न तस्य सकृत्पक्वमहोरात्रे न क्षीयते।
कोटिशो दीयमान च सूर्यस्योदयनादपि ॥४
मित्राज्योतिस्तु कन्याया मरुतस्य च धीमत।
तस्माज्जाता महासत्त्वा धर्मज्ञा मोक्षदर्शिन ॥५
सन्यस्य गृहधर्माणि वैराग्य समुपस्थिता।
यतिधर्ममवाप्येह ब्रह्मभूयाय ये गता ॥६
अनपायस्ततो जातस्तदा धर्म प्रदत्तवान्।
क्षत्रधर्मस्ततो जात प्रतिपक्षो महातपा ॥७
प्रतिपक्षसुतश्चापि [illegible]ो नाम विश्रुत।
सञ्जयस्य जय पुत्रा [illegible]जयस्तस्य जज्ञिवान् ॥८
विजयस्य जय पुत्रस्तस्य हर्यन्द्वत स्मृत।
हर्यन्द्वतस्ततो राजा सहदेव प्रतापवान् ॥९
सहदेवस्य धर्मात्मा अदीन इति विश्रुत।
अदीनस्य जयत्सेनस्तस्य पुत्रोऽथ सकृति ॥१०

ऋषिगण ने कहा—महात्मा मरुत ने राजा को कन्या कैसे दा दी। और महात्मा मरुत की कन्याएँ जो महान् आत्मा वाली थी किस प्रकार से वीय

वाली हुई थी ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—भरत् नृप ने पुत्र की कामना रखते हुए सर्वेश्वर उस याग का आहवन किया था। महान् तेज वाले राजा ने याग-याग में अर्थात् प्रत्येक याग में साठ वर्ष पर्यन्त ऐसा किया था ॥२॥ इसके ये मरुत सोम के द्वारा तोषित किये गये थे और परम प्रसन्न होते हुए उन्होंने समस्त कामनाओं का परिच्छद अशाख्य अन्न दे दिया था ॥३॥ उनका एकबार पकाया हुआ अन्न एक महोत्सव में क्षीण नहीं होता है और सूर्य के उदय से भी करोड़ों को दिया हुआ भी फिर कभी नहीं क्षीण नहीं होता है ॥४॥ बुद्धि-मान् मरुत की कन्या से मित्रज्योति और उससे मोक्ष के देखने वाले धर्मात्मा महा सत्त्व उत्पन्न हुए ॥५॥ वे गृह धर्मों का भली-भाँति त्याग करके वैराग्य को प्राप्त हुए थे यहाँ यति धर्म को पाकर वे सब ब्रह्म के स्वरूप को पहुँच गये थे ॥६॥ इसके अनन्तर आपाय उत्पन्न हुआ सब उससे वर्ष पश्चात् पैदा हुआ उससे फिर क्षात्रधर्म पैदा हुआ और उससे महान् तप वाला प्रति पक्ष ने जन्म ग्रहण किया था ॥७॥ प्रतिपक्ष का पुत्र श्री सञ्जय इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था। सञ्जय के पुत्र का नाम जय था और उस जय से विजय नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥८॥ विजय के पुत्र का नाम जय था और उसके पुत्र का नाम हर्यत्सुन हुआ था हर्यत्सुन के पुत्र का नाम प्रताप वाला सहदेव राजा था ॥९॥ सहदेव के धर्मात्मा अदीन इस नाम से विश्रुत हुआ था। अदीन के पुत्र का नाम जय-त्सेन हुआ और उसके संकृति नामक पुत्र हुआ था ॥१०॥

सङ्कृतेरपि धर्मात्मा कृतधर्मा महायशा ।
इत्येते क्षात्रधर्माणा नहुषस्य निबोधत ॥११

नहुषस्य तु दायादा षडिन्द्रोपमतेजस ।
उत्पन्ना पितृकन्यायां विरजायां महौजसः ॥१२

यतिर्ययाति संयातिरायाति पञ्च चोद्धव ।
यतिर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै ययातिस्तु ततोऽवर ॥१३

काकुत्स्थकन्यां गां नाम लेभे पत्नीं यतिस्तदा ।
स यातिर्मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनि ॥१४

तेषां मध्ये तु पञ्चानां ययातिः पृथिवीपतिः ।
देवयानिमुशनसः सुतां भार्यामवाप ह ॥१५
शर्मिष्ठा मासुरी चैव तनया वृषपर्वणः ।
यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानिर्व्यजायत ॥१६
द्रुह्युं चानुं च पुरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।
अजीजनन्महावीर्यान् सुतान्देवसुतोपमान् ॥१७
रथन्तस्मै ददौ रुद्रः प्रीतः परमभास्वरम् ।
असङ्गं काञ्चनं दिव्यमक्षयौ च महेषुधी ॥१८

मसकृति के पुत्र का नाम धर्मात्मा एवं महान् यश वाला कृतधर्मा हुआ था। ये इतने क्षत्र धर्म वाले हुए थे अब नहुष के वंश में जो उत्पन्न हुए थे उनको समझ लो ॥११॥ नहुष के दायाद छः हुए थे जोकि इन्द्र के समान तेजस्वी थे और वे सब महान् प्रोज वाले पितृ कन्या विरजा में उत्पन्न हुए थे ।१२। जिनके नाम यति–ययाति–संयाति–आयाति और पञ्च एवं सुग्रय थे। उन सबमें यति सबसे बड़ा था और ययाति उससे छोटा था ॥१३॥ सब गा नाम वाली काकुत्स्थ की कन्या को यति ने पत्नी के रूप में प्राप्त किया था। यति मोक्ष के कार्य में स्थित होकर ब्रह्मभूत मुनि होगया था ॥१४॥ उन पाँचों के बीच में ययाति जो था वह पृथिवी का स्वामी बना था। उसने उशना की पुत्री देवयानी को भार्या के रूप में प्राप्त किया था ॥१५॥ और आसुरी वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा को प्राप्त किया था। देवयानी ने यदु और तुर्वसु को उत्पन्न किया था वार्षपर्वणी शर्मिष्ठा ने द्रुह्यनु और पुरु को जन्म दिया था जोकि पुत्र महान् वीर्य वाले एवं देव पुत्रों के समान थे ॥१७॥ उसके लिए परम प्रसन्न होने वाले भगवान् रुद्र ने अत्यन्त भास्वर–असङ्ग और काञ्चन दिव्य रथ प्रदान किया था तथा दो अक्षय महेषुधी दिये थे ॥१८॥

युक्तं मनोजवैरश्वैर्येन कन्यां समुद्वहत् ।
स तेन रथमुख्येन जिगाय च ततो महीम् ॥१९
ययातिर्युधि दुर्द्धर्षो देवदानवमानवैः ।
पौरवाणां नृपाणाञ्च सर्वेषां सोऽभवद्रथ ॥२०

तिर्यग्योनि में जाने वाले तथा यश धर्मों में एवं म्लेच्छों में तू होगा—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥४३॥ श्री सूतजी ने कहा—ययाति इस प्रकार से तुर्वसु को शाप देकर जोकि अपना ही उसका पुत्र था फिर शर्मिष्ठा के पुत्र द्रुह्यु से यह वचन बोला ॥४४॥ हे द्रुह्यु ! तू इस मेरी वर्ण तथा रूप के विनाश करने वाली जरा को एक सहस्र वर्ष के लिये ग्रहण करले और अपना यौवन मुझे दे दे ॥४५॥ एक हजार वर्ष पूरे होजाने के पश्चात् तुझे तेरा यौवन वापिस दे दूँगा और मैं फिर अपने पाप के सहित वृद्धता को वापिस ले लूँगा ॥४६॥ द्रुह्यु ने कहा—जरासे जीर्ण पुरुष हाथी–घोड़ा–रथ और स्त्री किसी का भी भोग नहीं कर सकता है और इसका राज्य भी नहीं होता है अतएव मैं आपकी जरा को ग्रहण करना नहीं चाहता हूँ ॥४७॥ ययाति ने कहा—जो तू मेरे हृदय से उत्पन्न हुआ है और इस समय मुझे अपना यौवन नहीं देता है इससे हे द्रुह्यु ! कहीं भी तेरा प्रिय काम नहीं पूर्ण होगा ॥४८॥

नौप्लवोत्तरसञ्चारस्तत्र नित्यं भविष्यति ।
अराजभ्राजवंशस्त्वं तत्र नित्यं भविष्यति ॥४९

अनो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।
एकं वर्षसहस्रन्तु चरेयं यौवनेन ते ॥५०

जीर्णः शिशुवद् दत्ते जरया ह्यशुचिः सदा ।
■ जुहोति स कालेऽग्निं तां जरान्नाभिकामये ॥५१

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वन्न प्रयच्छसि ।
जरादोषस्त्वयोक्तोऽयं तस्मात्त्वं प्रतिपत्स्यते ॥५२

प्रजा च यौवनं प्राप्ता विनशिष्यत्यतस्तव ।
अग्निप्रस्कन्दनपरस्त्वं चाप्येव भविष्यसि ॥५३

पूरो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानञ्जरया सह ।
जरावली च मान्तान पलितानि च पर्यगुः ॥५४

माव्यस्थोऽधनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने ।
गच्छित्वासञ्जेय वै विषयान् वयसा तव ॥५५

पूर्णे वर्षसहस्रे ते प्रतिदास्यामि यौवनम् ।
स्वञ्चैव प्रतिपत्स्यामि पाप्मानञ्जरया सह ॥५६

वहाँ पर नौकाप्लव का सञ्चार नित्य होगा और वहाँ तू अराज भाज वश वाला नित्य ही रहेगा ॥४६॥ हे अनो ! मेरे पाप को जरा के साथ तू ग्रहण करले । इस तरह एक सहस्र वर्ष तक मैं तेरे यौवन से आनन्द प्राप्त करलूँ ॥५०॥ अनु बोला—जरा से जीर्ण व्यक्ति सदा जरा मे श्रेष्ठ बालक अशुचिता किया करता है । वह समय पर अग्नि म हवन नहीं कर पाता है इसलिये मैं ऐसी जरा की इच्छा नहीं करता हूँ ॥५१॥ ययाति बोला—तू मेरे शरीर एवं हृदय से उत्पन्न हुआ है और मुझ अपने पिता को अपना यौवन नहीं देना चाहता है । तूने जो यह जरा के दोष बतला दिये हैं । अच्छा तू इन दोषो को प्राप्त करेगा ॥५२॥ तेरी सन्तति जब यौवन को प्राप्त होगी तो नष्ट हो जायगी और तू भी अग्नि के प्रस्कन्दन मे ही परायण रहेगा ॥५३॥ हे पूरो ! तू मेरे पाप को जरा के साथ ग्रहण करले हे तात ! यह जरावली ने मुझको नष्ट मार से पतित कर दिया है ॥५४॥ उशना काव्य के शाप से मैंने अपने यौवन में तृप्ति प्राप्त नहीं की है । तेरे यौवन से कुछ समय तक चरण करलूँ और विषयो का उपभोग करूँ ॥५५॥ एक सहस्र वर्ष के पूरे होजाने पर तेरा यौवन तुझे दे दूँगा और अपने पाप के साथ जरा का वापिस ले लूँगा ॥५६॥

एवमुक्त प्रत्युवाच पूरुः पितरमञ्जसा ।
यथानुमन्यसे तात करिष्यामि तथैव च ॥५७
प्रतिपत्स्यामि ते राजन् पाप्मान जरया सह ।
गृहाण यौवन मत्तश्चर कामान् यथेप्सितान् ॥५८
जरयाह प्रतिच्छन्नो वयोरूपधरस्तव ।
यौवन भवते दत्वा चरिष्यामि यथार्थवत् ॥५९
पूरो प्रीतोऽस्मि भद्रन्ते प्रीतश्चेद ददामि ते ।
सर्वकामसमृद्धा ते प्रजा राज्ये भविष्यति ॥६०
पूरोरनुमतो राजा ययाति स्वा जगन्तत ।
सन्नामयामास तदा प्रसादाद्भार्गवस्य तु ॥६१

यौवनेनाथ वयसा ययातिर्नहुषात्मज ।
प्रीतियुक्तो नरश्रेष्ठश्चचार विषयान् स्वकान् ॥६२
यथाकाम यथोत्साह यथाकाल यथासुखम् ।
धर्म्माविरोधाद्राजेन्द्रो यथार्हति स एव हि ॥६३
देवानतर्पयद्यज्ञैः पितृन्छ्राद्धैस्तथैव च ।
दीनाश्चानुग्रहैरिष्टैः कामैश्च द्विजसत्तमान् ॥६४
अतिथीनन्नपानैश्च वैश्याश्च परिपालनैः ।
आनृशस्येन शूद्राश्च दस्यून् सनिग्रहेण च ॥६५
धर्म्मेण च प्रजा सर्व्वा यथावदनुरञ्जयन् ।
ययाति पालयामास साक्षादिन्द्र इवापर ॥६६

श्री सूतजी ने कहा—इस प्रकार से कहे हुए पुत्र ने तुरन्त ही पिता से कहा—हे तात ! आप जो भी कहते हैं मैं उसी प्रकार से करूँगा ॥५७॥ हे राजन् ! मैं आपके पाप को जरा के सहित प्राप्त करलूँगा । आप मुझसे मेरा यौवन ग्रहण कर लीजिये और यथेष्ट विषयों का उपभोग करें ॥५८॥ मैं इस जरा में प्रतिच्छन्न होता हुआ तुम्हारी वय के रूप को धारण करने वाला आपको यौवन देकर यथाव की भाँति चरण करूँगा ॥५९॥ ययाति बोला—हे पुरो ! मैं तुमसे बहुत ही प्रसन्न हूँ तेरा कल्याण हो मैं प्रसन्न होकर तुझे वरदान देता हूँ कि राज्य में तेरी प्रजा समस्त कामनाओं से समृद्ध होगी ॥६०॥ श्री सूतजी ने कहा—पुरु से अनुमत होने वाले राजा ययाति ने इसके अनन्तर अपनी जरा को उस समय भार्गव के प्रसाद से संक्रमित करा दिया था ॥६१॥ नहुष का पुत्र ययाति इसके अनन्तर यौवन की अवस्था से वह नरश्रेष्ठ परम प्रसन्नता युक्त होते हुए अपने विषयों के उपभोगों को करने लगा था ॥६२॥ यथा काम और उत्साह के अनुकूल—यथा समय और सुखानुसार धर्म के अनुरोध से वह राजेन्द्र जो भी योग्य होता है वही करता है ॥६३॥ यज्ञ के द्वारा देवों को तृप्त किया और श्राद्धों के द्वारा पितरों को सन्तुष्ट किया था और दीनों पर उन्हें अनुग्रह करके तथा इष्ट की कामना को पूर्ण करके द्विज श्रेष्ठों को सन्तुष्ट किया था ॥६४॥ अतिथियों को अन्न दान तथा पान के द्वारा—वैश्यों को परि

पूर्णे वर्षसहस्रे ते प्रतिदास्यामि यौवनम् ।
स्वञ्चैव प्रतिपत्स्यामि पाप्मानञ्जरया सह ॥५६

वहाँ पर नौकाप्लव का सञ्चार नित्य होगा और वहाँ तू अराज अज वंश वाला नित्य ही रहेगा ॥४६॥ हे अनो ! मेरे पाप को जरा के साथ तू ग्रहण करले । इस तरह एक सहस्र वर्ष तक मैं तेरे यौवन से आनन्द प्राप्त करलूँ ॥५०॥ अनु बोला—जरा से जीर्ण व्यक्ति सदा जरा से श्रेष्ठ बालक अशुचिता किया करता है । वह समय पर अग्नि में हवन नहीं कर पाता है इसलिये मैं ऐसी जरा की इच्छा नहीं करता हूँ ॥५१॥ ययाति बोला—तू मेरे शरीर एव हृदय से उत्पन्न हुआ है और मुझ अपने पिता को अपना यौवन नहीं देना चाहता है । तूने जो यह जरा में दोष बतला दिये हैं । अच्छा तू इन दोषों को प्राप्त करेगा ॥५२॥ तेरी सन्तति जब यौवन को प्राप्त होगी तो नष्ट हो जायगी और तू भी अग्नि के प्रस्कन्दन में ही परायण रहेगा ॥५३॥ हे पुरो ! तू मेरे पाप को जरा के साथ ग्रहण करले हे तात ! यह वरावली ने मुझको सब ओर से पतित कर दिया है ॥५४॥ उशना काव्य के शाप से मैंने अपने यौवन में तृप्ति प्राप्त नहीं की है । तेरे यौवन से कुछ समय तक चरण करलूँ और विषयों का उपभोग करूँ ॥५५॥ एक सहस्र वर्ष के पूरे होजाने पर तेरा यौवन तुझे दे दूँगा और अपने पाप के साथ जरा को वापिस ले लूँगा ॥५६॥

एवमुक्त प्रत्युवाच पुत्र पितरमञ्जसा ।
यथानुमन्यसे तात करिष्यामि तथैव च ॥५७
प्रतिपत्स्यामि ते राजन् पाप्मानं जरया सह ।
गृहाण यौवन मत्तस्त्वं कामान् यथेप्सितान् ॥५८
जरयाहं प्रतिच्छन्नो वयोरूपधरस्तव ।
यौवनं भवते दत्त्वा चरिष्यामि यथार्थवत् ॥५६
पूरो प्रीतोऽस्मि भद्रन्ते प्रीतश्चेद ददामि ते ।
सर्वकामसमृद्धा ते प्रजा राज्ये भविष्यति ॥६०
पूरोरनुमतो राजा ययाति स्वां जरान्ततः ।
सक्रामयामास तदा प्रसादाद्भार्गवस्य तु ॥६१

कामों के उपभोग में व्यतीत हुए एक सहस्र वर्षों का स्मरण किया था ।।७०।। और काल को तथा कला एवं काष्ठाओं की परिगणना करके और उसी प्रकार से काल को पूर्ण मानकर फिर अपने पुत्र पूरु से बोला ।।७१।। हे अरिंदम ! सुख के अनुसार और यथोत्साह तथा काल के अनुकूल मैंने तुम्हारे यौवन के द्वारा हे पुत्र ! विषयों को खूब सेवन किया है ।।७२।। हे पूरो ! मैं तुम से बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ तुम्हारा कल्याण हो अब तुम अपने यौवन को वापिस ग्रहण करो। और साथ ही इस राष्ट्र को भी तुम ग्रहण करो तुम ही मेरे प्रिय करने वाले पुत्र हो ।।७३।। इस तरह नहुष के पुत्र ययाति राजा ने अपनी जरा को प्राप्त कर लिया था और पूरु ने पुनः अपना यौवन प्राप्त कर लिया था ।।७४।।

अभिषेक्तुकामञ्च नृपं पूरुं पुत्रं कनीयसम् ।
ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा इदं वचनमब्रुवन् ।।७५
कथं शुक्रस्य नप्तारं देवयान्याः सुतं प्रभो ।
ज्येष्ठं यदुमतिक्रम्य पूरो राज्यं प्रदास्यसि ।।७६
यदुर्ज्येष्ठस्तव सुतो जातस्तमनु तुर्वसुः ।
शर्मिष्ठायाः सुतो द्रुह्यु स्ततोऽनु पूरुरेव च ।।७७
कथं ज्येष्ठानतिक्रम्य कनीयान् राज्यमर्हति ।
अत सम्बोधयामि त्वां धर्मं समनुपालय ।।७८
ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः सर्वे शृण्वन्तु मे वचः ।
ज्येष्ठं प्रति यथा राष्ट्रं न देयं मे कथञ्चन ।।७९
माता पित्रोर्वचनकृत् हि पुत्रः प्रशस्यते ।
मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालितः ।।८०
प्रतिकूलः पितुर्यश्च न स पुत्रः सतां मतः ।
स पुत्रः पुत्रवद् यश्च वर्त्तते पितृमातृषु ।।८१
यदुनाहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनापि च ।
द्रुह्युणा चानुना चैवमप्यवज्ञा कृता भृशम् ।।८२

अपने छोटे प्रिय पुरु पुत्र को राज्याभिषेक करने की इच्छा वाले राजा ययाति से ब्राह्मण प्रमुख सभी वर्ण वाले यह वचन बोले ।।७५।। हे प्रभो ! शुक्र

पालन के द्वारा तथा शूद्रों को क्रूरता के अभाव के द्वारा एवं दस्युओं को भली भाँति निग्रह के द्वारा सन्तुष्ट किया करता था ॥६५॥ धर्म पूर्वक अपनी समस्त प्रजा का अनुरञ्जन करते हुए साक्षात् दूसरे इन्द्र के समान राजा ययाति ने प्रजा का यथावत् पालन किया था ॥६६॥

स राजा सिंहविक्रान्तो युवा विषयगोचरः ।
अविरोधेन धर्मस्य चचार सुखमुत्तमम् ॥६७
स मार्गमाणः कामानामन्तर्दोषनिदर्शनात् ।
विश्वासहेतो रेमे वै वैभ्राजे नन्दने वने ॥६८
अपश्यत्स यदा तां वै वर्द्धमाना नृपस्तदा ।
गत्वा पूरोः सकाशं वै स्वां जरां प्रत्यपद्यत ॥६९
स सम्प्राप्य तु तान् कामांस्तृप्तः खिन्नश्च पार्थिवः ।
कालं वर्षसहस्रं वै सस्मार मनुजाधिपः ॥७०
परिसङ्ख्याय कालञ्च कलाकाष्ठास्तथैव च ।
पूर्णं मत्वा ततः कालं पूरुं पुत्रमुवाच ह ॥७१
यथासुखं यथोत्साहं यथाकालमरिंदम ।
सेविता विषयाः पुत्र यौवनेन मया तव ॥७२
पूरो प्रीतोऽस्मि भद्रं ते गृहाण त्वं स्वयौवनम् ।
राष्ट्रञ्च त्वं गृहाणेदं त्वं हि मे प्रियकृत्सुतः ॥७३
प्रतिपेदे जरां राजा ययातिर्नहुषात्मजः ।
यौवनं प्रतिपेदे च पूरुः स्वं पुनरात्मनः ॥७४

वह राजा सिंह के समान विक्रान्त—युवावस्था से पूर्ण विषय गोचर था किन्तु धर्म के विरोध न करने से उसने उत्तम सुख का चरण किया था ॥६७॥ वह कामों की अन्तर्दोषों के निदर्शन से खोज करता हुआ अपने विश्वास के हेतु से वैभ्राज नन्दन वन में रमण करता था ॥६८॥ जब उस राजा ने उस काम-वासना को बढ़ती हुई ही देखा तो उस समय पूरु के पास जाकर अपनी वृद्धता का पुनः उसने प्राप्त कर लिया था ॥६९॥ उस राजा ने उन कामों को भली-भाँति प्राप्त करके तृप्त हुआ और खिन्न भी हुआ। उस मनुजों के स्वामी ने अपने

दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं तु न्यवेशयत् ।
दक्षिणापरतो राजा यदु श्रेष्ठ न्यवेशयत् ॥८८
प्रतीच्यामुत्तरस्याञ्च द्रुह्युञ्चानुञ्च तावुभौ ।
सप्तद्वीपा ययातिस्तु जित्वा पृथ्वी ससागराम् ।
व्यभजत् पञ्चधा राजा पुत्रेभ्यो नाहुषस्तदा ॥८९
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।
यथाप्रदेश धर्मज्ञैर्धर्म्मेण प्रतिपाल्यते ॥९०
एवं विसृज्य पृथिवीं पुत्रेभ्यो नाहुषस्तथा ।
पुत्रसङ्क्रामितश्रीस्तु प्रीतिमानभवन्नृपः ॥९१
धनुर्न्यस्य पृषत्कांश्च राज्यञ्चैव सुतेषु तु ।
श्री समानभवद्राजा भारमावेश्य बन्धुषु ॥९२

पूरु ने मेरे वचन का पूर्ण पालन किया और मेरा पिता की भाँति विशेष रूप से सम्मान किया था। मेरा यह छोटा पुत्र है किन्तु इसने मेरी आज्ञा मानते हुए मेरी वृद्धता को स्वयं धारण किया था। पुत्रकारी पूरु ने मेरा समस्त काम किया और सभी कुछ किया है ॥८३॥ और उशना काव्य शुक्र ने स्वयं वरदान दिया था कि हे महामते ! जो पुत्र तुम्हारे अनुकूल व्यवहार करे वही राज्य का राजा होगा ॥८३॥ इस तरह से पूरु आपका भी अनुमत है उसे राष्ट्र मे अभिषिक्त कर दो। जो पुत्र गुणो से सम्पन्न हो और सदा माता-पिता का हित करने वाला हो वह छोटा भी प्रभु समस्त कल्याण प्राप्त करने के योग्य होता है ।८५। पूरु इस राष्ट्र के प्राप्त करने को योग्य है जो आपके प्रिय करने वाला और आपका प्रिय है। शुक्र के वरदान से अब कोई भी उत्तर कहा नहीं जा सकता है ॥८६॥ उस समय पौरजान पदो के द्वारा पूर्णतया सन्तुष्ट होते हुए नहुष के पुत्र ययाति इस प्रकार से कहे गये और उन्होने अपने पुत्र पूरु को राष्ट्र मे अभिषिक्त करके दक्षिण पूर्व दिशा मे तुर्वसु को निवेशित कर दिया था और दक्षिण से अन्य दिशा मे राजा ने श्रेष्ठ यदु को निवेशित किया ॥८७-८८॥ पश्चिम मे और उत्तर मे द्रुह्यु और अनु इन दोनों को का निवेशित किया था। ययाति ने सागर के सहित सात द्वीप वाली पृथ्वी को जीत कर पाँच प्रकार मे उसका

के नाती और देवयानी के पुत्र श्रेष्ठ यदु का अतिक्रमण करके पूरु को राज्य किस तरह आप दे देंगे ? ॥७६॥ यदु आपका सबसे बड़ा पुत्र उत्पन्न हुआ था। उसके पश्चात् उससे छोटा तुर्वसु पुत्र है। शर्मिष्ठा का पुत्र द्रुह्यु बड़ा है उसके पश्चात् उससे छोटा पूरु है ॥७७॥ आप बड़े पुत्रों का सबका अतिक्रमण करके छोटे पुत्र को राज्य कैसे देने को योग्य होते हैं ? इसलिये हम आपको सम्यक् प्रकार से ज्ञान देते हैं कि आप धर्म का पूर्ण पालन करें ॥७८॥ राजा ययाति ने कहा—हे ब्राह्मण प्रमुखो ? आप समस्त वर्ण वाले सब मेरे वचन का श्रवण करें। जैसा कि ज्येष्ठ को राष्ट्र दिया जाता है किन्तु मुझे वह किसी प्रकार से भी नहीं देना है ॥७९॥ जो माता और पिता के वचनों का परिपालन करने वाला होता है वह पुत्र प्रशंसनीय माना जाता है। मेरे ज्येष्ठ पुत्र यदु ने मेरे नियोग का अनुपालन नहीं किया था ॥८०॥ जो पिता के प्रतिकूल हो वह सज्जन पुरुषों ने पुत्र नहीं माना है। पुत्र वह ही है जो पुत्र की भाँति पिता और माता के विषय में व्यवहार किया करता है ॥८१॥ यदु ने तथा तुर्वसु इन दोनों ने मेरी अवज्ञा करदी थी और छोटे द्रुह्यु ने भी इसी प्रकार से मेरी बहुत ही अधिक अवज्ञा की थी ॥८२॥

पूरुणा तु कृतं वाक्यं मानितश्च विशेषतः।
कनीयान् मम दायादो जरा येन धृता मम।
सर्वकामः सर्वकृतः पूरुणा पुत्रकारिणा ॥८३
शुक्रेण च वरो दत्तः काव्ये नौशनसा स्वयम्।
पुत्रो यस्त्वानुवर्तेत स राजा ते महामते ॥८४
भवतोऽनुमतोप्येवं पूरू राष्ट्रेऽभिषिच्यताम्।
यः पुत्रो गुणसम्पन्नो मातापित्रोर्हितः सदा।
सर्वमर्हति कल्याणं कनीयानपि स प्रभुः ॥८५
अर्हः पूरुरिदं राष्ट्रं यः प्रियः प्रियकृत्तव।
वरदानेन शुक्रस्य न शक्यं वक्तुमुत्तरम् ॥८६
पौरजानपदैस्तुष्टैरित्युक्तो नाहुषस्तदा।
अभिषिच्य ततः पूरुं स्वराष्ट्रे सुतमात्मनः ॥८७

नहीं हुआ करता है। कामों के उपभोग से तो उल्टे वे हवि डालने से अग्नि की भाँति और अधिक बढ़ जाया करते हैं अर्थात् विशेष प्रदीप्त होजाते हैं ॥९४॥ जो भी इस पृथिवी में व्रीहि–यव–सुवर्ण–पशु और स्त्रियाँ आदि हैं वह सब एक को पूर्ण एवं पर्याप्त नहीं हैं—यह देखते हुए मोह को प्राप्त नहीं होता है। ॥९५॥ जिस समय में समस्त भूतों में पापक भाव करता है और वह भी कर्म-मन और वचन सभी प्रकार से किया करता है तब वह ब्रह्म को प्राप्त करता है ॥९६॥ जब परसे नहीं डरता है और स्वयं अपने से परको नहीं डर देता है। जब कोई भी इच्छा नहीं करता है और न द्वेष करता है तब ब्रह्म को प्राप्त करता है ॥९७॥ जो दुष्ट बुद्धि वालों के द्वारा दुस्त्यज है और जो स्वयं जीर्ण होजाने पर जीर्ण नहीं होता है वह प्राणान्तिक रोग है अर्थात् प्राणों के अन्त समय तक रहने वाला रोग होता है उस तृष्णा के त्याग करने वाले को ही सुख होता है ॥९८॥ जरा से जीर्ण होने वाले पुरुष के केश भी जीर्ण होजाते हैं तथा साथ ही जरा की जीर्णता से दन्त जीर्ण–क्षीण हो जाया करते हैं किन्तु इस जीवित रहने की आशा और धन प्राप्त करने की आशा जीर्ण होजाने पर भी वृद्ध की क्षीण नहीं हुआ करती है ॥९९॥ जो संसार में कामोपभोग का सुख है और जो दिव्य महान् सुख है ये दोनों तृष्णा के त्याग के सुख की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं है ॥१००॥

एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्रस्थितो वनम् ।
भृगुतुङ्गे तपस्तप्त्वा तत्रैव च महायशाः ।
पालयित्वा व्रतशतं तत्रैव स्वर्गमाप्नुयात् ॥१०१
तस्य वंशास्तु पञ्चैते पुण्या देवर्षिसत्कृताः ।
यैर्व्याप्ता पृथिवी कृत्स्ना सूर्यस्येव गभस्तिभिः । १०२
धन्यः प्रजावानायुष्मान् कीर्तिमांश्च भवेन्नरः ।
ययातेश्चरितं सर्वं पठञ्छृण्वन् द्विजोत्तम ॥१०३

राजर्षि ने इस प्रकार से कहकर पत्नी के साथ वन में प्रस्थान कर दिया था। भृगु तुङ्ग पर तप करके और महान् यश वाले ने वहीं पर ही सौ व्रतों का पालन करके वहीं पर ही स्वर्ग की प्राप्ति की थी ॥१०१॥ उसके ये पाँच

नहुष के पुत्र ने उस समय में पुत्रों के लिये विभाजन कर दिया था ॥८९॥उनके द्वारा यह समस्त पृथ्वी जिसमे सात द्वीप हैं उसे पत्तनो (नगरो) के सहित प्रदेशों के अनुसार धर्म के ज्ञाताओ उनने धर्म पूर्वक पालन किया था ॥९०॥ इस प्रकार से नहुष के पुत्र ययाति ने उस समय पुत्रों के ऊपर पृथ्वी का भार छोड़कर पुत्रों में राज्यश्री को समाश्रित करने वाला राजा बहुत ही प्रसन्नता को प्राप्त हुआ था ॥९१॥ धनुष और पृषत्कों को त्याग कर तथा पुत्रों को राज्य को सौंप कर बन्धुओं पर अपना भार छोड़कर राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ था ॥९२॥

अत्र गाथा महाराज्ञा पुरा गीता ययातिना ।
योऽभिप्रेत्याहरन् कामान् कूर्मोङ्गानीव सर्वशः ॥९३
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥९४
यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
नालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ॥९५
यदा तु कुरुते भावं सर्व्वभूतेषु पावकम् ।
कर्म्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥९६
यदा परान्न बिभेति यदा तस्मान्न बिभ्यति ।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा । ९७
या दुस्त्यजा दुर्म्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्य्यतः ।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥९८
जीर्य्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
जीविताशा धनाशा च जीर्य्यतोऽपि न जीर्यति ॥९९
यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत् सुखम् ।
तृष्णाक्षय सुखस्यैते नार्हतः षोडशीम् कलाम् ॥१००

यहाँ पर पहिले महान् राजा ययाति ने यह गाथा गाई है जिसने अभिप्राय करके समस्त कामनाओ को कूर्म के द्वारा अपने अङ्गो की भाँति सब ओर से सकुचित कर लिया था ॥९३॥ कभी भी कामो के उपभोग करने उनका समन

मुझसे उसे आप लोग जान लो ॥१॥ यदु के देव पुत्रों के समान पाँच पुत्र हुए थे। उनके नाम सहस्रजित्-श्रेष्ठ-क्रोष्टु नील-जित और लघु होते है ॥२॥ सहस्रजित् का पुत्र श्रीमान् शतजित् नाम वाला राजा हुआ था और शतजित् के परम धार्मिक तीन पुत्र विख्यात हुए थे ॥३॥ जिनके नाम हैहय-हय और वेणु-हय ये थे। हैहय का पुत्र धर्मनेत्र नाम वाला राजा हुआ था ॥४॥ उसके पुत्र धर्मनेत्र-कीर्त्ति और संज्ञेय थे। संज्ञेय के पुत्र का नाम महिष्मान् राजा था ॥५॥ महिष्मान् के पुत्र का नाम भद्रश्रेण्य था जोकि बड़ा प्रताप वाला हुआ है। यह वाराणसी का स्वामी राजा था जिसको कि पहिले ही बता दिया है ॥६॥ भद्रश्रेण्य का दायाद दुर्मद नामक राजा था। फिर दुर्मद के धीमान् कनक नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था ॥७॥ कनक राजा के चार लोक में परम प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनके नाम कृतवीर्य-कार्त्तवीर्य-कृतवर्मा और चौथा कृत है ॥८॥

कृतो जातश्चतुर्थोऽभूत्कृतवीर्यात्ततोऽर्जुनः ।
जज्ञे बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरो नृपः ॥९
स हि वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ।
दत्तमाराधयामास कार्त्तवीर्योऽत्रिसम्भवम् ॥१०
तस्मै दत्तो वरान् प्रादाच्चतुरो भूरितेजसः ।
पूर्वं बाहुसहस्रन्तु स वव्रे प्रथमं वरम् ॥११
अधर्म्मे ध्रीयमानस्य सद्भिस्तस्मान्निवारणम् ।
धर्म्मेण पृथिवीञ्जित्वा धर्म्मेणैवानुपालनम् ॥१२
संग्रामांस्तु बहून् जित्वा हत्वा चारीन् सहस्रशः ।
संग्रामे युद्ध्यमानस्य वधः स्यादधिकाद्रणे ॥१३
तेनेयं पृथिवी कृत्स्ना सप्तद्वीपा सपत्तना ।
सप्तोदधिपरिक्षिप्ता क्षात्रेण विधिना जिता ॥१४
तस्य बाहुसहस्रन्तु युद्ध्यतः किल धीमतः ।
योधो ध्वजो रथश्चैव प्रादुर्भवति मायया ॥१५

वश हैं जो बड़े पुण्य हैं और देवर्षि के द्वारा सत्कार पाने वाले हैं जिनों यह समस्त भूमण्डल व्याप्त हो रहा है जिस प्रकार सूर्य की किरणों से समस्त पृथ्वी व्याप्त होती है ।।१०२।। जो द्विज श्रेष्ठ राजा ययाति के इस समस्त चरित्र को पढ़ता या सुनता है वह परम धन्य-प्रजावाला-आयु से युक्त और वह मनुष्य कीर्तिमान् होता है ।।१०३।।

प्रकरण ४६—कार्तवीर्य अर्जुन उत्पत्ति

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि श्रेष्ठस्योत्तमतेजसः ।
विस्तरेणानुपूर्व्येण गदतो मे निबोधत ।।१
यदो पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवसुतोपमाः ।
सहस्रजिदथ श्रेष्ठ क्रोष्टुर्नीलो जितो लघु ।।२
सहस्रजित्सुत श्रीमाञ्छतजिन्नाम पार्थिव ।
शतजित्सुता विख्यातास्त्रय परमधार्मिका ।।३
हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयश्च य ।
हैहयस्य तु दायादो धर्म्मतन्त्र इति श्रुति ।।४
धर्म्मतन्त्रस्तु कीर्तिस्तु सञ्ज्ञेयस्तस्य चात्मज ।
सञ्ज्ञेयस्य तु दायादो महिष्मान्नाम पार्थिव ।।५
आसीन्महिष्मत पुत्रो भद्रश्रेण्य प्रतापवान् ।
वाराणस्यधिपो राजा कथित पूर्व एव हि ।।६
भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्मदो नाम पार्थिव ।
दुर्मदस्य ततो धीमान् कनको नाम विश्रुत ।।७
कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः ।
कृत वीर्य कार्तवीर्य कृतवर्मा तथैव च ।।८

श्री सूत बोले—अब मैं उत्तम तेज वाले-परम श्रेष्ठ यदु के वंश का न करूँगा और उसे विस्तार से तथा अनुपूर्वी के साथ बताऊँगा। कहते हुए

न नूनं कार्त्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति मानवा ।
यज्ञैर्दानैस्तपाभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च ॥२०
द्वीपेषु सप्तसु स वै खड्गी वरशरासनी ।
रथी राजाप्यनुचरोऽप्यागाच्चैवानुदृश्यते ॥२१
अनष्टद्रव्यश्चं वासीन्न शोको न च विभ्रम ।
प्रभावेण महाराज प्रजा धर्मेण रक्षत ॥२२
पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां स नराधिप ।
सप्त सप्त वारान् सम्राट् चक्रवर्त्ती बभूव ह ॥२३
स एव पशुपालोऽभूत् क्षेत्रपालस्तथैव च ।
स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्ज्जुनोऽभवत् ॥२४
स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनेन च ।
भाति रश्मिसहस्रेण शारदेनेव भास्कर ॥२५
स हि नागसहस्रेण माहिष्मत्या नराधिप ।
कर्कोटकसभाञ्जित्वा पुरी तत्र न्यवेशयत् ॥२६

उस राजा की गाथा को गन्धर्व तथा नारद गाया करते थे जिन्होंने उस राजर्षि के चरित्र और महिमा को देखा था ॥१९॥ यज्ञ–तप–दान और विक्रमो के द्वारा तथा श्रुत के द्वारा मानव निश्चय ही कार्त्त वीर्य की गति को नहीं जा सकेंगे ॥२०॥ सातो द्वीपो में ऐसा अनुदृश्यमान होता है कि वह खड्गधारी–श्रेष्ठ धनुर्धारी–रथी–राजा और अन्य अनुचर भी हुआ था ।२१। धर्म पूर्वक प्रजा की रक्षा करने वाले उस महान् राजा के प्रभाव से सब द्रव्य नष्ट न होने वाले थे और कोई शोक तथा विभ्रम उसकी प्रजा में नहीं था ॥२२॥ वह नरो का स्वामी पिचासी हजार वर्ष तक सात सात बार सम्राट और चक्रवर्त्ती हुआ था ॥२३॥ वह ही पशुओं का पालन करने वाला हुआ—वह ही खेतो का पालक हुआ और वृष्टि से वह ही पर्जन्य योगी होने के कारण हुआ था—वह ऐसा अर्जुन था ॥२४॥ वह सहस्र बाहुओं से और ज्या (प्रत्यञ्चा) के घात से कठिनता से शरत्काल के सहस्र किरणों से सूर्य के समान शोभा देता है ॥२५॥ उस

दशयज्ञसहस्राणि तेषु द्वीपेषु सप्तसु ।
निरर्गला स्म निर्वृत्ता श्रूयन्ते तस्य धीमतः ॥१६
सर्वे यज्ञा महाबाहोस्तस्यासन् भूरिदक्षिणाः ।
सर्वे काञ्चनवेदीकाः सर्वे यूपैश्च काञ्चनैः ॥१७
सर्वे देवैर्महाभागैर्विमानस्थैरलङ्कृताः ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः ॥१८

चतुर्थ पुत्र कृत उत्पन्न हुआ। इनसे कृत वीर्य से अर्जुन उत्पन्न हुआ जिसके एक सहस्र बाहु थी और यह सातो द्वीपों का स्वामी राजा हुआ था।६। उस कार्त्तवीर्य ने दश हजार वर्ष तक अत्यन्त कठिन तपस्या करके अत्रि के पुत्र दत्त की आराधना की थी ॥१०॥ उसके लिए दत्त ने अधिक तेज से युक्त चार वरदान दिये। उसने सबसे प्रथम सहस्र बाहु के होजाने का वर बोला था।११। अधर्म में दीयमान का सत्पुरुषों के द्वारा उससे निवारण करना। धर्म से समस्त पृथ्वी को जीतकर धर्म के द्वारा ही उसका अनुशासन करना ।।१२॥ बहुत से संग्रामों का जीतकर और सहस्रों शत्रुओं का हनन करके संग्राम में युद्ध करते हुए का रणभूमि में अधिक से वध होना ॥१३॥ उसके द्वारा यह पृथ्वी समस्त सात द्वीप और पत्तनों से युक्त सातो समुद्रों से परिक्षित क्षात्र विधि से प्राप्त की और इसका पालन किया था ।।१४॥ उस बुद्धिमान् के युद्ध करते हुए सहस्र बाहु—योद्ध०वज और रथ माया से प्रादुर्भूत होते थे ॥१५॥ ऐसा सुना जाता है कि धीमान् उसके दश सहस्र यज्ञ उन सात द्वीपों में बिना ही अर्गला वाले निवृत्त हुए थे ॥१६॥ महान् बाहु वाले उसके जोकि एक विशेष तेज वाला था, समस्त यज्ञ सुवर्ण की वेदी वाले और समस्त सुवर्ण के विरचित यूपों से युक्त थे।१७। सब यज्ञ महान् भाग वाले देवों के द्वारा जोकि विमानों में स्थित होकर वहाँ आये थे अलङ्कृत हुए थे तथा गन्धर्व और अप्सराओं के द्वारा तो वे नित्य ही शोभित रहा करते थे ।।१८॥

राज्ञो जगौ गाथा गन्धर्वो नारदस्तथा ।
तस्य राजर्षेर्महिमान निरीक्ष्य च ॥१९

कारण दु सह विद्ध फेनो के समुदाय मे गिर गये थे ॥३१॥ राजा ने अपने सहस्र बाहुओ के समूह से सागर को क्षोभ पैदा करते हुए देव और असुरो के द्वारा परिक्षिप्त क्षीरोद सागर के समान उस समुद्र को कर दिया था ॥३२॥ मन्दर पर्वत के क्षोभण से किय हुए और अमृतोदक की शङ्का वाले भयानक उस नृपो मे श्रेष्ठ को देखकर डरे हुए तुरन्त उत्पादित हुए थे ॥३३॥ महान् उरग नीचे की ओर झुके हुए निश्चल मस्तक वाले होगये थे जिस तरह सन्ध्या के समय म निर्वात से स्तिमित कदली के षण्ड हो उसी तरह महान् वन गये थे ॥३४॥

स वै बद्ध्वा धनुर्याान उत्सिक्तः पञ्चभिः शतैः ।
लङ्कायां मोहयित्वा तु सबल रावण बलात् ।
निर्जित्य बद्ध्वा चानीय माहिष्मत्या बबन्ध तम् ॥३५
ततो गत्वा पुलस्त्यस्तु अर्जुन च प्रसादयत् ।
मुमोच राजा पौलस्त्य पुलस्त्येनानुयाचितम् ॥३६
तस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वन ।
युगान्तेऽम्बुदवृक्षस्य स्फुटितस्याशनेरिव ॥३७
अहो मृधे महावीर्यं भार्गवो यस्य सोऽच्छिनत् ।
मृधे सहस्र बाहूना हेमतालवन यथा ॥३८
तृषितेन कदाचित्स भिक्षितश्चित्रभानुना ।
सप्त द्वीपांश्चित्रभानो प्रादाद्भिक्षा विशाम्पतिः ॥३९
पुराणि घोषान् ग्रामाश्च पत्तनानि च सर्वश ।
जज्वाल तस्य बाणेषु चित्रभानुर्दिधक्षया ॥४०
स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महायशा ।
ददाह कार्तवीर्यस्य शैलाश्चापि वनानि च ॥४१
स शून्यमाश्रम सर्व वरुणस्यात्मजस्य वै ।
ददाह सवनद्वीपाश्चित्रभानु महैहय ॥४२

वह पाँचसौ धनुर्धारो के द्वारा बाँधकर उत्सिक्त हुआ और सबल रावण को लङ्का मे मोह युक्त कराकर बलपूर्वक जीतकर तथा बाँधकर और माहिष्मती पुरी मे लाकर उसे बाँध दिया था ॥३५॥ इसके अनन्तर पुलस्त्य ऋषि वहाँ

नराधिप ने सहस्र नागों से युक्त माहिष्मती में कर्कोटक–सभा को जीतकर वहाँ पुरी को निवेशित कर दिया था ॥२६॥

स च वेगे समुद्रस्य प्रावट्कालाम्बुजेक्षण ।
क्रीडन्निव सुखोद्विग्न प्रावट्कालं चकार ह ॥२७
लुलिता क्रीडता तेन हेमस्रग्दाममालिनी ।
ऊर्मि भ्रुकुटिसन्नादा शङ्किताभ्येति नर्मदा ॥२८
पुरा स तामनुसरन्नवगाढो महार्णवम् ।
चकारोद्वृत्य वेलान्त स काल प्रावृणोद्वनम् ॥२९
तस्य बाहु सहस्रेण क्षोभ्यमाणे महादधौ ।
भवन्ति लीना निश्चेष्टा पातालस्था महासुरा ॥३०॥
चूर्णीकृत महावीचिलीनमीनमहाविषा ।
पतिता विद्धफेनौघमावर्त्तक्षिप्तदुस्सहम् ॥३१
चकार क्षोभयाराजा दो.सहस्रेण सागरम् ।
देवासुरपरिक्षिप्त क्षीरोदमिव सागरम् ॥३२
मन्दरक्षोभणाकृता ह्यमृतोदकशङ्किता ।
सहसोत्पादिता भीता भीम दृष्ट्वा नृपोत्तमम् ॥३३
नतनिश्चलमूर्द्धाना बभूवुश्च महोरगा ।
सायाह्ने कदलीषण्डा निर्वातस्तिमिता इव ॥३४

वर्षाकाल के कमल के समान नेत्रों वाले उसने समुद्र के वेग में सुख से उद्विग्न होते हुए खेल की भाँति प्रावृट काल कर दिया था ॥२७॥ क्रीडा करते हुए उसने हेमस्रग्दाम मालिनी को लुलित कर दिया था । ऊर्मि रूपिणी भृकुटियों के सन्नाद वाली नर्मदा शङ्कित होती हुई आती है ॥२८॥ प्राचीन काल में उसने उसका अनुसरण करते हुए महार्णव को अवगाढ किया था । वेला के अन्त तक उद्वर्तित कर उस काल ने वन को प्रावृत कर दिया था ॥२९॥ उसके एक सहस्र बाहुओं से महोदधि के क्षोभ्यमाण होने पर पाताल में रहने वाले महासुर निश्चेष्ट होकर लीन होगये थे ॥३०॥ चूर्ण किये हुए बडी तरङ्गों में लीन है मछलियों का महाविष जिनका ऐसे वे आवर्त्तों (भ्रमर) से क्षिप्त होने के

जयध्वजश्च वै पुत्रा अवन्तिषु विशाम्पते ।
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घः प्रतापवान् ॥५०

पहिले वरुण ने आश्विन उत्तम पुत्र को प्राप्त किया था। वह वसिष्ठ नाम वाला मुनि जनों का आश्रय लेने वाला विख्यात सुना गया गया है ॥४३॥ वहाँ पर प्राप्तिशो आई तो विभु ने क्रोध से अर्जुन को शप्त किया था। हे हैहय ! यह तेरा वन जिस कारण से मेरे यहाँ वर्जित नहीं है ॥४४॥ इसी कारण से तेरा यह दुष्कर कर्म है और इसको कृतमन्य हनन करेगा। अर्जुन नाम वाला कौन्तेय राजा नहीं होगा ॥४५॥ हे अर्जुन ! प्रहार करने वालों मे परमश्रेष्ठ महान् वीर्य वाले परशुराम जो बली है शीघ्र ही तुम्हारी छेदकर तेरी सहस्र बाहुओं को प्रमथित करेंगे ।४६। महान् बलवान् तपस्वी और ब्राह्मण तेरा वध करेगा। धीमान् उसके मृत्यु शाप से उस समय राम थे ॥४७॥ उस राजा ने पहिले स्वयं ही वर प्राप्त किया था। उसके सौ पुत्र थे जिनमें वहाँ पाँच महारथ थे ॥४८॥ अस्त्रों के अभ्यास करने वाले—बलयुक्त—शूरवीर—यशस्वी और धर्मात्मा वे सब थे। शूर और शूरसेन—वृषणाख्य और वृष तथा जयध्वज अवन्तियों में उस विशाम्पति के पुत्र थे। जयध्वज का पुत्र तालजङ्घ प्रतापवाला था ॥४९-५०॥

तस्य पुत्रशतं ह्येव तालजङ्घा इति श्रुतम् ।
तेषां पञ्च गणाः ख्याता हैहयानां महात्मनाम् ॥५१
वीरहोत्र ह्यसङ्ख्याना भोजाश्चावर्तयस्तथा ।
तुण्डिकेराश्च विक्रान्तास्तालजङ्घास्तथैव च ॥५२
वीरहोत्रसुतश्चापि अनन्तो नाम पार्थिव ।
दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामित्रदर्शन ॥५३
अनष्टद्रव्यता चैव तस्य राज्ञो बभूव ह ।
प्रभावेण महाराज. प्रजास्ता. पर्यपालयन् ॥५४
न तस्य वित्तनाशश्च नष्ट प्रतिलभेत स. ।
कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमन ॥५५

गये और उन्होंने अर्जुन को प्रसन्न किया था। तब राजा ने पुलस्त्य के द्वारा अनुपालित उस पौलस्त्य (रावण) को छोड़ दिया था ॥३६॥ उसके बाहु सहस्र का ज्या तल का शब्द युग के अन्त में स्फुटित अम्बुद वृक्ष के वज्र की भाँति था ॥३७॥ अहो (बड़े आश्चर्य की बात है) युद्ध में महान् वीर्य वाले जिसके बाहुओं के सहस्र को हेमताल वन के समान युद्ध में भार्गव ने छेदन कर दिया था ॥३८॥ किसी समय प्यासे चित्रभानु ने उससे भिक्षा माँगी थी। विशाम्पति ने चित्रभानु को सात द्वीपों की भिक्षा देदी थी ॥३९॥ चित्रभानु ने दिप्रक्षता से उसके बाणों में पुर-घोष-ग्राम और पत्तनों को सब ओर से जला दिया था ॥४०॥ उस पुरुषेन्द्र के प्रभाव से महान् यश वाले उसने कार्त्तवीर्य के शैल और वनों को भी दग्ध कर दिया था ॥४१॥ हैहय के साथ उस चित्रभानु ने वरुण के आत्मज के समस्त शून्य आश्रम का और वनों के सहित द्वीपों को जला दिया था ॥४२॥

सलेभे वरुण पुनः पुरा भास्विनमुत्तमम् ।
वसिष्ठनामा स मुनिः रयातश्चाप श्रित श्रुत ॥४३
तत्रापदस्तदा क्रोधादर्जुन शप्तवान्विभु ।
यस्मान्न वर्जितमिद वन ते मम हैहय ॥४४
तस्मात् ते दुष्कर कर्म्म कृतमन्यो हनिष्यति ।
अर्जुनो नाम कौन्तेयो न च राजा भविष्यति ॥४५
अर्जुन त्वा महावीर्यो राम प्रहरता वर ।
छित्वा बाहुसहस्र वै प्रमथ्य तरसा बली ॥४६
तपस्वी ब्राह्मणश्चैव वधिष्यति महाबलः ।
तस्य रामस्तदा ह्यासीन्मृत्युशापेन धीमत ॥४७
राज्ञा तेन वरश्चैव स्वयमेव वृत पुरा ।
तस्य पुत्रशत ह्यासीत् पञ्च तत्र महारथा ॥४८
कृतास्त्रा बलिन शूरा धर्म्मात्मानो यशस्विन ।
शूरश्च शूरसेनश्च वृष्टयाद्य वृष एव च ॥४९

जयध्वजश्च वै पुत्रा अवन्तिषु विशांपते ।
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घः प्रतापवान् ॥५०

पहिले वरुण ने मास्विन उत्तम पुत्र को प्राप्त किया था। वह वसिष्ठ नाम वाला मुनि जनों का आश्रय लेने वाला विख्यात सुना गया है ॥४३॥ वहाँ पर प्राप्तियाँ आई तो विभु ने क्रोध से अर्जुन को ग्रस लिया था। हे हैहय ! यह तेरा वन जिस कारण से मेरे यहाँ वर्जित नहीं है ॥४४॥ इसी कारण से तेरा यह दुष्कर कर्म है और इसको कृतमन्य हनन करेगा। अर्जुन नाम वाला कौन्तेय राजा नहीं होगा ॥४५॥ हे अर्जुन ! प्रहार करने वालों में परमश्रेष्ठ महान् वीर्य वाले परशुराम जो बली है शीघ्र ही तुमको छेदकर तेरी सहस्र बाहुओं को प्रमथित करेंगे ।४६। महान् बलवान् तपस्वी और ब्राह्मण तेरा वध करेगा। धीमान् उसके मृत्यु पास में उस समय राम थे ॥४७॥ उस राजा ने पहिले स्वयं ही वर प्राप्त किया था। उसके सौ पुत्र थे जिनमें वहाँ पाँच महारथ थे ॥४८॥ अस्त्रों में अभ्यास करने वाले—बलयुक्त—शूरवीर—यशस्वी और धर्मात्मा वे सब थे। शूर और शूसेन—वृषणाध और वृष तथा जयध्वज अवन्तियों में उस विशाम्पति के पुत्र थे। जयध्वज का पुत्र तालजङ्घ प्रतापवाला था ॥४९-५०॥

तस्य पुत्रशतं ह्येव तालजङ्घा इति श्रुतम् ।
तेषां पञ्च गणाः ख्याता हैहयानां महात्मनाम् ॥५१
वीरहोत्रश्च सुजातो भोजाश्चावर्त्यस्तथा ।
तुण्डिकेराश्च विक्रान्तास्तालजङ्घास्तथैव च ॥५२
वीरहोत्रसुतश्चापि अनन्तो नाम पार्थिव ।
दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामित्रदर्शन ॥५३
अनष्टद्रव्यता चैव तस्य राज्ञो बभूव ह ।
प्रभावेण महाराजः प्रजास्ताः पर्यपालयत् ॥५४
न तस्य वित्तनाशश्च नष्टं प्रतिलभेत स. ।
कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमत ॥५५

वित्तवान् भवत्यत्रैव धर्मश्चास्य विवर्द्धते ।
स्रष्टा भवेत् यथा दाता तथा स्वर्गे महीपते ॥५६

उसके सौ पुत्र हो तालजङ्घ थे यह हमने सुना है । उन महात्मा हैहयो के पाँच गण परम विख्यात थे ॥५१॥ वीरहोत्र–सुप्रख्यात भोज-आवर्त्तय-कुण्डिकेर तथा विक्रान्त तालजङ्घ थे ॥५२॥ वीरहोत्र का पुत्र भी राजा अनन्त नाम वाला हुआ था । उसका पुत्र दुर्जय था जोकि अमित्र दर्शन हुआ था ।५३। उस राजा के कभी नाश को न प्राप्त होने वाले धन का होना था । वह महाराज उन समस्त प्रजाओं का प्रभाव से परिपालन किया करता था ॥५४॥ उसका वित्त का कभी नाश नहीं होता है और जो कुछ कभी नष्ट भी होगया हो तो वह उसे प्राप्त कर लेता है । यहाँ बुद्धिमान् कार्त्तवीर्य के जन्म की कथा को जो कोई कहता है वह वित्त वाला यहाँ पर ही होजाता है और इसके धर्म की वृद्धि होती है । वह जिस प्रकार से स्रष्टा और दाता हो उसी तरह से स्वर्ग मे प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥५५-५६॥

प्रकरण ५७—ज्यामघ वृत्तान्त कथन

किमर्थं भुवन दग्धमपवस्य महात्मनाम् ।
कार्तवीर्येण विक्रम्य तत्र प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥१
रक्षिता स तु राजर्षि प्रजानामिति न श्रुतम् ।
कथ स रक्षिता भूत्वानाशयत्तत्तपोवनम् ॥२
आदित्यो विप्ररूपेण कार्तवीर्यमुपास्थित ।
तृप्तिकाम प्रयच्छान्नमादित्योऽह न सशय ॥३
भगवन् केन ते तृप्तिर्भवेद् ब्रूहि दिवाकर ।
कीदृश भोजन दद्मि श्रुत्वा च विदधाम्यहम् ॥४
स्थावर देहि मे सर्वमाहार ददता वर ।
तेन तृप्तो भवेय वै न तुष्यऽन्येन पार्थिव ॥५

न शक्य स्थावरं सर्व्वं तेजसा मानुषेण तु ।
निर्द्दग्धु तपतां श्रेष्ठ त्वामेव प्रणमाम्यहम् ॥६
तुष्टस्तेऽहं शरान् दद्मि अक्षयान् सर्वतः मुखान् ।
प्रक्षिप्ताः प्रज्वलिष्यन्ति मम तेजःसमन्विताः ॥७
आदिष्टं तेजसा मेघसागरं शोषयिष्यति ।
शुष्कं भस्म करिष्यामि तेन प्रीतो नराधिप ॥८

ऋषियों ने कहा—कार्त्तवीर्य ने विक्रम करके महात्माओं के अपवस्य भुवन को किस लिये जलाया था—वह सब पूछने वाले हमको आप बतलाइये ॥१॥ हमने सुना है कि वह राजर्षि तो प्रजाओं की रक्षा करने वाला था फिर वह रक्षक होकर किस कारण से उसने तपोवन का नाश किया था ॥२॥ सूतजी ने कहा—सूर्य भगवान् ब्राह्मण के रूप में कार्त्तवीर्य के पास उपस्थित हुए थे—मैं तृप्ति की कामना करता हूँ—मुझे अन्न दो—मैं आदित्य हूँ । इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३॥ राजा ने कहा—हे दिवाकर ! यह बतलाइये आपकी तुष्टि किसमें होगी । मैं आपको किस प्रकार का भोजन दूँ और यह सुनकर मैं करूँगा ॥४॥ सूर्य ने कहा—हे दान देने वालों में श्रेष्ठ ! मुझे समस्त आहार स्थावर दो । उससे मेरी तृप्ति होगी हे पार्थिव ! अन्य किसीसे भी मैं सन्तुष्ट नहीं होऊँगा ॥५॥ राजा ने कहा—हे तपने वालों में श्रेष्ठ ! मानुष तेज से समस्त स्थावर निर्दग्ध किया नहीं जा सकता है । मैं आपको ही प्रणाम करता हूँ ।६। आदित्य ने कहा—तुष्ट हुआ मैं तुझे सर्व ओर से मुख प्रद-अक्षय शरों को देता हूँ वे फेंके हुए मेरे तेज से समन्वित होने वाले प्रज्वलित हो जायेंगे ॥७॥ हे नराधिप ! तेज से आदिष्ट मेघ-सागर को शोषित कर देगा । उससे प्रसन्न मैं शुष्क को भस्म कर दूँगा ॥८॥

ततः शरानथादित्यस्त्वर्जुनाय प्रयच्छति ।
ततः स प्राप्य सुमहत्स्थावरं सर्व्वमेव हि ॥९
आश्रमानथ ग्रामाश्च घोषाश्च नगराणि च ।
तपोवनानि रम्याणि वनान्युपवनानि च ॥१०

एव प्राचीनमदहत्ततः सूर्य्यप्रदक्षिणम् ।
निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिर्दग्धा सूर्येण तेजसा ॥११
एतस्मिन्नेव काले तु अपो निलयमाश्रित ।
दशवर्षसहस्राणि जलवासा महानृषि ॥१२
पूर्णे व्रते महातेजा उदतिष्ठत्तपोधनः ।
सोऽपश्यदाश्रम दग्धमर्जुनेन महानृषि ।
क्रोधाच्छशाप राजर्षि कीर्तित वो यथा मया ॥१३

इसके अनन्तर आदित्य अर्जुन के लिये शरो को दे देता है। फिर उन्हें पाकर सुमहान् समस्त स्थावर को–आश्रमो को–घोषो को और नगरो को–तपोवनो को–रम्यतम वनो को और उपवनो को सबको इस प्रकार से प्राचीन को सूर्य प्रदक्षिण को दाह कर दिया था। समस्त यह भूमि बिना वृक्षो वाली–तृण रहित सूर्य के तेज से जली हुई होगई थी ॥९-१०-११॥ इसी समय मे महान् ऋषि जल के घर मे आश्रित होगया और दश सहस्र वर्ष तक जल म ही वास करने वाले हुए थे ॥१२॥ व्रत के पूर्ण होजाने पर महान् तेज वाले तपोधन उठकर खड़े हुए थे। उन महान् ऋषियो ने अर्जुन के द्वारा दग्ध आश्रम को देखा था। तब क्रोध से राजर्षि को शाप दे दिया था जैसा कि मैंने तुमसे कहा था ॥१३॥

क्रोष्टो शृणुत राजर्षेर्वंशमुत्तमपूरुषम् ।
यस्यान्ववाये सम्भूतो वृष्णिर्वृष्णिकुलोद्वह ॥१४
क्रोष्टोरेवोऽभवत् पुत्रो वृजिनीवान् महायशा ।
वार्जिनीवतमिच्छन्ति स्वाहि स्वाहीवता वरम् ॥१५
स्वाहे पुत्रोऽभवद्राजा रुशादुर्वदता वरः ।
सुतप्रसूतमिच्छन्ति रुशादोरग्र्यमात्मजम् ॥१६
महाक्रतुभिरीजे स विविधैराप्तदक्षिणै ।
चित्रं श्चित्ररथस्तस्य पुत्र कर्म्मभिरन्वित ॥१७
एव चित्ररथो वीरो यज्ञाम् विपुलदक्षिणाम् ।
शशविन्दु पर वृत्तो राजर्षीणामनुष्ठित ॥१८

चक्रवर्ती महासत्त्वो महावीर्यो बहुप्रज ।
तत्रानुवंशश्लोकोऽयं यस्मिन् गीत पुराविदैः ॥१६
शशबिन्दोस्तु पुत्राणां शतानामभवच्छतम् ।
धीमतामनुरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम् ॥२०

सूतजी ने कहा—अब राजर्षि क्रोष्टु के उत्तम पुरुष वाले वंश का श्रवण करो जिसके अन्वाय मे वृष्णि पुत्र का उद्वह वृष्णि उत्पन्न हुआ था ॥१४॥ क्रोष्टु के एक ही पुत्र था जोकि वृजिनी वान्य और महान् यशवाला था जो वाजिनी वाल स्वाहि को स्वाहो वालो म श्रेष्ठ को चाहता था ॥१५॥ स्वाहि का पुत्र दान देने वालो म उत्तम रुषादु का सबसे पहिला पुत्र घृत प्रसूत हुआ था ॥१६॥ उसने बडे बडे महान् ऋतुओं के द्वारा यजन किया था जिनमे बहुत ही अधिक दक्षिणा प्राप्त की गई थी तथा अनेक प्रकार के थे। उसका पुत्र कर्मों से अन्वित चित्ररथ हुआ था ॥१७॥ इस प्रकार से चित्ररथ वीर ने विशेष अधिक दक्षिणा वाले यज्ञो को करके राजर्षियो द्वारा अनुष्ठित शशबिन्दु नाम वाला पुत्र प्राप्त किया था ॥१८॥ वह शशबिन्दु महान् सत्व वाला—चक्रवर्ती—महावीर्य और बहुत सी सन्तति वाला हुआ था। वहाँ पर उसके वंश का यह श्लोक पुरा वेत्ताओ के द्वारा गाया गया है ॥१६॥ शशबिन्दु के परम बुद्धिमान्—बहुत धन एव तेजवाले तथा अनुरूप सौ पुत्र हुए थे ॥२०॥

तेषां षट् व प्रधानास्तु पृथुसाह्का महाबला ।
पृथुश्रवा पृथुयशा पृथुधर्म्मा पृथुञ्जय ॥२१
पृथुकीर्ति पृथुन्दाता राजान. शाशिबिन्दवा ।
शसन्ति च पुराणानि पार्थश्रवसमन्तरम् ।
अन्तरः स पुरा यस्तु यज्ञस्य तनयोऽभवत् ॥२२
उशना सुतधर्म्मात्मा अवाप्य पृथिवीमिमाम् ।
आजहाराश्वमेधानां शतमुत्तमधार्म्मिक ॥२३
मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षीणामनुक्षित ।
वीर कम्बलबर्हिस्तु मरुत्ततनय स्मृत ॥२४

पुत्रस्तु रुक्मकवचो विद्वान् कम्बलबर्हिषः ।
निहत्य रुक्मकवच पुरा कवचिनो रणे ॥२५
धन्विनो निशितैर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमम् ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तमश्वमेधमहायशाः ॥२६
राज्ञस्तु रुक्मकवचादपरावृत्य वीरहा ।
जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महासत्वा महाबला ॥२७॥
रुक्मेषु पृथुरुक्मश्च ज्यामघ परिघो हरिः ।
परिघञ्च हरिश्चैव विदेहे स्थापयत्पिता ॥२८

उन सौ पुत्रों मे महान् बल वाले पृथुपाटक छै पुत्र प्रधान थे जिनके नाम ये हैं—पृथुश्रवा–पृथुयशा–पृथुधर्मा–पृथुञ्जय–पृथुकीर्ति और पृथुन्दाता, ये सब शाशविन्दव राजा थे । पुराण पृथुश्रवा के अन्तर नामक पुत्र को बतलाते हैं । अन्तर वह था जो पहिले यज्ञ का पुत्र हुआ था ॥२१-२२॥ सुतधर्मा का आत्मा उशना ने इस पृथ्वी को प्राप्त करके उत्तम धार्मिक उमने सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे ॥२३॥ राजर्षियो का अनुष्ठित मरुत्त नाम वाला उसका पुत्र हुआ था । मरुत्त का पुत्र वीर कम्बलबर्हि कहा गया है ॥२४॥ कम्बलबर्हि का पुत्र परम विद्वान् रुक्म कवच हुआ था । रुक्म कवच ने पहिले अपने तीखे बाणों के द्वारा रण मे धन्वी तथा कवच धारियो को मारकर उत्तम श्री को प्राप्त किया था और अश्वमेधो से महान् यश वाले उसने बहुत सा धन ब्राह्मणों को दान मे दे दिया था ॥२५-२६॥ राजा रुक्म कवच से महान् सत्व वाले तथा महान् बल वाले पाँच पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था ॥२७॥ जिनके नाम रुक्मेषु–पृथुरुक्म–ज्यामघ–परिघ और हरि ये थे । परिघ को और हरि को पिता ने विदेह में स्थापित किया था ॥२८॥

रुक्मेषुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्तदाश्रयः ।
तेभ्य प्रव्रजितो राज्या ज्ज्यामघोऽभवदाश्रमे ॥२९
प्रशान्तस्तु वने घोरे ब्राह्मणेनाववोधितः ।
जगाम धनुरादाय देशमध्य रथी ध्वजी ॥३०

नर्म्मदानूप एकाकी मेकलावृत्तिका अपि ।
ऋक्षवन्त गिरिं गत्वा शुक्तिमन्यामथाविशत् ॥३१
ज्यामघस्याभवद्भार्या शैब्या बलवती भृशम् ।
अपुत्रोऽपि स वै राजा भार्यामन्या न विन्दति ॥३२
तस्यासीद्विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप स ।
भार्यामुवाच राजा स स्नुषेति तु नरेश्वर । ३३
एवमुक्ताब्रवीदेव कस्येयं स्नुषेति सा ।
यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्या भविष्यति ॥३४
तस्य सा तपसोग्रेण शैब्या वैदर्भं प्रसूयत ।
पुत्र विदर्भं सुभगा शैब्या परिणता सती ॥३५
राजपुत्री तु विद्वांसौ स्नुषायां क्रथकौशिकौ ।
पुत्रौ विदर्भोऽजनयच्छूरौ रणविशारदौ ॥३६

महोपु राजा हुआ था उसके आश्रम में रहने वाला पृथुरुक्म था। राज्य से प्रव्रजित ज्यामघ आश्रम में हुआ था ॥२९॥ घोर वन में प्रशान्त और ब्राह्मणों के द्वारा प्रबोधित वह रथ तथा ध्वज वाला धनुष लेकर देश के मध्य में गया था ॥३०॥ नर्मदा के अनूप में एकाकी मेकला वृत्तिवाला ऋक्षवान् पर्वत में जाकर एक अन्य शुक्ति में प्रवेश कर गया था ॥३१॥ ज्यामघ की भार्या बहुत ही बल वाली शैब्या थी वह राजा पुत्र हीन भी था किन्तु उसने दूसरी भार्या को प्राप्त नहीं किया था ॥३२॥ उसकी युद्ध में विजय हुई थी। इसके पश्चात् उसने एक कन्या प्राप्त की थी। वह नरेश्वर राजा अपनी भार्या से यह स्नुषा है—ऐसा बोला था ॥३३॥ इस प्रकार से कही जाने वाली उसने कहा यह चाही हुई आपकी स्नुषा है तो जो आपका पुत्र उत्पन्न होगा यह उसकी भार्या होगी ॥३४॥ उसने उग्र तप से शैब्या ने वैदर्भ को प्रसूत किया था। परिणत सती शैब्या ने विदर्भ नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥३५॥ विदर्भ ने स्नुषा में विद्वान् क्रथ और कौशिक दो राजपुत्रों को उत्पन्न किया था जो कि रण के विशारद तथा बड़े ही शूरवीर थे ॥३६॥

लोमपादं तृतीयन्तु पश्चाज्जज्ञे सुधार्मिकं ।
लोमपादात्मजो बभ्रुराहृतिस्तस्य चात्मजः ॥३७

कौशिकस्य चिदि पुत्रस्तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः।
क्रथो विदर्भपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥३८
कुन्तेर्धृष्टसुतो जज्ञे पुरोधृष्टः प्रतापवान्।
धृष्टस्य पुत्रो धर्मात्मा निर्वृतिः परवीरहा ॥३९
तस्य पुत्रो दशार्हस्तु महाबलपराक्रमः।
दशार्हस्य सुतो व्योमा ततो जीमूत उच्यते ॥४०
जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथः सुतः।
अथ भीमरथस्यासीत् पुत्रो रथवरः किल ॥४१
दाता धर्म्मरतो नित्यं शीलसत्यपरायणः।
तस्य पुत्रो नवरथस्ततो दशरथः स्मृतः ॥४२
तस्य चैकादशरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः।
तस्मात् करम्भको धन्वी देवरातोऽभवत्ततः ॥४३
देवक्षत्रोऽभवद्राजा देवरातिर्म्महायशाः।
देवक्षत्रसुतो जज्ञे देवनः क्षत्रनन्दनः ॥४४

तीसरा पुत्र लोमपाद नाम वाला पीछे उत्पन्न हुआ था जो बहुत ही धार्मिक वृत्ति वाला था। लोमपाद का पुत्र बभ्रु हुआ और उसका आत्मज आहृति हुआ था ॥३७॥ कौशिक का पुत्र चिदि था उससे चैद्य राजा कहे गये हैं। क्रथु का पुत्र विदर्भ हुआ और उसका पुत्र कुन्ति नाम वाला हुआ था ।३८। कुन्ति के धृष्ट सुत ने प्रताप वाला पुरोधृष्ट उत्पन्न किया था। धृष्ट का पुत्र धर्मात्मा परवीरहा निर्वृति हुआ था ॥३९॥ उसका दशार्ह हुआ था जो बल तथा पराक्रम में महान् था। दशार्ह का पुत्र व्योमा नामक था और फिर उसका पुत्र जीमूत नाम वाला कहा जाता है ॥४०॥ जीमूत का पुत्र विकृति नामक हुआ उस का पुत्र भीमरथ हुआ था। इसके अनन्तर भीमरथ का पुत्र रथवर था ॥४१॥ यह बहुत ही दान देने वाला तथा धर्म में रति रखने वाला र नित्य ही शील एवं सत्य में परायण रहा करता था। उसका पुत्र नव था और फिर उसका पुत्र दशरथ हुआ था ॥४२॥ उसके पुत्र का नाम रथ था तथा उसके आत्मज शकुनि नाम वाले ने जन्म ग्रहण किया

था। उसमे धन्वी करम्भक हुआ और इसके पश्चात् उसके देवरात पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥४३॥ देवक्षत्र राजा हुआ था और देवरानि महान् यश वाला था। देवक्षत्र के सुत ने क्षत्रियों को आनंद देने वाला देवन पुत्र को जन्म दिया था ।४४।

देवनात् सु मधुर्जज्ञे यस्य मेघार्थसम्भवः ।
मधोश्चापि महातेजा मनुर्मनुवशस्तथा ॥४५
नन्दश्च महातेजा महापुरवशस्तथा ।
आसीत् पुरुवशात् पुत्र. पुरुद्वान् पुरुषोत्तम. ॥४६
जज्ञे पुरुद्वत पुत्रो भद्रवत्या पुरुद्वह. ।
ऐक्षाकी स्वसवद्भार्या सत्त्वस्तस्यामजायत ।
सत्त्वात् सत्त्वगुणो पेत सात्त्वत कीर्तिवर्द्धन ॥४७
इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मन. ।
प्रजावानेति सायुज्य राज्ञ· सोमस्य धीमत ॥४८

देवन से मधु ने जन्म ग्रहण किया जिसका मेघार्थ सम्भव है। मधु के भी महान् तेज वाला मनु तथा मनुवश हुआ ॥४५॥ और नन्दन तथा महान् तेज वाला महा पुरुवश हुआ था। पुरुवश से पुरुषोत्तम पुरु विद्वान् पुत्र हुआ था ॥४६॥ पुरुद्वान् से भद्रवती मे पुरुद्वह पुत्र ने जन्म लिया था। उसकी भार्या ऐक्षाकी हुई थी उसमे सत्त्व पैदा हुआ था। सत्त्व से सत्त्वगुण से युक्त कीर्ति-वर्द्धन सात्त्वत हुआ था ॥४७॥ महात्मा ज्यामघ की इस विशेष सृष्टि का ज्ञान प्राप्त करके पुरुष प्रजा वाला होता है और धीमान् राजा सोम के सायुज्य को प्राप्त करता है ॥४८॥

प्रकरण—५८ विष्णु वंश वर्णन

सात्वती सत्त्वसम्पन्नं कौशल्या सुषुवे सुतम् ।
भजिन भजमानं च दिव्य देवावृधं नृपम् ॥१
अन्धकञ्च महाभोज वृष्णिञ्च यदुनन्दनम् ।
तेषां हि सर्गाश्चत्वार शृणुध्व विस्तरेण वै ॥२

भजमानस्य शृञ्जय्या बाह्यश्चोपरि बाह्यक ।
शृञ्जयस्य सुते द्वे तु बाह्यकस्ते उदावहत् ॥३
तस्य भार्ये भगिन्यौ ते प्रासूतेति सुतान् बहून् ।
निमिश्च पणवश्चैव वृष्णि परपुञ्जय ॥४
ये बाह्यकार्य्यांशृञ्जय्या भजमानाद्विजज्ञिरे ।
अयुतायुतसाहस्रशतजिदथ वामक ॥५
बाह्यकार्य्याभगिन्या ये भजमाना द्विजज्ञिरे ।
तेषा देवावृधो राजा चचार परम तप ॥६
पुन सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्म ह ।
सयोज्यात्मानमेव सवर्णा सा जलमस्पृशत् ॥७
सा चोपस्पर्शनात्तस्य चकार श्रियमापगा ।
कल्याणञ्च नरपतेस्तस्य सा निम्नगोत्तमा ॥८

श्री सूत जी ने कहा—सात्वी कौशल्या ने रूप मे सम्पन्न सुत का प्रसव किया था । भजिन-भजमान दिव्य देवावृध सुत को उत्पन्न किया था ॥१॥ अन्धक-महाभोज और वृष्णि यदुनन्दन को उत्पन्न किया था । उनके चार सर्ग हुए थे उनको अब विस्तार से सुनो ॥२॥ भजमान के शृञ्जयी म बाह्य और बाद मे बाह्यक हुए । शृञ्जय के दो पुत्री थी उन दोनो के साथ बाह्यक ने विवाह कर लिया था ॥३॥ उसकी दोनो बहिन भार्याओ ने बहुत से पुत्रो को जन्म दिया था । निमि-पणव-वृष्णि और परपुरञ्जय थे ॥४॥ जो बाह्यक की आय शृञ्जयी म भजमान से उत्पन्न हुए थे । अयुत-अयुत साहस्र-शतजित्-नामक थे ।५। जो बाह्यक की आर्य भगिनी म भजमान से उत्पन्न हुए थे । उनका देवावृध नाम वाला राजा था जिसने परम तपस्या की थी ॥६॥ मेरे समस्त सद्गुणों से युक्त पुत्र उत्पन्न होवे—इस प्रकार से अपने आपको सयोजित करके सवर्णा उसने जल का स्पर्श किया था ॥७॥ उस आपगा ने उसके उप स्पर्श से श्रृयि को किया था और उस निम्नगोत्तमा ने उस नरपति का कल्याण किया था ॥८॥

चिन्तयाभिपरीताङ्गा जगामाथ विनिश्चयम् ।
नाधिगच्छामि तां नारीं यस्यामेवंविधः सुतः ॥९
भवेत्सर्वगुणोपेतो राज्ञो देवावृधस्य हि ।
तस्मादस्य स्वयं चाहं भवाम्यद्य सहव्रता ।
जज्ञे तस्याः स्वयं हस्तो भावस्तस्य यथेरितः ॥१०
अथ भूत्वा कुमारी तु सावित्री परमं वचः ।
चिन्तयामास राजानं तामियेष स पार्थिवः ॥११
तस्यामाधत्त गर्भं स तेजस्विनमुदारधीः ।
अथ सा नवमे मासि सुषुवे सरितावरा ॥१२
पुत्रं सर्वगुणोपेतं यथा देवावृधेप्सितं ।
तत्र वंशे पुराणज्ञा गाथा गायन्ति वै द्विजाः ॥१३
गुणान् देवावृधस्यापि कीर्त्तयन्तो महात्मनः ।
यथैव शृणुमो दूरात् सम्पश्यामस्तथान्तिकात् ॥१४
बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ।
पुरुषाः पञ्चषष्टिश्च सहस्राणि च सप्तति ।
येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रुर्देवावृधादपि ॥१५
यज्वा दानपतिर्वीरो ब्रह्मण्यः सत्यवाग् बुधः ।
कीर्तिमांश्च महाभागः सात्वतानां महारथः ॥१६

चिन्ता से अभिपरीत अङ्गों वाली उसने विशेष रूप से निश्चय किया था कि उस नारी का अधिगमन नहीं करता हूँ जिसमें इस प्रकार का पुत्र हो ॥९॥ राजा देवावृध का समस्त गुणों से उपेत होवेगा सो आज इसकी स्वयं ही मैं सहव्रता हो जाऊँ । इसके स्वयं हस्त ने जन्म लिया था उसका भाव जैसा ईरित हुआ था ॥१०॥ इसके अनन्तर सावित्री कुमारी होकर परम वचन का राजा का चिन्तन करने लगी थी । वह राजा स्वयं उसको चाहता था ॥११॥ उदार बुद्धि वाले उसने उसमें तेजस्वी गर्भ धारण किया था । इसके अनन्तर नवम मास में उस सरितावरा ने प्रसव किया था ॥१२॥ जैसा देवावृध के द्वारा ईप्सित था वैसा ही समस्त गुणों से युक्त पुत्र को उसने जन्म दिया था । यहाँ वंश में

पुराण के ज्ञाता द्विजगण गाथा का गान किया करते हैं ॥१३॥ महान् आत्मा वाले देववृध के भी गुणों का कीर्तन करते हुए जैसा ही दूर से सुनते हैं वैसा ही समीप में आकर देखते हैं ॥१४॥ वभ्रु मनुष्यों में श्रेष्ठ देवों के समान देववृध था। पाँच हजार सत्तर वर्ष तक जो पुरुष अमृतत्व को प्राप्त हुये थे। वभ्रु देव वृद्ध से भी अधिक यज्वा-दानपति-वीर-ब्रह्मण्य-सत्यवचन वाला-पण्डित-कीर्तिमान् और महान् भाग वाला सात्वतों में महारथ था ॥१५-१६॥

तस्यान्ववाये सुमहाभोजयेमार्तिकावला ।
गान्धारी चैव माद्री च वृष्णेर्भार्ये बभूवतु ॥१७
गान्धारी जनयामास सुमित्रं मित्रनन्दनम् ।
माद्री युधाजितं पुत्रं सा तु वै देवमीढुषम् ॥१८
अनमित्र सुतश्चैव तावुभौ पुरुषोत्तमौ ।
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्य द्वौ बभूवतु ॥१९
प्रसेनश्च महाभाग शत्रजिच्च सुतावुभौ ।
तस्य शत्रजितः पूर्वं सखा प्राणसमोऽभवत् ॥२०
स कदाचिन्निशापाये रथेन रथिनांवरः ।
तोयकूलादप स्प्रष्टुमुपस्थातुं ययौ रविम् ॥२१
तस्योपतिष्ठन् सूर्यो विवस्वानग्रतः स्थितः ।
अस्पष्टमूर्तिर्भगवा स्तेजोमण्डलवान् विभु ॥२२
अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रतः ।
यथैव व्योम्नि पश्यामि त्वामहं ज्योतिषाम्पते ॥२३
तेजोमण्डलिनश्चैव तथै वाप्यग्रतः स्थितम् ।
को विशेषो विवस्वस्ते साक्षादुपगतेन वै ॥२४

उसके अन्ववाय में भ्रान्ति करने वाली अबलाएँ भलीभाँति भोग के योग्य थी। गान्धारी और माद्री ये दो भार्या वृष्णि की हुई थी ॥१७॥ गान्धारी मित्रों को आनन्द देने वाला सुमित्र पुत्र को उत्पन्न किया था। माद्री ने युधाजित पुत्र को जन्म दिया था और उसने तो देवमीढुष को उत्पन्न किया था ॥१८॥ और अनमित्र पुत्र को जन्म दिया था। वे दोनों उत्तम पुरुष थे। अनमित्र

का पुत्र विघ्न हुआ और विघ्न के दो पुत्र हुए थे ॥१६॥ प्रसेन और महाभाग सत्राजित् दो पुत्र थे। उस सत्राजित् का पूर्व प्राण के समान सखा हुआ था।२०। वह किसी समय निशा के समाप्त होजाने पर रथियो मे श्रेष्ठ रथ के द्वारा जल के किनारे से जलका स्पर्श करने को और रवि का उपस्थान करने के लिये गया था ॥२१॥ उपस्थान करने वाले उसके आगे विवस्वान् सूर्य स्पष्टता से रहित मूर्तिवाले-विभु और तेज के मण्डल वाले भगवान् थे ॥२२॥ इसके अनन्तर आगे स्थित रहने वाले विवस्वान् से राजा बोला-जिस प्रकार से आकाश मे मैं आपको देखता हूँ हे ज्योतियो के स्वामिन् ! इसी प्रकार से तेज के मण्डल वाले आपको आगे स्थित होते हुए भी देख रहा हूँ। हे विवस्वन् आपके साक्षात् आने पर भी क्या विशेषता हुई है ? ॥२३-२४॥

एतच्छ्रुत्वा स भगवान् मणिरत्न स्यमन्तकम्।
स्वकण्ठादवमुच्याथ बबन्ध नृपते स्तदा ॥२५
ततो विग्रहवन्त त ददर्श नृपतिस्तदा।
प्रतिमामय ता दृष्ट्वा मुहूर्त्त कृतवाग्तथा ॥२६
तमतिप्रस्थित भूयो विवस्वन्त स सत्राजित्।
प्रोवाचाग्निसवर्णं त्व येन लोकान् प्रयास्यति।
तदेव मणिरत्न तन्मा भवान् दातुमर्हति ॥२७
स्यमन्तक नाम मणि दत्तवास्तस्य भास्कर।
स तमाबद्ध्य नगर प्रविवेश महीपतिः ॥२८
त जनाः पर्यधावन्त सूर्योऽयं गच्छतीति ह।
सभा विस्माययित्वाथ पुरीमन्त पुर तथा ॥२६
त प्रसेनजिते दिव्य मणिरत्न स्यमन्तकम्।
ददौ भ्राते नरपति प्रेम्णा सत्राजिदुत्तमम् ॥३०
स्यमन्तको नाम मणिर्यस्य राष्ट्रे स्थितो भवेत्।
कालवर्षी च पर्जन्यो न च व्याधिभय तदा ॥३१
लिप्सा चक्रे प्रसेनात्तु मणिरत्न स्यमन्तकम्।
गोविन्दो न च त लेभे शक्तोऽपि न जहार च ॥३२

यह सुनकर उन भगवान् सूर्यदेव ने स्यमन्तक नाम वाली श्रेष्ठ मणि को अपने कण्ठ से उतार कर राजा के कण्ठ में उस समय बाँध दी थी ।।२५।। तब तो उस समय में राजा ने देहधारी उनका दर्शन किया था। इसके बाद उस प्रतिमा को देखकर मुहूर्त्त भर राजा ने वैसा ही किया ।।२६।। फिर प्रति प्रस्थित उन सूर्यदेव से सत्राजित् ने कहा—अग्नि के सवर्ण आप जिससे लोकों को जायगे उस समय वह मणि रत्न आप मुझे देने के योग्य होते हैं ।।२७।। भास्कर ने स्यमन्तक नाम वाली मणि उसको देदी थी और वह राजा उसे अपने कण्ठ में बाँध कर नगर में प्रविष्ट हुआ था ।।२८।। मनुष्य उसके चारों ओर दौड़ लगाते थे कि यह सूर्य जा रहा है। राजा ने अपनी पूरी सभा को विस्मय में डालते हुए तथा पूरी पुरी को विस्मित करके फिर वह अन्तःपुर में गया था ।।२९।। उस परम दिव्य उत्तम मणिरत्न स्यमन्तक को राजा सत्राजित् ने प्रेम से अपने भाई प्रसेनजित को देदी थी ।।३०।। जिसके राज्य में स्यमन्तक नाम वाली मणि स्थित रहती है वहाँ पर पर्जन्य (मेघ) समय पर बरसने वाले होते हैं और तब फिर कोई भी व्याधि का भय नहीं रहता है ।।३१।। भगवान् गोविन्द ने प्रसेन से उस स्यमन्तक मणि के स्वत्व प्राप्त करने की लिप्सा की थी किन्तु उसे नहीं प्राप्त किया था और सर्वतो भाव से शान्ति सम्पन्न होते हुए भी उसका हरण नहीं किया था ।।३२।।

कदा चिन्मृगया यात प्रसेनस्तेन भूषित ।
स्यमन्तककृते सिंहाद्वध प्राप्त सुदारुणम् ।।३३
जाम्बवानृक्षराजस्तु त सिंह निजघान वै ।
आदाय च मणि दिव्य स्व बिल प्रविवेश ह ।।३४
तत्कर्म कृष्णस्य ततो वृष्ण्यन्धकमहत्तरा ।
मणौगृध्नुन्तु मन्वानास्तमेव विशशङ्किरे ।।३५
मिथ्याभिशस्ति तेभ्यस्ता वलवानरिसूदन ।
अमृष्यमाणो भगवान् वन स विचचार ह ।।३६
स तु प्रसेनमृगयामचरत्तत्र चाप्यथ ।
प्रसेनस्य पद गृह्य पुरुषै राप्तकारिभि· ।३७

ऋक्षवन्त गिरिवर विन्ध्यञ्च नगमुत्तमम् ।
अन्वेषणपरिश्रान्त स ददर्श महामना ॥३८
साश्व हत प्रसेन त नाविन्दत्तत्र वै मणिम् ।
अथ सिंह प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरत ॥३९
ऋक्षेण निहतो दृष्ट पादैर्ऋक्षस्य सूचिताम् ।
पदैरन्वेषयामास गुहामृक्षस्य यादव ॥४०

किसी समय उस स्यमन्तक मणि को धारण कर भूषित होते हुए शिकार करने के लिये गया था और स्यमन्तक के लिये ही सुदारुण वध को सिंह से प्राप्त होगया था ॥३३॥ रीछो के राजा जाम्बवान् ने उस प्रसेन के वध करने वाले सिंह को मार डाला और उस दिव्य मणि को लेकर अपनी गुहा मे प्रविष्ट होगया था ॥३४॥ इसके पश्चात् उस कर्म को कृष्ण का सभी वृष्णि-अन्धक महत्तर यादव लोग कहने लगे और मणि के लेने वाले कृष्ण को मानते हुए उन्ही पर शङ्का करते थे ॥३५॥ उन सभी लोगो की इस तरह अपवाद पूर्ण झूठी चर्चा को बलवान् अरिसूदन भगवान् सहन न करते हुए वन मे विचरण करने लगे ॥३६॥ और उनने प्रसेन की खोज करने का काम किया था। प्रसेन के चरण चिन्हो को दया कर आप्तकारी पुरुषो के द्वारा बताये जाने पर गिरियो मे श्रेष्ठ ऋक्षवान् तथा उत्तम पर्वत विन्ध्य को खोज से थके हुए उन महामन वाले ने देखा था ॥३८॥ अश्व के सहित मरे हुए उस प्रसेन को देखा किन्तु उस मणि को नहीं देखा था। इसके पश्चात् प्रसेन के मृत शरीर के निकट ही ऋक्ष के द्वारा मार हुए सिंह को देखा। रीछ के चरण चिन्हो से सूचित भगवान् श्रीकृष्ण ने ऋक्षराज की गुहा की खोज की थी ॥३९-४०॥

महत्यतिबिले वाणी शुश्राव प्रमदेरिताम् ।
धात्र्या कुमारमादाय सुत जाम्बवतो द्विजा ।
प्रीतिमत्याथ मणिना मारोदीरित्युदीरिताम् ॥४१
प्रसेनमवधीत् सिंह सिंहो जाम्बवता हत ।
सुकुमारक मारोदीस्तव ह्येष स्यमन्तक ॥४२

व्यक्तीकृतस्य शब्दं तं तूर्णं सोऽपि ययौ बिलम् ।
अपश्यच्च बिलाभ्याशे प्रसेनमवदारितम् ॥ ४३
प्रविश्य चापि भगवांस्तदृक्षबिलमञ्जसा ।
ददर्श ऋक्षराजानं जाम्बवन्तमुदारधीः ॥ ४४
युयुधे वासुदेवस्तु बिले जाम्बवता सह ।
बाहुभ्यामेव गोविन्दो दिवसानेकविंशतिम् ॥४५
प्रविष्टे च बिलं कृष्णे वासुदेव पुरःसराः ।
पुनर्द्वारवतीमेत्य हतं कृष्णं न्यवेदयन् ॥४६
वासुदेवस्तु निर्जित्य जाम्बवन्तं महाबलम् ।
लेभे जाम्बवतीं कन्यामृक्षराजस्य सम्मताम् ॥४७
भगवत्तेजसा ग्रस्तो जाम्बवान् प्रसभं मणिम् ।
सुतां जाम्बवतीमाशु विष्वक्सेनाय दत्तवान् ॥४८

उस बहुत बड़ी गुफा में प्रमदा के द्वारा कही हुई वाणी को सुना था। कोई धात्री कुमार पुत्र को लेकर हे द्विजगण ! जाम्बवान् की शोभि वाली मणि के द्वारा (अर्थात् उसे दिखाते हुए) यह कह रही थी कि बच्चे ! रोदन मत करे। इस प्रकार कही हुई वाणी श्री कृष्ण ने सुनी थी ॥४१॥ धात्री ने कहा—सिंह ने प्रसेन को मार दिया और जाम्बवान् ने उस सिंह को मार डाला है। हे सुकुमार ! अब तू रुदन मत कर—यह मणि स्यमन्तक तेरी ही है ॥४२॥ उस शब्द को स्पष्ट तथा सुनकर शीघ्र ही वह श्रीकृष्ण बिल में अन्दर चले गये थे और बिल के समीप में अवदारित प्रसेन को देखा था ॥४३॥ भगवान् ने उस गुफा में प्रवेश करके ऋक्षराज के रहने की थी उस उदार बुद्धि वाले श्रीकृष्ण ने रीछों के राजा जाम्बवान् को वहाँ देखा था ॥४४॥ वासुदेव ने उस गुफा में इक्कीस दिन तक जाम्बवान् के साथ बाहुओं से युद्ध किया था ॥४५॥ वासुदेव के पुरस्सर साथ में जाने वाले लोगों ने गुफा में श्रीकृष्ण के प्रवेश करने पर द्वारका में वापिस आकर कृष्ण मारे गये ऐसा सबसे कह दिया था ॥४६॥ वासुदेव ने उस महान् बलवान् जाम्बवान् को जीतकर ऋक्षराज के द्वारा सम्मत जाम्बवती कन्या की प्राप्ति की थी ॥४७॥ भगवान् के तेज से ग्रस्त हो जाने

वान जाम्ववान् ने बलात् स्यमन्तक मणि को और अपनी पुत्री जाम्बवती को विष्वक्सेन के लिए दे दिया था ॥४८॥

मणिं स्यमन्तकं चैव जग्राहात्मविशुद्धये ।
अनुनीय ऋक्षराजं निर्ययौ च तदा बिलात् ॥४६
एवं स मणिमादाय विशोध्यात्मानमात्मना ।
ददौ सत्राजिते तं वै मणिं सात्वतसन्निधौ ॥५०
कन्यां पुनर्जाम्ववतीमुवाच मधुसूदन ।
तस्मान्मिथ्याभिशापात् स व्यमुच्यत जनार्दन ॥५१
इमां मिथ्याभिशस्तिं य कृष्णस्येह व्यपोहिताम् ।
वेद मिथ्याभिशस्ते स नाभिशास्यति कर्हिचित् ॥५२
दश त्वभूवन्यो भार्यास्य. सत्राजितः शतं सुताः ।
ख्यातिमन्तस्त्रयस्तेषां भङ्गकारस्तु पूर्व्वज ।
वीरो व्रतपतिश्चैव ह्युपस्वान्तश्च सुप्रिय ॥५३
अथ द्वारवती नाम भङ्गकारस्य सुप्रजा ।
सुषुवे सा कुमारीस्तु तिस्रो रूपगुणान्विता ॥५४
सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां व्रतिनीव दृढव्रता ।
तथा तपस्विनी चैव पिता कृष्णस्य तां ददौ ॥५५
यत्तत् सत्राजितं कृष्णो मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।
प्रादात्तदाहरद्रत्नं भोजेन शतधन्वना ॥५६
तदा हि प्रार्थयामास सत्यभामामनिन्दिताम् ।
अक्रूरो रत्नमन्विच्छन् मणिञ्चैव स्यमन्तकम् ॥५७
भङ्गकारं ततो हत्वा शतधन्वा महाबल ।
रात्रौ तं मणिमादाय ततोऽक्रूराय दत्तवान् ॥५८

अपनी आत्मा की विशुद्धि के लिए स्यमन्तक मणि का उनने ग्रहण किया था और ऋक्षराज से उनके लिये अनुनय किया था। इसके पश्चात् वह उस गुफा से बाहर निकल गये थे ॥४६॥ इस तरह उनने मणि को लाकर अपने आत्मा के द्वारा अपने आत्मापर वाद का शोधन करके समस्त सात्वतों की सन्निधि

मे उस स्यमन्तक मणि को सत्राजित् को दे दिया था ॥५०॥ फिर मधुसूदन ने जाम्बवती नाम वाली कन्या से कहा कि उस मिथ्या अभिशाप से जो दिन अर्थात् मैं सब विमुक्त होगया हूँ ॥५१॥ इस कृष्ण के ऊपर व्यपोहित मिथ्याभिशस्ति को कोई जानता है अर्थात् इसे पढ़ता या सुनता है वह कभी भी मिथ्या अपवाद से दूषित नहीं होता है ॥५२॥ दश अन्य भार्याओं से सत्राजित् के सौ पुत्र बहुत ही प्रसिद्धि वाले हुए थे उनमें भङ्गकार सबसे बड़ा था। वह वीर-व्रतपति-प्रधनस्थान और सुप्रिय था ॥५३॥ इसके अनन्तर भङ्गकार की सुन्दर सन्तति द्वारवती नाम वाली ने तीन रूप और गुण से युक्त कुमारियों का प्रसव किया था ॥५४॥ स्त्रियों में अति उत्तम व्रत वाली की भाँति दृढ़ व्रतचारी सत्यभामा थी और परम तपस्विनी थी उसको उसके पिता ने श्रीकृष्ण को दे दिया था ॥५५॥ जो मणियों में सर्वश्रेष्ठ स्यमन्तक मणि कृष्ण ने सत्राजित को दे दी थी उसे शतधन्वा ने भोज से हरण कर लिया था ॥५६॥ उस समय स्यमन्तक मणि को चाहते हुए अक्रूर ने प्रतिदिन सत्यभामा से प्रार्थना की थी ॥५७॥ तब शतधन्वा ने जो कि महान् बलवान् था, भङ्गकार को मारकर रात्रि में उस मणि को लाकर अक्रूर को दे दी थी ॥५८॥

अक्रूरस्तु तदा रत्न मादाय स नरर्षभ ।
समयं कारणं चक्रे बोध्यो नान्यैस्त्वयेत्युत ॥५९
वयमभ्युपपत्स्यामः कृष्णेन त्वं प्रधर्षित ।
मम च द्वारका सर्वा वशे तिष्ठत्यसंशयम् ॥६०
हते पितरि दुःखार्त्ता सत्यभामा यशस्विनी ।
प्रययौ रथमारुह्य नगरं वारणावतम् ॥६१
सत्यभामा तु तद्वृत्तं भोजस्य शतधन्वन ।

ततस्त्वरितमागम्य द्वारकां मधुसूदनः ।
पूर्वजं हलिनं श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥६४

हत प्रसेन सिंहेन सत्राजिच्छतधन्वना ।
स्यमन्तकमहं मार्गे तस्य प्रहर हे प्रभो ॥६५
तदारोह रथं शीघ्रम् भोजं हत्वा महाबलम् ।
स्यमन्तको महाबाहो तदास्माकं भविष्यति ॥६६

उन वरों में श्रेष्ठ अक्रूर ने उस समय उस रत्न को लेकर प्रतिज्ञा कराई था शर्त कराली थी कि इसके प्राप्त होनेका कारण मुझे अन्य किसी को भी नहीं ज्ञात कराना चाहिए ॥५६॥ हम अभ्युपपन्न करेंगे । तुझको कृष्ण ने प्रधर्षित किया है । अब यह समस्त द्वारका निस्सन्देह मेरे वश में रहेगी ॥६०॥ अपने पिता के मारे जाने पर यशस्विनी सत्यभामा दुःख से पीड़ित हुई रथ पर सवार होकर वारणावत नगर में गई थी ॥६१॥ सत्यभामा ने शतधन्वा भोज का यह समस्त वृत्त भर्त्ता से निवेदन किया और दुःख से आर्त होकर पास में स्थित रोते हुए अश्रुपात किया था ॥६२॥ दग्ध हुए पाण्डवों की उदक क्रिया को हरि ने पूर्ण करके भाइयों के तुल्य अर्थ में सात्यकि को नियोजित किया था ॥६३॥ इसके पश्चात् मधुसूदन तुरन्त ही द्वारका में आकर अपने बड़े भाई बलरामजी से यह वचन बोले—॥६४॥ हे प्रभो ! सिंह ने प्रसेन को मार दिया था और शतधन्वा ने सत्राजित् को मार दिया है । उनके स्यमन्तक को मैं खोजता हूँ, आप प्रहार करिये ॥६५॥ अब आप रथ पर आरोहण करिये और महान् बलवान् को भोज को शीघ्र मार कर हे महाबाहो ! तब यह स्यमन्तक हमारी हो जायगी ॥६६॥

ततः प्रवृत्ते युद्धे तु तुमुले भोजवृष्णयोः ।
शतधन्वा न चाक्रूरमवैक्षत् सर्वतो दिशि ॥६७
प्रनष्टा दवावरोहन्तु कृत्वा भोजजनार्दनौ ।
शक्तोऽपि शाठ्याद्धार्दिक्यादाक्रूरोऽभ्युपपद्यत ॥६८
अपयाने ततो बुद्धिं भूयश्चक्रे भयान्वितः ।
योजनानां शतं साग्रं यया च प्रत्यपद्यत ॥६९
विज्ञातहृदया नाम शतयोजनगामिनी ।
भोजस्य वडवादिव्यौ यया कृष्णमयोधयत् ॥७०

प्रवृद्धवेगा वडवा त्वध्वना शतयोजनम् ।
दृष्टा रथगतिस्तस्य शतधन्वानमर्द्दयत् ॥७१
ततस्तस्य हयास्ते तु श्रमात् खेदाच्च वै द्विजा ।
समुत्पेतू रथप्राणा कृष्णो राममथाब्रवीत् ॥७२
तिष्ठस्वेह महाबाहो दृष्टदोषा मया हया ।
पद्भ्यां गत्वा हरिष्यामि मणिरत्नं स्यमन्तकम् ॥७३
पद्भ्यामेव ततो गत्वा शतधन्वानमच्युत ।
मिथिलाधिपतिं तं वै जघान परमास्त्रवित् ॥७४

इसके पश्चात् भोज और कृष्ण का तुमुल युद्ध प्रवृत्त हो जाने पर शत धन्वा ने समस्त दिशाओं में अक्रूर को नहीं देखा था ॥६७॥ भोज और जनार्दन नष्ट न होने वाले अश्वों का अवरोह करके शक्त होते हुए भी साध्य वापवय से अक्रूर अभ्युपपन्न नहीं हुआ ॥६८॥ भय में युक्त होते हुए फिर उसने अपयान करने में बुद्धि की थी। सौ योजन आगे जिससे प्रतिपन्न होगया ॥६९॥ विज्ञात हृदया–इस नाम वाली सौ योजन तक गमन करने वाली भोज की वडवा थी जिसके द्वारा उसने श्रीकृष्ण के साथ युद्ध किया था ॥७०॥ बढ़े हुए वेग वाली वडवा (घोड़ी) थी जिसने उसके रथ की गति मार्ग के सौ योजन में देखी थी उसने शतधन्वा का अर्दित कर दिया था ॥७१॥ हे द्विजगण ! इसके पश्चात् रथ के प्राण स्वरूप उसके घोड़े श्रम से और खेद के होने से आकाश में उड़ गये थे। श्रीकृष्ण राम से बोले ॥७२॥ हे महाबाहो ! यहीं पर ठहरो मैंने अश्वों के दोषों को देख लिया है। मैं पैरों से जाकर मणिरत्न स्यमन्तक का हरण करूँगा ॥७३॥ इसके पश्चात् पैरों से ही जाकर अच्युत ने मिथिला के अधिपति शत धन्वा को अस्त्र विद्या के परम पण्डित श्रीकृष्ण ने मार दिया था ॥७४॥

स्यमन्तकं न चापश्यद्धत्वा भोजं महाबलम् ।
निवृत्तं चाब्रवीत् कृष्णं रत्नं देहीति लाङ्गली ॥७५
नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो रुषान्वित ।
धिक्छब्दमसकृत् पूर्व्वं प्रत्युवाच जनार्द्दनम् ॥७६

भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येप स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ।
कृत्य न मे द्वारकया न त्वया न च वृष्णिभि ॥७१
प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्द न. ।
सर्व्वकामैरुपहृतैर्मैथिलेनैव पूजित: ॥७८
एतस्मिन्न व काले तु बभ्रुर्मतिमतावर ।
नानारूपान् क्रतून् सर्व्वानाजहार निरर्गलान् ॥७६
दीक्षामय सकवच रक्षार्थं प्रविवेश ह ।
स्यमन्तककृते राजा गाधिपुत्रो महायशा: ॥८०
अर्थान् रत्नानि चाग्र्याणि द्रव्याणि विविधानि च ।
षष्टिवर्षगते काले यज्ञेपु विन्ययोजयत् ॥८१
अक्रूरयज्ञ इत्येते ख्यातास्तस्य महात्मन ।
बह्वन्नदक्षिणा सर्व्वे सर्व्वकामप्रदायिन' ॥८२

और महान् बलवान् भोज को मार कर स्यमन्तक मणि को नही देखा था। लौटे हुए कृष्ण से लाङ्गलधारी बलराम ने कहा रत्न को देदो ॥७५॥ श्रीकृष्ण ने कहा वह मणि नही है। तब तो बलराम क्रोध से युक्त हो उठे। बार बार धिक्—इस शब्द को पहिले कहते हुए जनार्दन से बोले ॥७६॥ मेरे भाई के होने के कारण से मैं यह सहन करता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो—मैं तो अब जाता हूँ। मुझे द्वारका से कोई काम नही है न तुमसे और न वृष्णियो से कुछ प्रयोजन है ॥७७॥ इसके पश्चात् बलराम ने जोकि शत्रुओ के मर्दन करने वाले थे मिथिला मे प्रवेश किया था और वहाँ समस्त कामना वाले उपहृतो के द्वारा मैथिल से ही पूजित हुए थे ॥७८॥ इसी बीच मे बुद्धिमानो मे श्रेष्ठ बभ्रु ने अनेक रूप वाले निरर्गल सभी क्रतुओ को आहृत किया था ॥७९॥ महान् यश वाले राजा गाधि पुत्र ने स्यमन्तक के लिये दीक्षामय सकवच को रक्षा के लिये प्रविष्ट किया था ॥८०॥ साठ वर्ष के काल मे यज्ञो मे धनो को-रत्नो को और उत्तम विविध भाँति के द्रव्यो को विनियोजित किया था ॥८१॥ उस महान् आत्मा वाले ये सब 'अक्रूर यज्ञ' इस नाम से ख्यात हुए थे। जिनमे बहुत सा अन्न और दक्षिणा वाले तथा समस्त कामनाओ को देने वाले वे यज्ञ थे ॥८२॥

अथ दुर्य्योधनो राजा गत्वाऽथ मिथिला प्रभु ।
गदाशिक्षा ततो दिव्या बलभद्रादवाप्तवान् ॥८३
प्रसाद्य तु ततो विप्रा वृष्ण्यन्धकमहारथैं ।
आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना ॥८४
अक्रूरमन्धकैं सार्द्धमुपायात् पुरुषर्षभ ।
युद्धे हत्वा तु शत्रुघ्न सह बन्धुमता बली ॥८५
श्वफल्कतनयायान्तु नराया नरसत्तमो ।
भङ्गकारस्य तनयो विश्रुतौ सुमहाबलौ ॥८६
जज्ञातेऽन्धकमुख्यस्य शत्रुघ्नो बन्धुमाश्च तौ ।
यघार्थं भङ्गकारस्य कृष्णो न प्रीतिमान् भवेत् ॥८७
ज्ञातिभेदभयाद्भीत समुपेक्षितवास्तथा ।
अपयाते तथाक्रूरे नावपत्पाकशासन ॥८८
अनावृष्ट्या हत राष्ट्रमभवत्तद्वधोद्यतम् ।
तत प्रसादयामासुरक्रूर कुकुरान्धका ॥८९
पुनर्द्वारवती प्राप्ते तदा दानपतो तथा ।
प्रववर्ष सहस्राक्ष कुक्षौ जलनिधेस्तत ॥९०

इसके पश्चात् प्रभु राजा दुर्योधन ने मिथिला में आकर बलभद्र से दिव्य गदा की शिक्षा को प्राप्त किया था ॥८३॥ हे विप्र वृन्द ! इसके अनन्तर वृष्णि अन्धक और महारथों के द्वारा बलरामजी को प्रसन्न करके महात्मा कृष्ण द्वारा उन्हें फिर द्वारकापुरी में ही वापिस ले आये गये थे ॥८४॥ उस पुरुषों में श्रेष्ठ बली बलराम ने युद्ध में बन्धुमान् के साथ में शत्रुघ्न को मार कर अन्धकों के साथ अक्रूर के पास पहुँचे थे ॥८५॥ श्वफल्क की तनया में नरों में श्रेष्ठ भङ्गकार नरश्रेष्ठ महान् बलवाले एवं प्रसिद्ध दो तनय हुए ॥८६॥ उस अन्धकों में मुख्य शत्रुघ्न और बन्धुमान् ये दो पुत्र थे। भङ्गकार के वध के लिये कृष्ण प्रीति वाले नहीं हुए थे ॥८७॥ ज्ञाति के भेद के भय से डरे हुए उसकी उस प्रकार से उपेक्षा करदी थी। अक्रूर के अपयात होजाने पर इन्द्र ने वर्षा नहीं की थी ॥८८ अनावृष्टि से हत हुए राष्ट्र ने उसके वध करने की तैयारी की थी। तब कुकुर

को ने अक्रूर को प्रसन्न किया था ।८६। तब उस समय फिर दानपति के द्वारका पुरी मे प्राप्त हो जाने पर फिर जलनिधि की कुक्षि मे इन्द्र देव ने खूब वर्षा की थी ॥६०॥

कन्याञ्च वासुदेवाय स्वसारं शीलसम्मताम् ।
अक्रूरः प्रददौ श्रीमान् प्रीत्यर्थं यदुपुङ्गवः ॥६१
अथ विज्ञाय योगेन कृष्णो बभ्रुगतं मणिम् ।
सभामध्ये तदा प्राह तमक्रूरं जनार्दनः ॥६२
यत्तु रत्नं मणिवरं तव हस्तगतं प्रभो ।
तत् प्रयच्छस्व मानार्ह विमतिञ्चात्र मा कृथा ॥६३
षष्टिवर्षगते काले यद्रोषोऽभूत्तदा मम ।
सुसरूढः सकृत् प्राप्तस्तत्कालात्यय स महान् ॥६४
ततः कृष्णस्य वचनात् सर्व्वसात्वतसंसदि ।
प्रददौ तं मणिं बभ्रुरक्लेशेन महामतिः ॥६५
तान् आर्ज्जवसप्राप्तबभ्रुहस्तादरिन्दमः ।
ददौ प्रहृष्टमनसा तं मणिं बभ्रवे पुनः ॥६६
स कृष्णहस्तात् संप्राप्य मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।
आवध्य गान्दिनीपुत्रो विरराजांशुमानिव ॥६७
इमां मिथ्याभिशस्तिं यो विशुद्धामपि चोत्तमाम् ।
वेद मिथ्याभिशस्तिं स न प्रजेन्न कथञ्चन ॥६८

यदुओं मे श्रेष्ठ अक्रूर ने अपनी कन्या और शील से सम्मत बहिन को वासुदेव के लिये उनकी प्रीति के लिये दी थी ॥६१॥ इसके अनन्तर श्रीकृष्ण ने योग के द्वारा बभ्रु के पास मणि होने को जानकर जनार्दन ने सभा के मध्य मे उस अक्रूर से कहा ॥६२॥ हे प्रभो ! श्रेष्ठ रत्न श्रेष्ठ मणि तुम्हारे हाथ लग गई है हे मानार्ह ! उसे अब देदो और इस काम मे यहाँ कोई भी विमति मत करो ॥६३॥ साठ वर्ष के समय मे तब जो मुझे रोष हुआ है एक बार प्राप्त होजाने वाला वह इस समय काल का महारा पाकर वह बहुत ज्यादा होते हुए भली भाँति से रूढ़ होगया है ॥६४॥ इसके पश्चात् समस्त सात्वतों की ससद मे श्रीकृष्ण के

इन वचनों से महा बुद्धि वाले बभ्रु ने बिना किसी क्लेश के उस मणि को दे दिया था ।।६५।। इसके पश्चात् सरलता से बभ्रु के हाथ से प्राप्त हुई उस मणि को अरिन्दम ने बड़े ही प्रसन्न मन से पुनः उस मणि को बभ्रु को देदी थी ।६६। उस गान्दिनी पुत्र ने श्रीकृष्ण के हाथ से उस मणिरत्न स्यमन्तक को पाकर और कण्ठ में बाँधकर अंशुमान् की तरह सुशोभित हुए ।।६७।। इस मिथ्याभिशस्ति को जो कोई विशुद्ध को भी उत्तम को जानेगा वह कभी मिथ्याभिशस्ति को प्राप्त नहीं होगा ।।६८।।

अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात् ।।९९
सत्यवाक् सत्यसम्पन्नः सत्यकस्तस्य चात्मजः ।
सात्यकिर्युयुधानस्य तस्य भूतिः सुतोऽभवत् ।।१००
भूतेर्युगन्धरः पुत्र इति भौत्याः प्रकीर्त्तिताः ।
जज्ञाते तनयौ पृश्नेः श्वफल्कश्चित्रकश्च य ।।१०१
श्वफल्कस्तु महाराजो धर्मात्मा यत्र वर्त्तते ।
नास्ति व्याधिभयं तत्र न चावृष्टिभयं तथा ।।१०२
कदाचित् काशिराजस्य विभोस्तु द्विजसत्तमाः ।
त्रीणि वर्षाणि विषये नावर्षत्पाकशासनः ।।१०३
स तत्र वासयामास श्वफल्कं परमार्चितम् ।
श्वफल्कपरिवासेन प्रावर्षत्पाकशासनः ।।१०४
श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामनिन्दिताम् ।
गान्दिनी नाम या सा हि ददौ विप्राय नित्यशः ।।१०५
सा मातुरुदरस्था वै बहुवर्ष शतान् किल ।
वसति स्म न वै जज्ञे गर्भस्थान्ता पिताब्रवीत् ।।१०६

राजा अनमित्र से शिनि का जन्म हुआ जोकि वृष्णि का सबसे छोटा पुत्र था ।।९९।। उसके पुत्र सत्यवाक्—सत्यसम्पन्न और सत्यक थे । युयुधान का सात्यकि पुत्र हुआ था । और उसका पुत्र भूति नाम वाला उत्पन्न हुआ था ।।१००।। भूति का पुत्र युगन्धर नामक हुआ । ये सब संसार में भौत्य इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे । प्रश्नि के श्वफल्क और चित्रक ये दो पुत्रों का जन्म हुआ था

॥१०१॥ जहाँ महाराज श्वफल्क तो धर्मात्मा हुए हैं। वहाँ पर किसी भी व्याधि का कभी कोई भय ही नहीं हुआ था तथा न कभी अनावृष्टि (वर्षा होने का अभाव) ही हुई थी ॥१०२॥ हे द्विजगण ! किसी समय में विभु काशिराज के समय में तीन वर्ष तक देश में इन्द्रदेव ने वर्षा ही नहीं की थी ॥१०३॥ उसने वहाँ पर श्वफल्क को भली भाँति सम्मानित करके बसाया था। फिर श्वफल्क के परि निवास होने से पाकशासन ने वर्षा की थी ॥१०४॥ श्वफल्क ने काशिराज की सुता को भार्या प्राप्त किया गान्दिनी नाम वाली को थी। वह एक गौ रोज ही ब्राह्मण को दिया करती थी ॥१०५॥ वह माता के उदर में ही बहुत से सैकड़ों वर्ष तक स्थित रही थी और उसने जन्म ही ग्रहण नहीं किया था तब उदर में स्थित उससे उसके पिता ने कहा था ॥१०६॥

जायस्व शीघ्रं भद्रन्ते किमर्थं चापि तिष्ठसि ।
प्रोवाच चैन गर्भस्था सा कन्या गौर्दिने दिने ॥१०७
यदि दत्ता तदा स्या हि यदि स्यामीहता पित ।
तथेत्युवाच ता तस्या पिता काममपूपुरत् ॥१०८
दाता यज्वा च शूरश्च श्रु तवानतिथिप्रिय ।
तस्या पुत्र स्मृतोऽक्रूर श्वफल्को भूरिदक्षिण ॥१०९
उपमगुस्तथा मगुर्मृ दुरश्चारिमेजयः ।
गिरिरक्षस्ततो यक्ष शत्रुघ्नो वारिमर्द्दनः ॥११०
धर्मभृच्च श्रृष्टचयो वर्ममोचस्तथापर ।
आवाहप्रतिवाहो च वसुदेवा वराङ्गना ॥१११
अक्रूरादुग्रसेन्यान्तु सुतौ द्वौ कुलनन्दिनौ ।
देवश्चानुपदेवश्च जज्ञाते देवसम्मितौ ॥११२
चित्रकस्याभवन् पुत्रा. पृथुर्विपृथुरेव च ।
अश्वग्रीवोऽश्ववाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ॥११३
अरिष्टनेमिरश्वश्च सुवर्मा वर्मचर्मभृत् ।
अभूमिर्वहुभूमिश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ ॥११४

हे पुत्री ! तुम जन्म ग्रहण करो, तुम्हारा कल्याण होगा । क्या कारण है जिससे तुम उदर से बाहिर नहीं निकल रही हो और वहाँ पर बैठी हो ? तब उस गर्भ में स्थित कन्या ने इस अपने पिता से कहा था कि यदि रोज-रोज गौ का दान करने वाला हो तो मैं जन्म लूँगी । हे पिता ! मैं यही चाहती हूँ । तब उसके पिता ने 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर उसकी कामना को पूर्ण किया था ॥१०७-१०८॥ उसका पुत्र अक्रूर श्वफल्क बहुत दाता—यज्वा—शूर—शास्त्रों का ज्ञाता—बहुत दक्षिणा देने वाला और अतिथियों का प्रिय हुआ था ॥१०९॥ उपमद्गु—मद्गु—मृदुर—आरिमेजय—गिरिरक्ष और उससे यक्ष—शत्रुघ्न—वारि मर्दन—धर्मभृत्—धृष्टधर्म तथा दूसरा गन्धमोच—आवाह और प्रतिवाह तथा वराङ्गना सुन्दरी हुए थे ॥११०-१११॥ अक्रूर से उग्रसेनी में कुल को आनन्दित करने वाले दो पुत्र पैदा हुए थे जिनका नाम देव और अनुपदेव था और वे दोनों देवों के समान थे ॥११२॥ चित्रक के पृथु—विपृथु—अश्वग्रीव—अश्वबाहु—सुपार्श्वक—गवेषण—अरिष्टनेमि—अश्व—सुधर्मा—धर्मभृत्—सुभूमि—बहुभूमि पुत्र उत्पन्न हुए थे । श्रविष्ठा और श्रवणा दो स्त्रियाँ थी ॥११३-११४॥

सत्यकात् काशिदुहिता लेभे सा चतुरः सुतान् ।
वसुदं भजमानञ्च शमीकवलवर्हिषौ ॥११५
वसुदस्य सुतौ वृष्टिर्वृष्टेस्तु तनयोऽभवत् ।
कपोतरोमा तस्याथ रेवतोऽभवदात्मजः ॥११६
तस्यासीत्तुम्बुरसखा विद्वान् पुत्रोऽभवत्किल ।
ख्यायते यस्य नाम्ना स चन्दनोदकदुन्दुभिः ॥११७
तस्माच्चाभिजित पुत्र उत्पन्नस्तु पुनर्वसु ।
अश्वमेधन्तु पुत्रार्थे आजहार नरोत्तम ॥११८
तस्य मध्येऽतिरात्रस्य सदोमध्यात्समुत्थितम् ।
ततस्तु विद्वान् धर्मज्ञो दाता यज्वा पुनर्वसु ॥११९
तस्यापि पुत्रमिथुन बाहुवाणाजित किल ।
आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातौ मतिमताम्वरौ ॥१२०

इमाश्चोदाहरन्त्यत्र श्लोकान् प्रति तमाहुकम् ।
सोपासङ्गानुकर्षाणां सध्वजानां वरूथिनाम् ॥१२१
रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु ।
नासत्यवादी त्वासीत्तु नायज्वा नासहस्रदः ॥१२२
नाशुचिर्नाप्यधर्मात्मा नाविद्वान्न कृशोऽभवत् ।
आहुकस्य धृतिः पुत्र इत्येवमनुशुश्रुम ॥१२३

सत्यक से काशि दुहिता ने चार पुत्रों को प्राप्त किया था जिनके नाम कुकुर-भजमान और शमीक तथा बलबर्हिष थे ॥११५॥ कुकुर का पुत्र वृष्टि नाम वाला हुआ और वृष्टि का पुत्र कपोतरोम हुआ था और उसका पुत्र रैवत हुआ था ॥११६॥ उसके तुम्बुरु सखा परम विद्वान् पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसके नाम से चन्दनोदक दुन्दुभि प्रसिद्ध होता है ॥११७॥ और उससे अभिजित् पुत्र हुआ और पुनर्वसु उत्पन्न हुआ था ? उस नरोत्तम ने पुत्र के लिए अश्वमेध यज्ञ किया था ॥११८॥ उस अतिरात्र के मध्य में सदोमध्य से समुत्थित हुआ था। उससे परम विद्वान्—दान देने वाला—धर्म का ज्ञाता और यज्वा पुनर्वसु हुआ था ॥११९॥ उसके भी पुत्रों का जोड़ा बाहु वाला जित हुआ जोकि आहुक और आहुकि—इन नामों से मानिमानों में परमश्रेष्ठ ख्यात हुए थे ॥१२०॥ यहाँ पर उस आहुक के प्रति ये श्लोक उदाहृत होते हैं। उपासङ्ग अनुकर्षण के सहित तथा ध्वजाओं के सहित वरूथियों के और मेघघोष वाले रथों के दस सहस्र थे। वह असत्यवादी नहीं था वह अयज्वा तथा असहस्रद नहीं था, न वह अशुचि और न अधर्मात्मा ही था, वह अविद्वान् तथा अकृश भी नहीं हुआ था। आहुक का पुत्र धृति हुआ था—यही हम सुनते हैं ॥१२१ १२२-१२३॥

श्वेतेन परिचारेण किशोरप्रतिमान् हयान् ।
अशीतियुक्तनियुतान्याहुकप्रतिमोऽव्रजत् ॥१२४
पूर्वस्यां दिशि नागानां भोजस्य प्रतिरेजिरे ।
रूप्यकाञ्चनकक्षाणां सहस्राण्येकविंशतिः ॥१२५
तावन्त्येव सहस्राणि उत्तरस्यां तथा दिशि ।
भूमिपालस्य भोजस्य उत्तिष्ठेत् किङ्किणी किल ॥१२६

आहुकश्चाहुकान्वाय स्वसार त्वाहुकीन्ददौ ।
आहुकान्धस्य दुहिता द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतु ॥१२७
देवक श्चोग्रसेनश्च देवगर्भसमावुभौ ।
देवकस्य सुता वीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमा. ॥१२८
देवानामपि देवश्च सुदेवो देवरक्षिता ।
तेषा स्वसार सप्तासन् वसुदेवाय ससदौ ॥१२९
वृकदेवोपदेवा च तथान्या देवरक्षिता ।
श्रीदेवा शान्तिदेवा च महादेवा तथापरा ॥१३०॥
सप्तमी देवकी तासा सुनामा चारुदर्शना ।
नवोग्रसेनस्य सुता कसस्तेषान्तु पूर्वज ॥१३१

श्वेत परिचार मे युक्त किशोर प्रतिमा वाले अस्सी की सख्या से युक्त निपुन मन्त्रो को लेकर आहुक प्रतिम जाया करता था ॥१२४॥ पूर्व दिशा मे चांदी और सुवर्ण की कक्षा वाले भोज के नागो की इक्कीस हजार सख्या प्रतिरंजित हुई थी ॥१२५॥ उत्तर दिशा मे भी उतनी ही सख्या थी । भूमि के पालक भोज की किङ्किणी उठती थी ॥१२६॥ आहुक ने आहुकन्ध के लिये आहुकी बहिन को दे दिया था । आहुकान्ध की दुहिता और दो पुत्र हुए थे । देवक और उग्रसेन ये दोनो देवगर्भ के समान थे । देवक के देवो के समान और पुत्रो ने जन्म ग्रहण किया था ॥१२७-१२८॥ देवो के भी देव—सुदेव और देव रक्षित हुए थे । उनके सात बहिनें थीं जोकि वसुदेव के लिए देदी थीं ॥१२९॥ उनके नाम वृकदेवा—उपदेवा—देवरक्षिता—श्रीदेवा—शान्तिदेवा तथा महादेवा एव उनमे सातवी देवकी थी जो सुन्दर नाम वाली और देखने मे बहुत सुन्दर थी । उग्रसेन के नौ पुत्र थे उन सब मे कस सबसे बड़ा था ॥१३०-१३१॥

न्यग्रोधश्च सुनामा च कङ्कशङ्कुश्च भूमयः ।
सुतनु राष्ट्रपालश्च युद्धतुष्ट सुपुष्टिमान् ॥१३२
तेषा स्वसार पञ्चैव कर्मधर्मवती तथा ।
शताङ्क राष्ट्रपाला च सुतनु चैव वराङ्गना ॥१३३

उग्रसेनो महापत्यो विख्यात कुकुरोद्भव ।
कुकुराणामिम वश धारयन्नमितोजसाम् ।
आत्मनो विपुल वश प्रजावाश्च भवेन्नर ॥१३४
भजमानस्य पुत्रस्तु रथिमुख्यो विदूरथ ।
राज्याधिदेव शूरश्च विदुरश्च सुतोऽभवत् ॥१३५
तस्य शूरस्य तु सुता जज्ञिरे बलवत्तरा ।
वातश्चैव निवातश्च शोणित श्वेतवाहन ॥१३६
शमी च गदवर्मा च निदात शक्रशत्रुजित् ।
शमिपुत्र प्रतिक्षिप्त प्रतिक्षिमस्य चात्मज ॥१३७
स्वयम्भोज स्वयम्भोजाद्धृदिक सम्बभूव ह ।
हृदिकस्य सुतास्त्वासन् दश भीमपराक्रमा ॥१३८
कृतवर्मा कृतस्तेषा शतधन्वा तु मध्यम ।
देवाहश्च वनाहश्च भिषग् द्वैतरथश्च य ॥१३९
सुदान्तश्च धियान्तश्च नववान् कनकोद्भव ।
देवार्हस्य सुतो विद्वान् जज्ञ कम्बलबर्हिष ॥१४०
असमौजा सुतस्तस्य सुमहौजाश्च विश्रुत ।
अजातपुत्राय तत प्रददावसमौजसे ।
सुदष्ट्रश्च सुरूपश्च कृष्ण इत्यन्धका स्मृता ॥१४१
अन्धकानामिम वश कीर्त्तयानस्तु नित्यश ।
आत्मनो विपुल वश लभते नात्र सशय ॥१४२

उग्रसेन के नाम ये हैं —न्यग्रोध–सुनाम–कङ्काकु–भूमय–सुतनु–राष्ट्रपाल युद्धतुष्ट और सुपुष्टिमान् ये ॥१३२। उनकी पाँच कम धमवती–शतादू–राष्ट्रपाला–कुह्वा और वराङ्गना ये बहिनें थी ॥१३३॥ कुकुरोद्भव उग्रसेन बहुत अधिक सन्तति वाला विख्यात था । कुकुरो के इस महान् वश को जोकि महान् ओज वालो का वश है धारण एव श्रवण करने वाला मनुष्य अपने बडे वश को धारण करने वाला तथा सन्तति सम्पन्न हुआ करता है ॥१३४॥ भजमान का पुत्र रथियो म मुख्य विदूरथ था जो राज्य का अधिदेव और शूर था । उसका

विदुर पुत्र हुआ था। उस शूर ने अधिक बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनके नाम वात निवात–शोणित–श्वतवाहन–शमी–गदवर्मा–निदात और शक्रशत्रुजित् थे। शमी के पुत्र प्रतिक्षित्र हुआ और प्रतिक्षित्र का आत्मज स्वयम्भोज हुआ तथा स्वयम्भोज स हृदिक पुत्र उत्पन्न हुआ था। हृदिक के भीम के समान पराक्रम वाले दश पुत्र हुए थे ॥१३५ से १३८॥ उनके नाम ये हैं—कृतवर्मा–कृत जाकि उनम मध्यम था—देवाह–वनाह–भिषक्–द्वैतरथ–सुदान्त–धियान्त–नववान्–क्नोद्भव ये नाम हैं। देवाह का पुत्र बड़ा विद्वान् कम्बलबर्हिष नाम वाला हुआ था ॥१३९ १४०॥ उसका पुत्र असमौज और सुमहौजा विश्रुत हुए अपुत्र असमौजस के लिय अज दिये थे। सुदष्ट्र–सुरुप और कृष्ण ये सब अन्धक कहे गये हैं ॥१४१॥ अन्धको के इस वंश का नित्य ही कीर्तन वाला पुरुष अपना बहुत वंश प्राप्त किया करता है—इसम कुछ संशय नहीं है ॥१४२॥

अस्मक्या जनयामास शूरो वै देवमानुषिम् ।
माध्यान्तु जनयामास शूरो वै देवमीढुषम् ॥१४३
माध्यान्तु जज्ञिरे शूराद्भोजाया पुरुषा दश ।
वसुदेवो महाबाहु पूर्वमानकदुन्दुभि ॥१४४
जज्ञे तस्य प्रसूतस्य दुन्दुभि प्राणदद्दिवि ।
आनकानाञ्च सह्लाद सुमहानभवद्दिवि ॥१४५
पपात पुष्पवर्गश्च शूरस्य भवने महत् ।
मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि ॥१४६
यस्यासीत् पुरुषाग्र्यस्य कीर्तिश्चन्द्रमसो यथा ।
देवभागस्ततो जज्ञे ततो देवश्रवा पुन ॥१४७
अनाधृष्टिरडश्चैव नन्दनश्चैव भृञ्जिन ।
श्याम शमीको गण्डूष चतस्रस्तु वराङ्गना ॥१४८
पृथा च श्रुतवदा च श्रुतकीर्ति श्रुतश्रवा ।
राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातर ॥१४९
पृथा दुहितर चक्रे कुन्तिस्ता पाण्डुरावहत् ।
अनपत्याय वृद्धाय कुन्तिभोजाय ता ददौ ॥१५०

शूर ने अश्मकी में देव मानुषी को जन्म दिया था। और मापी में शूरने देवमीढुष को समुत्पन्न किया था ॥१४३॥ मापी में भोजा में शूर से दश पुरुषों ने जन्म ग्रहण किया था। महान् बाहु वाले वसुदेव पहिले आनक दुन्दुभि हुए ॥१४४॥ उनके प्रसूत होने के समय में देवलोक में दुन्दुभि बजाई गई थी और आनकों का बड़ा भारी शब्द दिवि में हुआ था ॥१४५॥ उस समय शूर के भवन में पुष्पों की वर्षा हुई थी। समस्त मनुष्य लोक में रूप में उसके समान कोई भी नहीं था ॥१४६॥ उस पुरुषों में श्रेष्ठ की कीर्त्ति चन्द्रमा के समान थी। इसके पश्चात् देवभाग ने जन्म लिया और फिर देवश्रवा ने जन्म ग्रहण किया था। १४७ मनाहृष्टि कङ्क–नन्दन–भृञ्जिन–श्यामा–शमीक–गण्डूष और चार वराङ्गना जोकि नाम से पृथा–श्रुतवेदा–श्रुतकीर्त्ति–श्रुतश्रवा और राधिदेवी ये पाँच वीर मातायें हुई हैं ॥१४८-१४९॥ दुहिता पृथा कुन्ति को पाण्डु ने ब्याहा था। अनपत्य अर्थात् बिना सन्तति वाले वृद्ध कुन्ति भोज के लिये उसको दे दिया था ॥१५०॥

तस्मात् कुन्तीति विख्याता कुन्तीभोजात्मजा पृथा।
कुरुवीरः पाण्डुमुख्यस्तस्माद्भार्यामविन्दत ॥१५१

पृथा जज्ञे ततः पुत्रान् त्रीनग्निसमतेजसः।
लोकेऽप्रतिरथान् वीरान् शक्रतुल्यपराक्रमान् ॥१५२

धर्माद्युधिष्ठिरं पुत्रं मारुताच्च वृकोदरम्।
इन्द्राद्धनञ्जयश्चैव पृथा पुत्रानजीजनत् ॥१५३॥

माद्रवत्यान्तु जनितावाश्विनाविति विश्रुतम्।
नकुलः सहदेवश्च रूपसत्त्वगुणान्वितौ ॥१५४

जज्ञे च श्रुतदेवाया तनयो वृद्धशर्मणः।
करूषाधिपतिर्वीरो दन्तवक्त्रो महाबलः ॥१५५

कैकेया श्रुतकीर्त्यान्तु जज्ञे सन्तर्दनः पुनः।
चेकितानबृहत्क्षत्रौ तथवान्यौ महाबलौ ॥१५६

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ भ्रातरौ सुमहाबलौ।
श्रुतश्रवाया चैद्यस्तु शिशुपालो बभूव ह ॥१५७

दमघोषस्य राजषः पुत्रो विख्यातपौरुष ।
य पुरासीद्दशग्रीव सवभूतारिमर्दन ॥१५८

इसी कारण से वह कुन्ती—इस नाम से विख्यात हुई थी क्योंकि वह कुन्तिभोज की आत्मजा पृथा थी। कुरुओं में वीर पाण्डुमुख्य ने इससे उसे भार्या के रूप में प्राप्त किया था ॥१५१॥ उससे पृथा ने अग्नि के समान प्रदीप्त तेज वाले तीन पुत्रों को जन्म दिया था जोकि ससार में अप्रतिरथ—वीर और इन्द्र के समान पराक्रम वाले हुए थे ॥१५२॥ पृथा ने धर्म से युधिष्ठिर पुत्र को मारुत से वृकोदर को और इन्द्र से धनञ्जय को इस तरह से पृथा ने पुत्रों को जन्म दिया था ॥१५३॥ माद्रवती में दो अश्विनों—इस नाम से विश्रुत रूप तथा गुण से अन्वित नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए थे ॥१५४॥ और श्रुतदेवा में वृद्धशर्मा का पुत्र करूष का अधिपति—वीर एव महान् बलवाला दन्तवक्त्र उत्पन्न हुआ था ॥१५५॥ कैकेय श्रुत कीर्त्ति में फिर मन्तदर्न उत्पन्न हुआ था। तथा अन्य महान् बल वाले चेक्तिान और बृहत्क्षत्र उत्पन्न हुए थे ॥१५६॥ विन्द और अनुविन्द मत्त मे उत्पन्न होने वाले अर्थात् सबसे छोटे सुमहान् बल वाले दो भाई थे। श्रुतश्रवा में चैद्य शिशुपाल हुआ था ॥१५७॥ यह राजर्षि दमघोष का विख्यात पौरुष वाला पुत्र था जो पहिले शत्रुओं का मर्दन करने वाला दशग्रीव रावण हुआ था ॥१५८॥

यदुश्रवानुजरतस्य रुजकन्योऽनुजस्तथा ।
पत्न्यस्तु वसुदेवस्य त्रयोदश वराङ्गना ॥१५६
पौरवी रोहिणी चैव मदिरा चापरा तथा ।
तथैव भद्रा वैशाखी देवकी सप्तमी तथा ॥१६०
सुगन्धिर्वनराजी च द्वे चान्ये परिचारिके।
रोहिणी पौरवी चैव वाल्मीकस्यात्मजाभवत् ॥१६१
ज्येष्ठा पत्नी महाभागा दयितानकदुन्दुभे ।
ज्येष्ठ लेभे सुत राम सारण निशव तथा ॥१६२
दुर्द्दम दमन शुभ्र पिण्डारनकुशीतकौ ।
चित्रा नाम कुमारीच रोहिण्यष्टौ व्यजायत ॥१६३

पौत्रौ रामस्य जज्ञाते विज्ञातौ निशितोत्मुकौ ।
पार्श्वी च पार्श्वनन्दी च शिशु सत्यधृतिस्तथा ॥१६४
मन्दवाह्योऽथ रामाणगिरिको गिर एव च ।
शुक्लगुल्मेति गुल्मश्च दरिद्रान्तक एव च ॥१६५
कुमार्यश्चापि पञ्चाद्या नामतस्ता निबोधत ।
अर्चिष्मती सुनन्दा च सुरसा सुवचास्तथा ॥१६६
तथा शतबला चैव सारणस्य सुतास्त्विमा ।
भद्राश्वो भद्रगुप्तिश्च भद्रविघ्नस्तथैव च ॥१६७
भद्राबाहुर्भद्ररथो भद्रकल्पस्तथैव च ।
सुपार्श्वकः कीर्त्तिमाश्च रोहिताश्वश्च भद्रज ॥१६८
दुर्म्मदश्चाभिभूतश्च रोहिण्या कुलजा स्मृता ।
नन्दोपनन्दो मित्रश्च कुक्षिमित्रस्तथाचल ॥१६९
चित्रोपचित्रे कन्ये च स्थित पुष्टिरथापर ।
मदिराया सुता ह्येते सुदेवोऽथ विजज्ञिरे ॥१७०

उसका अनुज यदुश्रवा था तथा अनुज रुजकन्या हुआ था। वसुदेव की पर अङ्ग वाली तरह पत्नियाँ थी ॥१५९॥ उन पत्नियों के नाम इस प्रकार हैं–पौरवी–रोहिणी और अन्य अमरा तथा मदिरा थी। उसी प्रकार से भद्रा–वैशाखी–सातवी देवकी थी ॥१६०॥ सुगन्धी–वनराजी और दो अन्य परिचारिकायें थी। रोहिणी और पौरवी वाल्मीक की आत्मजा थी ॥१६१॥ आनक दुन्दुभि की ज्येष्ठ पत्नी महाभाग वाली दयिता थी। उसने ज्येष्ठ पुत्र राम को तथा शारण और निशठ को प्राप्त किया था ॥१६२॥ दुर्दम–दमन–शुभ्र–पिण्डारक और कुतीतक और कुमारीचित्रा का इस तरह रोहिणी ने आठ को उत्पन्न किया था ॥१६३॥ राम के दो पौत्र प्रसिद्ध निशित और उत्सुक नाम वाले उत्पन्न हुए थे। पार्श्वी–पार्श्वनन्दी–शिशु सत्यधृति–मन्दवाह्य–रामाण–गिरिक और गिर–शुक्लगुल्मा–और गुल्म दरिद्रान्तक ये पुत्र तथा पाँचाद्य कुमारियाँ भी उत्पन्न हुई थी जिनको नाम से समझ लो। अर्चिष्मती–सुनन्दा–सुरसा–सुवचा तथा शतबला ये सारण की पुत्रियाँ थीं। भद्राश्व–भद्रगुप्ति–तथा भद्रविघ्न–भद्र-

बाहु–भद्ररथ–मद्रकल्प–सुपार्श्व–कीर्तिमान् और रोहिताश्व और भद्र–दुमद–और अभिभूत ये सब रोहिणी के वुनज कहे गये हैं। नन्द–उपनन्द–मित्र–कुमित्र–तथा अचल–चित्रा और उपचित्रा दो कन्यायें–स्थित और दूसरा पुष्टि ये पुत्र मदिरा के उत्पन्न हुए थे इसके अनन्तर सुदव हुआ था ॥१६४ १६५-१६६-॥१६७–१६८–१६९–१७०॥

उपविम्योऽथ विम्वश्च सत्त्वदन्तमहौजसौ।
चत्वार एते विख्याता भद्रापुत्रा महाबलाः ॥१७१
वैशाख्या समदाच्छौरि पुत्र कौशिकमुत्तमम्।
देवक्या जज्ञिरे शौरि सुषेणं कीर्तिमानपि ॥१७२
तदयो भद्रसेनश्च यजुदायश्च पञ्चम।
षष्ठो भद्रविदेकश्च कंस सर्वाञ्जघान तान् ॥१७३
अथ तस्यामवस्थायामायुष्मान् सबभूव ह।
लोक नाथः पुनर्विष्णु पूर्वकृष्ण प्रजापति ॥१७४
अनुजाताऽभवत् कृष्णा सुभद्रा भद्रभाषिणी।
कृष्णा सुभद्रेति पुनर्व्याख्याता वृष्णिनन्दिनी ॥१७५
सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत।
वसुदेवस्य भार्यासु महाभागासु सप्तसु।
ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा नामतस्तान्निबोधत ॥१७६
भ्राताऽस्य सह देवाया शूरो जनभयासत।
शार्ङ्ग देवाजनत्सम्यु शौरी जन्न कुलोद्वहम् ॥१७७
उपसङ्ग वसुश्चापि तनयौ देवरक्षितौ।
एव दश सुतास्तस्य कंसस्तानप्यघातयत् ॥१७८

उपविम्व–विम्व–सत्त्वदन्त–महोजा ये चार पुत्र जो महान् बल वाले थे के सुत कहे गये थे ॥१७१॥ वैशाखी में समद से शौरनि ने उत्तम कौशिक को उत्पन्न किया था। देवकी में शौरि–सुषेण–कीर्तिमान्–तदय–भद्रसेन–उ– पाँचवा तथा छठा भद्रविदेक था। कंस ने उन सभी पुत्रों को मार दिया था ॥१७२ १७३॥ इसके अनन्तर उस अवस्था में आयुष्मान् हुआ था। लोक-

नाथ–फिर विष्णु–पूर्व कृष्ण और प्रजापति हुए ॥१७४॥ पीछे उत्पन्न होने वाली कृष्णा–सुभद्रा–भद्रभाषिणी–कृष्णा–सुभद्रा वे फिर व्याख्यात वृष्णि नन्दिनी थी ॥१७५॥ सुभद्रा में पार्थ (अर्जुन) से रथी अभिमन्यु उत्पन्न हुआ था। वसुदेवकी महान् भाग वाली सात भार्याओं में जो पुत्र उत्पन्न हुए वे उन्हें अब नाम से समझ लो ॥१७६॥ इसलिये इसके सहदेवा में शूर प्रभयासख उत्पन्न हुआ था। शौरी ने कुल का उद्वह करने वाला देवाजनन्तम् को जन्म दिया था ॥१७७॥ उपसङ्ग और वसु भी दो तनय (पुत्र) थे जो देवों के द्वारा रक्षित हुए थे। इस प्रकार से उसके दश पुत्र थे। कंस ने उनको भी मार गिराया ॥१७८॥

विजय रोचनश्चैव वर्द्धमान तथैव च।
एतान् सर्व्वान् महाभागानुउपदेवा व्यजायत ॥१७९
स्वगाहव महात्मान वृर देवी रजायत।
श्रागाह्री च स्वसा चैव सुरूपा शिशिरायिणी ॥१८०
सप्तम देवकीपुत्र सुनासा सुपुवे भुवम्।
गवेषण महाभाग सङ्ग्राम चित्र योधिनम् ॥१८१
श्राद्धदेव पुरा येन वने विरचिता द्विजा।
शैब्यायामदधच्छौरिः पुत्र कौशिममव्ययम् ॥१८२
सुगन्धी वनराजी च शौरेरास्ता परिग्रह।
पुण्ड्रश्च कपिलश्चैव वसुदेवात्मजौ हि तौ।
तयो राजाऽभवत् पुण्ड्रः कपिलस्तु वन ययौ ॥१८३
तस्या समभवद्वीरो वसुदेवात्मजो वली।
राजा नाम नियादोऽसौ प्रथम स धनुर्द्धरः ॥१८४
विख्यातो देवरातस्य महाभाग सुताऽभवत्।
पण्डितानां मत प्राहुर्देवश्रवसमुद्भवम् ॥१८५
अश्मक्या लभते पुत्रमनाधृष्टि यशस्विनम्।
निवर्त्त शत्रुशत्रुघ्न श्राद्धदेव महाबलम् ॥१८६

उपदेवा ने विजय–रोचन–वर्द्धमान इन सबको महान् भाग वालों ...

बाहु–भद्ररथ–भद्रवल्क–सुपार्श्व क–कीर्त्तिमान् और रोहिताश्व और भद्रज-दुर्मद–और अभिभूत ये सब रोहिणी के कुलज कहे गये हैं। नन्द–उपनन्द–मित्र–कुमित्र–तथा बचल–चित्रा और उपचित्रा दो कन्यायें–स्थित और दूसरा पुष्टि ये पुत्र मदिरा के उत्पन्न हुए थे इसके अनन्तर सुदव हुआ था ॥१६४-१६५-१६६-॥१६७–१६८–१६९–१७०॥

उपविम्वोऽथ विम्बश्च सत्त्वदन्तमहौजसौ ।
चत्वार एते विख्याता भद्रापुत्रा महाबलाः ॥१७१
वैशाख्या समदाच्छौरि पुत्र कौशिकमुत्तमम् ।
देवक्या जज्ञिरे शौरि सुषेण कीर्तिमानपि ॥१७२
उदयो भद्रसेनश्च यजुदायश्च पञ्चम ।
षष्ठो भद्रविदेकश्च कंस. सर्वाञ्जघान तान् ॥१७३
अथ तस्यामवस्थायामायुष्मान् सवभूव ह ।
लोक नाथः पुनर्विष्णु पूर्वकृष्ण प्रजापतिः॥१७४
अनुजाताऽभवत् कृष्णा सुभद्रा भद्रभाषिणी ।
कृष्णा सुभद्रे ति पुनर्व्याख्याता वृष्णिनन्दिनी ॥१७५
सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत ।
वसुदेवस्य भार्यासु महाभागासु सप्तसु ।
ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा नामतस्तान्निबोधत ॥१७६
अताऽस्य सह देवाया शूरो जज्ञेऽभयासख ।
शार्ङ्गदेवाजनत्तम्बु शौरी जज्ञे कुलोद्वहम् ॥१७७
उपसङ्ग वसुश्चापि तनयौ देवरक्षितौ ।
एव दश सुतास्तस्य कसस्तानप्यघातयत् ॥१७८

उपविम्द–विम्ब–सत्त्वदन्त–महोजा य चार पुत्र जो महान् बल वाले थे के सुत कहे गये थे ॥१७१॥ वैशाखी मे समद से शौरनि ने उत्तम कौशिक को उत्पन्न किया था। देवकी म शौरि–सुषेण–कीर्तिमान्–उदय–भद्रसेन–, पाँचवाँ तथा छटा भद्रविदेक था। कस न उन सभी पुत्रो को मार दिया ॥१७२ १७३॥ इसके अनन्तर उस अवस्था मे आयुष्मान् हुआ था। लोक-

देवक्यां वसुदेवेन तपसा पुष्करेक्षणः ।
चतुर्बाहुः स विज्ञयो दिव्यरूपः श्रियान्वितः ॥१६३
प्रकाशो भगवान् योगी कृष्णो मानुषमागतः ।
अव्यक्तोऽव्यक्तलिङ्गस्थः स एव भगवान् प्रभुः ॥ १६४

क्योंकि ऐसा श्रुत है कि वाह्वदेव नियम के पहिले हुआ था। महान् वीर्य वाला एकलव्य निपाने के द्वारा परिवर्द्धित किया गया था ॥१८७॥ बिना सन्तति वाले गण्डूष के लिये सन्तुष्ट कृष्ण ने दोनों पुत्र दे दिये थे। ये दोनों चारु देष्ण और साम्ब थे जो कृतास्त्र एवं शस्त्र लक्षण वाले थे ॥१८८॥ सन्तिज और सनिमाल वत्सावलि कनक ने अपने दो पुत्रों को प्रतापवान् वसुदेव ने पुत्र हीन के लिए दे दिया था और सौरि ने वीर गौरि और कौशिक पुत्र का दे दिया था ॥१८६॥ तथा—बोधनु विरजा—श्याम और सृञ्जिम हुए उनमें श्याम सन्तति हीन था सो वह श्यामक वन में चला गया था। भोजत्व की जुगुप्सा करता हुआ उसने राजर्षि होने का पद प्राप्त कर लिया था ॥१६०॥ जो इस कृष्ण के जन्म का नियत व्रत वाला होते हुए पढ़ता है और किसी ब्राह्मण को इसे श्रवण कराता है वह महान् सुख को प्राप्त किया करता है ॥१६१॥ महान् तेज वाले देवों के भी देव प्रजापति कृष्ण पहिले विहार करने के लिये प्रभु नारायण ने मनुष्यों में जन्म ग्रहण किया था ॥१६२॥ वसुदेव से देवकी में तप के द्वारा पुष्कर के समान सुन्दर नेत्रों वाला—श्री से समन्वित—चार भुजाओं से युक्त तथा दिव्य रूपधारी वह विज्ञेय है ॥१६३॥ प्रकाश योगी भगवान् कृष्ण मनुष्य के स्वरूप में प्राप्त होगये थे। वह प्रभु भगवान् ही जो अव्यक्त हैं और अव्यक्त चिह्नों में स्थित हैं मानुष रूप में आये थे ॥१६४॥

नारायणो यतश्चात्र प्रभवः चाव्ययो हि सः ।
देवो नारायणो भूत्वा हरिरासीत्सनातनः ॥१६५
योऽसृजच्चादिपुरुषं पुरा चक्रे प्रजापतिम् ।
अदितेरपि पुत्रत्वमेत्य यादवनन्दन ।
देवो विष्णुरिति ख्यातः शक्रादवरजोऽभवत् ॥१६६

उत्पन्न किया था ॥१७६॥ वृकदेवी ने महान् आत्मा वाले स्वगाह्व को उत्पन्न किया था। श्राभाही एक स्वसा भी थी जो सुन्दर रूप वाली शिशिरायणी थी ॥१८०॥ सुनामा ने सातवें देवकी के पुत्र को मुव को प्रसूत किया था। गवेषण महाभाग और संग्राम में चित्रयोधी और श्राद्धदेव को उत्पन्न किया था जिसने कि पहिले वन में द्विज बनाये थे। वैंश्या में शौरि ने ग्रत्यय कौशिक पुत्र को दिया था ॥१८१-१८२॥ सुगन्धि और वनराजी ये शौरि का परिग्रह था। पुण्ड्र और कपिल ये दो वसुदेव के पुत्र थे। उन दोनों में पुण्ड्र तो राजा हुआ था और कपिल वन में चला गया था ॥१८३॥ उसमें वीर वसुदेव का पुत्र हुआ था जो बहुत बल वाला था। यह निषाद नाम वाला राजा था जो प्रथम धनुर्धर हुआ था ॥१८४॥ देवरात का महाभाग विख्यात पुत्र हुआ था। देवश्रव में समुद्भूव वाला पण्डितों का मत कहते हैं ॥१८५॥ निवस्त ने असमञ्जा में मना हृष्टि-यशस्विनी-शत्रु शत्रुओं के नायक एवं महा बलवान् श्राद्धदेव पुत्र को प्राप्त किया था ॥१८६॥

अजायत श्राद्धदेवो निषधादिर्यत श्रुत ।
एकलव्यो महावीर्यो निषादैः परिवर्धित ॥१८७
गण्डूषायानपत्याय कृष्णस्तुष्टोऽददत् सुतौ ।
चारुदेष्णश्च साम्बश्च कृतास्त्री शस्त्रलक्षणौ ॥१८८
तन्तिजस्तन्तिमालश्च स्वपुत्रौ कनकस्य तु ।
वत्सावनेस्त्वपुत्राय वसुदेव प्रतापवान् ।
सौतिर्ददौ सुत वीर शौरिं कौशिकमेव च ॥१८९
तपाश्च कोधनु श्चैव विरजा श्यामसृञ्जिमौ ।
अनपत्योऽभवच्छ्याम श्याभवस्तु वन ययौ ।
जुगुप्समानो भोजत्व राजर्षित्वमवाप्नुयात् ॥१९०
य इद जन्म कृष्णस्य पठते नियतव्रत ।
श्रावयेद्ब्राह्मणश्चापि सुमहत्सुखमाप्नुयात् ॥१९१
देवदेवो महातेजा पूर्वं कृष्ण प्रजापतिः ।
विहारार्थं मनुष्येषु जज्ञे नारायण प्रभु ॥१९२

देवक्या वसुदेवेन तपसा पुष्करेक्षण ।
चतुर्बाहु. स विज्ञेयो दिव्यरूप: श्रियान्वित: ॥१६३
प्रकाशो भगवान् योगी कृष्णो मानुषमागत. ।
अव्यक्तोऽव्यक्तलिङ्गस्थ. स एव भगवान् प्रभु ॥ १६४

क्योंकि ऐसा सुना है कि याज्ञदेव निषध के पहिले हुआ था। महान् वीर्य वाला एकलव्य निषादों के द्वारा परिवर्द्धित किया गया था ॥१८७॥ बिना सन्तति वाले गरुड़प के लिये सन्तुष्ट कृष्ण ने दोनों पुत्र दे दिये थे। वे दोनों चारु देष्ण और साम्ब थे जो कृतास्त्र एवं शस्त्र लक्षण वाले थे ॥१८८॥ सन्ति और सन्निमाल वस्तावान बनत ने अपने दो पुत्रों को प्रतापवान् वसुदेव ने पुत्र हीन के लिए दे दिया था और सौरि ने वीर सौरि और कौशिक पुत्र को दे दिया था ॥१८९॥ तथा—कोशनु विरजा—श्याम और सृञ्जिम हुए उनमें श्याम सन्तति हीन था सो वह श्यामत वन में चला गया था। सोऽद्य की जुगुप्सा करता हुआ उसने राजर्षि होने का पद प्राप्त कर लिया था ॥१९०॥ जो इस कृष्ण के जन्म को नियत प्रन वाला होते हुए पढ़ता है और किसी ब्राह्मण को इसे श्रवण कराता है वह महान् सुख को प्राप्त किया करता है ॥१९१॥ महान् तेज वाले देवों के भी देव प्रजापति कृष्ण पहिले विहार करने के लिये प्रभु नारायण ने मनुष्यों में जन्म ग्रहण किया था ॥१९२॥ वसुदेव से देवकी में तप के द्वारा पुष्कर के समान सुन्दर नत्रों वाला—श्री से समन्वित—चार भुजाओं से युक्त तथा दिव्य रूपधारी वह विज्ञेय है ॥१९३॥ प्रकाश, योगी, भगवान् कृष्ण मनुष्य के स्वरूप में प्राप्त होगये थे। वह प्रभु भगवान् ही जो अव्यक्त हैं और अव्यक्त लिङ्गों में स्थित हैं, मानुष रूप में आये थे ॥१९४॥

नारायणो यनश्चक्र प्रभव चाव्ययो हि स ।
देवो नारायणो भूत्वा हरिरासीत्सनातन ॥१९५
योऽसृजद्वादिपुरुष पुरा चक्रे प्रजापतिम् ।
अदितेरपि पुत्रत्वमेत्य यादवनन्दनः ।
देवो विष्णुरिति ख्यात. शक्रादवरजोऽभवत् ॥१९६

प्रसादज यस्य विभोरदित्या पुत्रकारणम् ।
वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवरक्षसाम् ॥१६७
ययातिवंशजस्याथ वसुदेवस्य धीमत ।
कुल पुण्य यत कर्म भेजे नारायण प्रभु ॥१६८
सागरा समकम्पन्त चेलुश्च धरणीधरा ।
जज्वलुश्चाग्निहोत्राणि जायमाने जनार्दने ॥१६६
शिवाश्च प्रवबुर्वाता प्रशान्तिमभवद्रज ।
ज्योतींष्यत्यधिक रेजुर्जायमाने जनार्दने ॥ २००
अभिजिन्नाम नक्षत्र जयन्ती नाम शर्वरी ।
मुहूर्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दन ॥२०१
अव्यक्त शाश्वत कृष्णो हरिर्नारायण प्रभु ।
जायते स्मैव भगवान् नयनैर्मोहयन् प्रजा ॥२०२

क्योंकि अव्यय नारायण ने प्रभव किया अर्थात् जन्म ग्रहण किया था देवनारायण होकर सनातन हरि हुए थे ॥१६५। जिसने पहिले आदि पुरुष प्रजापति का सृजन किया था वह यादव नन्दन अदिति के भी पुत्र के स्वरूप को प्राप्त कर देव विष्णु नाम से प्रसिद्ध हुए थे और इन्द्र के छोटे भाई बन गये थे ॥१६६॥ जिस विभु के अदिति के पुत्र होने का कारण केवल प्रसाद ही है। क्योंकि देवों के शत्रु दैत्य–दानव और राक्षसों के वध करने के लिये ही हुआ था ॥१६७॥ राजा ययाति के वश म ज म लेने वाले धीमान् वसुदेव का कुल बहुत पुण्य शाली है और पवित्र है जिसमें कि प्रभु नारायण ने जन्म ग्रहण कर कर्म किया था ॥१६८॥ भगवान् जनार्दन के उत्पन्न होने के समय में समस्त सागर कम्पमान होगये थे और सब पवन चलायमान होगये थे और चारों ओर अग्नि-ज्वलित होगये थे ॥१६६॥ कल्याण कर वायु बहन करने लगी रज ने ... प्राप्त करली थी भगवान् जनार्दन के जायमान होने पर ज्योतियाँ अत्यरूप से प्रकाश वाली होकर शोभित हो रही थी ॥२००॥ उस समय में अभिजित् नाम वाला नक्षत्र था—जयन्ती नाम की शर्वरी थी और विजय नाम वाला मुहूर्त था जिस समय में भगवान् जनार्दन ने अपना जन्म ग्रहण किया

था ॥२०१॥ अच्युत-शाश्वत-प्रभु नारायण हरि श्रीकृष्ण भगवान् नेत्रों के द्वारा प्रजा को मुग्ध करते हुए उत्पन्न हुए थे ॥२०२॥

आकाशात् पुष्पवृष्टीश्च ववर्ष त्रिदशेश्वर ।
गीर्भिर्मङ्गलयुक्ताभि स्तुवन्तो मधुसूदनम् ।
महर्षय सगन्धर्वा उपतस्थु सहस्रश ॥२०३
वसुदेवस्तु त रात्रौ जात पुत्रमधोक्षजम् ।
श्रीवत्सलक्षण दृष्ट्वा दिवि दिव्यं सुलक्षणं ।
उवाच वसुदेव स्व रूप सहार वै प्रभो ॥२०४
भीतोऽह कसतस्तात एतदेव ब्रवाम्यहम् ।
मम पुत्रा हतास्तेन ज्येष्ठास्तेऽद्भुतदर्शना ॥२०५
वसुदेववच श्रुत्वा रूप स हृतवान् प्रभु ।
अनुज्ञात पिता त्वेन नन्दगोपगृह गत ।
उग्रसेनमते तिष्ठन् यशोदायं तदा ददौ ॥२०६
तुल्यकालन्तु गर्भिण्यौ यशोदा देवकी तथा ।
यशोदा नन्दगोपस्य पत्नी सा नन्दगोपते ॥२०७

त्रिदशेश्वरों ने आकाश से पुष्पों की वर्षा की थी और भगवान् मधुसूदन की मङ्गलमयी वाणियों के द्वारा स्तुति की थी। उस समय सहस्रों ही महर्षिगण-गन्धर्व लोग वहाँ पर स्तवन गान करने के लिये उपस्थित होगये थे ॥२०३॥ वसुदेव ने तो रात्रि के समय में भगवान् अधोक्षज को पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए देखकर जोकि श्रीवत्स के चिह्न से युक्त और समस्त अन्य दिव्य लक्षणों से अङ्कित थे वसुदेवजी ने कहा—हे प्रभो! इस समय आप इस अपने स्वरूप का संहरण करिये ।२०४। हे तात! मैं राजा कंस से भयभीत हो रहा हूँ यही कारण है कि मैं इस समय आपसे यह निवेदन कर रहा हूँ। इस कंस ने अद्भुत दर्शन वाले मेरे आपसे ज्येष्ठ पुत्रों को मार डाला है ॥२०५॥ वसुदेव के इस विनिवेदित वचन को सुनकर भगवान् ने अपने उस स्वरूप का संवरण कर लिया था। उनके द्वारा पिता वसुदेव अनुज्ञात होकर इनको लेकर नन्दगोप के गृह पर चले गये थे। उग्रसेन के मत में रहते हुए उस समय उन्हें यशोदा के

लिये दे दिया था ॥२०६॥ यशोदा और देवकी दोनो ही एक ही समय में गर्भिणी हुई थी। वह यशोदा गोपति नन्द की पत्नी थी ॥२०७॥

यामेव रजनी कृष्णो जज्ञे वृष्णिकुलप्रभु ।
तामेव रजनी कन्या यशोदापि व्यजायत ॥२०८
त जात रक्षमाणस्तु वसुदेवो महायशा ।
प्रादात् पुत्र यशोदायै कन्या तु जगृहे स्वयम् ॥२०९
दत्त्वैन नन्दगोपस्य रक्ष मामिति चाब्रवीत् ।
सुतस्त सर्वकल्याणो यादवाना भविष्यति ।
अय स गर्भो देवक्या अस्मत्क्लेशान् हनिष्यति ॥२१०
उग्रसनात्मजायाश्च कन्यामानकदुन्दुभे ।
निवेदयामास तदा कन्येति शुभलक्षणा ॥२११
स्वसाया तनय कसो जात नवावधारयत् ।
अथ तामपि दुष्टात्मा ह्युत्ससर्ज मुदान्वित ॥२१२
हता वै या यदा कन्या जपत्येव वृथामति ।
कन्या सा ववृधे तत्र वृष्णिसद्मनि पूजिता ॥२१३
पुत्रवत्परिपाल्यन्ती देवी देवान् यथा तदा ।
तामेव विधिनोत्पन्नामाहु कन्या प्रजापतिम् ॥२१४
एकादशा तु जज्ञे व रक्षार्थ केशवस्य ह ।
ता वै सर्वे सुमनस पूजयिष्यन्ति यादवा ।
देवदेवो दिव्यवपु कृष्ण सरक्षितोऽनया ॥२१५

वृष्णि कुल के स्वामी जिस रात्रि म उत्पन्न हुए थे उसी रात म यशोदा ने भी एक कन्या को जन्म दिया था ॥२०८॥ उन समुत्पन्न श्रीकृष्ण बालक की रक्षा करते हुए वसुदेवजी न जिनका महान् यश था वह बाल कृष्ण पुत्र तो श्री यशोदा को द दिया था और उस यशोदा के गर्भ स प्रसूत कन्या को स्वय ग्रहण कर लिया था ॥२०९॥ इस बालकृष्ण बालक को नन्दगोप को देकर वसुदेवजी ने कहा—मेरी रक्षा करिये। तुम्हारा यह पुत्र समस्त कल्याणों का करने वाला है और यादवों का मङ्गल करनेवाला होगा यह देवकी का वह गर्भ है जो

समस्त हमारे बलेशों का हनन कर देगा ॥२१०॥ और उग्रसेन की आत्मजा देवकी को आनक दुन्दुभि ने वह कन्या लाकर दे दी थी और उस समय में वह कन्या शुभ लक्षण वाली उत्पन्न हुई है—ऐसा ज्ञात कराया गया था ॥२११॥ कंस ने अपनी बहिन के पुत्र हुआ है—यह निश्चय नहीं किया था। इसके अनन्तर उस दुरात्मा ने मुदान्वित होते हुए उसको भी उत्सृष्ट कर दिया था। जिस समय में जो कन्या हत हुई वह वृथा बुद्धि वाला मन में विचार करता है कि वृष्णि के घर में पूजित वह कन्या बड़ी हुई है ॥२१२-२१३॥ उस समय देवों की भाँति देव पुत्र के समान परिपालन करते हुए विधि के द्वारा उत्पन्न कन्या को प्रजापति ने बोले ॥२१४॥ यह ग्यारहवीं केशव की रक्षा के लिये उत्पन्न हुई है। उसको फिर सभी सुमनस यादव पूजेंगे कि देवों के देव कृष्ण इसके द्वारा रक्षित हुए हैं ॥२१५॥

किमर्थं वसुदेवस्य भोज कंसो नराधिप ।
जघान पुत्रान् बालान् वै तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥२१६
शृणुध्वं वै यथा कंस पुत्रानानकदुन्दुभे ।
जाताज्ञाताञ्छिशून् सर्वान् निष्पिपेष वृथामतिः ॥२१७
भयाद्यथा महाबाहुर्जातः कृष्णो विवासितः ।
तथा च गोषु गोविन्द संवृद्धः पुरुषोत्तम ॥२१८
उक्तं हि किल देवक्या वसुदेवस्य धीमतः ।
सारथ्यं कृतवान् कंसो युवराजस्तदाऽभवत् ॥२१९
ततोऽन्तरिक्षे वागासीद्दिव्या भूतस्य कस्यचित् ।
कंसो यथा सदा भीतः पुष्कला लोकसाक्षिणी ॥२२०
यामेतां वहसे कंस रथेन परस्काररणात् ।
अस्या यः सप्तमो गर्भः स ते मृत्युर्भविष्यति ॥२२१
तां श्रुत्वा व्यथितो वाणीं तदा कंसो वृथामतिः ।
निष्कृष्य खड्गं तां कन्यां हन्तुकामोऽभवत्तदा ॥२२२
तमुवाच महाबाहुर्वसुदेवः प्रतापवान् ।
उग्रसेनात्मजं कंसं सौहृदात्प्रणयेन च ॥२२३

ऋषियों ने कहा—नरों के स्वामी भोज कंस ने किस लिये वसुदेव के बालक पुत्रों को मार डाला था—यह आप पूरी तरह से व्याख्या करके हम समझाने के योग्य होते हैं ॥२१६॥ श्री सूतजी बोले—सुनो, जिस तरह से वृथा बुद्धि वाले कंस ने आनक दुन्दुभि के पैदा होने वाले सभी शिशुओं को निष्पिष्ट कर दिया था ॥२१७॥ जिस तरह क्रम से महाबाहु कृष्ण उत्पन्न होते हुए ही विवासित कर दिये गये थे अर्थात् अन्य स्थान गोकुल में भेज दिये गये थे। और उसी प्रकार से गोविन्द पुरुषोत्तम वहाँ गौओं में सवर्धित हुए थे ॥२१८॥ देवकी और धीमान् वसुदेव के यह कंस सारथि का काम करता था उस समय में यह युवराज ही था—ऐसा कहा गया है ॥२१९॥ उस समय में किसी प्राणी की आकाश में दिव्य वाणी हुई थी जिसने सदा भयभीत रहा करता था क्योंकि वह समस्त लोक की साक्षी पुष्कल वाणी हुई थी ॥२२०॥ आकाश में होने वाली वाणी यह थी हे कंस ! पर कारण से जिसको तू रथ के द्वारा वहन कर रहा है अर्थात् रथ में बिठा कर ले जा रहा है इसका जो सातवाँ गर्भ होगा वह तेरा मृत्यु होगा अर्थात् वही तुझे मारने वाला होगा ॥२२१॥ उस आकाश में होने वाली दिव्य वाणी को सुनकर वह कंस बहुत ही व्यथित हुआ था क्योंकि वह वृथा बुद्धि वाला उस समय में था। उसने अपना खड्ग निकाल कर उस समय में उसके मार देने की इच्छा की थी ॥२२२॥ उस समय में महाबाहु प्रतापी वसुदेव ने उससे कहा और उस उग्रसेन के पुत्र कंस से बड़े ही सौहार्द तथा प्रणय का प्रदर्शन करते हुए निवेदन किया था ॥२२३॥

न स्त्रियं क्षत्रियो जातु हन्तुमर्हति कश्चन ।
उपाय परिदृष्टोऽत्र मया यादवनन्दन ॥२२४
योऽस्या भविष्यति गर्भः सप्तमः पृथिवी पते ।
तमहन्ते प्रयच्छामि तत्र कुर्य्या यथाक्रमम् ॥२२५
त्वं त्विदानीं यथेष्टत्वं वर्तेथा भूरिदक्षिण ।
सर्वानस्यास्तु वै गर्भान् सत्य नेष्यामि ते वशम् ॥२२६
एवं नरश्रेष्ठ वाणी नरामिथ्या भविष्यति ।
एवमुक्ताऽनुनीतः स जग्राह तनयास्तदा ॥२२७

वसुदेवश्च तां भार्य्यामवाप्य मुदितोऽभवत् ।
कंसश्चास्यावधीत् पुत्रान् पापकर्म्मा वृथामतिः ॥२२८
क एष वसुदेवश्च देवकी च यशस्विनी ।
नन्दगोपस्तु कस्त्वेष यशोदा च महायशा ।
यो विष्णु जनयामास या चैनं चाभ्यवर्द्धयत् ॥२२९

हे यादव नन्दन ! कोई भी क्षत्रिय कभी भी किसी स्त्री को मार देने के योग्य नहीं होता है। इस भय के जोकि तुम्हारे हृदय में उत्पन्न होगया है मैंने उसके निवारण का उपाय भली भाँति देख लिया है ॥२२४॥ हे पृथिवी के पति ! इसका जो सातवाँ गर्भ होगा उसको मैं आपको देदूँगा। उसमें आप यथाक्रम कर ॥२२५॥ हे भूरि दक्षिण ! इस समय आप जैसा चाहिए वैसा ही व्यवहार करें। इसके सभी गर्भों को आपके वश में प्राप्त कर दूँगा ॥२२६॥ हे नर श्रेष्ठ ! इस प्रकार से यह वाणी मिथ्या नहीं होगी। इस तरह अनुनय किये हुए उसने सब पुत्रों को ग्रहण कर लिया था ॥२२७। और वसुदेव तो उस अपनी भार्या को प्राप्त कर बहुत प्रसन्न हुए। और कंस ने जोकि पाप कर्म करने वाला तथा वृथा बुद्धि से युक्त था, इसके पुत्रों को मार डाला था ।२२८। ऋषियों ने कहा—यह वसुदेव कौन था और यशस्विनी देवकी कौन थी, नन्द-गोप कौन था तथा महान् यशवाली यह यशोदा कौन थी ? जिसने विष्णु को उत्पन्न किया था और जिसने इनका पूर्ण रूप से अभिवर्द्धन किया था ॥२२९॥

पुरुषाः कश्यपस्यासन्नदितिस्तु स्त्रियास्तथा ।
अथ कामान् महाबाहुर्देवक्या समवर्द्धयत् ॥२३०
अचरत् स महीं देव प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ।
मोहयन् सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया ॥२३१
नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले स्वयम् ।
कर्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ॥२३२
आहृता रुक्मिणी कन्या सत्या नग्नजितस्तदा ।
सात्राजिती सत्यभामा जाम्बवत्यपि रोहिणी ॥२३३

ऋषियों ने कहा—नरों के स्वामी भोज कंस ने किस लिये वसुदेव के बालक पुत्रों को मार डाला था—यह आप पूरी तरह से व्याख्या करके हमें समझाने के योग्य होते हैं ॥२१६॥ श्री सूतजी बोले—सुनो, जिस तरह से वृथा बुद्धि वाले कंस ने आनक दुन्दुभि के पैदा होने वाले सभी शिशुओं को निष्पिष्ट कर दिया था ॥२१७॥ जिस तरह भय से महाबाहु कृष्ण उत्पन्न होते हुए ही विवासित कर दिये गये थे अर्थात् अन्य स्थान गोकुल में भेज दिये गये थे। और उसी प्रकार से गोविन्द पुरुषोत्तम वहाँ गौओं में संवर्धित हुए थे ॥२१८॥ देवकी और धीमान् वसुदेव के यह कंस सारथि का काम करता था उस समय में यह युवराज ही था—ऐसा कहा गया है ॥२१९॥ उस समय में किसी प्राणी की आकाश में दिव्य वाणी हुई थी जिससे सदा भयभीत रहा करता था क्योंकि वह समस्त लोक की साक्षी सुव्यक्त वाणी हुई थी ॥२२०॥ आकाश में होने वाली वाणी यह थी हे कंस ! पर कारण से जिसको तू रथ के द्वारा वहन कर रहा है अर्थात् रथ में बिठा कर ले जा रहा है इसका जो सातवाँ गर्भ होगा वह तेरा मृत्यु होगा अर्थात् वही तुझे मारने वाला होगा ॥२२१॥ उस आकाश में होने वाली दिव्य वाणी को सुनकर वह कंस बहुत ही व्यथित हुआ था क्योंकि वह वृथा बुद्धि वाला उस समय में था। उसने अपना खड्ग निकाल कर उस समय में उसके मार देने की इच्छा की थी ॥२२२॥ उस समय में महाबाहु प्रतापी वसुदेव ने उससे कहा और उस उग्रसेन के पुत्र कंस से बड़े ही सौहार्द तथा प्रणय का प्रदर्शन करते हुए निवेदन किया था ॥२२३॥

न स्त्रियं क्षत्रियो जातु हन्तुमर्हति कश्चन ।
उपायः परिदृष्टोऽत्र मया यादवनन्दन ॥२२४
योऽस्या भविष्यति गर्भः सप्तमः पृथिवी पते ।
तमहन्ते प्रयच्छामि तत्र कुर्य्या यथाक्रमम् ॥२२५
त्वं चिरदानीं यथेष्टत्वं वर्तेया भूरिदक्षिण ।
सर्वानस्यास्तु वै गर्भान् सत्यं नेष्यामि ते वशम् ॥२२६
एवं नरश्रेष्ठ वाणी नेयं मिथ्या भविष्यति ।
एवमुक्तोऽनुनीतः स जग्राह तनयास्तदा ॥२२७

वसुदेवश्च तां भार्य्यामवाप्य मुदितोऽभवत् ।
कंसश्चास्यावधीत् पुत्रान् पापकर्म्मा वृथामतिः ॥२२८
क एष वसुदेवश्च देवकी च यशस्विनी ।
नन्दगोपस्तु कस्त्वेष यशोदा च महायशा ।
यो विष्णुं जनयामास या चैनं चाप्यवर्द्धयत् ॥२२९

हे यादव नन्दन ! कोई भी क्षत्रिय कभी भी किसी स्त्री को मार देने के योग्य नहीं होता है । इस भय के कोषि तुम्हारे हृदय में उत्पन्न होगया है मैंने उसके निवारण का उपाय भली-भाँति देख लिया है ॥२२४॥ हे पृथिवी के पति ! इसका जो सातवाँ गर्भ होगा उसको मैं आपको देदूँगा । उसमें आप यथाक्रम करें ॥२२५॥ हे भूरि दक्षिण ! इस समय आप जैसा चाहिए वैसा ही व्यवहार करें । इसके सभी गर्भों को आपके वश में प्राप्त कर दूँगा ॥२२६॥ हे नर श्रेष्ठ ! इस प्रकार से यह वाणी मिथ्या नहीं होगी । इस तरह अनुनय किये हुए उसने सब पुत्रों को ग्रहण कर लिया था ॥२२७॥ और वसुदेव तो उस अपनी भार्या को प्राप्त कर बहुत प्रसन्न हुए । और कंस ने जोकि पाप कर्म करने वाला तथा वृथा बुद्धि से युक्त था, इसके पुत्रों का मार डाला था ।२२८। ऋषियों ने कहा—यह वसुदेव कौन था और यशस्विनी देवकी कौन थी, नन्द-गोप कौन था तथा महान् यशवाली यह यशोदा कौन थी ? जिसने विष्णु को उत्पन्न किया था और जिसने इनका पूर्ण रूप से अभिवर्द्धन किया था ॥२२९॥

पुरुषाः कश्यपस्यासन्नदित्यास्तु स्त्रियास्तथा ।
अथ कामान् महाबाहुर्देवक्या समवर्द्धयत् ॥२३०
अचरत् स महो देवः प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ।
मोहयन् सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया ॥२३१
नष्टे धर्म्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले स्वयम् ।
कर्तुं धर्म्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ॥२३२
आहृता रुक्मिणी कन्या सत्या नग्नजितस्तदा ।
सात्राजिती सत्यभामा जाम्बवत्यपि रोहिणी ॥२३३

शैब्या सुदेवी माद्री च सुशीला नाम चापरा ।
कालिन्दी मित्रविन्दा च लक्ष्मणा जालवासिनी ॥२३४
एवमादीनि देवाना सहस्राणि च षोडश ।
चतुर्दश तु ये प्रोक्ता गणाश्चाप्सरसा दिवि
विचिन्त्य देवैः शक्रेण विशिष्टास्त्विह प्रेषिताः ॥२३५

सूतजी ने कहा—कश्यप के पुत्र थे और अदिति की स्त्री थीं। इनके अनन्तर महाबाहु ने देवकी के कामों का सम्वर्धन किया था ॥२३०॥ योगात्मा उसने अपनी योगमाया से समस्त प्राणियों को मोहित करते हुए मानुष शरीर में प्रवेश करके उस देव ने भूमि में विचरण किया था ॥२३१॥ धर्म के नष्ट हो जाने पर भगवान् विष्णु ने स्वयं वृष्णि कुल में उस समय जन्म लिया। वह जन्म ग्रहण धर्म की व्यवस्था करने के लिये तथा असुरों का विनाश करने के लिये ही हुआ था ॥२३२॥ रुक्मिणी कन्या का अपहरण किया गया था उस समय से लाग जिसकी कन्या सत्राजित् की सत्यभामा, जाम्बवती और रोहिणी लाई गई थी ॥२३३॥ शैब्या–सुदेवी–माद्री–सुशीला–कालिन्दी–मित्रविन्दा–लक्ष्मणा–जालवासिनी–एवमादि देवो की सोलह हजार थी। चौदह जो दिवलोक में अप्सराओं के गण कहे जाते थे, देवो के द्वारा और इन्द्र के द्वारा विशेष रूप से चिन्तन करके जो विशिष्ट थी वे यहाँ प्रेषित करदी गई थी ॥२३४-२३५॥

पत्न्यर्थं वासुदेवस्य उत्पन्ना राजवेश्मसु ।
एता पत्न्यो महाभागा विष्वक्सेनस्य विश्रुता ॥२३६
प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च सुदेष्ण शरभ स्तथा ।
चारुश्च चारुभद्रश्च भद्रचारुस्तथापर ॥२३७
चारुविन्ध्यश्च रुक्मिण्या कन्या चारुमती तथा ।
भानुर्भानुस्तथाक्षश्च रोहितो मन्त्रयस्तथा ॥२३८
जरान्धकस्ताम्रवक्षा भौमरिश्च जरन्धम ।
चतस्रो जज्ञिरे तेषां स्वसारो गरुडध्वजात् ॥२३९
भानुर्भौमरिका चैव ताम्रपर्णी जरन्धमा ।
सत्यभामासुतानताञ्जाम्बवत्या प्रजा शृणु ॥२४०

भद्रश्च भद्रगुप्तश्च भद्रविन्द्रस्तथैव च ।
सप्तबाहुश्च विख्यात कन्या भद्रावती तथा ।
सम्बोधनी च विख्याता ज्ञेया जाम्बवतीसुता. ॥२४१
सग्रामजिच्च शतजित् तथैव च सहस्रजित् ।
एते पुत्रा सुदेव्याश्च विष्वक्सेनस्य कीर्तिता ॥२४२
वृको वृकाश्वो वृकजिद्वृजिनी च तुराङ्गना ।
मित्रबाहु सुनीथश्च नाग्नजित्या प्रजास्त्विह ॥२४३

ये सब यहाँ राजाओं के भवनों में वासुदेव की पत्नी बनने के लिये उत्पन्न हुई थी। ये महान् भाग वाली पत्नियाँ विष्वक्सेन की प्रसिद्ध हुई थीं ॥२३६॥ प्रद्युम्न–चारुदेष्ण–सुदेष्ण–शरभ–चारु–चारुभद्र और चारुविन्ध्य रुक्मिणी में पुत्र उत्पन्न हुए तथा एक चारुमती नाम वाली कन्या उत्पन्न हुई थी। भानुर्भानु–अक्ष–रोहित–मन्त्राय–जरान्धक–ताम्रवक्षा–भौमरि और जरन्धम ये सत्यभामा के पुत्र हुए थे और इनकी चार बहिनें गरुड्ध्वज से उत्पन्न हुई थी जिनके नाम भानु–भौमरिका–ताम्रवर्णी और जरन्धमा थे—सत्यभामा के सुत तो बतला दिए गये हैं अब जाम्बवती के पुत्रों को श्रवण करो ॥२३७-२३८-२३६-२४०॥ भद्र–भद्रगुप्त–भद्रविन्द–सप्तबाहु ये सब जाम्बवती के विख्यात पुत्र थे। भद्रावती कन्या थी जोकि सम्बोधनी–इस नाम से विख्यात जाम्बवती के जानने योग्य थे ॥२४१॥ सग्राम जित्–शतजित्–सहस्रजित् ये सुदेवी के पुत्र थे जोकि विष्वक्सेन के कहे गये हैं ॥२४२॥ वृक–वृकाश्व–वृकजित् और वृजिनी सुराङ्गना–मित्रबाहु–सुनीथ ये नाग्नजिती की सन्तति यहाँ पर हुई थी ॥२४३॥

एवमादीनि पुत्राणा सहस्राणि निबोधत ।
प्रयुतन्तु समाख्यात वासुदेवस्य ये सुता ॥२४४
अयुतानि तथाष्टौ च शूरा रणविशारदा ।
जनार्दनस्य वशो व कीर्तितोऽयं यथातथम् ॥२४५
बृहती नर्तकोन्नेयी सुनये सङ्गता तथा ।
कन्या सा वृहदुच्छ्रस्य शौनेयस्य महात्मन. ॥२४६

अनिरुद्धश्च पञ्चते वशवीरा प्रकीर्तिता ।
सप्तर्षय कुवेरश्च यक्षो मणिवरस्तथा ॥२
शालकी वदरश्चैव विद्वान् धन्वन्तरिस्तथा ।
नन्दिनश्च महादेव शालङ्कायन उच्यते ।
आदिदेवस्तदा जिष्णुरभिश्च सह दैवतं ॥३
विष्णु किमर्थं सम्भूत स्मृता सम्भूतय कति ।
भविष्या कति चान्य तु प्रादुर्भावा महात्मन ॥४
ब्रह्मक्षेत्रे युगान्तेषु किमर्थमिह जायते ।
पुन पुनर्मनुष्येषु तन्न प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥५
विस्तरेणैव सर्वाणि कर्म्माणि रिपुघातिन ।
श्रोतुमिच्छामहे सम्यग् देहे कृष्णस्य धीमत ॥
कर्म्मणामानुपूर्व्यंश्च प्रादुर्भावाश्च ये प्रभो ।
या चास्य प्रकृति सूत ताश्चास्मान् वक्तुमर्हसि ॥७
यथा स भगवान् विष्णु सुरेश्वरिरिनिषूदन ।
वसुदेवकुले धीमान् वासुदेवत्व मागत ॥८

मनुष्य की प्रकृति वाले देवो को अब बतलाया जाता है उन कीर्त्यमानो को भली भाँति समझ लो । सङ्कर्षण–वासुदेव–प्रद्युम्न–साम्ब और अनिरुद्ध ये पाँच वंशवीर कहे गये हैं । सप्तर्षि कुवेर–यक्ष–मणिवर–शालकी–बदर–विद्वान् धन्वन्तरि–नन्दिन–महादेव और शालङ्कायन कहे जाते हैं । उस समय इन देवो के साथ जिष्णु आदि देव थे ॥१ २ ३॥ ऋषियो ने कहा—भगवान् विष्णु ने किस प्रयोजन की सिद्धि के लिये जन्म ग्रहण किया था और उनके कितने जन्म बताए हैं तथा महान् आत्मा वाले विष्णु के अन्य कितने प्रादुर्भाव भविष्य में होने वाले हैं ? ॥४॥ युगान्तो मे ब्रह्मक्षेत्र मे यहाँ किस कारण से जन्म लेते हैं मनुष्यो मे बार बार जन्म मानवो से लिया करते है इसका क्या कारण है यह पूछने वाले हमको सब बतलाइये ॥५॥ शत्रुओं के घात करने वाले कृष्ण के शरीरो के द्वारा जो कर्म होते हैं उन सबको विस्तार के साथ लोग सुनना चाहते हैं ॥६॥ हे प्रभो ! उनके कर्मों की आनुपूर्वी–प्रादुर्भाव

भौर जो इनकी प्रकृति है वह सब हे सूतजी ! हमको आप बताने को योग्य होते हैं ॥७॥ वह भगवान् सुरो मे शत्रुओ के नाश करने वाले धीमान् विष्णु वसुदेव के कुल म वासुदेवत्व को कैसे प्राप्त हुए थे ? ॥८॥

अमरैः सूत कि पुण्य पुण्यकृद्भिरलंकृतम् ।
देवलोक समुत्सृज्य मर्त्यलोकमिहागत ॥९
देवमानुपयोर्नेता भूर्भुव प्रसवो हरिः ।
किमर्थं दिव्यमात्मान मानुषे समवेशयत् ॥१०
यश्चक्र वर्तयत्येको मनुष्याणा मनोमयम् ।
मनुष्ये स कथ बुद्धि चक्रे चक्रभृता वर ॥११
गोपायन यः कुरुते जगता सार्व्वलौकिकम् ।
स कथ गा गतो विष्णुर्गोपमन्वकरोत्प्रभु ॥१२
महाभूतानि भूतात्मा यो दधार चकार ह ।
श्रीगर्भ स कथ गर्भे स्त्रिया भूचरया धृत ॥१३
येन लोकान् क्रमैर्जित्वा त्रिभिस्त्रीस्त्रिदशेप्सया ।
स्थापिता जगतो मार्गास्त्रिवर्गप्रवरास्त्रय ॥१४
योऽन्तकाले जगत्पीत्वा कृत्वा तोयमय वपु ।
लोकमेकार्णव चक्रे दृश्यादृश्येन वर्त्मना ॥१५
य पुराणे पुराणात्मा वाराह वपुरास्थित ।
ददौ जित्वा वसुमती सुराणा सुरसत्तम ॥१६

हे सूतजी ! पुण्य करने वाले देवो से अलङ्कृत पुण्यतम देवलोक का त्याग करके यहाँ मनुष्य लोक मे आये थे अर्थात् विष्णु ने मनुष्य मे अवतार लिया था ॥९॥ भूर्भुव प्रसव हरि जो देव और मनुष्यो के नेता हैं उनने किस लिये अपने दिव्य आत्मा को मनुष्य रूप मे सन्निविष्ट किया था ॥१०॥ जो एक मनुष्यो के मनोमय चक्र को चलाता है उस चक्रभृतो में परम श्रेष्ठ ने मनुष्य बुद्धि कैसे की थी ॥११॥ जो प्रभु जगतो का सार्व लौकिक गोपायन अर्थात् सरक्षण किया करता है वह प्रभु विष्णु किस निमित्त से भूमि मे आकर अर्थात् मानुषावतार लेकर गोप का अनुकरण करता था ? ॥१२॥ जो भूतो की आत्मा

महाभूतों को बनाता है और धारण किया करता है श्रीगर्भ वह भूधरों के द्वारा गर्भ में कैसे धारण किया गया था ? ॥१३॥ देवों की इच्छा से जिसने तीन प्रदेशों से अर्थात् तीन पैंड में तीन लोकों को जीतकर जगत् के त्रिवर्ग प्रवर तीन मार्ग स्थापित किये थे ॥१४॥ जो अन्त समय में तोयपूर्ण शरीर बनाकर इस समस्त जगत् का पान कर लोक को दृश्य और अदृश्य मार्ग से एक समुद्र के स्वरूप में कर देता था ॥१५॥ जो पुराण में पुराण आत्मा वाला है और वाराह के शरीर में स्थित हुआ था तथा सुरों में श्रेष्ठ ने वसुमती को जीत कर जिसने सुरों को देदी थी ॥१६॥

येन संह वपु कृत्वा द्विधा कृत्वा च यत्पुन ।
पूर्व्वदैत्यो महावीर्य्यो हिरण्यकशिपुर्हत ॥१७
य पुराह्यनलो भूत्वा औौर्व्व सवर्त्तको विभु ।
पातालस्थोऽर्णवगत पपौ तोयमय हवि ॥१८
सहस्रचरण देव सहस्रांशु सहस्रश ।
सहस्रशिरस देव यमाहुर्वै युगे युगे ॥१९
नाभ्यारण्या समुद्भूत यस्य पैतामह गृहम् ।
एकार्णवगते लोके तत्पङ्कजमपङ्कजम् ॥२०
येन ते निहता दैत्या सग्रामे तारकामये ।
सर्व्वदेवमय कृत्वा सर्वायुधधर वपु ॥२१
गरुडस्येन चोत्सिक्त कालनेमिर्निपातित ।
उत्तरास्ते समुद्रस्य क्षीरोदस्यामृतोदधे ।
य शेते शास्वत योगमास्थाय तिमिर महत् ॥२२
पुरारणी गर्भमधत्त दिव्य तप प्रकर्षाददिति पुरा यम् ।
शक्रश्च यो दैत्यगणावरुद्ध गर्भावमानेन भृश चकार ॥२३

जिसने स्तम्भ को फाड़कर अपना सिंह और नर का दो प्रकार का स्वरूप बनाया था और पहिले दैत्य महान् पराक्रमी हिरण्य कशिपु को मार डाला था ॥१७॥ जो पहिले सवर्त्तक विभु और्व अर्थात् पृथ्वी या अनल होकर पाताल में स्थित तथा अर्णव गत होता हुआ तोयमय हवि का पान कर गया था ॥१८॥

युग-युग में जिसको सहस्र चरण वाला देव–सहस्र भ्रश्रु से युक्त–सहस्र शिर वाला कहते हैं ॥१६॥ जिसकी नाभि की भ्ररणी से भ्रर्थात् कमल नाल से पितामह का पर उत्पन्न हुआ था और वह बिना ही पङ्क के उत्पन्न होने वाला पङ्कज एकार्णव लोक में था ॥२०॥ जिसने तारकामय संग्राम में सर्वदेव पूर्ण और समस्त आयुधों के धारण करने वाले वपु को धनाकर दैत्यों का हनन किया था ॥२१॥ गरुड़ पर स्थित जिसने प्रभून का उदधि क्षीर सागर समुद्र के उत्तराद्ध में उच्छिक्त कालनेमि को निपातित कर दिया था जो महान् तिमिर (अन्धकार) में योग में आस्थित होकर शाश्वत शयन किया करता है ॥२२॥ पहिले अरणी ने जिसको दिव्य गर्भ के रूप में धारण किया था और तपस्या के प्रकर्ष से जिसको भदिति ने गर्भ धारण किया था। जिसने गर्भ के अवमान से इन्द्र को तेज के द्वारा प्रवृद्ध किया था ॥२३॥

यदानिलो लोकपदानि हृत्वा दैत्यान् सकारदैत्यान् सलिलेशयास्तान् ।
कृत्वादिदेवस्त्रिदिवस्य देवाश्चक्र सुरेशं पुरुहूतमेव ॥२४
गार्हपत्येन विधिना अन्वाहार्य्येण कर्म्मणा ।
अग्निमाहवनीयञ्च वेदिर्श्च व कुशामवम् ॥२५
प्रोक्षणीय स्रुवञ्च व अवभृथ तथैव च ।
अथ श्रीनिह यश्चक्रे हव्यभाग प्रदात्मने ॥२६
हव्यादाश्च सुराश्चक्र कव्यादाश्च पितृनपि ।
भागार्थ यज्ञविधिना यो यज्ञा यज्ञकर्म्मणि ॥२७
यूपान् समित्स्रुव सोम पवित्र परिधीनपि ।
यज्ञियानि च द्रव्याणि यज्ञीयाश्च तथानलान् ॥२८
सदस्यान् यजमानाश्च अश्वमेधान् क्रतूत्तमान् ।
विबभाज पुरा यश्च पारमेष्ठ्येन कम्मणा ॥२९
युगानुरूप ॥ कृत्वा त्रीन्लोकान् हि यथाक्रमम् ।
क्षणा निमेषा काष्ठाश्च कलास्त्रैकालमेव च ॥३०
मुहूर्त्तास्तिथयो मासा दिनसंवत्सरास्तथा ।
ऋतव कालयोगाश्च प्रमाणं त्रिविधन्तथा ॥३१

आयु क्षे त्राण्युपचय लक्षण रूपसौष्ठवम् ।
मेधा वित्त च शौर्य्यंच शास्त्रस्यैव च पारणम् ॥३२

जब अनिल ने लोक पदों का हरण करके उन देवों को सन्निवेशय कर दिया था तब आदि देव ने त्रिदिव के देवों को करके पुरुहूत को ही सुरों का ईश कर दिया था ॥२४॥ गार्हपत्य विधि से और अन्वाहार्य क्रम से अग्नि को आहवनीय की ओर वेदि को, कुशास्त्र को—प्रोक्षणीय स्रु व को तथा अवभृथ को जिसने यहाँ तीन को मख में हव्य भाग को देने वाला किया था ॥२५-२६॥ और हव्य के लेने वाले देवों को बनाकर कव्य के लेने वाले पितृगों का किया था। यज्ञ के कर्म में यज्ञ की विधि से भोग के लिये जो यज्ञ स्वरूप है ॥२७॥ यूप-समिध्-स्रु व-पवित्र सोम और परिधियों को यज्ञिय द्रव्यों की ओर यज्ञीय अनलों को—सदस्यों का और यजमानों को—श्रेष्ठ क्रतु अश्वमेधा पारमेष्ठ्य कर्म से जो पहिले विभाजित करता था ॥२६॥ जो युगों के अनुरूप यथाक्रम तीन लोकों को बनाकर क्षण-निमेष-काष्ठा-कला और तीन कालों को जिसने बनाया था ॥३०॥ मुहूर्त-तिथियाँ-मास-दिन-सम्वत्सर-ऋतुऐं-कालयोग और तीन प्रकार के प्रमाण जिसने सृजित किये थे ॥३१॥ आयु-क्षेत्र उपचय-लक्षण-रूप का सौष्ठव-मेधा-वित्त-शूरता और शास्त्र का पारण जिसने रचा था ॥३२॥

त्रयो वर्णास्त्रयो लोकास्त्रै विद्या पावकास्त्रत ।
त्रैकाल्य त्रीणि कर्म्माणि तिस्रो मायास्त्रयो गुणा ॥३३
सृष्टा लोका सुराश्चैव येनात्यन्तेन कर्म्मणा ।
सर्व्वभूतगणा सृष्टा सर्व्वभूतगणात्मना ॥३४
नृणामिन्द्रियपूर्व्वेण योगेन रमते च य ।
गतागतानां यो नेता सर्व्वत्र विविधेश्वर ॥३५
यो गतिर्धर्मयुक्तानामगति पापकर्म्मणाम् ।
चातुर्वर्ण्यस्य प्रभवश्चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ॥३६
चातुर्विद्यस्य यो वेत्ता चतुराश्रमसंश्रय ।
दिगन्तर नभो भूमिरापो वायुर्विभावसु ॥३७

चन्द्रसूर्य्याद्वय ज्योतिर्युगेश क्षणदाचरः ।
य परः श्रूयते देवो य परः श्रूयते तप ॥३८
यः परन्तपसः प्राहुर्य परम्परमात्मवान् ।
आदित्यादिस्तु यो देवो यश्च दैत्यान्तको विभु ॥३९
युगान्तेष्वन्तको यश्च यश्च लोकान्तकान्तक ।
सेतुर्यो लोकसेतूना मेध्यो यो मेध्यकर्म्मणाम् ॥४०
वेद्यो यो वेदविदुषा प्रभुर्य. प्रभवात्मनाम् ।
सोमभूतस्तु भूतानामग्निभूतोऽग्निवर्चसाम् ॥४१
मनुष्याणा मनोभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम् ।
विनयो नयतृप्ताना तेजस्तेजस्विनामपि ॥४२

तीन वर्ण-तीन लोक-तीन विद्या-तीन पावक-तीन काल-तीन कर्म-तीन माया और तीन गुण जिसने निर्मित किये थे ॥३३॥ जिसने अत्यन्त कर्म से लोकों और युगो का सृजन किया था । सर्वभूत गणात्मा ने समस्त भूतगणो को बनाया था ॥३४॥ नरो के इन्द्रिय पूर्व योग से जो रमण करता है गत और आगतो का जो विविधेश्वर सर्वत्र नेता है ॥३५॥ जो धर्म से युक्तों का गति है और पाप कर्म वालो का अगति है । चातुर्वर्ण्य का जो प्रभव है और चारो वर्णों का जो रक्षा करने वाला है ॥३६॥ जो चार विद्याओं का जानने वाला और चारो आश्रमो का आश्रय है जो दिशाओं का अन्तर-नभ-भूमि-जल-वायु-विभावसु है ॥३७॥ जो चन्द्र और सूर्य दोनो की ज्योति-युगो का स्वामी—क्षणदाचर है और जो परदेव सुना जाता है और जो पर तप सुना जाता है ॥३८॥ जो परन्तपस और जो परम्परमात्मवान् कहा जाता है । जो देव आदित्यादि है जो विभु दैत्यान्तक है ॥३९॥ युगो के अन्त में अन्त करने वाला है और जो लोकों के अन्तक का भी अन्त करने वाला है । लोकसेतुओं का जो सेतु है और जो मेध्य कर्मों का मेध्य है ॥४०॥ वेद के विद्वानो का जो जानने के योग्य है और जो प्रभवात्माओं का प्रभु है । भूतो का जो सोमभूत है और अग्नि-वर्चसो का जो अग्नि भूत है ॥४१॥ जो मनुष्यो का मनोभूत और तपस्वियो

का तपोभून है। जप से मृत पुरुषों का विनय और तेजस्वियों का भी जो तेज है ॥४२॥

विग्रहो विग्रहाणां यो गतिर्गतिमतामपि ।
आकाश प्रभवो वायुर्वायुप्राणा हुताशनः ॥४३
दिवा हुताशन प्राणा. प्राणोऽग्नेर्मधुसूदन ।
रसोऽभवच्छोणितं वै शोणितान्मांसमुच्यते ॥४४
मांसात्तु मेदसो जन्म मेदसोऽस्थि निरूप्यते ।
अस्थ्नो मज्जा समभवन्मज्जातः शुक्रसम्भवः ॥४५
शुक्राद्गर्भं समभवद्रसमूलेन कर्मणा ।
तत्रापि प्रथमस्त्वापस्ता सौम्यराशिरुच्यते ॥४६
गर्भोष्मसम्भवो ज्ञेयो द्वितीयो राशिरुच्यते ।
शुक्रं सोमात्मकं विद्यादार्त्तवं पावकात्मकम् ॥४७
भावौ रसानुगावेतौ वीर्य्यं च शशिपावकौ ।
कफवर्गेऽभवच्छुक्रं पित्तवर्गे च शोणितम् ॥४८
कफस्य हृदयं स्थानं नाभ्यां पित्तं प्रतिष्ठितम् ।
देहस्य मध्ये हृदयं स्थानन्तु मनसः स्मृतम् ॥४९
नाभिकोष्ठान्तरं यत्तु तत्र देवो हुताशनः ।
मनः प्रजापतिर्ज्ञेयः कफः सोमो विभाव्यते ॥५०

जो विग्रहों का विग्रह है और गतिमानों का भी गति है। आकाश में उत्पन्न होने वाला वायु है और वायु प्राण वाला हुताशन(अग्नि)है ॥४३॥ हुताशन का प्राण दिवा है और अग्नि का प्राण मधुसूदन हैं। रस से शोणित(रक्त) हुआ और शोणित मांस को कहा जाता है ॥४४॥ मांस से मेद की उत्पत्ति होती है और मेद से अस्थि निरूपित की जाती है। अस्थि से मज्जा हुई और मज्जा से शुक्र का जन्म हुआ करता है ॥४५॥ शुक्र से गर्भ रस मूल कर्म से हुआ था। वहाँ पर भी प्रथम आप (जल) है वह सौम्य राशि कहा जाता है ॥४६॥ गर्भोष्म की उष्मा से सम्भव वाला द्वितीय राशि है। शुक्र को सोमात्मक जानो और आर्त्तव को पावकात्मक जानना चाहिए ॥४७॥ रसानुग ये दोनों भाव

होते हैं और वीर्य में शशि तथा पावक हैं। कफ वर्ग में शुक्र होता है और पित्त वर्ग में शोणित होता है ॥४८॥ कफ का स्थान हृदय है और पित्त नाभी में प्रतिष्ठित रहा करता है। देह के मध्य में हृदय होता है जो मन का स्थान कहा गया है ॥४६॥ नाभिकोष का अन्तर जो होता है वहाँ देव हुताशन रहता है। मन को प्रजापति जानना चाहिए और कफ सोम विभाजित किया जाता है।५०।

पित्तमग्निः स्मृतावेतावग्निसोमात्मकं जगत् ।
एवं प्रवर्तितो गर्भो वर्त्ततेऽम्बुदसन्निभः ॥५१
वायुः प्रवेशनं चक्रे सङ्गतः परमात्मना ।
स पञ्चधा शरीरस्थो विद्यते वर्द्धयेत् पुनः ॥५२
प्राणापानौ समानश्च उदानो व्यान एव च ।
प्राणोऽस्य परमात्मानं वर्द्धयन् परिवर्त्तते ॥५३
अपानः पश्चिमं वायुमुदानोर्द्धं शरीरगः ।
व्यानो व्यानस्यते येन समानः सन्निवर्तयेत् ॥५४
भूतावाप्तिस्ततस्तस्य जायतेन्द्रियगोचरा ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥५५
सर्व्वेन्द्रिया निविष्टास्ते स्वं स्वं योगं प्रचक्रिरे ।
पार्थिवं देहमाहुस्तं प्राणात्मानं च मारुतम् ॥५६
छिद्राण्याकाशयोनीनि जलास्रा प्रवर्त्तते ।
नेत्रश्च तु स्थिता ज्योत्स्ना तेषां यन्नामतः स्मृतम् ।
सङ्ग्रामा विषयाश्चैव यस्य वीर्य्यात्प्रवर्त्तिता ॥५७
इत्येतान् पुरुषः सर्व्वान् सृजेल्लोकान् सनातनः ।
नैधनेऽस्मिन् यथा लोके नरत्वं विष्णुरागत ॥५८

पित्त अग्नि है। ये दोनों अग्नि और सोम के स्वरूप वाला जगत् कहा गया है। इस प्रकार से प्रवर्तित गर्भ अम्बुद (मेघ) के समान होता है ॥५१॥ परमात्मा से सङ्गत वायु ने प्रवेशन किया था। वह वायु शरीर में स्थित पाँच प्रकार का होता है और फिर बढ़ाता है ॥५२॥ प्राण-अपान-समान-उदान और व्यान ये पाँच वायु हैं। इनका प्राण परमात्मा को वर्द्धित करता हुआ परि-

वर्त्तित होता है ॥५३॥ अपान पीछे की शरीर के और उदान ऊर्ध्व शरीर में गमन करने वाला होता है। व्यान वह है जिसस यह व्यानस्यमान किया जाता है और शरीर की समस्त सन्धियों में रहा करता है ॥५४॥ इसके पश्चात् उसकी भूतावाप्ति इन्द्रिय गोचर होती है। पृथिवी–वायु–आकाश–जल और पाँचवाँ ज्योति ये भूत होते हैं ॥५५॥ समस्त इन्द्रियाँ उसमें निविष्ट होती हुई अपने अपने योग को क्रिया करती हैं। उसको पार्थिव देह कहते हैं और मारुत को प्राण स्वरूप कहते हैं ॥५६॥ छिद्र आकाश योनि होते हैं जिनमे जलास्राव प्रवृत्त होता है। तेज चक्षुओं में होता है ओं नाम से उनकी ज्योत्स्ना कही गई है। सग्राम और विषय हों मे जिसके वीर्य से प्रवर्त्तित होते हैं ॥५७॥ सनातन प्रभु इन सब लोकों को सृष्ट करता हुआ इस नैधन (मृत्युशील) लोक में विष्णु कैसे आगये थे ? ॥५८॥

एष न सशयो धीमन्नेष वै विस्मयो महान्।
कथ गतिगंतिमतामापन्नो मानुषी तनुम् ॥५९
श्रोतुमिच्छामहे विष्णो कर्म्माणि च यथाक्रमम्।
आश्चर्य्याणि पर विष्णोर्वेददे श्च कथ्यते ॥६०
विष्णोरत्पत्तिमाश्चर्य्यं कथयस्व महामते।
एतदाश्चर्य्यमाख्यान कथ्यता वै सुखावहम् ॥६१
प्रख्यातबलवीर्य्यस्य प्रादुर्भावा महात्मन.।
कर्म्मण्याश्चर्य्यभूतस्य विष्णो सत्त्वमि होच्यताम् ॥६२
अहञ्च कीर्त्तयिष्यामि प्रादुर्भाव महात्मन
यथा स भगवाञ्जातो मानुषेषु महातपा ॥६३
सप्तमप्तप प्रोक्ता भृगुशापेन मानुषे।
जायते च युगान्तेषु देवकार्य्यार्थसिद्धये ॥६४
तस्य दिव्यतनु विष्णोर्गदतो मे निबोधत।
युगधर्म्मे परावृत्ते काले च शिथिले प्रभु ॥६५
कर्तु धर्म्मव्यवस्थान जायते मानुषेष्विह।
भृगो शापनिमित्तं न देवासुरकृतेन च ॥६६

कथ देवासुरकृते अध्याहारमवाप्नुयात् ।
एतद्वेदितुमिच्छामो वृत्तं देवासुर कथम् ॥६७
देवासुर यथावृत्त ब्रुवतस्तन्निबोधत ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्त्रैलोक्य प्राक् प्रशासति ॥६८

हे धीमान् ! यह ही हमारा एक बहुत भारी संशय है और एक बहुत अधिक विस्मय भी होता है । गतिमानो की मानुषी तनु की गति को कैसे प्राप्त हुआ था ? ॥५६॥ हम सब भगवान् विष्णु के कर्मों को यथाक्रम सुनना चाहते हैं । विष्णु ही इस परम आश्रयो को जानते हैं और वेदो के द्वारा कहे जाते हैं ॥६०॥ हे महामते ! विष्णु की उत्पत्ति एक बडा आश्चर्य है उसे आप बताइये यह आख्यान आश्चर्य पूर्ण है सो सुख देने वाले इसे आप कहे । ॥६१॥ प्रख्यात बल और वीर्य वाले महान् आत्मा से युक्त भगवान् विष्णु के जोकि कर्म से आश्चर्य भूत हैं, प्रादुर्भावो को और उसके सत्त्व को यहाँ बताइये । श्री सूतजी ने कहा—मैं उस महान् आत्मा वाले के प्रादुर्भाव को कहूगा जिस तरह महातप वाले वह भगवान् मनुष्यो मे उत्पन्न हुए थे ॥६३॥ मस मस तप कहे गय भृगु के शाप से मानुप लोक मे युगो के अन्त समयो मे देवो के कार्यों की सिद्धि के लिये जन्म ग्रहण करते हैं ॥६४॥ बतलाते हुए मुझसे तुम लोग उस विष्णु के दिव्य तनु को भली-भाँति समझ लो । प्रभु युग धर्म के परावृत्त हो जाने पर और काल के शिथिल होन पर धर्म की व्यवस्था करने के लिये यहाँ मनुष्यो मे जन्म लिया करते हैं वह जन्म ग्रहण भी देवासुरो के द्वारा हुत और भृगु के शाप के निमित्त से होता है ॥६६॥ ऋषियो ने कहा-देवासुर कृत युद्ध म कैसे अध्याहार को प्राप्त होते हैं । हम यह जानना चाहतेहैं कि देवासुर युद्ध कैसे हुआ था ?॥६७॥ सूतजी बोले—देवासुर युद्ध जिस तरह से हुआ था यह बताने वाले मुझसे सब तुम जान लो । पहिले हिरण्यकशिपु राजा तीनो लोको पर प्रशासन करता था ॥६८॥

बलिनाधिष्ठित राष्ट्रं पुनर्लोकत्रये क्रमात् ।
सख्यमासीत्पर तेषा देवानामसुरैः सह ॥६६

युगं वै दशसङ्कीर्णमासीदव्याहृतं जगत् ।
निदेशस्थायिनश्चैव तयोर्देवासुराभवन् ॥७०
बद्धवान् वै विवादोऽस्य सम्प्रवृत्तः सुदारुणः ।
देवासुराणां च तदा घोरक्षयकरो महान् ॥७१
तेषां दायनिमित्तं वै संग्रामा बहवोऽभवन् ।
वाराहेऽस्मिन् दश द्वौ च षण्डामार्कोत्तराः स्मृताः ७२
नामतस्तु समासेन शृणुध्वं तान् विवक्षतः ।
प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयश्चापि वामनः ॥७३
तृतीयः स तु वाराहश्चतुर्थोऽमृतमन्थनः ।
संग्रामः पञ्चमश्चैव सुघोरस्तारकामयः ॥७४
षष्ठो ह्याडीबकस्तेषां सप्तमस्त्रैपुरः स्मृतः ।
अन्धकारोऽष्टमस्तेषां ध्वजश्च नवमः स्मृतः ॥७५
वार्तश्च दशमो ज्ञेयस्ततो हालाहलः स्मृतः ।
स्मृतो द्वादशमस्तेषां घोरकोलाहलोऽपरः ॥७६

फिर राजा बलि ने क्रम से तीनों लोकों में राष्ट्र को अपने अधिष्ठित कर लिया था। उस समय उन देवों का असुरों के साथ अत्यधिक सख्य भाव था ॥६६॥ युग दश सङ्कीर्ण और जगत् अव्याहृत था। उन दोनों के निदेश स्थायी देव और असुर हुए थे ॥७०॥ यह एक बड़ा जबर्दस्त एवं सुदारुण विवाद सम्प्रवृत्त होगया था और उस समय यह देवों तथा असुरों का घोर एवं महान् क्षय करने वाला होगया था ॥७१॥ उनके दाय के निमित्त से बहुत से संग्राम हुए थे। इस वाराह में बारह षण्डा मार्कोत्तर कहे गये हैं ॥७२॥ नाम से संक्षेप में कहते हुए मुझसे उनका श्रवण कर लो। प्रथम नारसिंह है और द्वितीय वामन है ॥७३॥ तृतीय वह वाराह है और चौथा अमृत का मन्थन करने वाला होता है। पञ्चम सुघोर तारकामय संग्राम है ॥७४॥ छठा आडीबक और सप्तम त्रैपुर कहा गया है। अन्धकार आठवाँ है और उनमें नवम ध्वज कहा गया है ॥७५॥ वार्त्त दशम जानना चाहिए इसके पश्चात् हालाहल ग्यारहवाँ कहा गया है। बारहवाँ उनमें घोर कोलाहल होता है ॥७६॥

हिरण्यकशिपुर्दैत्यो नरसिंहेन सूदित ।
वामनेन बलिर्बद्धस्त्रैलोक्याक्रमणे कृते ॥७७
हिरण्याक्षो हतो द्वन्द्वे प्रतिवादे तु दैवतं ।
महाबलो महासत्त्व सग्रामेष्वपराजित ॥७८
दंष्ट्रायान्तु वराहेण समुद्राद्भूर्यदा कृता ।
प्राह्लादो निर्जितो युद्धे इन्द्रेणामृतमन्थने ॥७९
विरोचनस्तु प्राह्लादिर्नित्यमिन्द्रवधोद्यत ।
इन्द्रेणैव स विक्रम्य निहतस्तारकामये ॥८०
भवादवध्यतां प्राप्य विनेपास्त्रादिभिस्तु य ।
सज्जभो निहत षष्ठे शक्राविष्टेन विष्णुना ॥८१
अशक्नुवन्ता देवेषु पुर गोप्तु त्रिदैवतम् ।
निहता दानवा सर्वे त्रिपुरस्त्र्यम्बकेण तु ॥८२

हिरण्य कशिपु नाम वाला दैत्य नरसिंह के द्वारा मारा गया था। वामन के द्वारा राजा बलि बाँधा गया था जबकि इस त्रैलोक्य का आक्रमण किया गया था ॥७७॥ महान् बल वाला और महान् सत्त्व से युक्त सग्राम में अपराजित हिरण्याक्ष प्रतिवाद में देवताओं के द्वारा द्वन्द्व में मारा गया था ॥७८॥ जिस समय में यह भूमण्डल समुद्र में वराह के द्वारा दंष्ट्रा में किया गया था प्रह्लाद अमृत के मंथन में इन्द्र के द्वारा युद्ध में निर्जित हुआ था ॥७९॥ प्रह्लादि विरोचन तो नित्य ही इन्द्र के साथ युद्ध करने के लिये उद्यत रहा करता था। इन्द्र के द्वारा ही वह तारकामय में विक्रम करके मारा गया था ॥८०॥ जो विनय अस्त्र आदि से भव (शिव) से अवध्यता को प्राप्त कर छठवें में इन्द्र में आविष्ट हुए विष्णु के द्वारा सज्जभ मारा गया था ॥८१॥ त्रिदैवत पुर की रक्षा करने में देवों से असमर्थ हो जाने वाले समस्त दानव मारे गये थे और त्रिपुर त्र्यम्बक के द्वारा मारा गया था ॥८२॥

अष्टमे त्वसुराश्चैव राक्षसाश्चान्धकारका ।
जितदेवमनुष्यैस्तु पितृभिश्चैव सङ्गतान् ॥८३

संवृतान् दानवाश्च व सङ्गतान् कृत्स्नशश्च तान् ।
तथा विष्णुसहायेन महेन्द्रेण निर्बाहिता ॥८४
हतो ध्वजो महेन्द्रेण मायाच्छन्नश्च योधयन् ।
ध्वजे लक्ष्य समाविश्य विप्रवित्तिर्महाभुज ॥८५
दैत्याश्च दानवाश्चैव सहतान् कृत्स्नशश्च तान् ।
रजिः कोलाहले सर्वान् देवैः परिवृतोऽजयत् ।
यज्ञामृतेन विजितौ षण्डामार्कौ तु दैवतै ॥८६
एते देवासुरा वृत्ताः संग्रामा द्वादशैव तु ।
देवासुरक्षयकरा प्रजानामशिवाय च ॥८७
हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुद प्रभो ।
तथा शतसहस्राणि ह्यधिकानि द्विसप्तति ।
अशीति च सहस्राणि त्रैलोक्यस्येश्वरोऽभवत् ॥८८
पर्याये तस्य राजाऽसु बलिर्वर्षार्बुद पुन ।
षष्टिं चैव सहस्राणि त्रिंशत नियुतानि च ॥८९
बले राज्याधिकारस्तु यावत्काल बभूव ह ।
प्रह्लादेन गृहीतोऽभूत्तावत्काल सदासुरै ॥९०

आदम में असुर-शासन और अन्धकारक जीत हुए मनुष्य और देवों तथा पितृगणों में सङ्गत तथा संवृत दानवों को और पूर्ण रूप से सङ्गत उन सबको विष्णु की सहायता प्राप्त करने वाले इन्द्र ने निर्बाहित किया था ॥८३-८४॥ माया से आच्छन्न युद्ध करते हुए महेन्द्र ने मारा था। ध्वज में लक्ष्य को समावेश करके महाभुज विप्रवित्ति हुआ था ॥८५॥ दैत्य और पूर्ण रूप से सहत समस्त दानवों को देवों के द्वारा परिवृत रजि ने कोलाहल में जीता था यज्ञामृत में देवों ने षण्डामार्कों को जीता था ॥८६॥ ये इतने प्रजाओं के ... करने के लिये देव और असुरों के क्षय करने वाले बारह संग्राम हुए थे जोकि देवासुर इस नाम से कहे गये हैं ॥८७॥ हिरण्यकशिपु राजा एक अर्बुद वर्ष तक सुशोभित रहा था और इसी प्रकार से सौ सहस्र-बहत्तर अधिक और अस्सी सहस्र तक त्रैलोक्य का स्वामी रहा था ॥८८॥ पर्याय में उसके पश्चात्

राजा बलि फिर एक अर्बुद वर्ष तक तथा साठ हजार तीन सौ नियुत पर्यन्त रहा था ॥८९॥ बलि का राज्याधिकार जितने समय तक रहा था तब तक उस समय असुरों से वह प्रह्लाद के द्वारा गृहीत रहा था ॥९०॥

इन्द्रास्त्रयस्ते विख्याता असुराणां महौजसः ।
दैत्यसस्यमिदं सर्वमासीद्दशयुगं किल ॥९१
असपत्नं ततः सर्वं राष्ट्रं दशयुगं पुरा ।
त्रैलोक्यमव्ययमिदं महेन्द्रेण तु पाल्यते ॥९२
प्रह्लादस्य ततश्चादस्त्रैलोक्यं कालपर्ययात् ।
पर्यायेण च सम्प्राप्ते त्रैलोक्ये पाकशासनः ॥९३
ततोऽसुरान् परित्यज्य यज्ञे देवा उपागमन् ।
यज्ञे देवानथ गते काव्यं ते ह्यसुराब्रुवन् ॥९४
हृतं नो मिषतां राष्ट्रं त्यक्त्वा यज्ञं पुनर्गताः ।
स्थातुं न शक्नुमो ह्यद्य प्रविशामो रसातलम् ॥९५
एवमुक्तोऽब्रवीद्देतान् विषण्णान् सान्त्वयन् गिरा ।
माभैष्ट धारयिष्यामि तेजसा स्वेन चासुराः ९६
वृष्टिरोषधयश्चैव रसा वसु च यद्द्वयम् ।
कृत्स्ना मयि च तिष्ठन्ति पादस्तेषां सुरेषु वै ।
युष्मदर्थं प्रदास्यामि तत्सर्वं धार्यते मया ॥९७
ततो देवासुरान् दृष्ट्वा धृतान् काव्येन धीमता ।
अमन्त्रयस्तदा ते वै सविग्ना विजिगीषया ॥९८

वे महान् ओज वाले असुरों के तीन इन्द्र विख्यात हुए थे। यह समस्त दश युग तक दैत्यों के कब्जे में रहा था ॥९१॥ पहिले यह समस्त राष्ट्र शत्रुओं से रहित रहा था। यह अव्यय त्रैलोक्य महेन्द्र के द्वारा ही पालित होता था ॥९२॥ इसके पश्चात् प्रह्लाद के कालपर्यय से इस त्रैलोक्य पर पर्याय से पाकशासन (इन्द्र) ने शासन प्राप्त कर लिया था ॥९३॥ इसके अनन्तर असुरों का त्याग कर देवगण यज्ञ में उपागत हुए थे। देवों के यज्ञ में जाने पर काव्य (शुक्र) से असुरों ने कहा ॥९४॥ राष्ट्र को त्याग कर भूल करने वाले हमारे

किय हुए यज्ञ को पुन चले गये। आज हम ठहर नहीं सकते हैं रसातल में प्रवेश करे ॥६५॥ इस प्रकार स कहे गये विषाद युक्त शुक्र ने इनसे वाणी द्वारा सान्त्वना देते हुए कहा—डरो मत, वह सब हे असुरो ! मेरे द्वारा अपने तेज से धारण किया जा रहा है ॥६६॥ वृष्टि—रस—औषधियाँ और जो दोनों प्रकार का धन है ये सब पूर्ण मुझमे ही रहा करते हैं उनका चतुर्थ भाग देवगण मे रहता है। तुम्हारे लिये मैं दूगा। वह अब मेरे द्वारा धारण किये जाते हैं ॥६७॥ इसके अनन्तर धीमान् काव्य के द्वारा धृत देवासुरो को देखकर तब उन्होंने विशेष रूप से जीतने की इच्छा से मविग्न होते हुए मन्त्रणा की थी ॥६८॥

एष काव्य इद सर्वं व्यावर्त्तयति नो बलात् ।
साधु गच्छामहे तूर्णं क्षीणान्याप्याययस्व तान् ।
प्रसह्य हृत्वा शिष्टान् वै पाताल प्रापयामहे ॥६६
ततो देवा सुसंरब्धा दानवानभिसृत्य वै ।
जघ्नुस्तैर्वध्यमानास्ते काव्यमेवाभिदुद्रुवु ॥१००
तत काव्यस्तु तान्दृष्ट्वा तूर्णं देवैरभिद्रुतान् ।
समरेऽस्त्रैः क्षतार्त्तांस्तान् देवेभ्यस्तान् दिते सुतान् १०१
काव्यो दृष्ट्वा स्थितान् देवान् तत्र देवोऽप्यचिन्तयत् ।
तानुवाच ततो ध्यात्वा पूर्ववृत्तमनुस्मरन् ॥१०२
त्रैलोक्य विजित सर्वं वामनेन त्रिभि क्रमै ।
बलिर्बद्धो हतो जम्भो निहतश्च विरोचन ॥१०३
महासुरेषु द्वादशसु सग्रामेषु सुरैर्हता ।
तैस्तैरुपायैर्भूयिष्ठा निहता य प्रधानत ॥१०४
किञ्चिच्छिष्टास्तु वै यूय युद्ध प्वन्त्येषु वै स्वयम् ।
नीर्ति वो हि विधास्यामि काल कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ॥१०५

यह काव्य इस सबको बलसे हमको बचा देवे। अच्छी बात है शीघ्र और उन क्षीणो को भी तृप्त करे बलपूर्वक शिष्टो का हरण करके पाताल म प्रवेश करा देवे ॥६६॥ इसके देवो ने सुसंरब्ध होते हुए दानवो पर अभि-

—

शरण करके मार दिया था और उन देवों के द्वारा वध्यमान वे काव्य के ही पास होते थे ॥१००॥ इसके पश्चात् देवों के द्वारा भगाये गये उनको शुक्र ने शीघ्र देखकर जो कि अमर असुरों के द्वारा से दुःखित थे और वे दिति के पुत्र देवों के द्वारा अभिद्रुत किये हुए थे ॥१०१॥ वहाँ पर स्थित हुए देवों को काव्य ने देखकर सोचा और फिर ध्यान करके पूर्व वृत्त का अनुस्मरण करते हुए उनसे बोले ॥१०२॥ वामन ने इस समस्त त्रैलोक्य को तीन कदमों से ही जीत लिया है। बलि को बांध दिया गया है और जम्भ तथा विरोचन को मार दिया गया है ॥१०३॥ महान् बारह संग्रामों में देवों के द्वारा ये सब मारे गये हैं। जो प्रधान थे वे उन-उन उपायों के द्वारा बहुत से मारे गये हैं। तुम लोग कुछ थोड़े से शेष रह गये हो। अब अन्तिम युद्ध में आपकी नीति को मैं स्वयं ही धारण करूँगा कुछ समय प्रतीक्षा करो ॥१०४-१०५॥

यास्याम्यहं महादेवं मन्त्रार्थं विजयाय व ।
अग्निं माप्यायमेद्धोता मन्त्रैरेव बृहस्पतिः ॥१०६॥
ततो यास्याम्यहं देवं मन्त्रार्थे नीललोहितम् ।
युष्माननुग्रहीष्यामि पुनः पश्चादिहागतः ॥१०७॥
यूयं तपश्चरध्वं वै संवृता वल्कलैर्वने ।
न वै देवा वधिष्यन्ति यावदागमनं मम ॥१०८॥
अप्रतीपास्ततो मन्त्रान् देवात् प्राप्य महेश्वरात् ।
योत्स्यामहे पुनर्देवास्ततः प्राप्स्यथ वै जयम् ॥१०९॥
ततस्ते कृतसंवादा देवानूचुस्ततोऽसुराः ।
न्यस्तवादा वयं सर्वे लोकान् यूयं क्रमन्तु वै ॥११०॥
वयं तपश्चरिष्यामः संवृता वल्कलैर्वने ।
प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा सत्यव्याहरणं तु तत् ॥१११॥
ततो देवा निवृत्ता वै विज्वरा मुदिताश्च ह ।
न्यस्तशस्त्रेषु दैत्येषु स्वान् वै जग्मुर्यथागतान् ॥११२॥
ततस्तानब्रवीत्काव्यः कञ्चित्कालमुपास्यताम् ।
निरुत्सुकैस्तपोयुक्तैः कालं कार्यार्थसाधकं ।
पितुर्ममाश्रमस्था वै सर्वे देवाः सवासवाः ॥११३॥

स सन्दिश्यासुरान् काव्यो महादेवं प्रपद्य च।
प्रणम्यैनमुवाचाथ जगत्प्रभवमीश्वरम् ॥११४॥

मैं आप लोगों की विजय के लिए मन्त्रार्थ मे महादेव के पास जाऊँगा। होता वृहस्पति मन्त्रों से ही अग्नि को आच्छादित करते हैं ॥१०६॥ इससे मैं मन्त्रार्थ के लिए नील लोहित (महादेव) के समीप में जाऊँगा। आप लोगों के ऊपर अनुग्रह करूँगा और फिर पीछे यहाँ आऊँगा ॥१०७॥ तुम लोग वल्कल से संवृत होते हुए अर्थात् वृक्षों की छाल के वस्त्र पहिनते हुए तपस्या करो फिर देवता लोग वध नहीं करेंगे जब तक कि मेरा आगमन यहाँ होता है ॥१०८॥ महेश्वर देव से अप्रतीप मन्त्रों को प्राप्त करके अर्थात् शत्रु नाशक मन्त्रों को जानकर के फिर देवों के साथ युद्ध करेंगे और फिर अवश्य ही विजय प्राप्त करेंगे ॥१०६॥ इसके अनन्तर सम्वाद करने वाले असुर देवगण से बोले—हम लोग सब झगड़ा छोड़ने वाले हो गये हैं अब तुम लोग समस्त लोकों को प्राप्त कर भोग करो ॥११०॥ हम लोग सब तपस्या करते हैं और वल्कल वसनों से संवृत होते हैं। प्रहलाद के वचन को सुनकर जो कि बिल्कुल सत्य ही कथन था ॥१११॥ इसके पश्चात् दुःख रहित एवं परम प्रसन्न देवता लोग निवृत्त होगये थे। दैत्यों के शस्त्र त्याग देने वाले हो जाने पर देवगण अपने स्थानों को जैसे वे आये थे चले गये थे ॥ ११२ ॥ इसके अनन्तर शुक्राचार्य ने उन से (दैत्यों से) कहा कि तुम लोग कुछ समय तक निरुत्सुक-तप से युक्त और कार्यार्थ के साधक होते हुए उपासना करो। इन्द्र के सहित समस्त देवगण इस समय में मेरे पिता के आश्रम मे स्थित हैं ॥११३॥ यह काव्य (शुक्राचार्य-दैत्य गुरु) असुरों को सन्देश देकर महादेव के पास गये और वहाँ पहुँच कर उनको प्रणाम करके समस्त जगत् प्रभव ईश्वर महादेव से कहा—॥११४॥

मन्त्रानिच्छाम्यहं देव ये न सन्ति वृहस्पतौ।
पराभवाय देवानामसुरेष्वभयावहान् ॥११५॥
एवमुक्तोऽब्रवीद्देवो मन्त्रानिच्छसि वै द्विज।
व्रतं चर मयोद्दिष्टं ब्रह्मचारी समाहितः ॥११६॥

पूर्णं वर्षसहस्रं वै कुण्डधूममवाक्‌शिराः ।
यद्युपास्यसि भद्रन्ते मत्तो मन्त्रमवाप्स्यसि ॥११७॥
तथोक्तो देव देवेन स शुक्रस्तु महातपा ।
पादौ सस्पृश्य देवस्य बाढमित्यभ्यभाषत ॥११८॥
व्रत चराम्यहं शेष यथोद्दिष्टोऽस्मि वै प्रभो ।
ततो नियुक्तो देवेन कुण्डधारोऽस्य धूमकृत् ॥११९॥
असुराणा हितार्थाय तस्मिञ्छुक्रे गते तदा ।
मन्त्रार्थं तत्र वसति ब्रह्मचर्यं महेश्वरः ॥१२०॥
तद् बुध्वा नातिपूर्वन्तु राज्य न्यस्त तदासुरैः ।
तस्मिञ्छिद्रे तदामर्षा देवास्तान् समभिद्रवन् ।
निशितात्तायुधा सर्वे बृहस्पतिपुरोगमा ॥१२१॥
दृष्ट्वासुरगणा देवान् प्रगृहीतायुधान् पुनः ।
उत्पेतु सहसा सर्वे सन्त्रस्तास्ते ततोऽभवन् ॥१२२॥

हे देव ! मैं मन्त्रो को चाहता हूँ बृहस्पति के रहते हुए मेरे पास मन्त्र नहीं है मैं ऐसे मन्त्रो को चाहता हूँ जो असुरो को अभय देने वाले हो और देवो का पराभव करने वाले हो ॥११५॥ जब इस तरह से महादेवजी से कहा गया तो महादेव बोले—हे द्विज ? यदि इस प्रकार के मन्त्रो को चाहते हो तो मेरे बताये हुए व्रत का ब्रह्मचारी और पूर्ण समाहित होते हुए आचरण करो ॥११६॥ पूरे एक सहस्र वर्ष तक अवाक् शिरा होते हुए कुण्ड धूप की यदि उपासना करोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा और मुझ से मन्त्रो को प्राप्त कर लोगे ॥११७॥ उस प्रकार से देवो के देव महादेव के द्वारा कहे जाने पर महान् तपस्वी शुक्राचार्य ने महादेव के चरणो का सस्पर्श करके "बहुत अच्छा"—यह कहा था ॥११८॥ मैं घोर व्रत का चरण करूँगा हे प्रभो ! जैसा भी आपके द्वारा आदि किया गया है। इसके पश्चात् महादेव ने इसको धूम कृत कुण्ड धार नियुक्त किया था ॥११९॥ असुरो के हित के लिये तब उस शुक्राचार्य के चले जाने पर मन्त्र के लिए महेश्वर वहाँ ब्रह्मचर्य मे निवास करते हैं ॥१२०॥ यह जानकर कि अति पूर्व मे तब असुरो के द्वारा राज्य नही न्यस्त किया गया

था। उस दिन में उनके आमर्ष वाले देवों ने बृहस्पति को अग्रगामी बनाकर और तीक्ष्ण आयुधों को ग्रहण करके उन असुरों को खदेड़ दिया था ॥ १२१ ॥ तब असुरों ने देवों को पुनः आयुध ग्रहण करने वाले देखकर सहसा सब उत्पन्न *करने लगे और वे एकदम सन्त्रस्त हो गये थे अर्थात् बहुत ही डर गये थे* ॥१२२॥

न्यस्तशस्त्रे जये दत्त आचार्यव्रतमास्थिते।
सन्त्यज्य समयं देवास्ते सपत्नजिघांसव ॥१२३॥
अनाचार्यास्तु भद्रं वो विश्वस्तास्तपसि स्थिता।
चीरवल्काजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहा ॥१२४॥
रणे विजेतुं देवान् वै न शक्ष्याम कथञ्चन।
अशुद्धेन प्रपद्याम शरणं काव्यमातरम् ॥१२५॥
ज्ञापयामस्ततमिदं यावदागमनं गुरो।
विनिवृत्ते तत काव्ये योत्स्यामो युधि तान् सुरान् ॥१२६॥
एवमुक्त्वा सुरान् योग्य शरणं काव्यमातरम्।
प्रापयन्त ततो भीतास्तया चैव तदाऽभयम् ॥१२७॥
दत्तं तेषान्तु भीताना दैत्या नामभयार्थिनाम्।
न भेतव्य नभेतव्य भयन्त्यजत दानवा ॥१२८॥
मत्सन्निधौ वर्तता वो न भीर्भवितुमर्हति।
भयाच्चाप्यभिपन्नास्तान् दृष्ट्वा देवासुरास्तदा ॥१२९॥
अभिजग्मु प्रसह्यं तानविचार्य बलाबलम्।
तास्त्रस्तान् वध्यमानाश्च देवैर्दृष्ट्वासुरास्तदा ॥१३०॥
दैवी क्रुद्धाब्रवीदेनाननिद्रत्व करोम्यहम्।
सस्तम्य शीघ्रं सरम्भादिन्द्र साऽभ्यचरत्तत ॥१३१॥

असुरों द्वारा शस्त्रों के त्याग देने पर जय के दे देने पर और आचार्य व्रत में आस्थित होने पर उन देवताओं ने शर्त का त्याग करके शत्रुओं के ...न की इच्छा करली थी ।१२३। आचार्यतत्व से हीन-आपका कल्याण हो इस

तरह से पूर्ण विश्वस्त तपश्चर्या में स्थित-चीर और बल्कलों के धारण करने वाले, क्रिया से रहित और बिना परिग्रह वाले हम किसी प्रकार से भी देवों को युद्ध में जीत नहीं सकेंगे इसलिये अब अशुद्ध के द्वारा काव्य की माता के शरण में चलें ॥१२५॥ जब तक गुरु का आगमन हो इस मत को ज्ञापित करें। शुक्राचार्य के वापिस लौट आने पर हम उनसे देवों से रण भूमि में युद्ध करेंगे ॥१२६॥ इस प्रकार से देवों से कहकर योग्य शरण (रक्षक) शुक्राचार्य की माता को शरणागति में प्राप्त हुए थे उस समय वे एकदम डरे हुए थे। अभय के चाहने वाले भीत उन दैत्यों को उस समय में ही अभय दिया गया। हे दानवो! मत डरो-मत डरो, भय का त्याग कर दो ॥१२७-१२८॥ आप लोग मेरे पास रहो, आपको कोई भी भय नहीं हो सकता है। भय से अभिपन्न उन देवासुरों को उस समय में देखकर देवी ने ऐसा कहा था ॥१२९॥ बलाबल का विचार न करके इनके ऊपर बल करके अभिगमन किया था। उस समय में डरे हुए और देवों के द्वारा वृध्यमान होते हुए उन असुरों को देखकर क्रुद्ध होते हुए देवी इनसे बोली मैं अनिन्द्रत्व अर्थात् इन्द्र का सर्वथा अभाव कर दूँगी। उसने शीघ्र ही इन्द्र को सरम्भ से (क्रोध से) स्तम्भित करके अभिचरण किया था ॥१३१॥

ततः सस्तम्भितं दृष्ट्वा शक्रं देवास्तु यूपवत्।
व्यद्रवन्त ततो भीता दृष्ट्वा शक्रं वशीकृतम् ॥१३२॥

गतेषु सुरसंघेषु विष्णुरिन्द्रमभाषत।
मां त्वं प्रविश भद्रन्ते नेष्यामि त्वां सुरेश्वर ॥१३३॥

एवमुक्तस्ततो विष्णुं प्रविवेश पुरन्दरः।
विष्णुना रक्षितं दृष्ट्वा देवी क्रुद्धा वचोऽब्रवीत् ॥१३४॥

एषा त्वां विष्णुना सार्द्धं दहामि मघवानिव।
मिषतां सर्वभूतानां दृश्यतां मे तपोबलम् ॥१३५॥

तयाभिभूतौ तौ देवाविन्द्रविष्णू जजल्पतुः।
कथं मुच्येव सहितौ विष्णुरिन्द्रमभाषत ॥१३६॥

था । उस छिद्र में उसके भ्रमण वाले देवों ने बृहस्पति को अग्रगामी बनाकर और तीक्ष्ण आयुधों को ग्रहण करके उन असुरों को खदेड़ दिया था ॥ १२१ ॥ तब असुरों ने देवों को पुनः आयुध ग्रहण करने वाले देखकर सहसा सब उत्पन्न करने लगे और वे एकदम सन्त्रस्त हो गये थे अर्थात् बहुत ही डर गये थे ॥१२२॥

न्यस्तशस्त्रे जये दत्ते आचार्यव्रतमास्थिते ।
सन्त्यज्य समय देवास्ते सपत्नजिघांसव ॥१२३॥
अनाचार्यास्तु भद्रं वो विश्वस्तास्तपसि स्थिता ।
चीरवल्काजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहा ॥१२४॥
रणे विजेतुं देवान् वै न शक्ष्याम कथञ्चन ।
अयुद्धेन प्रपद्याम शरणं काव्यमातरम् ॥१२५॥
ज्ञापयामस्ततमिदं यावदागमनं गुरो ।
विनिवृत्ते ततः काव्ये योत्स्यामो युधि तान् सुरान् ॥१२६॥
एवमुक्त्वा सुरान् भीत्या शरणं काव्यमातरम् ।
प्रापद्यन्त ततो भीतास्तदा चैव तदाऽभयम् ॥१२७॥
दत्तन्तेषान्तु भीताना दैत्या नामभयार्थिनाम् ।
न भेतव्यं नभेतव्यं भयन्त्यजत दानवा ॥१२८॥
मत्सन्निधौ वर्ततां वो न भीर्भवितुमर्हति ।
भयाद्वाप्यभिपन्नास्तान् दृष्ट्वा देवासुरास्तदा ॥१२९॥
अभिजग्मु प्रसह्य तानविचार्य बलाबलम् ।
तांस्त्रस्तान् वध्यमानांश्च दर्वदृष्ट्वासुरास्तदा ॥१३०॥
देवी क्रुद्धाब्रवीदेनानिन्द्रत्वं करोम्यहम् ।
सस्तम्भ शीघ्र सरम्भादिन्द्र साऽभ्यधरत्ततः ॥१३१॥

असुरों द्वारा शस्त्रों के त्याग कर देने पर जय में दे देने पर और आचार्य के व्रत में आस्थित होने पर उन देवताओं ने दर्प का त्याग करके असुरों के मारने की इच्छा करली थी ।१२३। आचार्यत्व से हीन आपका कल्याण हो तप

तरह से पूर्ण विश्वस्त तपश्चर्या में स्थित-चीर और वल्कलों के धारण करने वाले, क्रिया से रहित और बिना परिग्रह वाले हम किसी प्रकार से भी देवों को युद्ध में जीत नहीं सकेंगे इसलिये अब असुरों के द्वारा काव्य की माता के शरण में चलें ॥१२५॥ जब तक गुरु का आगमन हो हम मत को शामित करें। शुक्राचार्य के वापिस लौट आने पर हम उनसे देवों से रण भूमि में युद्ध करेंगे ॥१२६॥ इस प्रकार से देवों से कहकर योग्य शरण (रक्षक) शुक्राचार्य की माता की शरणागति में प्राप्त हुए थे उस समय वे एकदम डरे हुए थे। अभय के चाहने वाले भीत उन दैत्यों को उस समय में ही अभय दिया गया। हे दानवो! मत डरो-मत डरो, भय का त्याग कर दो ॥१२७-१२८॥ आप लोग मेरे पास रहो, आपको कोई भी भय नहीं हो सकता है। भय से प्रपिपन्न उन देवासुरों को उस समय में देखकर देवी ने ऐसा कहा था ॥१२९॥ बलाबल का विचार न करके इनके ऊपर बल करके अभिगमन किया था। उस समय में डरे [illegible] और देवों के द्वारा वृध्यमान होते हुए उन असुरों को देखकर क्रुद्ध होते हुए देवी इनसे बोली मैं अनिन्द्रत्व अर्थात् इन्द्र का सर्वथा अभाव कर दूँगी। उसने शीघ्र ही इन्द्र को सरम्भ से (क्रोध से) स्तम्भित करके अभिचरण किया था ॥१३१॥

तत सस्तम्भित दृष्ट्वा शक्र देवास्तु यूपवत् ।
व्यद्रवन्त ततो भीता दृष्ट्वा शक्र वशीकृतम् ॥१३२॥

गतेषु सुरसघेषु विष्णुरिन्द्रमभाषत ।
माँ त्व प्रविश भद्रन्ते नष्यामि त्वा सुरेश्वर ॥१३३॥

एवमुक्तस्ततो विष्णु प्रविवेश पुरन्दर ।
विष्णुना रक्षित दृष्ट्वा देवी क्रुद्धा वचोऽवदत् ॥१३४॥

एष त्वा विष्णुना सार्द्धं दहामि मघवानिव ।
मिषता सर्वभूताना दृश्यता मे तपोबलम् ॥१३५॥

तयाभिभूतौ तौ देवाविन्द्रविष्णू जजल्पतु ।
कथ मुच्येव सहितौ विष्णुरिन्द्रमभाषत ॥१३६॥

इन्द्रोऽब्रवीज्जहि ह्येनां यावन्नौ न दहेद्विभो ।
विशेषेणाभिभूतोऽहमतस्त्वञ्च हि मा चिरम् ॥१३७॥
ततः समीक्ष्य तां विष्णुः स्त्रीवधं कर्त्तुमास्थितः ।
अभिध्याय ततश्चक्रमापन्नः सत्वरं प्रभुः ॥१३८॥
तस्याः सत्वरमाणाया शीघ्रकारी सुरारिहा ।
स्त्रिया विष्णुस्ततो देव्याः क्रूरं बुद्धा चिकीर्षितम् ।
क्रुद्धस्तदस्त्रमाविद्धय शिरश्चिच्छेद माधवः ॥१३९॥

इसके अनन्तर देवों ने यूप की भांति इन्द्र को संस्तम्भित देखकर डरे हुए होकर शक्र को वशीकृत देखकर वे वहाँ से भाग लिये थे ॥१३२॥ देव समूह के चले जाने पर विष्णु इन्द्र से बोले—हे सुरेश्वर ! तुम मुझ में प्रवेश कर जाओ—तेरा भला होगा—मैं तुमको ले जाऊँगा ॥१३३॥ इस प्रकार से विष्णु के द्वारा कहने पर इन्द्र ने विष्णु में प्रवेश किया था। विष्णु के द्वारा रक्षित इन्द्र को देखकर देवी ने क्रुद्ध होकर यह वचन कहा ॥१३४॥ यह मैं आज समस्त भूतों के देखते हुए मघवान् की तरह तुमको विष्णु के साथ जलाती हूँ यह मेरा तपोबल देखो ॥१३५॥ उस देवी के द्वारा अभिभूत वे दोनों देव इन्द्र और विष्णु बोले। सहित दोनों कैसे छोड़ें यह विष्णु ने इन्द्र से कहा था ॥१३६ इन्द्र ने कहा वज्रियो ! इसे त्याग दो जब तक हम दोनों दग्ध न होवें। मैं विशेष रूप से अभिभूत हूँ और तुम अधिक मत होओ ॥१३७॥ इसके पश्चात् उस देवी को देखकर भगवान् विष्णु स्त्री का वध करने के लिए अवस्थित हो गये थे। यह कहकर इसके उपरान्त प्रभु विष्णु ने शीघ्र चक्र को उठाया था ॥ १३८ ॥ सत्वरमाणा उससे भी शीघ्रकारी सुर शत्रुओं के नाशक विष्णु ने देवी स्त्री के क्रूर चिकीर्षित को जानकर क्रोध किया और उस अस्त्र को चलाकर माधव ने सिर काट डाला था ॥१३९॥

तं दृष्ट्वा स्त्रीवधं घोरं चुकोप भृगुरीश्वरः ।
ततोऽभिशप्तो भृगुणा विष्णुर्भार्यावधे तदा ॥१४०॥
यस्मात्ते जानता धर्मानवध्या स्त्री निषूदिता ।
तस्मात्त्वं सप्तकृत्वा वै मानुषेषु प्रपत्स्यसि ॥१४१॥

ततस्तेनाभिशापेन नष्टे धर्मे पुनः पुनः।
लोके सर्वहितार्थाय जायते मानुषेस्विह ॥१४२॥
अनुव्याहृत्य विष्णुः स तदादाय शिरः स्वयम्।
समानीय ततः काये अपो गृह्येदमब्रवीत् ॥१४३॥
एष त्वां विष्णुना सत्ये हता सञ्जीवयाम्यहम्।
यदि कृत्स्नो मया धर्मश्चरितो ज्ञायतेऽपि वा।
तेन सत्येन जीवस्व तद्धि सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥१४४॥
सत्याभिव्याहृता तस्य देवी सञ्जीविता तदा।
तदा तां प्रोक्ष्य शीताभिरद्भिर्जीवेति सोऽब्रवीत् ॥१४५॥
ततस्तां सर्वभूतानि दृष्ट्वा सुप्तोत्थितामिव।
साधु साध्वित्यदृश्यानां वाचस्ताः सस्वनुर्दिशः ॥१४६॥
दृष्ट्वा सञ्जीवितामेव देवीं तां भृगुणा तदा।
मिषतां सर्वभूतानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥१४७॥
असम्भ्रान्तेन भृगुणा पत्नीं सञ्जीविता ततः।
दृष्ट्वा शक्रो न लेभेऽथ शर्म काव्यभयात्ततः ॥१४८॥
प्रजागरे ततश्चेन्द्रो जयन्तीमात्मनः सुताम्।
प्रोवाच मतिमान् वाक्यं स्वां कन्यां पाकशासनः ॥१४९॥
एष काव्यो ह्यनिन्द्राय चरते दारुणं तपः।
तेनाहं व्याकुलः पुत्रि कृतो धृतिमता दृढम् ॥१५०॥

उस घोर स्त्री के वध को देखकर ईश्वर भृगु बड़े ही क्रोधित हुए थे फिर उस समय में भार्या के वध हो जाने पर भृगु के द्वारा विष्णु को अभिशाप दिया गया था ॥१४०॥ क्योंकि धर्मों को जानने वाले, तुमने न वध करने के योग्य स्त्री का वध किया है इसलिये मैं यह शाप देता हूँ कि तुम सात बार मानुषों में उत्पन्न होकर रहोगे ॥१४१॥ इसके अनन्तर उस अभिशाप से लोक में बार-बार धर्म के नष्ट हो जाने पर सब के हित सम्पादन के लिए यहाँ मनुष्यों में भगवान् जन्म लिया करते हैं ॥१४२॥ उसने इस तरह विष्णु से अनुव्याहरण कर के उस समय स्वयं भार्या के उस सिर को लेकर उसे शरीर पर समा-

नीत करके जल लेकर यह बोले ॥१४३॥ यह विष्णु के द्वारा सत्य से हत तुझे मैं सञ्जीवित करता हूँ। यदि मैंने पूर्ण धर्म का आचरण किया है और धर्म को ज्ञान रखता हूँ तो उस सत्य से जीवित हो जा—यदि मैं यह सत्य बोलता हूँ ॥१४४॥ सत्य से अभिव्याहृत उसकी देवी उस समय संजीवित होगई थी। फिर इसके पश्चात् उस समय उसका शीतल जल से प्रोक्षण करके 'जीवित रहो'—यह शुक्राचार्य ने कहा था ॥१४५॥ इसके अनन्तर समस्त प्राणीवृन्द सोकर उठी हुई की भाँति उस देवी को देखकर—"साधु साधु" अर्थात् बहुत अच्छा-अच्छा ऐसी वाणियाँ जो अदृश्य थे उनकी सब दिशाओं से सुनाई दी थी ॥१४६॥ इस प्रकार से भृगु ने उस समय में उस देवी को सञ्जीवित देख कर समस्त प्राणियों के देखते हुए वह कार्य एक अद्भुत की तरह हुआ था ॥१४७॥ असम्भ्रान्त भृगु के द्वारा उनकी पत्नी को सजीवित देखकर काव्य के भय से फिर शान्ति प्राप्त नहीं की थी ॥१४८॥ प्रजागर में इन्द्र ने अपनी पुत्री जयन्ती से कहा। जयन्ती उस मतिमान् पाक शासन की कन्या थी। उसने कहा यह शुक्र इन्द्र के अभाव के लिये दारुण तप कर रहे हैं। हे पुत्रि! इस कारण मैं बहुत ही अधिक व्याकुल हूँ। उस धृतिमान् ने यह पक्का इरादा कर लिया है ॥१५०॥

गच्छ सम्भावयस्वैनं श्रमापनयनैः शुभैः।
तैस्तैर्मनोनुकूलैश्च ह्युपचारैरतन्द्रिता ॥१५१॥
देवी सा हीन्द्रदुहिता जयन्ती शुभचारिणी।
युक्त्यानञ्च शाम्यं त दुर्बलं धृतिमास्थितम् ॥१५२॥
पित्रा यथोक्तं काव्यं सा काव्ये कृतवती तदा।
गोभिश्चैवानुकूलाभिः स्तुवती वल्गुभाषिणी ॥१५३॥
गात्रसंवाहनैः काले सेवमाना सुखावहैः।
शुश्रूषन्त्यनुकूला च उवास बहुलाः समाः ॥१५४॥
पूर्णे धूमव्रते चापि घोरे वर्षसहस्रिके।
वरेण च्छन्दयामास काव्यं प्रीतोऽभवत्तदा ॥१५५॥

एव व्रतंवरस्त्वयैकेन चीर्णं नान्येन केनचित् ।
तस्मात्त्व तपसा बुद्ध्या श्रुतेन च बलेन च ॥१५६॥
तेजसा चापि विबुधान् सर्वानभिभविष्यसि ।
यच्च किञ्चिन्मम ब्रह्मन् विद्यते भृगुनन्दन ॥१५७॥
साङ्गञ्च सरहस्यञ्च यज्ञोपनिषदान्तया ।
प्रतिभास्यति ते सर्वं तच्चावन्त न कस्यचित् ॥१५८॥

सो तुम वहाँ जाओ और इसको शुभ श्रम के अपनयनों के द्वारा सम्भावित करो। उन-उन उसके मन के अनुकूल उपचारों से उसे प्रसन्न करो किन्तु इस कार्य में अतन्द्रित अर्थात् आलस्य रहित होकर लग जाना ॥ १५१ ॥ वह देवी इन्द्र की दुहिता जयन्ती शुभ चारिणी थी। युक्त ध्यान वाला काव्य-दुर्बलधृति में आस्थित उस काव्य का जैसा पिता के द्वारा कहा गया था उसने काव्य के विषय में उस समय किया। अनुकूल वाणियों के द्वारा वल्गुभाषिणी उसने उसकी स्तुति की थी ॥१५२-१५३॥ सुख प्रदान करने वाले गात्र सवाहनों के द्वारा समय पर सेवा करती हुई और शुश्रूषा करती हुई तथा अनुकूल रहती हुई बहुत वर्षों तक उसने वहाँ निवास किया ॥ १५४ ॥ एक सहस्र वर्ष वाले परम घोर धूम्रव्रत के पूर्ण हो जाने पर तब महादेव ने प्रसन्न होकर काव्य को वरदान से समन्वित किया था ॥१५५॥ वरदान देने के समय में ऐसा कहते हुए कि यह व्रत तुझ एक ने किया है अन्य किसी ने पूर्ण नहीं किया है। इस लिए तू तप, बुद्धि, श्रुत, बल और तेज से भी समस्त देवों को अभिभूत कर देगा और जो भी कुछ हे भृगुनन्दन ! हे ब्रह्मन् ! मेरे पास है साङ्ग और रहस्य के सहित यह सब तथा यज्ञोपनिषद् तुझे प्रतिभासित हो जाँयगे और वह अन्य से अन्ततक किसी को भी नहीं होते है ॥१५६।१५७।१५८॥

सर्वाभिभावो तेन त्व द्विजश्रेष्ठो भविष्यसि ।
एव दत्वा वरास्तस्मै भार्गवाय पुनः पुनः ॥१५९॥
अजेयत्व धनेशत्वमवध्यत्व च वै ददौ ।
एतान् लब्ध्वा वरान् काव्य सम्प्रहृष्टतनूरुह ॥१६०॥

हर्षात् प्रादुर्बभौ तस्य देवस्तोत्रं महेश्वरम् ।
तदा तिर्यक्स्थितस्त्वेव तुष्टुवे नीललोहितम् ॥१६१
नमोऽस्तु शितिकण्ठाय सुरापाय सुवर्चसे ।
रिरिहाणाय लोपाय वत्सराय जगत्पते ॥१६२
कपर्दिने ह्यूर्द्ध्वरोम्णे हयाय करणाय च ।
संस्कृताय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे ॥१६३
उष्णीषिणे सुवक्त्राय सहस्राक्षाय मीढुषे ।
वसुरेताय रुद्राय तपसे चीरवाससे ॥१६४
ह्रस्वाय मुक्तकेशाय सेनान्ये रोहिताय च ॥१६५
कवये राजवृद्धाय तक्षकक्रीडनाय च ।
गिरिशायार्कनेत्राय यतिने जाम्ववाय च ।
सुवृत्ताय सुहस्ताय धन्विने भार्गवाय च ॥१६६

इससे तू सबको अभिभूत करने वाला द्विजश्रेष्ठ हो जायगा । इस प्रकार से भार्गव के लिये बार-बार वरों को देकर अजेयत्व-धनेशत्व और अवध्यत्व का भी वरदान दे दिया था । इन समस्त वरों को प्राप्त कर काव्य सम्प्रहृष्ट तनूरुहों वाला अर्थात् अत्यन्त प्रसन्नता से प्रफुल्लित होगये ॥१५९-१६०॥ हर्ष के अतिरेक होने से उसके हृदय में महेश्वर देवस्तोत्र का प्रादुर्भाव हुआ । तब तिरछा स्थित होकर इस प्रकार से नीललोहित की स्तुति की थी ॥१६१॥ सुरापान करने वाले सुन्दर वर्चस वाले तथा शितिकण्ठ से युक्त के लिये नमस्कार है । रिरिहाण-लोप-वत्सर और जगत् के पति के लिये नमस्कार है ॥१६२॥ कपर्दी-ऊर्द्ध्व रोम वाले-हय-और करण के लिये नमस्कार है । संस्कृत-सुतीर्थ-रंह और देवों के भी देव के लिये नमस्कार है ॥१६३॥ उष्णीषी सुवक्त्र वाले-सहस्र नेत्रों वाले-मीढुष-वसुरेता-तप-चीरों के वस्त्र धारण करने वाले रुद्र के लिये नमस्कार है ॥१६४॥ ह्रस्व-मुक्त केशों वाले-सेनानी-रोहित के लिये नमस्कार है ॥१६५॥ कवि-राजवृद्ध-तक्षक से खिलौने वाले-गिरिश-अर्द्ध नेत्र-यति-जाम्बव के लिये नमस्कार है ॥१६६॥

सहस्रवाहवे चैव सहस्रामलचक्षुषे ।
सहस्रकुक्षये चैव सहस्रचरणाय च ॥१६७
सहस्रशिरसे चैव बहुरूपाय वेधसे ।
भवाय विश्वरूपाय श्वेताय पुरुषाय च ॥१६८
निषङ्गिणे कवचिने सूक्ष्माय क्षपणाय च ।
ताम्राय चैव भीमाय उग्राय च शिवाय च ॥१६९
बभ्रवे च पिशङ्गाय पिङ्गलायारुणाय च ।
महादेवाय शर्वाय विश्वरूपशिवाय च ॥१७०
हिरण्याय च शिष्टाय श्रेष्ठाय मध्यमाय च ।
पिनाकिने चेषुमते चित्राय रोहिताय च ॥१७१
दुन्दुभ्यायैकपादाय अर्हाय बुद्धये तथा ।
मृगव्याधाय सर्वाय स्थाणवे भीषणाय च ॥१७२
बहुरूपाय चोग्राय त्रिनेत्रायेश्वराय च ।
कपिलायैकवीराय मृत्यवे त्र्यम्बकाय च ॥१७३
वास्तोष्पते पिनाकाय शङ्कराय शिवाय च ।
आरण्याय गृहस्थाय यतिने ब्रह्मचारिणे ॥१७४

सहस्र बाहुओं वाले–सहस्र निर्मल नेत्रों वाले–सहस्र कुक्षि और सहस्र चरणों वाले के लिये नमस्कार है ॥१६७॥ सहस्र शिर वाले–बहुत से रूप वाले वेधा–भव–विश्वरूप–श्वेत और पुरुष के लिये नमस्कार है ॥१६८॥ निषङ्गी–कवची–सूक्ष्म–क्षपण–ताम्र–भीम–उग्र और शिव के लिये नमस्कार है ॥१६९॥ बभ्रु–पिशङ्ग–पिङ्गल–अरुण–महादेव–शर्व और विश्वरूप शिव के लिये नमस्कार है ॥१७०॥ हिरण्य–शिष्ट–श्रेष्ठ–मध्यम–पिनाकी–इषुमान्–चित्र और रोहित के लिये नमस्कार है ॥१७१॥ दुन्दुभ्य–एकपाद–अर्हबुद्धि–मृगव्याध–सर्व–स्थाणु और भीषण के लिये नमस्कार है ॥१७२॥ बहुरूप–उग्र–त्रिनेत्र–ईश्वर–कपिल–एकवीर–मृत्यु और त्र्यम्बक के लिये नमस्कार है ॥१७३॥ वास्तोष्पति–पिनाक–शङ्कर–शिव–आरण्य–गृहा में स्थित रहने वाले–यति और ब्रह्मचारी के लिये नमस्कार है ॥१७४॥

साङ्ख्याय चैव योगाय ध्यानिने दीक्षिताय च ।
अन्तर्हिताय शर्वाय मान्याय मालिने तथा ॥१७५
बुद्धाय चैव शुद्धाय मुक्तये केवलाय च ।
रोधसे चेकितानाय ब्रह्मिष्ठाय महर्षये ॥१७६
चतुष्पादाय मेध्याय धर्मिणे शीघ्रगाय च ।
शिखण्डिने कपालाय दंष्ट्रिणे विश्वमेधसे ॥१७७
अप्रतीघाताय दीप्ताय भास्कराय सुमेधसे ।
क्रूराय विकृतायैव बीभत्साय शिवाय च ॥१७८
सौम्याय चैव पुण्याय धार्मिकाय शुभाय च ।
अवध्याय मृताङ्गाय नित्याय शाश्वताय च ॥१७९
साद्याय शरभायैव शूलिने च त्रिचक्षुषे ।
सोमपायाज्यपायैव धूमपायोष्मपाय च ॥१८०
शुचये रेरिहाणाय सद्योजाताय मृत्यवे ।
पिशिताशाय सर्वाय मेघाय वैद्युताय च ॥१८१
व्याश्रिताय श्रविष्ठाय भास्वतायान्तरिक्षये ।
क्षमाय सहमानाय सत्याय तपनाय च ॥१८२
त्रिपुरघ्नाय दीप्ताय चक्राय रोमशाय च ।
तिग्मायुधाय मेध्याय सिद्धाय च पुलस्तये ॥१८३

साङ्ख्य–योग–ध्यानी–दीक्षित–अन्तर्हित–शर्व–मान्य तथा माली के लिये नमस्कार है ॥१७५॥ बुद्ध–शुद्ध–मुक्ति–केवल–रोधा–चेकितान–ब्रह्मिष्ठ और महर्षि के लिये नमस्कार है ॥१७६॥ चतुष्पाद–मेध्य–धर्मी–शीघ्र गमन करने वाले–शिखण्डी–कपाल–दंष्ट्री और विश्वमेधा के लिये नमस्कार है ॥१७७॥ अप्रतीघात–दीप्त–भास्कर–सुमेधा–क्रूरविकृत–बीभत्स और शिवके लिये नमस्कार है ॥१७८॥ सौम्य पुण्य धार्मिक–शुभ–अवध्य–मृताङ्ग–नित्य और शाश्वत के लिये नमस्कार है ॥१७९॥ साद्य–शरभ–शूली–तीन नेत्रों वाले–सोमपान करने वाले–घृतपान करने वाले–धूमप–ऊष्मप के लिये नमस्कार है ॥१८०॥ शुचि–रेरिहाण–सद्योजात–मृत्यु–मांस का अशन करने वाले–सर्व–मेघ और वैद्युत के

लिये नमस्कार है ॥१८१॥ व्याश्विन–अविष्ठ–भारत–अन्तरिक्षि–क्षम–सहमान–सत्य और तपन के लिये नमस्कार है ॥१८२॥ त्रिपुर के नाश करने वाले–दीप्त-वक्र–रोमश–तिग्मआयुध वाले–मेध्य–सिद्ध और पुलस्ति के लिये नमस्कार है ॥ १८३ ॥

रोचमानाय खण्डाय स्फीताय ऋषभाय च ।
भोगिने पुञ्जमानाय शान्तायैवोर्द्ध रेतसे ॥१८४
अघघ्नाय मखघ्नाय मृत्यवे यज्ञियाय च ।
कृशानवे प्रचेताय वह्नये क्लिशलाय च ॥१८५
सिकत्याय प्रसन्नाय वरेण्यायैव चक्षुपे ।
क्षिप्रगवे सुधन्वाय प्रमेध्याय शिवाय च ॥१८६
रक्षोघ्नाय पशुघ्नाय विघ्नाय शयनाय च ।
विभ्रान्ताय महन्ताय अन्तये दुर्गमाय च ॥१८७
दक्षाय च जघन्याय लोकानामीश्वराय च ।
अनामयाय चोर्द्धाय संहृत्याधिष्ठिताय च ॥१८८
हिरण्यबाहवे चैव सत्याय शमनाय च ।
अमिकल्याय माषाय रीरिण्यायैकचक्षुपे ॥१८९
श्रेष्ठाय वामदेवाय ईशानाय च धीमते ।
महाकल्पाय दीप्ताय रोदनाय हसाय च ॥१९०
वृतधन्वने कवचिने रथिने च वरूथिने ।
भृगुनाथाय शुक्राय वह्निरिष्टाय धीमते ॥१९१
अघाय अघशसाय विप्रियाय प्रियाय च ।
दिग्वास कृत्तिवासाय भगघ्नाय नमोऽस्तु ते ॥१९२

रोचमान–खण्ड–स्फीत–ऋषभ–भोगी–पुन्जमान–शान्त — उर्द्ध रेता–अघो के नाशक–मख के नाश करने वाले–मृत्यु–यज्ञिय–कृशानु–प्रचेत–वह्नि और किशलय के लिये नमस्कार है ॥१८४ १८५॥ सिकत्य–प्रसन्न–वरेण्य चक्षु–क्षिप्रगु–सुधन्वा–प्रमेध्य–शिव–रक्षोघ्न–पशुओ के हनन करने वाले–विघ्न–शयन विभ्रान्त–महन्त–अन्ति और दुर्गम के लिये नमस्कार है ॥१८६-१८७॥ दक्ष–

जघन्य–लोकों के ईश्वर–अनामय–ऊर्द्ध और महार का अधिष्ठित होने वाले के लिये नमस्कार है ॥१८८॥ हिरण्यबाहु–सत्य–शमन–अभिकल्प–माघ–रीरिएय–एकचक्षु–श्रेष्ठ–वामदव–ईशान–धीमान्–महाकल्प–गोप्त–गोदन और इसके लिये नमस्कार है ॥१८९-१९०॥ वृतधन्वा–कवच धारण करने वाले–रथी–वरूथ–भृगुनाथ–शुक्र–बह्विगिष्ट–और धीमान के लिये नमस्कार है ॥१९१॥ यम–प्रय सहाय–विभ्रम–प्रिय–दिग्वासा–कृत्तिवासा–भगघ्न के लिये नमस्कार है ॥१९२॥

पशूनां पतये चैव भूतानां पतये नमः ।
प्रणावे ऋग्यजु साम्ने स्वधायै च सुधाय च ॥१९३
वषटकारतमायैव तुभ्यमन्तात्मने नम ।
स्रष्ट्रे धात्रे तथा होत्रे हर्त्रे च क्षपणाय च ॥१९४
भूतभव्यभवायैव तुभ्य कालात्मने नम ।
वसवे चैव साध्याय रुद्रादित्याश्विनाय च ॥१९५
विश्वाय मरुते चैव तुभ्यन्देवात्मने नम ।
अग्निसोमर्त्विगिज्याय पशुमन्त्रौषधाय च ॥१९६
दक्षिणावभृथायैव तुभ्य यज्ञात्मने नम ।
तपसे चैव सत्याय त्यागाय च शमाय च ॥१९७
अहिंसायाप्यलोभाय सुवेशायातिशाय च ।
सर्वभूतात्मभूताय तुभ्य योगात्मने नम ॥१९७
पृथिव्यै चान्तरिक्षाय दिवाय च महाय च ।
जनस्तपाय सत्याय तुभ्य लोकात्मने नम ॥१९९
अव्यक्ताय महते भूतायैवेन्द्रियाय च ।
तन्मात्राय महान्ताय तुभ्य तत्त्वात्मने नम ॥२००
नित्याय चार्थलिङ्गाय सूक्ष्माय चेतनाय च ।
शुद्धाय विभवे चैव तुभ्य नित्यात्मने नम ॥२०१
नमस्ते त्रिपु लोकेपु स्वरान्तेपु भवादिपु ।
सत्यान्तेपु महान्तेपु चतुर्पु च नमोऽस्तु ते ॥२०२

नम स्तोत्रे मया ह्यस्मिन् सदसद्व्याहृत विभो ।
मद्भक्त इति ब्रह्मण्य सर्वन्तत् क्षन्तुमर्हसि ॥२०३

पशुओं के पतिके लिये और भूतो के पति के लिये नमस्कार है । प्रणव-ऋक्-यजु और सामवेद के लिये-स्वधा और सुख के लिये नमस्कार है ॥१९३॥ वषट्कार तम के वास्ते और मन्त्रात्मा तुम्हारे लिये नमस्कार है । स्रष्टा-धाता-होता-हर्ता और क्षपण के लिये नमस्कार है ॥१९४॥ भूत-भव्य-भव तुम्हारे कालात्मा के लिये नमस्कार है । वसु-साध्य-रुद्रादित्याश्विन के लिये नमस्कार है ॥१९५॥ विश्व-मरुत-देवात्मा तुम्हारे लिये नमस्कार है । अग्निसोम-ऋत्विक्-इज्य-पशुमन्त्र और ओषध के लिये नमस्कार है ॥१९६॥ दक्षिणा अवभृथ-यज्ञात्मा तुम्हारे लिये नमस्कार है । तप-सत्य-त्याग-क्षम के लिये नमस्कार है ॥१९७॥ अहिंस-अलोभ-सुवेश-प्रतिश-सर्व प्राणियों के आत्मभूत-योगस्वरूप तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥१९८॥ पृथिवी-अन्तरिक्ष-दिव-मह-जनस्तप-सत्य और लोकात्मा के लिये नमस्कार है ॥१९९॥ अव्यक्त-महान्-भूत-इन्द्रिय-तन्मात्र-महान्त तत्वात्मा तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥२००॥ नित्य-सर्वलिङ्ग-सूक्ष्म-चेतन-शुद्ध-विभु और नित्यात्मा तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥२०१॥ तीनों लोकों में-स्वरान्तों में-अनादिम-सत्यान्तो में और चारों महान्तों में तुम्हारे लिये नमस्कार है । हे विभो ! मैंने इस स्तोत्र में जो भी सद् और असत् कहा है ऐसे तुम्हारे लिये नमस्कार है । मेरा भक्त है—ऐसा जानकर हे ब्रह्मण्य ! वह सब क्षमा करने के आप योग्य होते हैं ॥२०२-२०३॥

प्रकरण ६०—विष्णु माहात्म्य कीर्तन

एवमाराध्य देवेशमीशान नीललोहितम् ।
बद्धांजलि प्रणतस्तस्मै प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥१
वाव्यस्य गात्रं संस्पृश्य हस्तेन प्रीतिमान् भव ।
निकामं दर्शनं दत्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥२

ततः सोऽन्तर्हिते तस्मिन् देवेशानुचरे तदा ।
तिष्ठन्ती प्राञ्जलिभूत्वा जयन्तीमिदमब्रवीत् ॥३
कस्य त्वं सुभगे का वा दुःखिते मयि दुःखिता ।
महता तपसा युक्तं किमर्थं मान्जुगोपसि ॥४
अनया सततं भक्त्या प्रश्रयेण दमेन च ।
स्नेहेन चैव सुश्रोणि प्रीतोऽस्मि वरवर्णिनि ॥५
किमिच्छसि वरारोहे कस्ते कामः समृध्यताम् ।
तं ते सम्पूरयाम्यद्य यद्यपि स्यात् सुदुर्लभम् ॥६
एवमुक्ताऽब्रवीदेनं तपसा ज्ञातुमर्हसि ।
चिकीर्षितं मे ब्रह्मिष्ठ त्वं हि वेत्थ यथातथम् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—इस प्रकार से देवों के ईश नीललोहित ईशान की आराधना करके उसके लिये बद्ध कर भावसे प्रणत हुआ था और हाथ जोड़कर बोला ॥१॥ महादेव ने परम प्रीति युक्त होकर अपने हाथ से शुक्राचार्य के शरीर का स्पर्श किया था और पूर्ण रूप से दर्शन देकर फिर वह वहाँ पर ही अन्तर्धान होगये थे ॥२॥ इसके पश्चात् देवेशानुचर उसके अन्तर्हित होजाने पर वह सामने खड़ी हुई जयन्ती से प्राञ्जलि होकर यह बोला—॥३॥ हे सुभगे ! तू किसी की है और कौन है अथवा दुःखित होरही है ? महान् तपसे युक्त मुझको तू किस प्रयोजन के लिये रक्षा करती है ? ॥४॥ इस तेरी निरन्तर होने वाली भक्ति से—प्रश्रय—दमन और स्नेह से हे सुश्रोणि ! हे वरवर्णिनि ! मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ ॥५॥ हे वरारोहे ! तू क्या चाहती है और तेरी क्या कामना बढ़ी हुई है ? मैं तेरे उस मनोरथ को पूर्ण करूँगा चाहे भले ही वह कैसा भी दुर्लभ क्यों न हो ॥६॥ जब इस प्रकार से वह जयन्ती कही गई तो उसने शुक्र से कहा आप मेरे मनोरथ को तपोबल से जानने के योग्य होते हैं। हे ब्रह्मिष्ठ ! आप मेरे चिकीर्षित को ठीक-ठीक जानते हैं ॥७॥

एवमुक्ताऽब्रवीदेना दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ।
माहेन्द्री त्वं वरारोहे मद्धितार्थमिहागता ॥८

मया सह त्व सुश्रोणि दश वर्षाणि भामिनि ।
अदृश्य सर्वभूतैस्तु सप्रयोगमिहेच्छसि ॥६
देवेन्द्रानलवर्णाभे वरारोहे सुलोचने ।
इम वृणीश्व काम ते मत्तो वै वल्गुभाषिणि ॥१०
एव भवतु गच्छामो गृहान् वै मत्तकाशिनि ।
ततः स्वगृहमागम्य जयन्त्या सहितः प्रभु ॥११
स तया सब सह्व्या दश वर्षाणि भागश ।
अदृश्य सर्वभूताना मायया सवृतस्तदा ॥१२
कृतार्थमागत दृष्ट्वा काव्य सर्वे दितेः सुता ।
अभिजग्मुर्गृह तस्य मुदितास्ते दिदृक्षव ॥१३
गता यदा न पश्यन्तो जयन्त्या सवृत गुरुम् ।
दाक्षिण्य तस्य तद्बुध्वा प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥१४

जब जयन्ती ने इस तरह शुक्र से कहा तो उसने दिव्य चक्षु से देख कर इससे कहा—हे वरारोहे ! तू महेन्द्र की पुत्री है और मेरे हितके लिये ही यहाँ पर आई है ।।८।। हे भामिनी ! हे सुश्रोणि ! तू मेरे साथ जोकि समस्त प्राणियो से अदृश्य रहेगा, दश वर्ष तक सम्प्र योग की इच्छा करती है ॥६॥ हे देवेन्द्र ! अनल प्रभो ! हे वरारोहे ! हे सुन्दर नेत्रो वाली ! हे वल्गुभाषण करने वाली ! तब ही तू मुझसे इस कामना को प्राप्त कर ॥१०॥ हे मत्तकाशिनी ! ऐसा होवे अबगृहो को चले । इसके अनन्तर अपने घर मे आकर प्रभु शुक्र जयन्ती के साथ रहे ॥११॥ फिर वह उस देवी के साथ भागश दश वर्ष तक निवास कर रहे थे और उस समय वह समस्त प्राणियो के अदृश्य तथा माया मे सवृत रहते थे ॥१२॥ समस्त दिति के पुत्र दैत्य सफल होकर आये हुए काव्य को देखकर उसके घर मे देखने की इच्छा रखते हुए परम प्रसन्न होकर गये थे ॥१३॥ वे सब वहाँ गये तो जयन्ती के द्वारा सवृत गुरु को उन्होंने जब नही देखा था तो उसके उस दाक्षिण्य को जान कर जैसे ही आये थे वापिस चले गये ॥१४।

बृहस्पतिस्तु सरुद्ध ज्ञात्वा काव्य चकार ह ।
पित्रर्थ दश वर्षाणि जयन्त्या हितकाम्यया ॥१५

बुद्ध्वा तदन्तर सोऽथ दैत्यानामिव चोदित ।
काव्यस्य रूपमास्थाय सोऽसुरान्समभाषत ॥१६
तत समागतान् दृष्ट्वा बृहस्पतिरुवाच तान् ।
स्वागत मम याज्याना सम्प्राप्तोऽस्मि हिताय च ॥१७
अह वोऽध्यापयिष्यामि प्राप्ता विद्या मया हि या ।
ततस्ते हृष्टमनसो विद्यार्थमुपपेदिरे ॥१८
पूर्णकामस्तदा तस्मिन् समये दशवार्षिके ।
ययौ च समकाल स सद्योत्पन्नमतिस्तदा ॥१९
समयान्ते देवयानी सद्यो जाता सुता तदा ।
बुद्धि चक्रे ततश्चापि याज्याना प्रत्यवेक्षणे ॥२०

बृहस्पति ने तो यह जान लिया था कि हित की कामना वाली जयन्ती के द्वारा पिता के लिए काव्य को सरुद्ध किया गया है ॥१५॥ इसके अनन्तर यह जानकर दैत्यो की भाँति प्रेरित होकर काव्य के स्वरूप को धारण कर असुरों से बोला ॥१६॥ फिर आये हुए उनमे बृहस्पति ने कहा—मेरे याज्य अर्थात् यजमानो का स्वागत है। मैं तुम्हारे सबके हित सम्पादन करने के लिये यहाँ आगया हूँ ॥१७॥ मैंने जो वहाँ विद्या प्राप्त की है उसे आप लोगो को सबको बताऊँगा। इसके प्रसन्न चित्त वाले वे सब असुर विद्या ग्रहण करने के लिये उपस्थित हुए थे ॥१८॥ उस समय मे दश वार्षिक समय मे पूर्ण काम सद्योत्पन्न मति वाला समकाल ही मे वहाँ गया था ॥१९॥ समय के अन्त मे तब देवयानी सुता सद्य उत्पन्न हुई और इसके पश्चात् याज्यों के प्रत्यवेक्षण करने के कार्य मे अपनी बुद्धि की थी ॥२०॥

देवि गच्छामहे द्रष्टु तव याज्यान् शुचिस्मिते ।
विभ्रान्तप्रेक्षिते साध्वि त्रिवर्णायतलोचने ॥२१
एवमुक्ताऽब्रवीद्देवी भज भक्तान् महाव्रत ।
एष महान् सता धर्मो न धर्मं लोपयामि ते ॥२२
ततो गत्वासुरान् दृष्ट्वा देवाचार्येण धीमता ।
वञ्चितान् काव्यरूपेण वेधसाऽसुरमब्रवीत् ॥२३

काव्य मा तात जानीध्व एष ह्याङ्गिरसो भुवि ।
वञ्चिता वत यूयं वै मयि शक्ते तु दानवाः ॥२४
श्रुत्वा तथा ब्रुवाणन्त सम्भ्रान्ता दितिजास्तत ।
प्रेक्षन्ते स्म ह्युभौ तत्र सितासितशुचिस्मितौ ॥२५
सम्प्रमूढा स्थिता. सर्वे प्रापद्यन्त न विश्चन ।
ततस्तेषु प्रमूढेषु काव्यस्तान् पुनरब्रवीत् ॥२६
आचार्य्यो वो ह्यहं काव्यो देवाचार्य्योऽयमङ्गिरा. ।
अनुगच्छत मा सर्वे त्यजतैनं बृहस्पतिम् ॥२७

श्री शुक्र ने कहा—हे देवि ! हे शुचिस्मित वाली ! तेरे वाक्यों को देखने के लिये अब जाते हैं हे विभ्रान्त प्रेक्षित वाली ! हे साध्वि ! हे त्रिवर्णायत लोचने हम चलते हैं ॥२१॥ जब इस प्रकार देवी से कहा गया तो वह बाली हे महाव्रत ! अपने भक्तों को देखो । हे ब्रह्मन् ! यह सत्पुरुषों का धर्म होता है और मैं आपके धर्म का लोप नहीं करूँगी ॥२२॥ सूतजी ने कहा—इसके पश्चात् शुक्राचार्य ने जाकर असुरों को देखा जोकि परम धीमान् देवों के आचार्य बृहस्पति के द्वारा वञ्चित किये गये थे और काव्य के स्वरूप को धारण करके यह प्रवञ्चना की थी । तब वेधा असुरों से बोले ॥२३॥ हे तात ! मुझे ही यथार्थ में काव्य समझो यह तो भूमि में अंगिरा का पुत्र बृहस्पति है । हे दानवो ! आप लोग समर्थ मेरे रहते हुए वञ्चित किये गये हो ॥२४॥ उस तरह से बोलते हुए उसका वचन सुनकर उस समय में दिति के पुत्र सब बहुत ही भ्रान्ति में पूर्ण होगये थे । तब वे वहाँ उस समय में उन दोनों को जो सित एवं असित शुचिस्मित वाले थे उनको देख देख रहे थे ॥२५॥ वे सब सम्प्रमूढ होते हुए स्थित होगये और किसी निर्णय पर नहीं प्राप्त हुए । इसके अनन्तर उनके प्रकृष्ट रूप से मूढ हो जाने पर काव्य ने उनसे पुनः कहा ॥२६॥ आपका आचार्य मैं हूँ और यह अङ्गिरा देवाचार्य है । आप सब मेरा अनुगमन करो और इस बृहस्पति का त्याग कर दो ॥२७॥

एवमुक्तासुराः सर्वे तावुभौ समवैक्षत ।
तदाऽसुरा विशेषन्तु न व्यजानंस्तयोर्द्वयो ॥२८

बृहस्पतिरयाचैतानसम्भ्रान्तोऽयमङ्गिरा ।
काव्योऽहं यो गुरुर्दैत्या मद्रूपोऽयं बृहस्पतिः ॥२९
स मोहयति रूपेण मामकेनैष वोऽसुराः ।
श्रुत्वा तस्य ततस्ते वै समभ्यार्थवचोऽब्रुवन् ॥३०
अयन्नो दश वर्षाणि सततं शास्ति वै प्रभुः ।
एष वै गुरुरस्माकमन्तरेप्सुरयं द्विज ॥३१
ततस्ते दानवाः सर्वे प्रणिपत्याभिवाद्य च ।
वचनं जगृहुस्तस्य चिराभ्यासेन मोहिताः ॥३२
ऊचुस्तमसुराः सर्वे क्रुद्धाः संरक्तलोचनाः ।
अयं गुरुर्हितेऽस्माकं गच्छ त्वं नासि नो गुरुः ॥३३
भार्गवोऽङ्गिरसो वाऽयं भवत्वेवं नो गुरुः ।
स्थिता वयं निदेशेऽस्य गच्छ त्वं साधु मा चिरम् ॥३४
एवमुक्त्वासुराः सर्वे प्रापद्यन्त बृहस्पतिम् ।
यदा न प्रतिपद्यन्ते तेनोक्तं तन्महद्धितम् ॥३५

इस तरह से कहे गये सब असुर उन दोनों को देखने लगे। तब असुरों ने उन दोनों में विशेषता कुछ भी नहीं जानी थी ॥२८॥ बृहस्पति ने इन असुरों से कहा—यह अंगिरा है और मेरा स्वरूप इसने धारण कर लिया है ऐसा इसे बृहस्पति समझो। हे दैत्यो ! जो तुम्हारा गुरु है वह मैं ही काव्य हूँ ॥२९॥ हे असुरो ! यह वह है जो मेरे रूप से आपको मोहित कर रहा है। इसके पश्चात् उन्होंने श्रवण कर और उसके अर्थ वचन को भली भाँति विचार कर वे बोले ॥३०॥ इसने दश वर्ष तक निरन्तर प्रभु ने हमको शिक्षा दी है। इसी हेतु से यही हमारा गुरु है और यह द्विज अन्तरेप्सु है ॥३१॥ इसके अनन्तर वे समस्त दानव प्रणिपात एवं अभिवादन करके चिरकाल से मोहित होते हुए उसके अर्थात् बृहस्पति के वचन को ग्रहण करने लगे थे ॥३२॥ समस्त असुर लाल नेत्रों वाले अत्यन्त क्रुद्ध होते हुए उससे बोले—यह हमारे हित में गुरु है तुम चले जाओ, तुम हमारे गुरु नहीं हो ॥३३॥ चाहे भार्गव हो अथवा आङ्गिरस हो हमारा यह ही गुरु है। हम इनके ही निदेश में ही स्थित हैं, तुम जाओ अब

भलाई इसी में है कि अपने चले जाने में विलम्ब मत करो ॥३४॥ इस प्रकार शुक्र से समस्त असुरों ने कहकर वे बृहस्पति को ही प्राप्त हुए थे । वे प्रतिपन्न नहीं होते हैं जब उसने उनका महान् हित कहा था ॥३५॥

चुकोप भार्गवस्तेषामवलेपेन वै तदा ।
बोधिता हि मया यस्माद्य मा भजत दानवा ॥३६
तस्मात् प्रनष्ट सज्ञा वै पराभवङ्गमिष्यथ ।
इति व्याहृत्य तान् काव्यो जगामाथ यथागतम् ॥३७
शापेनाऽभिशस्तानसुरान् काव्येन तु बृहस्पतिः ।
कृतार्थः स तदा दृष्ट्वा स्व रूप प्रत्यपद्यत ।
बुद्ध्वाऽसुरास्तदा भ्रष्टान् कृतार्थोऽन्तरधीयत ॥३८
तत प्रनष्टे तस्मिंस्ते विभ्रान्ता दानवास्तदा ।
अहो धिग्वञ्चिता स्मेह परस्परमथाब्रुवन् ॥३९
पृष्ठतो विमुखाश्चैव ताडिता वेधसा वयम् ।
दाधाश्चैवोपयोगाच्च स्वेस्वे चार्थेषु मायया ॥४०
ततोऽसुरा परित्रस्ता देवेभ्यस्त्वरिता ययु ।
प्रह्लादमग्रत कृत्वा काव्यस्यानुगम पुनः ॥४१

तब तो भार्गव गर्व से उन असुरों पर अत्यन्त क्रोधित हुए । मैंने उन्हें खूब समझाया तो भी दानव मुझको नहीं भजते हैं ॥३६॥ इस कारण से सज्ञा नष्ट करने वाले निस्सन्देह वे पराभव को प्राप्त होंगे । काव्य ने इस तरह से वचन उन असुरों से कहे और जैसे ही वह आये थे चले गये ॥३७॥ काव्य के द्वारा अभिशस्त असुरों को बृहस्पति ने जानकर अपने आपको परम सफल समझते हुए अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने ही स्वरूप को प्राप्त हुए । तब असुरों को भ्रष्ट जानकर कृतार्थ हुए अन्तर्धान होगये थे ॥३८॥ इसके बाद उसके प्रनष्ट होने पर उस समय दानव विभ्रान्त होगये और वे आपस में कहने लगे कि हम लोगों को धिक्कार है आज वञ्चित होगये हैं ॥३९॥ पीछे से हम विमुख होगये और वेधा के द्वारा हम ताड़ित हुए हैं । और अपने-अपने उपयोग से हम अर्थों में माया से

दग्ध होगये हैं ॥४०॥ इसके अनन्तर देवो से परित्रस्त असुर प्रह्लाद को आगे करके दीप्रमना वाले होकर काव्य के अनुगम को पुनः गये ॥४१॥

तत. काव्य समासाद्य अभितस्थु रवाङ् मुखाः ।
तानागतान् पुनर्दृष्ट्वा काव्यो याज्यानुवाच ह ।४२
मयापि बोधिता काले यतो मा नाभिनन्दथ ।
ततस्तेनावलेपेन गता यूय पराभवम् ॥४३
प्रह्लादस्तमथोवाच मान स्व त्यज भार्गव ।
स्वान् याज्यान् भजमानांश्च भक्तांश्चैव विशेषत ॥४४
त्वया पृष्टा वय तेन देवाचार्येण मोहिता ।
भक्तानर्हसि नस्त्रातु ज्ञात्वा दीर्घेण चक्षुषा ॥४५
यदि नस्त्व न कुरुषे प्रसाद भृगुनन्दन ।
अपध्यातास्त्वया ह्यद्य प्रवेक्ष्यामो रसातलम् ॥४६
ज्ञात्वा काव्यो यथातत्त्व कारुण्येनानुकम्पया ।
एवमुक्तोऽनुनीत. स सुग कोप न्ययच्छत ॥४७
उवाचेदम् भेतव्यं न गन्तव्य रसातलम् ।
अवश्यम्भावी ह्यर्थोऽय प्राप्तो वो मयि जाग्रति ॥४८

इसके अनन्तर काव्य के समीप म आकर नीचे की ओर मुख वाले होते हुए बैठ गये । उन याज्यो को फिर आये हुए देखकर काव्य उनसे बोले ॥४२॥ मेरे द्वारा भली भाँति समझाये हुए भी तुम लोगो ने समय पर जिस कारण से अभिनन्दन नही किया था उसी हेतु के फल से तुम अभिमान के वश होकर पराभव को प्राप्त हुए हो ॥४३॥ इसके उपरान्त प्रह्लाद ने उनसे कहा–हे भार्गव ! आप अब मान को परित्याग कर दीजिएगा और अपने याज्यो को जो यजमान हैं और विशेष रूप से भक्त हैं अङ्गीकार कीजिएगा ॥४४॥ आपने जब पूछा था उस समय हम उस देवाचार्य बृहस्पति के द्वारा मोहित होगये थे । अब दूर की लम्बी दृष्टि से सभी बात जानकर हम भक्तो की रक्षा करने के आप योग्य होते हैं ॥४५॥ हे भृगु नन्दन ! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न नही होते हैं तो हम अब आपके द्वारा अप ध्यात होते हुए आज ही रसातल म प्रवेश कर जायेंगे ॥४६॥

सूतजी ने कहा—काव्य ने यथा तत्व को सब कुछ जानकर करुणा और कृपा से इस तरह कहे जाने पर बहुत अनुनय किया हुआ होकर सबा स्तुत होने हुए उसने जो असुरों पर बड़ा भारी क्रोध हो रहा था उसको त्याग दिया ।।४७।। और वह यह बोला—डरो मत और रसातल को भी नहीं जाना चाहिए। मेरे जाग्रत रहते हुए भी यह कुछ अवश्यभावी अर्थ ही था जोकि आप लोगों को प्राप्त होगया है ।।४८।।

न शक्यमन्यथा कर्तुं दिष्टं हि बलवत्तरम् ।
सञ्ज्ञा प्रनष्टा या वोऽद्य काम तां प्रतिलप्स्यथ ।।४९
प्राप्तः पर्य्यायकालो व इति ब्रह्माऽभ्यभाषत ।
मत्प्रसादाच्च युष्माभिर्भुक्तं त्रैलोक्यमूर्जितम् ।।५०
युगाख्यो दश सम्पूर्णो देवानाक्रम्य मूर्द्धनि ।
तावन्तमेव कालं वै ब्रह्मा राज्यमभाषत ।।५१
सावर्णिके पुनस्तुभ्यं राज्यं किल भविष्यति ।
लोकानामीश्वरो भावी पौत्रस्तव पुनर्बलिः ।।५२
एवं किलमह प्रोक्तं पौत्रस्ते ब्रह्मणा स्वयम् ।
तथाहृतेषु लोकेषु तपोऽस्य न किलाभवत् ।।५३
यस्मात् प्रवृत्तयश्चास्य न कामानभिसन्धिता ।
तस्मादजेन प्रीतेन दत्तं सावर्णिकेऽन्तरे ।।५४
देवराज्यं बलेर्भाव्यमिति मामीश्वरोऽब्रवीत् ।
तस्माददृश्यो भूतानां कालाकाङ्क्षी स तिष्ठति ।।५५
प्रीतेन चामरत्वं वै दत्तं तुभ्यं स्वयम्भुवा ।
तस्मान्निरुत्सुकस्त्वं वै पर्य्यायं सह मा कुरु ।।५६

अब अन्यथा नहीं किया जा सकता है क्योंकि भाग्य सबसे अधिक बलवान् होता है। आज जो आप लोगों की सज्ञा प्रनष्ट हुई उसको फिर कामना पूर्वक प्राप्त करलोगे ।।४९।। आपका पर्याप्त काल प्राप्त होगया है—यह ब्रह्मा ने कहा—और मेरे प्रसाद से इस ऊर्जित त्रैलोक्य का आप लोगों ने भोग किया है ।।५०।। देवों को आक्रान्त करके उनके मूर्द्धा पर सम्पूर्ण दश युगाख्य होगया

है। उतने ही काल तक ब्रह्मा ने राज्य बोना था ॥५१॥ सार्वर्णिक मनु के समय में फिर तेरे लिये राज्य होगा। तुम्हारा पौत्र बलि फिर लाकों का ईश्वर होने वाला होगा। ५२॥ ब्रह्मा के द्वारा स्वय तेरा पौत्र इस तरह से मुझे कहा गया है। तथा आहरण किये गये लोकों में इसका तप निश्चय ही नहीं हुआ था ॥५३॥ जिस कारण से इसकी प्रवृत्तियाँ कामों को अभिमन्त्रित नहीं थी इससे प्रसन्न होने वाले प्रभु ने सार्वर्णिक अन्तर में दिया है ॥५४॥ ईश्वर ने मुझसे कहा है कि बलि का देवराज्य होगा। इससे भूतों को अदृश्य वह काल की आकाङ्क्षा रखने वाला स्थित है ॥५५॥ स्वयम्भू ने परम प्रसन्न होकर तेरे लिये अमरत्व को प्रदान किया है इसलिये निरुत्सुक तू पर्याय को सहन कर और बेचैन मत हो ॥५६॥

न च शक्यं मया तुभ्यं पुरस्ताद्वै विसर्पितुम् ।
ब्रह्मणा प्रतिषिद्धोऽस्मि भविष्य जानता प्रभो ॥५७
इमौ च शिष्यौ द्वौ मह्य तुल्यावेतौ बृहस्पते ।
दैवतै सह सरब्धान् सर्वान् वो धारयिष्यतः ॥५८
एवमुक्तास्तु दैतेया काव्येनाक्लिष्टकर्म्मणा ।
ततस्ताभ्या ययु सार्द्धं प्रह्लादप्रमुखास्तदा ॥५९
अवश्यम्भावमर्थस्य श्रुत्वा शुक्रान्न दानवाः ।
सकृदाशसमानास्ते जय काव्येन भाषितम् ॥६०
दंशिता सायुधा सर्वे ततो देवान् समाह्वयन् ।
अथ देवासुरान् दृष्ट्वा सग्रामे समुपस्थितान् ॥६१
तत सवृत्तसन्नाहा देवास्तान् समयोधयन् ।
देवासुरे ततस्तस्मिन् वर्त्तमाने शत समा ।
अजयन्नसुरा देवान् भग्ना देवा अमन्त्रयन् ॥६२
षण्डामार्कप्रभाव न जानीमस्त्व सुरैर्वयम् ।
तस्माद्यज्ञ समुद्दिश्य काय्यं चात्महितञ्च यत् ॥६३
तज्ज्ञानादाहृतावेतौ कृत्वा जेष्यामहेऽसुरान् ।
अथोपामन्त्रयन् देवा षण्डामार्कौ तु तावुभौ ॥६४

मुझसे तेरे लिये पहिले विसर्पण नहीं किया जा सकता है ब्रह्मा के द्वारा मैं प्रतिषिद्ध किया हुआ हू हे प्रभो ! क्योंकि ब्रह्माजी समस्त भविष्य मे होने वाली बातों को जानते हैं ॥५७॥ वे दो शिष्य मेरे लिये वृहस्पति के तुल्य हैं देवों के साथ सरब्ध आप सबको धारण करेंगे ॥५८॥ अक्लिष्ट कर्मा काव्य के द्वारा इस तरह कहे गये दिति के पुत्र उस समय वे सब जिनमे प्रह्लाद प्रमुख थे उन दोनों के साथ उस समय चले गये थे ॥५९॥ दानवो ने शुक्राचार्य गुरु से अवश्यम्भाव प्रर्यत्न को सुनकर काव्य के द्वारा भाषित जय को एकबार कहते हुए जा रहे थे ॥६०॥ दशित और आयुधो से सुसज्जित उन्होने देवो का समाह्वान किया। इसके पश्चात् सग्राम भूमि मे उपस्थित असुरों को देखकर सवृत्त सन्नाद देवगण ने उनसे वहाँ आकर युद्ध किया था। उस देवासुर सग्राम मे जो लगातार सौ वर्ष तक चलता रहा था असुरो ने देवो को जीत लिया था और भग्न हुए देवो ने विचार किया था ॥६१-६२॥ देवो न कहा—हम असुरो के द्वारा षण्डामर्क का जो प्रभाव है उसे नहीं जानते है इससे यज्ञ का उद्देश्य करके और जो आत्महित हो उसे ही करना चाहिए ॥६३॥ सो हम दोनो को आवाहन करके असुरो को जीत लेंगे। इसके उपरात देवगण ने उन दोनो षण्डामार्कों को उपामन्त्रित किया था ॥६४॥

यज्ञे समाह्वयिष्यामस्त्यजतमसुरान् द्विजौ ।
प्रह त वा ग्रहीष्यामो ह्यनुजित्य तु दानवान् ॥६५
एव तत्यजतुस्तौ तु षण्डामार्कौ तदासुरान् ।
ततो देवा जय प्राप्ता दानवाश्च पराभवम् ॥६६
देवासुरान् पराभाव्य षण्डामार्कावुपागमन् ।
काव्यशापाभिभूताश्च ह्यनाधाराश्च ते पुन ॥६७
वध्यमानास्तदा देवैर्विविशुस्ते रसातलम् ।
एव निरुद्यमास्ते वै कृता शक्रेण दानवा ॥
ततःप्रभृति शापेन भृगुनैमित्तिकेन च ॥६८
जज्ञे पुन पुनर्विष्णुर्यज्ञे च शिथिले प्रभु ।
कर्तुं धर्मव्यवस्थानमधर्मस्य च नाशनम् ॥६९

प्रह्लादस्य निदेशे तु येऽसुरा न व्यवस्थिता ।
मनुष्यवध्यास्तान् सर्व्वान् ब्रह्मा व्याहारयत् प्रभुः ॥७०
धर्म्मान्नारायणस्तस्मात् सम्भूतश्चाक्षुषेऽन्तरे ।
यज्ञं प्रवर्तयामास चैत्ये वैवस्वतेऽन्तरे ॥७१

हे द्विजो ! हम आप दोनो को यज्ञ मे बुलायेंगे अब असुरो को छोड दो । अथवा इस ग्रह को दानवो को जीत कर ग्रहण कर लेंगे ॥६५॥ इस तरह से उस समय मे उन दोनो षण्डामार्क ब्राह्मणो ने असुरो को त्याग दिया था । इसके पश्चात् देवता जय को प्राप्त होगये और दानव सब पराभूत होगये थे ॥६६॥ देवासुरो को पराभूत कराके षण्डामार्क आगये थे किन्तु वे काव्य के शाप से अभिभूत और फिर वे निराधार होगये थे ॥६७॥ तब उस समय मे देवगणो के द्वारा वध्यमान होते हुए वे असुर रसातल मे प्रवेश करने लगे थे । इस तरह से उद्यमहीन उन असुरो के समूह इन्द्र के द्वारा बेकार कर दिये गये थे । तब से लेकर वे भृगु निमित्तक शाप से पूर्ण प्रभावित होगये थे ॥६८॥ भगवान् विष्णु ने बार बार यज्ञो के शिथिल हो जाने पर धर्म की व्यवस्था करने के लिए तथा अधर्म का समूलोन्मूलन करने के लिये जन्म ग्रहण किया था ॥६९॥ जो असुर प्रह्लाद के निदेश मे स्थित नहीं रहे थे उन सबको प्रभु ब्रह्मा ने मनुष्यो के द्वारा वध्य करने के योग्य बताया था ॥७०॥ चाक्षुष मन्वन्तर मे धर्म से नारायण सम्भूत हुए थे और वैवस्वत मन्वन्तर मे चैत्य मे उन्होने यज्ञ को प्रवृत्त कराया था ॥७१॥

प्रादुर्भावे तदान्यस्य ब्रह्मैवासीत् पुरोहित ।
चतुर्थ्यान्तु युगाख्यायामापन्नेष्वसुरेष्वथ ॥७२
सम्भूत स समुद्रान्तर्हिरण्यकशिपोर्वधे ।
द्वितीयो नरसिंहोऽभूद्रुद्र सुरपुरस्सर ॥७३
बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेताया सप्तमे युगे ।
दैत्यैस्त्रैलोक्य आक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत् ॥७४
सङ्क्षिप्यात्मानमङ्गेषु बृहस्पतिपुरस्सरम् ।

यजमानन्तु दैत्येन्द्रमदित्याः कुलनन्दन ।
द्विजो भूत्वा शुभे काले बलिं वैरोचनम्पुरा ॥७५
त्रैलोक्यस्य भवान् राजा त्वयि सर्व्वं प्रतिष्ठितम् ।
दातुमर्हसि मे राजन् विक्रमांस्त्रीनिति प्रभु ॥७६
ददामीत्येव तं राजा बलिर्वैरोचनोऽब्रवीत् ।
वामनन्तं च विज्ञाय ततोऽनुमुदितः स्वयम् ॥७७
स वामनो दिवं खं च पृथिवीं च द्विजोत्तमा ।
त्रिभिः क्रमैर्विश्वमिदं जगदाक्रामत प्रभु ॥७८
अत्यरिच्यत भूतात्मा भास्करं स्वेन तेजसा ।
प्रकाशयन् दिशः सर्व्वाः प्रदिशश्च महायशाः ॥७९

इसके उपरान्त चतुर्थी युगाख्या में त्रियुगे के प्राप्त होने पर उस समय मन्थ के प्रादुर्भाव होने पर ब्रह्मा ही पुरोहित हुए थे ॥७२॥ हिरण्यकशिपु के वध में वह समुद्र के मध्य में सम्भूत हुए थे। द्वितीय सुर पुरस्सर रुद्र नरसिंह हुआ था ॥७३॥ सप्तम युग में त्रेता में लोकों के बलियन्य होने पर दैत्यों के द्वारा तीनों लोकों को आक्रान्त कर लेने पर तृतीय वामन के रूप में अवतीर्ण हुए थे ॥७४॥ बृहस्पति के पुरस्सर अदिति ने अपने आपको संक्षिप्त करके अदिति के कुल नन्दन ने दैत्यों के स्वामी बलि को यजमान बनाया था। स्वयं एक द्विज होकर शुभ समय पहिले वैरोचन बलि के पास पहुँचे थे ॥७५॥ और राजा बलि से वामन देव ने एक ब्राह्मण के स्वरूप में जाकर कहा—आप तीनों लोकों के राजा हैं। आपमें सभी कुछ प्रतिष्ठित है अर्थात् आपके पास सभी कुछ है। हे राजन्! प्रभु आप मुझे तीन पैंड भूमि को दान देने के योग्य होते हैं ॥७६॥ उस समय में वैरोचन राजा बलि ने उनसे यह वचन कहा—हाँ मैं आपको तीन पैंड भूमि का दान देता हूँ। और उस ब्राह्मण का वामन (बौना) जानकर स्वयं अनुमुदित हुआ था ॥७७॥ हे द्विजगणो! उस वामन देव ने दिव—आकाश और पृथिवी को तीन ही पैंडों से प्रभु ने इस विश्व समस्त जगत् को आक्रान्त कर लिया था ॥७८॥ उस भूतों के आत्मा ने अपने तेज से भास्कर को भी

और विश्वामित्र को पुरस्सर रखने वाला छठा अवतार था ॥९०॥ चौबीसवे त्रेतायुग में पुरोहित वसिष्ठ के द्वारा श्रीराम हुए थे। यह दशरथ महाराज के पुत्र श्री राघव रावण के लिये अर्थात् दशग्रीव के वध करने के लिये सातवाँ अवतार हुआ था ॥९१॥ अट्ठाईसवें युग में द्वापर में पराशर से विष्णु का आठवाँ अवतार हुआ था। इसके पश्चात् जातूकर्ण्य पुरस्सर श्री वेद व्यास ने जन्म ग्रहण किया था ॥९२॥ इसी प्रकार से नवम कश्यप ऋषि का पुत्र अदिति से विष्णु का अवतार हुआ था ॥९३॥

अप्रमेयो नियोज्यश्च यत्र कामचरो वशी।
क्रीडते भगवाँल्लोके बाल क्रीडनकैरिव ॥९४
न प्रमातुं महाबाहुः शक्योऽसौ मधुसूदनः।
परं परममेतस्माद्विश्वरूपान्न विद्यते ॥९५
अष्टाविंशतिमे तद्वद्द्वापरस्यांशसङ्क्षये।
नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः ॥९६
कर्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम्।
मोहयन् सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया ॥९७
प्रविष्टो मानुषीं योनिं प्रच्छन्नश्चरते महीम्।
विहारार्थं मनुष्येषु सान्दीपनिपुरःसरम् ॥९८
यत्र कंसञ्च शाल्वञ्च द्विविदञ्च महासुरम्।
अरिष्टं वृषभञ्चैव पूतना केशिनं हयम् ॥९९
नागं कुवलयापीडं मल्लराजगृहाधिपम्।
दैत्यान् मानुषदेहस्थान् सूदयामास वीर्यवान् ॥१००

वसुदेव से देवकी में ब्रह्मा और गार्ग्य को पुरस्सर रखने वाला अवतार हुआ था जो अप्रमेय अर्थात् बुद्धि में न आने के योग्य और नियोज्य था। जिस अवतार में कामचर वशी भगवान् बाल स्वरूप में स्थित होते हुए लोक में क्रीडन कों अर्थात् खिलौनों से क्रीडा किया करते हैं ॥९४॥ यह महाबाहु मधुसूदन भगवान् प्रमा का विषय नहीं हो सकता है। इस विश्वरूप से परम पर कोई भी नहीं है ॥९५॥ अट्ठाईसवें उस द्वापर युग के अंश के सङ्क्षय के समय में धर्म के

नष्ट हो जाने पर उस समय में प्रभु विष्णु ने वृष्णियों के कुल में अपने जन्म को ग्रहण किया था ॥९६॥ भगवान् विष्णु ने विनष्ट धर्म को संस्थापित करने की व्यवस्था करने के लिये और महान् दुष्ट असुरों का नाश करने के हेतु योगात्मा ने अपनी योग माया से समस्त प्राणियों को मोहित करते हुए इस मानुषी योनि में प्रवेश किया था और वह प्रच्छन्न होते हुए ही भूमण्डल में विचरण करते हैं। सान्दीपनि के पुरस्सर मनुष्यों में विहार करने के लिए ही उनने जन्म लिया था ॥९७ ९८॥ जहाँ पर कंस-शाल्व-द्विविद महासुर-अरिष्ट-वृषभ-पूतना-हयकेशी-कुवलयापीड हाथी-मगधराजमहाधिप इन सब मानुष देह में स्थित दैत्यों को वीर्यवान् ने निहत किया था ॥९९-१००॥

छिन्नं बाहुसहस्रञ्च बाणस्याद्भुतकर्मणः ।
नरकश्च हतः सङ्ख्ये यवनश्च महाबलः ॥१०१
हृतानि च महीपानां सर्वरत्नानि तेजसा ।
दुराचाराश्च निहताः पार्थिवा ये रसातले ॥१०२
एते लोकहितार्थाय प्रादुर्भावा महात्मनः ।
अस्मिन्नेव युगे क्षीणे सन्ध्याश्लिष्टे भविष्यति ॥१०३
कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्यः प्रतापवान् ।
दशमो भाव्यसम्भूतो याज्ञवल्क्यपुरःसरः ॥१०४
अनुकर्षन् सर्वसेनां हस्त्यश्वरथसङ्कुलाम् ।
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैर्वृतः शतसहस्रशः ॥१०५
नात्यर्थं धार्मिका ये च ये च धर्मद्विषः क्वचित् ।
उदीच्यान्मध्यदेशांश्च तथा विन्ध्यापरान्तिकान् ॥१०६
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान् सिंहलैः सह ।
गान्धारान् पारदांश्चैव पह्लवान् यवनाञ्छकान् ॥१०७
तुषारान् बर्बरांश्चैव पुलिन्दान् दरदान् खसान् ।
लम्पाकानन्धकान् रुद्रान् किरातांश्चैव स प्रभुः ॥१०८
प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृद्बली ।
अदृश्यः सर्वभूतानां पृथिवीं विचरिष्यति ॥१०९

अत्यन्त अद्भुत कर्म्म करने वाले बाण के सहस्र बाहुओं का छेदन किया था और युद्ध भूमि में नरकासुर का वध कर दिया था तथा महान् बलवान् यवन का हनन किया था ॥१०१॥ अपने तेज से महीपालों के समस्त रत्नों का हरण कर लिया था। जो रसातल में दुष्ट आचार वाले राजा थे वे सब मार डाले थे ॥१०२॥ महान् आत्मा वाले विष्णु भगवान् के समस्त प्रादुर्भाव लोकों के हित-सम्पादन के हुए थे। विष्णु का यह अवतार इस ही युग में सन्ध्या से श्लिष्ट एवं क्षीण हो जाने पर होगा ॥१०३॥ विष्णुयश नाम वाला प्रतापवाला पाराशर्य कल्कि बनाम याज्ञवल्क्य पुरस्सर अग्रभूत है जोकि भविष्य में होने वाला है ॥१०३॥ आयुध ग्रहण करने वाले सहस्रों की संख्या में ब्राह्मणों से युक्त अर्थात् घिरे हुए कल्कि ने हाथी-अश्व और रथों से सङ्कुल समस्त सेना को अनुवर्तित कर दिया था ॥१०४॥ जो राजा अत्यन्त धार्मिक नहीं थे और जो नहीं धर्म में द्वेष करने वाले लोग थे। उत्तर दिशा में होने वाले—मध्य देश के रहने वाले तथा जो विन्ध्यापरान्तिक थे और उसी प्रकार से दाक्षिणात्य एवं सिंहलों के साथ द्रविड़ थे गान्धार-पारद-पह्लव-यवन-शक-तुषार-बर्बर-पुलिन्द-दरद खस-लम्पक-अन्धक-रुद्र और किरात इन सबको उस प्रभु ने ध्वस्त करने के लिये जो चक्र को चलाने वाले—महाबल वाले-बली और म्लेच्छों का अन्त करने वाले थे, समस्त प्राणियों के द्वारा न देखने के योग्य होते हुए पृथिवी पर विचरण करेंगे ॥१०६ से १०६॥

मानवः स तु सञ्जज्ञे देवस्यांशेन धीमतः ।
पूर्वजन्मनि विष्णुर्यः प्रमितिर्नाम वीर्यवान् ॥११०
गोत्रेण वै चन्द्रमसः पूर्णे कलियुगेऽभवत् ।
इत्येतास्तस्य देवस्य दश सम्भूतयः स्मृता ॥१११
तं तं कालञ्च कार्यञ्च तत्तदुद्दिश्य कारणम् ।
अंशेन त्रिषु लोकेषु तास्ता योनी प्रपत्स्यते ॥११२
पञ्चविंशोत्थिते कल्पे पञ्चविंशति वै समाः ।
विनिघ्नन् सर्व्वभूतानि मानुषानेव सर्व्वशः ॥११३

धृत्वा बीजावशेषान्तु महीं क्रूरेण कर्मणा ।
सङ्घातयित्वा वृषलान् प्रायशस्तानधार्मिकान् ॥११४

ततः स वै तदा कल्किश्चरितार्थः ससैनिकः ।
कर्मणा निहता ये तु सिद्धास्ते तु पुनः स्वयम् ११५

अकस्मात् कुपितान्योन्यं भविष्यन्ति च मोहिताः ।
क्षपयित्वा तु तान् सर्वान् भाविनार्थेन चोदितान् ॥११६

गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्स्यति मानुषः ।
ततो व्यतीते कल्कौ तु सामात्यैः सह सैनिकैः ११७

नृपेष्वथ विनष्टेषु तदा त्वप्रग्रहा प्रजा ।
रक्षणे विनिवृत्ते तु हत्वा चान्योन्यमाहवे ॥११८

परस्परहताश्वासा निराक्रन्दा. सुदुःखिता. ।
पुराणि हित्वा ग्रामांश्च तुल्यास्ता निष्परिग्रहा ॥११९
प्रनष्टश्रुतिधर्माश्च नष्टधर्माश्रमास्तथा ।
ह्रस्वा अल्पायुषश्चैव वनौकस इमे स्मृताः ॥१२०
सरित्पर्वतसेविन्यः पत्रमूलफलाशना. ।
चीर पत्राजिनधरा. सङ्कर घोरमास्थिता ॥१२१
अल्पायुषो नष्टवार्त्ता बहुबाधाः सुदुःखिताः ।
एव कष्टमनुप्राप्ताः कलिसन्ध्यंशके तदा ॥१२२
प्रजा. क्षय प्रयास्यन्ति सार्द्धं कलियुगेन तु ।
क्षीणे कलियुगे तस्मिन् प्रवृत्ते च कृते पुनः ॥१२३
प्रपत्स्यन्ते यथान्याय स्वभावादेव नान्यथा ।
इत्येतद् कीर्तितं सर्वं देवासुरविचेष्टितम् ॥१२४
यदुवंशप्रसङ्गेन महद्वो वैष्णव यश ।
तुवसोस्तु प्रवक्ष्यामि पूरोर्द्रुह्योरनोस्तथा ॥१२५

परस्पर मे हताश्वास-निराक्रन्द अर्थात् निरन्तर रुदन करने वाले और परम दुःखित लोग नगरो को और ग्रामो को त्याग करके सब समान निष्परिग्रह हो जायगे ॥११९॥ सब लोग ऐसे ही जायगे जिनका श्रुतिधर्म नष्ट होगया है और आश्रम धर्म नष्ट होजाने वाले हैं—कद मे बहुत ही छोटे-अल्प आयु वाले एकतरह जगली जीवा की भाँति ये कहे गये हैं ॥ १२० ॥ नदी और पर्वतो पर रहने वाले-पत्ते-मूल और फलो को भक्षण करने वाले-चीर पत्र तथा चर्म को धारण करने वाले और परम घोर सङ्कर अवस्था मे समास्थित हो जायगे ॥१२१॥ बहुत ही थोडी उम्र वाले नष्ट वार्त्ता वाले-बहुत बाधाओं से युक्त-अत्यन्त दुःखित होते हुए उस समय मे कलियुग की सन्धि के अश मे सब लोग कष्ट को प्राप्त होने वाले होगे ॥१२२॥ इस घोर कलियुग के साथ ही समस्त प्रजा क्षय को प्राप्त हो जायगी। उस कलियुग के क्षीण होजाने पर और पुन कृत युग की प्रवृत्ति होती है ॥१२३॥ जब कृत युग प्रवृत्त होगा तो फिर न्याय के अनुसार स्वभाव से ही सब ठीक होजायगे और कोई भी अन्यथा नहीं

रहेगा। यह समस्त देवासुर विचेष्टित का वर्णन कर दिया है ॥१२४॥ अब मैं यदुवंश के प्रसङ्ग से आप लोगों से महान् वैष्णव वंश तुर्वसु-पूरु-द्रुह्यु और अनु का यश वर्णन करूँगा ॥१२५॥

प्रकरण ६१—अनुषंगपाद समाप्ति

तुर्वसोस्तु सुतो वह्निर्वह्नेर्गोभानुरात्मजः।
गोभानोस्तु सुतो वीरस्त्रिसानुरपराजितः ॥१
करन्धमस्त्रिसानोस्तु मरुत्तस्तस्य चात्मजः।
अन्यस्त्वधीक्षितो राजा मरुत्तः कथितः पुरा ॥२
अनपत्यो मरुत्तस्तु स राजासीदिति श्रुतम्।
दुष्कृतं पौरवं चापि सर्वे पुत्रमकल्पयन् ॥३
एवं ययातिशापेन जरायाः संक्रमेण तु।
तुर्वसोः पौरवं वंशं प्रविवेश पुरा किल ॥४
दुष्कृतस्य तु दायादः शरूथो नाम पार्थिवः।
शरूथात्तु जनापीडश्चत्वारस्तस्य चात्मजाः ॥५
पाण्ड्यश्च केरलश्चैव चोलः कुल्यस्तथैव च।
तेषां जनपदाः कुल्याः पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः ॥६
द्रुह्योस्तु तनयौ वीरौ बभ्रुः सेतुश्च विश्रुतौ।
अरद्धः सेतुपुत्रस्तु बाभ्रवो रिपुरुच्यते ॥७
यौवनाश्वेन समिति कृच्छ्रेण निहतो बली।
युद्धं सुमहदासीत्तु मासान् परि चतुर्दश ॥८

श्री सूतजी ने कहा—तुर्वसु का पुत्र वह्नि था और वह्नि का आत्मज गोभानु हुआ था। फिर गोभानु का पुत्र अपराजित तथा वीर त्रिसानु नाम वाला उत्पन्न हुआ था ॥१॥ त्रिसानु का पुत्र करन्धम हुआ और उसका पुत्र मरुत्त नामक उत्पन्न हुआ। पहिले मरुत्त राजा अन्यस्त्वधीक्षित कहा गया था ॥२॥

वह मरुत्त राजा सन्तान हीन था— ऐसा सुना गया है। दुष्कृत और पौरव ने भी सबने पुत्र को कल्पित किया था ॥३॥ इस प्रकार से ययाति के शाप से जरा के सक्रमण से तुर्वसु से पौरव वश मे पहिले प्रवेश किया था ॥४॥ दुष्कृत का दायाद अर्थात् पुत्र शरुथ नाम वाला राजा हुआ और शरुथ से जनापीड हुआ। उसके चार पुत्र हुए थे ॥५॥ पाण्ड्य–केरल–चोल और कुल्य ये उन चारो के नाम थे। उनके जनपद भी कुल्य–पाण्ड्य–चोल और सकेरल इन्हीं नामो से हुए थे ॥६॥ द्रुह्यु के दो वीर पुत्र हुए थे जो बभ्रु और सेतु इन नामों से प्रसिद्ध थे। सेतु का पुत्र अरुद्ध था और बभ्रु का रिपु इस नाम से कहा जाता है ॥७॥ यौवनाश्व के द्वारा समिति कठिनाई से बली सिहत हुआ था और चौदह मास तक बहुत बडा युद्ध हुआ था ॥८॥

अरुद्धस्य तु दायादो गान्धारो नाम पार्थिव. ।
ख्यायते यस्य नाम्ना तु गान्धारविषयो महान् ॥९
गान्धारदेशजाश्चापि तुरगा वाजिना वरा ।
गान्धारपुत्रो धर्मस्तु धृतस्तस्य सुताऽभवत् ॥१०
धृतस्य दुर्दमो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मज. ।
प्रचेतस पुत्रशत राजान. सर्व एव ते ॥११
म्लेच्छराष्ट्राधिपा. सर्वे ह्युदीची दिशमाश्रिता ।
अनो पुत्रा महात्मानस्त्रय. परमधार्मिका. ॥१२
सभानरश्च पक्षश्च परपक्षस्तथैव च ।
सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कालानलो नृप ॥१३
कालानलस्य धर्मात्मा सृञ्जयो नाम धार्मिक. ।
सृञ्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जय ॥१४
जनमेजयो महा सत्व पुरञ्जयसुताऽभवत् ।
जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवन्नृपः ॥१५
आसीदिन्द्रसमो राजा प्रतिष्ठितयशा दिवि ।
महामनाः सुतस्तस्य महाशालस्य धार्मिक. ॥१६

अरुद्ध का दायाद गान्धार नाम वाला नृप हुआ था। जिसके नाम से एक बहुत बड़ा देश प्रसिद्ध है।।९।। गान्धार देश में उत्पन्न होने वाले घोड़ों में परम श्रेष्ठ तुरग होते हैं। गान्धार का पुत्र धर्म था और उसका सुत घृत नामक हुआ था।।१०।। घृत से दुर्दम ने जन्म लिया और दुर्दम ने जन्म लिया और दुर्दम का पुत्र प्रचेता हुआ। प्रचेता के एक सौ पुत्र हुए थे और वे सभी राजा हुए थे।।११।। वे सब म्लेच्छ राष्ट्रों के स्वामी हुए थे और उनने उत्तर दिशा का आश्रय लिया था। अनु के परम धार्मिक महान् आत्मा वाले तीन पुत्र हुए थे।।१२।। उन तीनों के नाम सभानर-चक्षु और पर पक्ष थे। सभानर के यहाँ उसका पुत्र परम विद्वान् कालानल नृप हुआ था।।१३।। कालानल का धर्मात्मा सृञ्जय नाम वाला धार्मिक पुत्र हुआ था। सृञ्जय का पुत्र वीर पुरञ्जय राजा हुआ था।।१४।। महान् सत्व वाला जनमेजय पुरञ्जय का पुत्र उत्पन्न हुआ था। राजर्षि जनमेजय का पुत्र महाशाल नाम वाला नृप हुआ था।।१५।। यह राजा दिवलोक प्रतिष्ठित यश वाला इन्द्र के समान हुआ था। उस महाशाल का महामना नामक परम धार्मिक पुत्र हुआ था।।१६।।

सप्तद्वीपेश्वरो राजा चक्रवर्ती महायशाः।
महामनास्तु पुत्रौ द्वौ जनयामास विश्रुतौ ॥१७
उशीनरञ्च धर्मज्ञं तितिक्षुं चैव धार्मिकम्।
उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिवंशजाः ॥१८
मृगा कृमी नवा दर्वा पञ्चमी च दृषद्वती।
उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्वहाः।
तपसा ते सुमहता जातवृद्धाश्च धार्मिकाः ॥१९
मृगायास्तु मृगः पुत्रो नवाया नव एव तु।
कृम्या कृमिस्तु दर्वाया सुव्रतो नाम धार्मिकः ॥२०
दृषद्वतीसुतश्चापि शिबिरौशीनरो द्विजाः।
शिबेः शिवपुरं ख्यातं यौधेयन्तु मृगस्य तु ॥२१
नवस्य नवराष्ट्रन्तु कृमेस्तु कृमिला पुरी।
सुव्रतस्य तथाम्बष्ठा शिबिपुत्रान्निबोधत ॥२२

शिवेस्तु शिवय पुत्राश्चत्वारो लोकसम्मता ।
वृषदर्भं सुवीरस्तु केकयो मद्रकस्तथा ॥२३
तेषाञ्जनपदा स्फीता. केकया माद्रकास्तथा ।
वृषदर्भा सुचिदर्भास्तितिक्षो शृणुत प्रजा ॥२४

यह महामना सातो द्वीपो का स्वामी महान् यश वाला चक्रवर्ती राजा हुआ था । उस महामना ने परम प्रसिद्ध दो पुत्रो को जन्म दिया था अर्थात् उत्पन्न किया था ॥१७॥ एक का नाम धर्म का ज्ञाता उशीनर था और दूसरा परम धार्मिक तितिक्षु हुआ था । उशीनर की राजर्षियो के वश म उत्पन्न होने वाली पाँच पत्नियाँ थी ॥१८॥ उनके नाम मृगा–कृमी–नवा–दर्वा और पाँचवी दृषद्वती था । उशीनर के उन पत्नियो मे कुलके उद्वहन करने वाले पाँच पुत्र हुए थे । वे महान् तपसे ज्ञानवृद्ध और धार्मिक हुए थे ॥१९॥ मृगा के मृग पुत्र था और नवा के नव–इस नाम वाला ही पुत्र हुआ था । कृमी के कृमि और दर्वा के धार्मिक सुव्रत पुत्र हुआ ॥२०॥ हे द्विजगणो ! दृषद्वती का पुत्र भी औशीनर शिवि हुआ था । शिवि का शिवपुर और मृग का योधेय पुर हुए ॥२१॥ नव का नवराष्ट्र था और कृमी की कृमिला नाम वाली पुरी थी । सुव्रत की वृष्ठा पुरी थी । अब शिवि के पुत्रो को बतलाया जाता है उन्हें समझ लो ॥२२॥ राजा शिवि के शिवय नाम के चार पुत्र लोक सम्मत हुए थे जिनके नाम—वृषदर्भ–सुवीर–केकय और भद्रक य थे ॥२३॥ उनके बडे ही विस्तृत (फैलेहुए) जनपद केकय–माद्रक–वृषदर्भ और सुचिदर्भ इन नामो वाले हुए थे । अब आगे तितिक्षु के सन्तान के विषय म श्रवण करो ॥२४॥

तं तितिक्षुरभवद्राजा पूर्वस्यान्दिशि विश्रुत ।
उशद्रयो महाबाहुस्तस्य हेम सुतोऽभवत् ॥२५
हेमस्य सुतपा जज्ञे सुत सुतपसा बली ।
जातो मनुष्ययोन्या वै क्षीण वशे प्रजेप्सया ॥२६
महायोगी स तु वलिर्वद्धो य स महामना ।
पुत्रानुत्पादयामास चातुर्वर्ण्यकरान् भुवि ॥२७

अङ्ग स जनयामास वङ्गं सुह्मं तथैव च।
पुण्ड्रं कलिङ्गञ्च तथा वालेयं क्षत्रमुच्यते ॥२८
वालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकरा प्रभो ।
बलेस्तु ब्रह्मणा दत्ता वरा प्रीतेन धीमते ॥२९
महायोगित्वमायुश्च कल्पायु परिमाणकम् ।
संग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मे चैव प्रभावना ॥३०
त्रैलोक्यदर्शनञ्चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा।
बले चाप्रतिमत्वं वै धर्मतत्त्वार्थदर्शनम् ॥३१
चतुरो नियतान् वर्णान् त्वं वै स्थापयितेति च ।
इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शान्तिम्परां ययौ ॥३२

तितिक्षु पूर्व दिशा में परम प्रसिद्ध राजा हुआ था । उशद्रथ महाबाहु उसका हेम पुत्र हुआ था ॥२५॥ हेम का सुतपा बली सुतयशा उत्पन्न हुआ था। जो वंश के क्षीण होजाने पर प्रजा की इच्छा से मनुष्य की योनि में उत्पन्न हुआ था ॥२६॥ बद्धबलि जो था वह महामना और महायोगी था । उसने भूमि में चारों वर्णों के करने वाले पुत्रों को उत्पन्न किया था ॥२७॥ उसने अङ्ग—वङ्ग—सुह्म—पुण्ड्र—कलिङ्ग तथा वालेय को जन्म दिया था जो क्षत्र कहे जाते हैं। वालेय और ब्राह्मण उस प्रभु के वंश करने वाले थे । बुद्धिमान् बलि के लिये प्रसन्न होने वाले ब्रह्मा ने वह दान दिये थे ॥२८॥ वे वरदान ये थे—महान् योगित्व का होना और कल्पायु परिमाण वाली आयु-संग्राम में अजेय रहना और धर्म में प्रकृष्ट भावना का रहना ॥३०॥ त्रैलोक्य का दर्शन और प्रसव में प्राधान्य—बल में अनुपम होना तथा धर्म के तत्त्वार्थ का दर्शन—ये वरदान देते हुए ब्रह्माजी ने कहा था तुम नियत चार वर्णों का स्थापित करने वाले हो—इस तरह से विभु के द्वारा जब कहा गया तो राजा बलि को परम शान्ति प्राप्त हुई थी ॥३१-३२॥

वालेन महता विद्वान् स्वं वै स्थानमुपागत ।
तेषां जनपदा स्फीता वङ्गाङ्गसुह्मकास्तथा ॥३३

पुण्ड्रा कलिङ्गाश्च तथा तेषां वंशं निबोधत ।
तस्य ते तनया सर्वे क्षेत्रजा मुनिसम्भवा ।
सम्भूता दीर्घतमस सुदेष्णायां महौजसः ॥३४
बृहद्भानो सुतो जज्ञे नाम्ना राजा बृहन्मना ।
तस्य पत्नीद्वयं चासीच्चैद्यस्योभे च ते सुते ॥३५
यशोदेवी च सत्या च ताभ्यां वंशस्तु भिद्यते ।
जयद्रथस्तु राजेन्द्रो यशोदेव्यां व्यजायत ॥३६
ब्रह्मक्षत्रान्तर सत्याविजयो नाम विश्रुत ।
विजयस्य धृति पुत्रस्तस्य पुत्रो धृतव्रत ॥३७
धृतव्रतस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महायशा ।
सत्यकर्मसुतश्चापि सूतस्त्वधिरथस्तु वै ॥३८
स कर्णं परिजग्राह तेन कर्णस्तु सूतज ।
एतद्व कथितं सर्वं कर्णे यद्वे प्रचोदितम् ॥३९
एतेऽङ्गवंशजा. सर्वे राजान कीर्त्तिता मया ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च पूरोस्तु शृणुत प्रजा ॥४०

बहुत काल के पश्चात् वह विद्वान् अपने स्थान में आगया था । उनके जनपद बहुत ही विस्तृत एवं विशाल थे जिनके नाम अङ्ग—वङ्ग—सुह्मक—पुण्ड्र—कलिङ्ग थे । अब उनके वंश को जानलो । उनके वे सब पुत्र मुनियों से जन्म-ग्रहण करने वाले क्षेत्रज हुए थे और महान् ओज वाले दीर्घतम सुदेष्णा में समुत्पन्न हुए थे ॥३३ ३४॥ श्री सूतजी ने कहा—बृहद्भानु का पुत्र बृहन्मना नाम वाला राजा हुआ था । उसकी दो पत्नियाँ थी और वे दोनो चैद्य की पुत्रियाँ थी ॥३५॥ एक का नाम यशोदेवी था और दूसरी का नाम सत्या था । इन दोनों से वंश भिद्यमान होता है । राजेन्द्र जयद्रथ यशोदेवी की कुक्षि से समुत्पन्न हुआ था । सत्या से ब्रह्म क्षत्रान्तर विजय नाम वाला विश्रुत हुआ था । विजय के पुत्र धृति हुआ और उसका पुत्र धृतव्रत हुआ था ॥३६-३७॥ धृतव्रत का आत्मज महान् यश वाला सत्यकर्मा नाम वाला उत्पन्न हुआ था । सत्यकर्मा का पुत्र अधिरथ सूत उत्पन्न हुआ था ॥३८॥ उसने कर्ण का परिग्रहण किया था

इसीलिये वर्ण सूतज हुआ था । यह सब वर्णों के विषय में प्रेरित किया गया यह मैंने वर्णन कर दिया है ॥३९॥ ये अङ्ग के वंश में उत्पन्न होने वाले सभी राजा मैंने बतला दिये हैं । अब विस्तार के साथ और आनुपूर्वी के अनुसार पूरु की सन्तति का तुम सब मुझसे श्रवण करो ॥४०॥

पूरो पुत्रो महाबाहू राजासीज्जनमेजय ।
अविद्धस्तु सुतस्तस्य य प्राचीमजयद्दिशम् ॥४१
अविद्धत प्रवीरस्तु मनस्युरभवत्सुत ।
राजाथो जयदो नाम मनस्योरभवत्सुतः ॥४२
दायादस्तस्य चाप्यासीद्धुन्धुर्नाम महीपति ।
धुन्धोर्बहुगवी पुत्र सञ्जातिस्तस्य चात्मज ॥४३
सञ्जातेरथ रौद्राश्वस्तस्य पुत्रान्निबोधत ।
रौद्राश्वस्य घृताच्या वै दशाप्सरसि सूनव ॥४४
रजेयुश्च कृतेयुश्च कक्षेयु स्थण्डिलेयु च ।
घृतेयुश्च जलेयुश्च स्थलेयुश्चैव सप्तम ॥४५
धर्मेयु सन्नतेयुश्च वनेयुर्दशमस्तु स ।
रुद्रा शूद्रा च भद्रा च शुभा जामलजा तथा ॥४६
तला खला च सप्तैता या च गोपजला स्मृता ।
तथा ताम्ररसा चैव रत्नकूटी च तादृशी ॥४७
आत्रेयो वंशनस्तासां भर्ता नाम्ना प्रभाकर ।
अनाधृष्टिस्तु राजर्षी रिचेयुस्तस्य चात्मज ॥४८

श्री सूतजी ने कहा—पूरु का पुत्र महान् बाहुओं वाला राजा जनमेजय था । उसका आत्मज अविद्ध नाम धारी हुआ था जिसने पूर्व दिशा का विजय किया था ॥४१॥ अविद्ध से प्रवृष्ट वीर मनस्यु नाम वाला सुत हुआ था और मनस्यु पुत्र जयद नाम धारी राजा हुआ था ॥४२॥ उस जयद का दायाद अर्थात् उत्तराधिकारी पुत्र धुन्धु नामक महीपति हुआ था । धुन्धु राजा का पुत्र बहुगवी नाम वाला हुआ और उस बहुगवी का पुत्र सञ्जाति नाम वाला समुत्पन्न हुआ था ॥४३॥ सञ्जाति का पुत्र रौद्राश्व नाम वाला समुत्पन्न हुआ था अब

उस रौद्राश्व के पुत्रों का भी ज्ञान प्राप्त करलो। रौद्राश्व के शुक्र से घृताची नाम वाली अप्सरा मे दश पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था ॥४४॥ उन दश पुत्रों के नाम—रजेयु–कृतेयु–वक्षेयु–स्थण्डिलेयु–घृतेयु–जलयु और सातवाँ स्थलेयु था ॥४५॥ धर्मेयु–सन्नतेयु तथा दशवाँ वनेयु था। रुद्रा–शूद्रा–मद्रा–शुभा–आमसजा–तला–खला–ये सात और गोपजला कही गई थी तथा तामरसा और वैसी ही रत्नकूटी थी ॥४६-४७॥ वश से यानेय प्रभाकर नाम वाला उनका स्वामी था। अनहष्ट राजर्षि रिवेयु उनका पुत्र था ॥४८॥

रिवेयोर्ज्वलना नाम भार्या वै तक्षकात्मजा।
यस्या देव्या स राजर्षी रन्ति नाम त्वजीजनत् ॥४६
रन्तिनार सरस्वत्या पुत्रानजनयच्छुभान्।
अमु तथा प्रतिरथ ध्र ुवश्चै वातिधार्मिकम् ॥५०
गौरी कन्या च विख्याता मान्धातुर्जननी शुभा।
ध्रुवं प्रतिरथस्यापि कण्ठस्तस्याभवत् सुत ॥५१
मेधातिथि सुतस्तस्य यस्मात् काण्ठायना द्विजा।
इतिनानुयमस्यासीत् कन्या साजनयत्सुतान् ॥५२
अमु सुदयित पुत्र मलिन ब्रह्मवादिनम्।
उपदात ततो लेभे चतुरस्त्वित्ति सात्मजान् ॥५३
सुष्मन्तमथ दुष्यन्त प्रवीरमनघस्तथा।
चक्रवर्त्ती ततो जज्ञे दौष्यन्तिर्नृ पसत्तम ॥५४
शकुन्तलाया भरतो यस्य नाम्ना तु भारतम्।
दुष्यन्त प्रति राजान वागुवाचाशरीरिणी ॥५५
माता भस्त्रा पितु पुत्रो येन जात स एव स।
भरस्व पुत्र दुष्यन्त सत्यमाह शकुन्तला ॥५६
रेतोधा पुत्र नयति नरदेव यमक्षयात्।
त्व-चास्य धाता गर्भस्य मात्यमस्था शकुन्तलाम् ॥५७

रिवेयु की 'ज्वलना'—इस नाम वाली तक्षक पुत्री भार्या हुई थी। उस राजर्षि रिवेयु ने जिस ज्वलना देवी म रन्ति नाम वाला पुत्र उत्पन्न किया था

॥४६॥ नार रन्ति ने सरस्ती में शुभ पुत्रों को समुत्पन्न किया था। उन पुत्रों के नाम हैं—त्रसु-प्रतिरथ और अतिधार्मिक ध्रुव ॥५०॥ और गौरी विख्यात कन्या थी जोकि मान्धाता की शुभ माता हुई थी। प्रतिरथ का पुत्र धुर्य हुआ और उसका पुत्र कण्ठ नाम धारी हुआ ॥५१॥ उसका पुत्र मेधातिथि हुआ जिससे काण्ठायन द्विज हुए। इतिनातु यम की कन्या थी उसने पुत्रों को जन्म दिया था ॥५२॥ त्रसु ने सुदयित पुत्र को जो मनिन, ब्रह्मवादी और उपदाता था, प्राप्त किया। इसके पश्चात् उसने चार पुत्रों की प्राप्ति की ॥५३॥ सुष्मन्त इसके उपरान्त दुष्यन्त-प्रवीर और अनघ ये उनके नाम थे। इसके अनन्तर नृपश्रेष्ठ चक्रवर्त्ती दौष्यन्ति उत्पन्न हुआ था ॥५४॥ शकुन्तला में भरत ने जन्म ग्रहण किया था जिसके नाम से इस देश का नाम भारत हुआ है। राजा दुष्यन्त से मूर्तिमती वाणी ने कहा था ॥५५॥ माता भस्त्रा पिता का पुत्र है, जिससे उत्पन्न हुआ है वह वही है, पुत्र का भरण करो, शकुन्तला दुष्यन्त से सत्य कहती है ॥५६॥ हे नरदेव! यम क्षय से रेतोधा पुत्र को प्राप्त करता है और तुम इसके गर्भ के धाता हो, शकुन्तला का अपमान मत करो ॥५७॥

भरतस्त्रिसृषु स्त्रीषु नव पुत्रानजीजनत्।
नाभ्यनन्दन्त तान् राजा नानुरूपाणमेत्युत ॥५८

ततस्ता मातरः क्रुद्धा पुत्रान्निन्युर्यमक्षयम्।
ततस्तस्य नरेन्द्रस्य वितथं पुत्रजन्म तत् ॥५६

ततो मरुद्भिरानीय पुत्रस्तु स बृहस्पते।
सङ्क्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्विभुः ॥६०

तत्रैवोदाहरन्तीदं भरद्वाजस्य धीमतः।
जन्मसङ्क्रमणञ्चैव मरुद्भिर्भरताय वै ॥६१

भरतस्तु भरद्वाज पुत्रं प्राप्य तदाब्रवीत्।
प्रजायां संहृतायां वै कृतार्थोऽहं त्वया विभो ॥६२

पूर्वन्तु वितथं तस्य कृतं वै पुत्रजन्म हि।
ततः स वितथो नाम भरद्वाजस्तथाऽभवत् ॥६३

तस्माद्दिव्यो भरद्वाजो ब्राह्मण्यात् क्षत्रियोऽभवत् ।
द्विमुष्यायननामा स स्मृतो द्विपितृकस्तु वै ॥६४
ततोऽथ वितथे जाते भरत स दिवं ययौ ।
वितथस्य तु दायादो भुवमन्युर्बभूव ह ॥६५
महाभूतोपमाश्चासंश्चत्वारो भुवमन्युजा ।
बृहत्क्षत्रो महावीर्यो नरो गार्ग्यश्च वीर्यवान् ॥६६
नरस्य साङ्कृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रौ महौजसौ ।
गुरुवीर्यस्त्रिदेवश्च साङ्कृत्यायवरौ स्मृतौ ॥६७
दायादाश्चापि गार्ग्यस्य शिनिवृद्धात् बभूव ह ।
स्मृताश्च ते ततो गार्ग्याः क्षात्रोपेता द्विजातयः ॥६८

भरत ने तीन स्त्रियों में नौ पुत्रों को उत्पन्न किया था किन्तु राजा ने उनका अभिनन्दन नहीं किया था ये मेरे अनुरूप नहीं हैं ॥५८॥ इसके अनन्तर माताएँ बहुत क्रुद्ध हुईं और उन्होंने पुत्रों को यम क्षय को प्राप्त कर दिया था। इसके उपरान्त उस राजा का वह पुत्र जन्म वितथ होगया था ॥५९॥ इसके पश्चात् मरुतों ने बृहस्पति से वह पुत्र लाकर क्रतु मरुतों ने विभु भरद्वाज को सङ्क्रामित किया ॥६०॥ यहाँ पर ही धीमान् भरद्वाज का यह मरुतों के द्वारा भरत के लिये जन्म का सङ्क्रामण उदाहृत करते हैं ॥६१॥ भरत ने तो भरद्वाज को पुत्र प्राप्त करके उस समय कहा—हे विभो! मेरी प्रजा के सङ्कुल हो जाने पर आपने मुझे कृतार्थ किया है ॥६२॥ उसका पहिले तो पुत्र जन्म वितथ कर दिया था। इसके पश्चात् वह भरद्वाज वितथ नाम वाला होगया था ॥६३॥ इससे द्विज भरद्वाज ब्राह्मण्य से क्षत्रिय होगया था तब वह द्विमुष्यायन नाम वाला और द्विपितृक कहा गया है ॥६४॥ फिर उस वितथ के उत्पन्न होने पर वह भरत दिवलोक को चला गया था। वितथ का दायाद (पुत्र) भुवमन्यु हुआ था ॥६५॥ महाभूत के समान भुवमन्यु से जन्म ग्रहण करने वाले पुत्र चार हुए थे। उन चारों के नाम बृहत्क्षत्र-महावीर्य-नर और वीर्यवान् गार्ग्य थे ॥६६॥ नर से पुत्र साङ्कृति नामधारी हुआ था। उस साङ्कृति से महान् ओज वाले दो पुत्र हुए थे जिनके नाम गुरुवीर्य और त्रिदेव थे जो साङ्कृत्यवर हुए

गये हैं ॥६७॥ गार्ग्यस्य शिनि गर्ग से भी दायाद हुए और ये क्षात्र धर्म से युक्त द्विजाति गार्ग्य कहे गये हैं ॥६८॥

महावीर्यसुतश्चापि भीमस्तस्मादुरुक्षयः ।
तस्य भार्या विशाला तु सुषुवे वै सुतांस्त्रयः ॥६९
त्र्यारुणिं पुष्करिणं तृतीयं सुषुवे कपिम् ।
कपेः क्षत्रवरा ह्येते तयोः प्रोक्ता महर्षयः ॥७०
गार्ग्याः सांकृतयो वीर्याः क्षात्रोपेता द्विजातयः ।
संश्रिताङ्गिरसं पक्षं बृहत्क्षत्रस्य वक्ष्यति ॥७१
बृहत्क्षत्रस्य दायादः सुहोत्रो नाम धार्मिकः ।
सुहोत्रस्यापि दायादो हस्ती नाम बभूव ह ।
तेनेदं निर्मितं पूर्वं नाम्ना वै हास्तिनं पुरम् ॥७२
हस्तिनश्चापि दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः ।
अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढस्तथैव च ॥७३
अजमीढस्य पुत्रास्तु शुभाः शुभकुलोद्वहाः ।
तपसोऽन्ते सुमहतो जाता वृद्धस्य धार्मिकाः ॥७४
भरद्वाजप्रसादेन श्रृणुध्वं तस्य विस्तरम् ।
अजमीढस्य केशिन्यां कण्ठः समभवत्किल ॥७५
मेधातिथिः सुतस्तस्य तस्मात् काण्वायना द्विजाः ।
अजमीढस्य धूमिन्यां जज्ञे बृहद्वसुर्नृप ॥७६

महावीर्य का पुत्र भी भीम नामक हुआ और उससे फिर उरुक्षय हुआ उसकी भार्या विशाला नाम वाली ने तीन पुत्रों का प्रसव किया था ॥६९॥ एक का नाम त्र्यारुणि था, दूसरा पुष्करिण और तृतीय कपि हुआ था। कपि के ये क्षत्र वर हुए और उन दोनों के महर्षि कहे गये हैं ॥७०॥ गार्ग्य-सांकृत्य, वीर्य क्षात्र धर्म से युक्त द्विजाति थे। आङ्गिरस के पक्ष का आश्रय लेकर बृहत्क्षत्र का बतलावेंगे ॥७१॥ बृहत्क्षत्र का दायाद सुहोत्र नाम वाला परम धार्मिक था। सुहोत्र का भी दायाद हस्ती नाम वाला हुआ था। उसने ही यह हास्तिन पुर नाम से पहिले बनाया था ॥७२॥ हस्ती के भी तीन पुत्र समुत्पन्न हुए

थे जोकि परम धर्म के मानने वाले थे। उन तीनो के नाम अजमीढ-द्विमीढ तथा पुरुमीढ ये थे ॥७३॥ अजमीढ के जो पुत्र हुए थे वे बहुत ही शुभ और कुल के उद्वहन करने वाले थे। सुमहान् तप के अन्त में वृद्ध राजा के धार्मिक हुए थे ॥७४॥ वे भरद्वाज के प्रसाद से ही हुए थे अब उनका विस्तार का श्रवण करो। अजमीढ नाम वाले के केशिनी में कण्ठनाम धारी उत्पन्न हुआ था ॥७५॥ मेधातिथि नाम वाला उसका पुत्र था। उससे फिर कण्टायन द्विज उत्पन्न हुए थे ॥७६॥

बृहद्वसोर्बृहद्विष्णु. पुत्रस्तस्य महाबल. ।
बृहत्कर्मा सुतस्तस्य पुत्रस्तस्य बृहद्रथ ॥७७
विश्वजित्तनयस्तस्य सेनजित्तस्य चात्मज ।
अथ सेनजित. पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुता. ॥७८
रुचिराश्वश्च काव्यश्च रामो दृढधनुस्तथा ।
वत्सश्चावन्तको राजा यस्य ते परिवत्सरा ॥७९
रुचिराश्वस्य दायादः पृथुषेणो महायशा ।
पृथुषेणस्य पारस्तु पाराश्नीपोऽथ जज्ञिवान् ८०
यस्य चैकशतञ्चासीत् पुत्राणामिति न श्रुतम् ।
नीपा इति समाख्याता राजान सर्व एव ते ॥८१
तेषा वशकरः श्रीमान् राजासीत्कीर्त्तिवर्द्धन ।
काम्पिल्ये समरो नाम स चेष्टसमरोऽभवत् ॥८२
समरस्य परः पार सत्वदश्व इति त्रय. ।
पुत्राः सर्वगुणोपेता. पारपुत्रो वृपुर्वभो ॥८३
वृपोस्तु सुकृतिर्नाम सुकृतेनह कमणा ।
जज्ञे सर्वगुणोपेतो विभ्राजस्तस्य चात्मजः ॥८४

अजमीढ के धूमिनी में वृहद्वसु राजा ने जन्म ग्रहण किया था ॥७७॥ वृहद्वसु से वृहद्विष्णु पुत्र हुआ था जो महान् बल वाला था उसका पुत्र वृहत्कर्मा हुआ और फिर उसका पुत्र वृहद्रथ नाम वाला हुआ था। उसका अर्थात् बृहद्रथ का तनय विश्वजित् हुआ और उसका सेनजित आत्मज हुआ था। इसके उप-

रान्त फिर सेनजित् के लोक में परम प्रसिद्ध चार पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था ॥७८॥ उन चारों पुत्रों के नाम रुचिराश्व—काव्य—राम और दृढधनु ये थे। वत्स आवन्तक राजा था जिसके ये परिवत्सर हुए हैं ॥७६॥ रुचिराश्व का दायाद महान् यश वाला पृथुषेन था। पृथुषेन का पार हुआ और पार से नीप ने जन्म लिया था ॥८०॥ जिसके एक सौ पुत्र हुए थे—यह हमसे सुना गया है। वे समस्त राजा लोग नीपा—नाम से समाख्यात हुए थे ॥८१॥ उनके वंश को करने अर्थात् चलाने वाला श्रीमान् कीर्तिवर्द्धन राजा हुआ था काम्पिल्य में समर नाम वाला वह सचेष्ट समर हुआ था ॥८२॥ समर के पर पार और सत्वद ये तीन आत्मज हुए थे। ये समस्त पुत्र सर्वगुण गण से सम्पन्न थे। पार का पुत्र पृथु गुणोज्वल हुआ था ॥८३॥ पृथु का सुकृति नामक पुत्र यहाँ सुकृत कर्म के द्वारा समस्त गुणों से युक्त हुआ था और उसका पुत्र विभ्राज नाम वाला हुआ था ॥८४॥

विभ्राजस्य तु दायादस्त्वणुहो नाम पार्थिवः ।
बभूव शुकजामाता कृत्वीभर्ता महायशाः ॥८५
अणुहस्य तु दायादो ब्रह्मदत्तो महातपाः ।
योगसूनु सुतस्तस्य विष्वक्सेनोऽभवन्नृपः ॥८६
विभ्राजपुत्रो राजानं सुकृतेनेह कर्मणा ।
विष्वक्सेनस्य पुत्रस्तु उदक्सेनो बभूव ह ॥८७
भल्लाटस्तस्य दायादो येन राजा पुरा हतः ।
भल्लाटस्य तु दायादो राजासीज्जनमेजयः ।
उग्रायुधेन तस्यार्थे सर्वे नीपाः प्रणाशिताः ॥८८
परीक्षितस्य दायादो बभूव जनमेजयः ।
श्रुतसेनस्य दायादो भीमसेनोऽपि नामतः ॥८९
जह्नुस्त्वजनयत्पुत्रं सुरथं नाम भूमिपम् ।
सुरथस्य तु दायादो वीरो राजा विदूरथः ॥९०
विदूरथसुतश्चापि सार्वभौम इति श्रुतिः ।
सार्वभौमाज्जयत्सेन आराधिस्तस्य चात्मजः ॥९१

आराधितो महासत्त्व अयुतायुस्तत स्मृत ।
अक्रोधनाऽयुतायोऽस्तु तस्माद् वातिथि स्मृत ॥६२
देवातिथेस्तु दायाद ऋक्ष एव बभूव ह ।
भीमसेनस्तथा ऋक्षाद्दिलीपस्तस्य चात्मज ॥६३
दिलीपसूनु प्रतिपस्तस्य पुत्रास्त्रय स्मृता ।
देवापि शान्तनुश्चैव वाह्लीकश्चैव ते त्रय ॥६४

विभ्राज का दायाद अणुह नामधारी राजा हुआ था। शुकजा माता थी और महान् यशवाला अतीव भर्ता ॥८५॥ अणुह का दायाद (पुत्र) महान् तपस्वी ब्रह्मदत्त हुआ था और उसका तनय योग सूनु और उसका पुत्र विष्वक सेन नृप हुआ था ॥८६॥ विभ्राज के पुत्र सब यहाँ सुकृत कर्म के द्वारा राजा हुए थे। विष्वक्सेन का पुत्र उदक्सेन हुआ था ॥८७॥ उसका दायाद भल्लाट था जिसने पहिले राजा का हनन किया था भल्लाट का दायाद राजा जनमजय था। उसके लिए उग्रायुध ने समस्त नीपों प्रणष्ट कर दिया था ॥८८॥ श्री सूतजी ने कहा—परीक्षित का दायाद जनमजय नाम वाला हुआ था। श्रुतसेन का पुत्र नाम से भीमसेन हुआ था ॥८९॥ जह्नु ने सुरथ नाम वाला राजा पुत्र के रूप में उत्पन्न किया था। सुरथ का दायाद परम वीर राजा विदूरथ हुआ था ॥९०॥ विदूरथ का पुत्र सार्वभौम था—ऐसी श्रुति है। सार्वभौम से जयत्सेन उत्पन्न हुआ और उस जयत्सेन का पुत्र आराधि नाम वाला हुआ था ॥९१॥ आराधि से अयुतायु हुआ था जो महान् सत्त्व वाला कहा गया है। फिर उस अयुतायु का अक्रोधन पुत्र हुआ और उस अक्रोधन से देवातिथि पुत्र हुआ था ॥९२॥ देवातिथि का दायाद ऋक्ष नाम वाला हुआ था। ऋक्ष से भीमसेन की उत्पत्ति हुई और उसका पुत्र दिलीप नामधारी हुआ था ॥९३॥ दिलीप का पुत्र प्रतिप हुआ और उस प्रतिप के तीन पुत्र कहे गये हैं। जिनके नाम देवापि-शान्तनु और वाह्लीक ये तीन थे ॥९४॥

वाह्लीकस्य तु विज्ञेय सप्तवाह्लीश्वरो नृप ।
वाह्लीकस्य सुतश्चैव सोमदत्तो महायशा ॥९५

जज्ञिरे सोमदत्तात्तु भूरिर्भूरिश्रवा शलः ।
देवापिस्तु प्रवव्राज वनं धर्म्मपरीप्सया ॥९६
उपाध्यायस्तु देवाना देवापिरभवन्मुनिः ।
च्यवनोऽस्य हि पुत्रस्तु इष्टकश्च महात्मनः ॥९७
शान्तनुस्त्वभवद्राजा विद्वान् वै स महाभिषः ।
इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं प्रति महाभिषम् ॥९८
यं यं राजा स्पृशति वै जीर्णं समयतो नरम् ।
पुनर्युवा स भवति तस्मात्तं शान्तनुं विदुः ॥९९
ततोऽस्य शान्तनुत्वं वै प्रजास्विह परिश्रुतम् ।
स उपयेमे धर्म्मात्मा शान्तनुर्जाह्नवीं नृपः ॥१००
तस्यां देवव्रतं भीष्मं पुत्रं सोऽजनयत्प्रभुः ।
स च भीष्म इति ख्यातः पाण्डवानां पितामहः ॥१०१
काली विचित्रवीर्यन्तु शान्तनुं जनयत्सुतम् ।
शान्तनोर्दयितं पुत्रं प्रजाहितकरम्प्रभुम् ।
कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षेत्रे वै चित्रवीर्यके ॥१०२
धृतराष्ट्रञ्च पाण्डुञ्च विदुरञ्चाप्यजीजनत् ।
धृतराष्ट्रात्तु गान्धारी पुत्राणां सुषुवे शतम् १०३
तेषां दुर्योधनो ज्येष्ठः सर्व्वक्षत्रस्य स प्रभुः ।
माद्री राज्ञी पृथा चैव पाण्डोर्भार्ये बभूवतुः ॥१०४

बाह्लीक का पुत्र बाह्लीश्वर नृप हुआ था। और बाह्लीक का पुत्र महान् यश वाला सोमदत्त था ॥९५॥ सोमदत्त से भूरि-भूरिश्रवा और शल नाम वाले तीन पुत्र रत्न समुत्पन्न हुए थे। देवापि तो धर्म की इच्छा से वन में चला गया था ॥९६॥ देवापि मुनि वहाँ वन में जाकर देवगण का उपाध्याय होगया था। इसका पुत्र च्यवन और महान् आत्मा वाले का इष्टक हुआ था ॥९७॥ शान्तनु तो राजा हुआ था वह महान् विद्वान् और महाभिष था। महाभिष के प्रति यहाँ पर इस श्लोक का उदाहरण किया करते हैं ॥९८॥ समय से जीर्ण जिस-जिस भी मनुष्य को राजा स्पर्श किया करता है वह फिर अपने

उस वार्द्धक्य का त्याग कर युवा हो जाता है इसी से उसे शान्तनु कहा करते थे ।।९९।। इनके पश्चात् इसको शान्तनुत्व प्रजाओं में यहाँ परिश्रुत है। उस शान्तनु राजा ने जोकि अत्यन्त धर्मात्मा था जाह्नवी के साथ विवाह किया था, जह्नु राजा की पुत्री गङ्गा को जाह्नवी कहा जाता था ॥१००॥ उस प्रभु शान्तनु ने उस जाह्नवी में देवव्रत नाम वाले भीष्म पुत्र को उत्पन्न किया था। वह पाण्डवों का पितामह 'भीष्म'—इस नाम से ही प्रख्यात था ॥१०१॥ समय आने पर शान्तनु ने विचित्र वीर्य पुत्र को उत्पन्न किया था। यह शान्तनु को परम प्रिय और प्रजा का हित करने वाले प्रभु पुत्र था। इस विचित्र वीर्य के क्षेत्र में कृष्ण द्वैपायन ने धृतराष्ट्र—पाण्डु और विदुर को उत्पन्न किया था। धृतराष्ट्र से उसकी पत्नी गान्धारी में सौ पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥१०२-१०३॥ उन एक सौ पुत्रों में सबसे बड़ा सर्वक्षत्र का प्रभु वह दुर्योधन था। रानी माद्री और पृथा ये दो पत्नियाँ पाण्डु की हुई थीं ॥१०४॥

देवदत्ता सुतास्ताभ्यां पाण्डोरर्थे विजज्ञिरे ।
धर्माद्युधिष्ठिरो जज्ञे वायोर्जज्ञे वृकोदरः १०५
इन्द्राद्धनञ्जयो जज्ञे शक्रतुल्यपराक्रमः ।
अश्विभ्यां सह देवश्च नकुलश्चापि माद्रिजौ ॥१०६
पञ्चैव पाण्डवेभ्यश्च द्रौपद्या जज्ञिरे सुता ।
द्रौपद्यजनयज्ज्येष्ठं श्रुतिविद्धं युधिष्ठिरात् ॥१०७
हिडम्बा भीमसेनात्तु जज्ञे पुत्रं घटोत्कचम् ।
काश्या पुनर्भीमसेनाज्जज्ञे सर्व्ववृकं सुतम् ॥१०८
सुहोत्रं विजया माद्री सहदेवादजायत ।
करेमत्यान्तु चैद्याया निरमित्रस्तु लाङ्गलिः ॥१०९
सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत ।
उत्तरायान्तु वैराट्या परीक्षिदभिमन्युजः ॥११०
परीक्षितस्तु दायादो राजासीज्जनमेजय ।
ब्राह्मणान् स्थापयामास वै वाजसनेयिनान् ॥१११

असपत्न तदामर्षाद्वैशम्पायन एव तु ।
न स्यास्यतीह दुर्बुद्धे तवैतद्वचन भुवि ॥११२
यावत्स्थास्याम्यह लोके तावन्नैतत्प्रशस्यते ।
अभित सस्थितश्चापि ततः स जनमेजय ॥११३
पौर्णमास्येन हविषा देवमिष्ट्वा प्रजापतिम् ।
विज्ञाय सस्थितोऽपश्यत्तद्वधीष्टा विभोर्मखे ॥११४

उन दोनो पत्नियो से देवों के द्वारा दिये हुए पाण्डु के अर्थ में पुत्र समुत्पन्न हुए थे। धर्म से युधिष्ठिर—वायु से वृकोदर—इन्द्र से धनञ्जय जो इन्द्र के समान पराक्रमी था—अश्विनी कुमारो से सहदेव और माद्री से जन्म लेने वाले नकुल ये दो पुत्र हुए थे ॥१०५-१०६॥ इन पाँचो पाण्डवो से पाँच ही द्रौपदी में पुत्र उत्पन्न हुए थे। द्रौपदी ने सबसे बड़ा पुत्र युधिष्ठिर से श्रुति विद्ध नाम वाला समुत्पन्न किया था ॥१०७॥ हिडम्बा ने भीमसेन से घटोत्कच नाम वाला पुत्र उत्पन्न किया था। काशी से भीमसेन का सर्ववृक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥१०८॥ सहदेव से विजया माद्री ने सुहोत्र नाम वाला पुत्र जन्माया था। करेमती वैद्या मे निरमित्र जाङ्गलि उत्पन्न हुआ ॥१०९॥ सुभद्रा मे रथी अभिमन्यु पार्थ अर्जुन से समुत्पन्न हुआ था। वैराटी उत्तरा मे अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित उत्पन्न हुआ ॥११०॥ परीक्षित् का दायाद राजा जनमेजय हुआ था। उसने वाजसनेयी ब्राह्मणो की स्थापना की थी ॥१११॥ तब अमर्ष से वैशम्पायन ने कहा—हे दुर्बुद्धे ! भूमि म यहाँ तेरा यह असपत्न वचन नहीं रहेगा ॥११२॥ मैं जब तक लोक मे रहूँगा तब तक यह प्रशस्त नही होगा। चाहे सब प्रकार से वह जनमेजय सस्थित भी था ॥११३॥ पौर्णमास्य हवि से प्रजापति देव का यजन करके और जानकर विभु के मख मे सस्थित होते हुए उसकी तरह अभीष्ट को देखा था ॥११४॥

परीक्षित्तनयश्चापि पौरवो जनमेजयः ।
द्विरश्वमेधमाहृत्य ततो वाजसनेयकम् ।
प्रवर्त्तयित्वा तद्ब्रह्मत्रिखर्वी जनमेजय ॥११५

सर्व्वमश्वकमुख्याना खर्व्वमङ्गनिवासिनाम् ।
सर्व्वंश्च मध्यदेशाना त्रिखर्वी जनमेजय ।
विपादाद् ब्राह्मणैं सार्द्धमभिशस्त क्षय ययौ ॥११६
तस्य पुत्र शतानीको बलवान् सत्यविक्रम ।
तत सुत शतानीक विप्रास्तमभ्यषेचयत् ॥११७
पुत्रोऽश्वमेध दत्तोऽभूच्छतानीकस्य वीर्य्यवान् ।
पुत्रोऽश्वमेधदत्ताद्धं जात परपुरजय ॥११८
अधिसामकृष्णो धर्मात्मा साम्प्रतोऽय महायशा ।
यस्मिन् प्रशासति मही युष्माभिरिदमाहृतम् ॥११६
दुराप दीर्घसत्र वै त्रीणि वर्षाणि दुश्चरम् ।
वर्षद्वय कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्या द्विजोत्तमा ॥१२०

परीक्षित के पुत्र पौरव जनमेजय ने दो अश्वमेध यज्ञो का आहरण करके इसके पश्चात् वाजसनेय को प्रवृत्त कराकर सब जनमेजय प्रसूतित्रिखर्वी होगया था ॥११५॥ मुख्य अश्वो की एक सब सख्या—अङ्गनिवासियो का एक खब और मध्य देशो का एक खब इस तरह से जनमेजय त्रिखर्वी हुआ था। विपाद से ब्राह्मणों के साथ अभिशस्त होता हुआ क्षय को प्राप्त हुआ था ॥११६॥ उसका पुत्र शतानीक था जो बहुत बलवान् और सत्य विक्रम वाला था। इसके पश्चात् ब्राह्मणो ने उस पुत्र शतानीक को राज्य पर अभिषेक कर दिया था ॥११७॥ शतानीक का पुत्र अश्वमेध दत्त बडा वीर्यवान् हुआ था। अश्वमेध दत्त से परपुरजय पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥११८॥ यह महान् यशवाला साम्प्रत बहुत धर्मात्मा अधिसाम कृष्ण है जिसके भूमिपर प्रशासन करने पर तुम लोगो ने यह आहृत किया है। जोकि तीन वर्ष पर्यन्त बडा दुश्चर एव दुराप यह दीर्घ सत्र है। हे द्विजोत्तमो ! दो वर्ष तक कुरुक्षेत्र मे दृषद्वती मे हुआ था ॥११६ १२०॥

श्रोतु मविष्यमिच्छाम प्रजाना वै महामते ।
सूत सार्द्धं नृपैर्भाव्य व्यतीत कीर्त्तित त्वया ॥१२१
यत् सस्थास्यते कृत्यमुत्पत्स्यन्ति च ये नृपा ।
वर्षाग्रतोऽपि प्रब्रूहि नामतश्चैव तान्नृपान् ॥१२२

काल युगप्रमाणञ्च गुणदोषान् भविष्यत ।
सुखदु खे प्रजानाञ्च धर्मत कामतोऽर्थत ॥१२३
एतत्सर्वं प्रसङ्ख्याय पृच्छता ब्रू हि तत्वत ।
स एवमुक्तो मुनिभिः सूतो बुद्धिमता वर ।
आचचक्षे यथावृत्त यथादृष्ट यथाश्रुतम् ॥१२४
यथा मे कीर्त्तित सर्व व्यासेनाद्भुतकर्म्मणा ।
भाव्य कलियुगञ्चै व तथा मन्वन्तराणि तु ॥१२५
अनागतानि सर्वाणि ब्रु वतो मे निबोधत ।
अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि भविष्यन्ति नृपास्तु ये ॥१२६
ऐलाश्चैव तथेक्ष्वाकून् सौद्युम्नाश्चैव पार्थिवान् ।
येषु सस्थाप्यते क्षेत्रमैक्ष्वाकवमिद शुभम् ॥१२७
तान् सर्वान् कीर्त्तयिष्यामि भविष्ये पठितान्नृपान् ।
तेभ्य परे च ये चान्ये उत्पत्स्यन्ते महीक्षित ॥१२८
क्षत्रा पारशवा शूद्रास्तथा ये च द्विजातय ।
अन्धा शका पुलिन्दाश्च चूलिका यवनै सह ॥१२९
कैवर्त्ताभीरशबरा ये चान्ये म्लेच्छजातय ।
वर्षाग्रत प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान्नृपान् ॥१३०

ऋषियो ने कहा—हे महान् मति वाले ! अब हम लोग प्रजाओ का आगे आने वाला भविष्यकाल सुना की उत्कट इच्छा करत हैं । हे सूत ! आपने अब तक तो जो होगया और होरहा है वह हो वर्णन किया है ॥१२१॥ जो द्रव्य सश्चित होगा और जो राजा लोग उत्पन्न होंगे । उन समस्त राजाओ को वर्षाग्र से और नाम से बतलाइये ॥१२२॥ काल और युग का प्रमाण तथा होने वाले गुण एव दोषो को बताइये । धर्म से और काम से प्रजाओं के सुख तथा दुःखो को भी बताइये ॥१२३॥ यह सब प्रसख्यान करके पूछने वाले हमको आप कृपा करके तात्त्विक रूप से बताइये । बुद्धिमानो म परम श्रेष्ठ इस तरह से मुनियो के द्वारा पूछे गये श्री सूतजी ने जैसा भी हुआ जैसा देखा और जिस प्रकार से सुना था वह कहना आरम्भ कर दिया था ॥१२४॥ श्री सूतजी ने

कहा—अद्भुत कर्म करने वाले श्री व्यासजी ने जिस तरह से मुझको यह सब कहा था। भाव्य–कलियुग और मन्वन्तर उन सब प्रमाणों को मुझसे जान लो। इसके आगे जो नृप होंगे उनको बताऊँगा ॥१२५-१२६॥ ऐलो को–इक्ष्वाकुओं को और सौद्युम्न राजाओं को जिनमें यह शुभ ऐक्ष्वाकन क्षेत्र सस्थापित किया जाता है इन सब भविष्य में घटित राजाओं का वर्णन करूँगा। और उनके आगे जो अन्य राजा लोग उत्पन्न होंगे ॥१२७-१२८॥ पारशव क्षत्रियो का समूह तथा शूद्र और जो द्विजातिगण थे, अन्ध–शक–पुलिन्द–यवनों के साथ चूलिक–कैवर्त्त–आभीर–शबर और जो अन्य म्लेच्छ जाति वाले लोग इन समस्त नृपों को वर्णाग्र तथा नाम से बतलाऊँगा ॥१२९-१३०॥

अधिसामकृष्ण सोऽयं साम्प्रतं पौरवान्नृपः ।
तस्यान्ववाये वक्ष्यामि भविष्ये तावतो नृपान् ॥१३१
अधिसामकृष्णपुत्रो निर्वक्त्रो भविता किल ।
गङ्गयापहृते तस्मिन्नगरे नागसाह्वये ।
त्यक्त्वा च तं सुवासञ्च कौशाम्ब्यां स निवत्स्यति ॥१३२
भविष्यदुष्णस्तत्पुत्र उष्णाच्चित्ररथः स्मृतः ।
शुचिद्रथश्चित्ररथाद्वृतिमांश्च शुचिद्रथात् ॥१३३
सुषेणो वै महावीर्यो भविष्यति महायशाः ।
तस्मात्सुषेणाद्भविता सुतीर्थो नाम पार्थिवः ॥१३४
रुचः सुतीर्थाद्भविता त्रिचक्षो भविता ततः ।
त्रिचक्षस्य तु दायादो भविता वै सुखीवलः ॥१३५
सुखीवलसुतश्चापि भाव्यो राजा परिप्लुतः ।
परिप्लुतसुतश्चापि भविता सुनयो नृपः ॥१३६
मेधावी सुनयस्याथ भविष्यति नराधिपः ।
मेधाविनः सुतश्चापि दण्डपाणिर्भविष्यति ॥१३७
दण्डपाणेर्निरामित्रो निरामित्राच्च क्षेमकः ।
पञ्चविंशन्नृपा ह्येते भविष्या पूर्ववंशजाः ॥१३८

अधिसाम कृष्ण वह यह साम्प्रत पौरवों का राजा है। उसके अन्वय में भविष्य में इतने राजाओं का वर्णन करूँगा ॥१३१॥ अधिसाम कृष्ण का पुत्र निर्वक्र में होगा। नागस नामक उस नगर के गङ्गा के द्वारा अपहृत होजाने पर वह उसका निवास त्याग करके कौशाम्बी में निवास करेगा ॥१३२॥ उसका पुत्र उष्ण होगा और उष्ण से चित्ररथ होगा। चित्ररथ का पुत्र शुचिद्रथ होगा और शुचिद्रथ से वृत्तिमान् होगा ॥१३३॥ सुषेण निश्चय ही महान् यशवाला होगा। उस सुषेण का आत्मज सुतीर्थ नामधारी राजा होगा ॥१३४॥ सुतीर्थ से रुच का जन्म होगा और फिर उससे त्रिचक्ष होगा। त्रिचक्ष का दायाद सुखीबल नाम वाला होगा ॥१३५॥ सुखीबल का पुत्र परिप्लुत नामक राजा होगा। फिर परिप्लुत का पुत्र सुनय नाम वाला राजा होगा ॥१३६॥ सुनय का पुत्र मेधावी नामक राजा होगा और मेधावी का पुत्र दण्डपाणि नाम वाला जन्म ग्रहण करेगा ॥१३७॥ दण्डपाणि से निरामित्र होगा और निरामित्र से क्षेमक नाम वाला जन्म प्राप्त करेगा। ये पच्चीस राजा पूर्व वंशज होंगे ॥१३८॥

आत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतो विप्रैः पुराविदैः ।
ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिर्वंशो देवर्षिसत्कृतः ॥१३९
क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ।
इत्येष पौरवो वंशो यथावदनुकीर्त्तितः ॥१४०
धीमतः पाण्डुपुत्रस्य ह्यर्जुनस्य महात्मनः ।
अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि इक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ॥१४१
बृहद्रथस्य दायादो वीरो राजा बृहत्क्षयः ।
तत क्षयः सुतस्तस्य वत्सव्यूहस्ततः क्षयात् ॥१४२
वत्सव्यूहात्प्रतिव्यूहस्तस्य पुत्रो दिवाकरः ।
यत्र साम्प्रतमध्यास्ते अयोध्या नगरी नृप ॥१४३
दिवाकरस्य भविता सहदेवो महायशाः ।
सहदेवस्य दायादो बृहदश्वो भविष्यति ॥१४४
तस्य भानुरथो भाव्य प्रतीताश्वश्च तत्सुतः ।
प्रतीताश्वसुतश्चापि सुप्रतीतो भविष्यति ॥१४५

सहदेव सुतस्तस्य सुनक्षत्रस्तु तत्सुतः ।।१३९

यहाँ पर पुराणवेत्ता विप्रों के द्वारा अनुवंश का यह श्लोक गाया गया है जो बहुश्रुत भी दीप्ति है वह सब देवर्षियों के द्वारा ग्रहण हुआ है ।।१३९।। बृहद्बल अयुतायिन यह पौरव वंश होकर राजा को प्राप्त करके कलियुग में संख्या को प्राप्त करेगा ।।१४०।। परम बुद्धिमान् महान् आत्मा वाले पाण्डु के पुत्र अर्जुन का यह वंश है । अब इसके आगे महात्मा इक्ष्वाकुओं के वंश का वर्णन करेंगे ।।१४१।। बृहद्बल का दायाद वीर राजा बृहत्क्षय है फिर उसके पश्चात् उसका पुत्र बालव्यूह नाम से हुआ ।।१४२।। बालव्यूह से प्रतिव्यूह और उसका पुत्र दिवाकर हुआ है जो इस समय में अयोध्या नगरी का राजा है ।।१४३।। दिवाकर का पुत्र महान् यश वाला सहदेव होगा और सहदेव का उत्तराधिकारी पुत्र बृहदश्व होगा ।।१४४।। उस बृहदश्व राजा का पुत्र भानुरथ होगा और उसका पुत्र प्रतीताश्व होगा । प्रतीताश्व का पुत्र सुप्रतीक नाम वाला जन्म ग्रहण करेगा ।।१४५।। उस सुप्रतीक का पुत्र सहदेव होगा और सहदेव का पुत्र सुनक्षत्र जन्म लेगा ।।१४६।।

किन्नरस्तु सुनक्षत्राद्भविष्यति परंतप ।
भविता चान्तरिक्षस्तु किन्नरस्य सुतो महान् ।।१४७
अन्तरिक्षात्सुपर्णस्तु सुपर्णाच्चाप्यमित्रजित् ।
पुत्रस्तस्य भरद्वाजो धर्मी तस्य सुत स्मृत ।
पुत्र कृतञ्जयो नाम धर्मिण स भविष्यति ।
कृतञ्जयसुतो भ्राता तस्य पुत्रो रणञ्जय ।।१४८
भविता सञ्जयश्चापि वीरो राजा रणञ्जयात् ।
सञ्जयस्य सुत शाक्य शाक्याच्छुद्धोदनोऽभवत् ।।१४९
शुद्धोदनस्य भविता शाक्यार्थे राहुल स्मृत ।
प्रसेनजित्ततो भाव्य क्षुद्रको भविता तत ।।१५०
क्षुद्रकात्कुलिको भाव्य कुलिकात्सुरथ स्मृत ।
सुमित्र सुरथस्यापि अन्त्यश्च भविता नृप ।।१५१

एते ऐक्ष्वाकवा प्रोक्ता भवितार कलौ युगे।
बृहद्बलान्वये जाता भवितार कलौ युगे।
शूराश्च कृतविद्याश्च सत्यसन्धा जितेन्द्रिया ॥१५२

सुलक्षण का पुत्र किन्नर नामधारी परन्तप होगा। और फिर किन्नर का पुत्र बृहत् ही महान् अन्तरिक्ष होगा ॥१४७॥ अन्तरिक्ष से सुपर्ण नामक पुत्र जन्म लेगा और सुपर्ण का पुत्र अमित्रजित् नामधारी होगा। उसका पुत्र भरद्वाज और उससे यहाँ पर धर्मी नामक पुत्र होगा। फिर धर्मी का कृतञ्जय नाम वाला पुत्र समुत्पन्न होगा। कृतञ्जय का पुत्र व्रात नामक होगा और इसका पुत्र रणञ्जय नाम वाला जन्म ग्रहण करेगा ॥१४८॥ रणञ्जय से सञ्जय नाम का वीर राजा होगा। सञ्जय का पुत्र शाक्य होगा और शाक्य से शुद्धोदन नाम वाला हुआ था ॥१४९॥ शुद्धोदन शाक्यार्य में राहुल नाम से कहे जाने वाला पुत्र होगा। उससे फिर प्रसेनजित् होगा और उस प्रसेनजित् से क्षुद्रक होगा ॥१५०॥ क्षुद्रक का पुत्र कुलिक होगा और कुलिक से सुरथ नाम से कहा जाने वाला पुत्र जन्म धारण करेगा। सुरथ से सुमित्र नामक अन्त में होने वाला राजा होगा ॥१५१॥ ये इतने इक्ष्वाकु के वंश में होने वाले बताये गये हैं जोकि आगे कलियुग में जन्म धारण कर शासन करेंगे। ये सब बृहद्बल के वंश में जन्म ग्रहण करेंगे और कलियुग में भी होंगे वे सभी राजा शूरवीर थे—कृतविद्य अर्थात् विद्या पढ़े हुए—थे सब सत्य सन्धा प्रतिज्ञा वाले और इन्द्रियों को जीतने वाले थे ॥१५२॥

अत्रानुवंशश्लोकोऽयं भविष्यज्ञैरुदाहृत ।
इक्ष्वाकूणामयं वंश सुमित्रान्तो भविष्यति।
सुमित्रं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ।
इत्येतन्मानवं क्षेत्रमैलं च समुदाहृतम् ॥१५३
अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि मागधेयान्बृहद्रथान्।
जरासन्धस्य ये वंशे सहदेवान्वये नृपा ॥१५४
अतीता वर्तमानाश्च भविष्याश्च तथा पुनः।
प्राधान्यत प्रवक्ष्यामि गदतो मे निबोधत ॥१५५

सग्रामे भारते तस्मिन् सहदेवो निपातित ।
सोमाधिस्तस्य तनयो राजर्षि स गिरिव्रजे ॥१५६
पञ्चाशत तथाष्टौ च समा राज्यमकारयत् ।
श्रु तश्रवा चतु पष्टिसमास्तस्य सुतोऽभवद् ।
अयुतायुस्तु पड्विश राज्य वर्षाण्यकारयत् ।
समा. शत निरामित्रो मही भुक्त्वा दिवङ्गत ॥१५७
पञ्चाशत समा षट् च सुक्षत्तः प्राप्तवान्महीम् ।
त्रयोविंश बृहत्कर्मा राज्य वर्षाण्यकारयत् ॥१५८
सेनाजित्साम्प्रत चापि एता वै भुज्यते समा ।
श्रु तञ्जयस्तु वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति ॥१५९
महाबाहुर्महाबुद्धिर्महाभीमपराक्रमः ।
पञ्चत्रिंशत्तु वर्षाणि मही पालयिता नृप ॥१६०

यहाँ पर भविष्य के ज्ञाताओ के द्वारा यह अनुवश श्लोक उदाहृत किया गया है कि इक्ष्वाकुओ का यह वश सुमित्र के अन्त तक ही होगा। सुमित्र राजा को प्राप्त करके कलियुग मे सस्था को प्राप्त करेगा। यह इतना ऐल का मानव उदाहृत किया गया है ॥१५३॥ इसके आगे मागधय बृहद्रथो का वर्णन करूँगा जो सहदेव के अन्वय मे जरासध के वश मे राजा थे ॥१५४॥ जो व्यतीत होगये और जो इस समय मे वर्त्तमान हैं तथा जो भविष्य मे राजा होगे मैं इन सबको प्राधान्य रूप बताऊँगा। बताने वाले मुझसे इन सबका ज्ञान प्राप्त करो ॥१५५॥ उस भारत सग्राम मे सहदेव निपातित होगया था। उसका पुत्र राजर्षि सोमाधि हुआ उसने गिरि व्रज म अट्ठावन वर्ष पर्यं त राज्य किया था फिर चौंसठ वर्ष तक उसका पुत्र श्रुतश्रवा नाम वाला हुआ। अयुतायु ने छब्बीस वर्ष राज्य किया था। निरामित्र सौ वर्ष तक राज्य करके दिवङ्गत हुआ था ॥१५६-१५७॥ पचास और छै छप्पन वर्ष तक सुक्षत्त ने इस भूमि को प्राप्त किया था। तेईस वर्ष बृहत्कर्मा ने राज्य शासन किया था ॥१५८॥ इस समय सेनजित् इस भूमण्डल को भोग रहा है। श्रुतञ्जय चालीस वर्ष तक भविष्य मे

राज्य शासन करेगा ॥१५६॥ महान् बुद्धि वाला और महान् भीम पराक्रम वाला महाबाहु नृप पैंतीस वर्ष तक भूमि का पालक होगा ॥१६०॥

अष्टपञ्चाशत चाब्दान् राज्ये स्थास्यति वै शुचि ।
अष्टाविंशत्समा पूर्णा- क्षेमो राजा भविष्यति ॥१६१
भुवतस्तु चतु षष्टीराज्य प्राप्स्यति वीर्य्यवान् ।
पञ्चवर्षाणि पूर्णानि धर्मनेत्रो भविष्यति ॥१६२
भोक्ष्यते नृपतिश्चैव ह्यष्टपञ्चाशत समाः ।
अष्टाविंशत्समा राज्य सुव्रतस्य भविष्यति ॥१६३
चत्वारिंशद्दशाष्टौ च दृढसेनो भविष्यति ।
त्रयस्त्रिंशत्तु वर्षाणि सुमति प्राप्स्यते तत ॥१६४
द्वाविंशतिसमा राज्य सुचलो भोक्ष्यते तत ।
चत्वारिंशत्समा राजा सुनेत्रो भोक्ष्यते तत ॥१६५
सत्यजित्पृथिवीराज्य त्र्यशीतिं भोक्ष्यते समा ।
प्राप्येमा वीरजिच्चापि पञ्चत्रिंशद्भविष्यति ॥१६६
अरिञ्जयस्तु वर्षाणि पञ्चाशत्प्राप्स्यते महीम् ।
द्वात्रिंशच्च नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथा ॥१६७

शुचि नाम वाला राजा अट्ठावन वर्ष तक राज्य में स्थित रहेगा और क्षेम नामधारी राजा अट्ठाईस वर्ष तक होगा ॥१६१॥ वीर्यवान् भुवत चौंसठ वर्ष तक राज्य को प्राप्त करेगा । पूरे पाँच वर्ष तक धर्मनेत्र राजा रहेगा ॥१६२॥ अट्ठावन वर्ष तक नृपति इस भूमि का उपभोग करेगा । अट्ठाईस वर्ष तक सुव्रत का राज्य होगा ॥१६३॥ चालीस दश और आठ वर्ष तक दृढसेन राजा होगा । तैंतीस वर्ष पर्यन्त फिर सुमति नाम वाला भूमि को प्राप्त करेगा ॥१६४॥ इसके उपरान्त बाईस वर्ष तक सुचल नाम वाला भूमि के शासन का उपभोग करेगा । चालीस वर्ष तक सुनेत्र भूमण्डल का भोग करेगा ॥१६५॥ सत्यजित् राजा तिरासी वर्ष पर्यन्त भूमि का भोग करेगा । फिर इस भूमि को प्राप्त करके पैंतीस वर्ष तक वीरजित् राजा होगा। १६६॥ अरिञ्जय राजा पचास वर्ष तक

इस भूमण्डल पर शासन करेगा। ये बत्तीस राजा बृहद्रथ नाम वाले इस भूमि पर होंगे ॥१६७॥

पूर्णं वर्षसहस्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति ।
बृहद्रथेष्वतीतेषु वीतहोत्रेषु वर्तिषु ॥१६८
मुनिकः स्वामिनं हत्वा पुत्रं समभिषेक्ष्यति ।
मिषतां क्षत्रियाणां हि प्रद्योतो मुनिको बलात् ॥१६९
स वै प्रणतसामन्तो भविष्ये नयवर्ज्जितः ।
त्रयोविंशत्समा राजा भविता स नरोत्तमः ॥१७०
चतुर्विंशत्समा राजा पालको भविता ततः ।
त्रिशाखयूपो भविता नृपः पञ्चाशती समाः ॥१७१
एकत्रिंशत्समा राज्यमजकस्य भविष्यति ।
भविष्यति समा विंशत्तत्सुतो वर्त्तिवर्द्धनः ॥१७२
अष्टात्रिंशच्छतं भाव्या प्राद्योताः पञ्च ते सुताः ।
हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनाको भविष्यति ॥१७३
वाराणस्यां सुतस्तस्य सम्प्राप्स्यति गिरिव्रजम् ।
शिशुनाकस्य वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति ॥१७४
शाकवर्णः सुतस्तस्य षट्त्रिंशच्च भविष्यति ।
ततस्तु विंशतिं राजा क्षेमवर्मा भविष्यति ॥१७५
अजातशत्रुर्भविता पञ्चविंशत्समा नृपः ।
चत्वारिंशत्समा राज्यं क्षत्रौजाः प्राप्स्यते ततः ॥१७६

पूरे सौ वर्ष पर्यन्त उनका राज्य होगा। बृहद्रथों के व्यतीत हो जाने पर और वीत होत्रों के समाप्त होने पर मुनिक स्वामी को मारकर पुत्र का अभिषेक करेगा। क्षत्रियों को हटाकर मुनिक बलपूर्वक राज्य को छीन लेगा ॥१६८-१६९॥ वह नयवर्जित प्रणत समस्त भविष्य में नरोत्तम तेईस वर्ष तक राजा होगा ॥१७०॥ फिर इसके उपरान्त पालक नाम वाला इस भूमि का राजा होगा। विशाखयूप नाम वाला पचास वर्ष तक राजा होगा ॥१७१॥ इकतीस वर्ष तक गद्दी पर अजक का राज्य होगा। फिर उसके पुत्र वर्त्तिवर्द्धन का राज्य

बीस वर्ष तक रहेगा ॥१७२॥ वे पाँच प्राद्योत पुत्र अड़तीस सौ वर्ष तक होंगे फिर उनके समस्त यश को समाप्त कर शिशु नाक वाला राजा होगा ॥१७३॥ उसका पुत्र वाराणसी में गिरिव्रज को प्राप्त करेगा । शिशु नाक का राज्य चालीस वर्ष तक होगा ॥१७४॥ उसका पुत्र शक वर्ण छत्तीस वर्ष पर्यन्त राज्य करेगा । फिर इसके उपरान्त क्षेम वर्मा बीस वर्ष तक राज्य शासन करेगा ॥१७५॥ पच्चीस वर्ष तक इसके पश्चात् प्रजात शत्रु नामधारी राजा रहेगा । फिर चालीस वर्ष पर्यन्त क्षत्रौजा इस राज्य को प्राप्त करेगा ॥१७६॥

अष्टाविंशत्समा राजा विविसारो भविष्यति ।
पञ्चविंशत्समा राजा दर्शकस्तु भविष्यति ॥१७७
उदायी भविता तस्मात्त्रयस्त्रिंशत्समा नृप ।
स वै पुरवरं राजा पृथिव्या कुसुमाह्वयम् ।
गङ्गाया दक्षिणे कूले चतुर्थेऽब्दे करिष्यति १७८
द्वाचत्वारिंशत्समा भाव्यो राजा वै नन्दिवर्द्धन ।
चत्वारिंशत्त्रयञ्चैव महानन्दो भविष्यति ॥१७९
इत्येते भवितारो वै शैशुनाका नृपा दश ।
शतानि त्रीणि वर्षाणि द्विषष्ट्यभ्यधिकानि तु ॥१८०
शैशुनाका भविष्यन्ति तावत्काल नृपा परे ।
एतै सार्द्धं भविष्यन्ति राजान क्षत्रबान्धवा ॥१८१
ऐक्ष्वाकवाश्चतुर्विंशत्पाञ्चाला पञ्चविंशति ।
कालकास्तु चतुर्विंशच्चतुर्विंशत्तु हैहया ॥१८२
द्वात्रिंशद्वै कलिङ्गास्तु पञ्चविंशत्तथा शका ।
कुरवश्चापि षड्विंशदष्टाविंशति मैथिला ॥१८३
शूरसेनास्त्रयोविंशद्वीतिहोत्राश्च विंशतिः ।
तुल्यकाल भविष्यन्ति सर्वे एव महीक्षित. ॥१८४
महानन्दिसुतश्चापि शूद्रायां कालसंवृत. ।
उत्पत्स्यते महापद्म सर्वक्षत्रान्तरे नृप ॥१८५

तत प्रभृति राजानो भविष्याः शूद्रयोनय ।
एकराट् स महापद्म एकच्छत्रो भविष्यति ॥१८६
अष्टाविंशतिवर्षाणि पृथिवी पालयिष्यति ।
सर्वक्षत्रहृतोद्धृत्य भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ॥१८७

अट्ठाईस वर्ष तक विविसार वहाँ का राजा होगा। इसके पश्चात् पच्चीस वर्ष तक दर्शक राजा होगा ॥१७७॥ वह राजा इस भूमि पर कुसुम नाम वाला एक श्रेष्ठ नगर गङ्गा के दक्षिण तट पर चौथे वर्ष में बनावेगा ॥१६८॥ नन्दि वर्द्धन राजा बयालीस वर्ष तक रहेगा। फिर तैंतालीस वर्ष तक रहेगा। फिर तैंतालीस वर्ष तक महानदी राज्य करेगा ॥१७६॥ ये इतने शैशुनाक नाम वाले दश राजा होंगे। शैशुनाक राजा सौ तीन सौ बासठ वर्ष तक रहेंगे तावत्काल तक दूसरे राजा होंगे और वे इनके साथ क्षत्रबन्धु राजा होंगे ॥१८०-१८१॥ ऐक्ष्वाकु राजा चौबीस और पाञ्चाल पच्चीस तथा कालक चौबीस एवं हैहय चौबीस होंगे ॥१८२॥ कलिङ्ग नामधारी राजा सख्या में बत्तीस होंगे तथा शक जाति वाले पच्चीस होंगे। कुरु भी छब्बीस होंगे और मैथिल राजा अट्ठाईस होंगे ॥१८३॥ शूरसेन नाम वाले तेईस होंगे और वीति होत्र नामक राजा सख्या में बीस शासन करेंगे। ये सभी महीप तुल्य काल ही में होंगे ॥१८४॥ महानन्दि का पुत्र काल सवृत शूद्रजाति की सती मे उत्पन्न होगा। महापद्म नृप सर्वक्षत्रान्तर मे होगा ॥१८५॥ इससे आदि लेकर शूद्र योनि वाले राजा होंगे महापद्म एकराट् और एकच्छत्र राजा होगा ॥१८६॥ यह अट्ठाईस वर्ष तक पृथिवी का पालन करेगा और समस्त क्षत्रियों से हृत का उद्धार करके भावी अर्थ का बल से उपभोग करेगा ॥१८७॥

सहस्रास्तत्सुता ह्यष्टौ समा द्वादश ते नृपाः ।
महापद्मस्य पर्याये भविष्यन्ति नृपा क्रमात् ॥१८८
उद्धरिष्यति तान् सर्वान् कौटिल्यो वै द्विरष्टभिः ।
भुक्त्वा मही वर्षशत नन्देन्दु स भविष्यति ॥१८९
चन्द्रगुप्तं नृप राज्ये कौटिल्य स्थापयिष्यति ।
चतुर्विंशत्समा राजा चन्द्रगुप्तो भविष्यति ॥१९०

भविता भद्रसारस्तु पञ्चविंशत्समा नृप ।
षड्विंशत्तु समा राजा ह्यशोको भविता नृपु ॥१९१
तस्य पुत्र कुनालस्तु वर्षाण्यष्टौ भविष्यति ।
कुनालसूनुरष्टौ च भोक्ता वै बन्धुपालितः ॥१९२
बन्धुपालितदायादो दशमानीन्द्रपालित ।
भविता सप्तवर्षाणि देववर्म्मा नराधिपः ॥१९३
राजा शतधरश्चाष्टौ तस्य पुत्रो भविष्यति ।
बृहदश्वश्च वर्षाणि सप्त वै भविता नृपः ॥१९४
इत्येते नव भूपा ये भोक्ष्यन्ति च वसुन्धराम् ।
सप्तत्रिंशच्छतं पूर्णं तेभ्यस्तु गौर्भविष्यति ॥१९५

उन राजा के एक सहस्र पुत्र होंगे वे आठ वर्ष तक बारह राज्य महापद्म के पर्याय से क्रम से शासन करेंगे ॥१८८॥ दो और आठ के द्वारा उन सबका कौटिल्य उद्धार करेगा। वह सौ वर्ष तक इस भूमि के सुख का उपभोग कर नन्देन्दु हो जायगा ॥१८९॥ कौटिल्य अर्थात् चाणक्य राज्य शासन में चन्द्रगुप्त चौबीस वर्ष पर्यन्त शासक रहेगा ॥१९०॥ भद्रसार तो पच्चीस वर्ष तक राजा होगा। फिर छब्बीस वर्ष तक मानवों पर राजा अशोक का शासन रहेगा ॥१९१॥ उस सम्राट् अशोक का पुत्र कुनाल तो केवल आठ ही वर्ष तक राज्योपभोग करेगा। फिर इस कुनाल का पुत्र बन्धुपालित नाम वाला आठ वर्ष तक भूमि का भोक्ता रहेगा ॥१९२॥ बन्धुपालित का दायाद इन्द्रपालित दस वर्ष तक रहेगा। फिर इसके पश्चात् देव धर्म नराधिप सात वर्ष तक शासन करेगा ॥१९३॥ उसका पुत्र राजा शतधर आठ वर्ष पर्यन्त होगा। बृहदश्व सात वर्ष तक राजा रहेगा ॥१९४॥ इतने ये नौ राजा इस वसुन्धरा का भोग करेंगे। पूरे एक सौ सैंतीस वर्ष तक यह पृथ्वी उनके उपभोग के लिये रहेगी ॥१९५॥

पुष्यमित्रस्तु सेनानीरुद्धृत्य वै बृहद्रथम् ।
कारयिष्यति वै राज्यं समाः षष्टिं सदैव तु ॥१९६
पुष्यमित्रसुताश्चाष्टौ भविष्यन्ति समा नृपाः ।
भविता चापि तज्ज्येष्ठ सप्तवर्षाणि वै तत ॥१९७

वसुमित्र सुतो भाव्यो दशवर्षाणि पार्थिव ।
ततो ध्रुव समा द्वे तु भविष्यति सुतश्च वै ॥१९८
भविष्यन्ति समास्तस्मात्तिस्र एव पुलिन्दका ।
राजा घोषसुतश्चापि वर्षाणि भविता त्रय ॥१९९
ततो वै विक्रमित्रस्तु समा राजा तत पुन ।
द्वात्रिंशद्भविता चापि समा भागवतो नृप ॥२००
भविष्यति सुतस्तस्य क्षेमभूमि समा दश ।
दशैते शुङ्गराजानो भोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम् ॥२०१
शत पूर्णं दश द्वे च तेभ्य विं वा गमिष्यति ।
अपार्थिवसुदेवं तु बाल्याद्व्यसनिन नृपम् ॥२०२
देवभूमिस्ततोऽन्यश्च शृङ्गेषु भविता नृप ।
भविष्यति समा राजा नव कण्ठायनस्तु स ॥१०३
भूतिमित्र सुतस्तस्य चतुर्विंशद्भविष्यति ।
भविता द्वादश समास्तस्मान्नारायणो नृप ॥२०४

सेनानी पुष्प मित्र बृहद्रथ का उद्धार करके साठ वर्ष तक सदैव राज्य शासन करायेगा ॥१९६॥ पुष्पमित्र के पुत्र आठ वर्ष तक राजा होंगे । उनमें जो सबसे बड़ा है वह सात वर्ष तक राज्य का शासन करेगा ॥१९७॥ वसुमित्र पुत्र दश वर्ष तक इस भूमि का राजा होगा । इसके पश्चात् सुत ध्रुक् दो वर्ष तक शासन होगा ॥१९८॥ इससे तीन पुलिन्दक राजा होंगे । राजा घोष सुत तीन वर्ष तक रहेगा ॥१९९॥ इसके अनन्तर विक्रमित्र राजा होगा फिर भागवत राजा बत्तीस वर्ष तक उपभोग करेगा ॥२००॥ भागवत राजा का पुत्र क्षेम भूमि नाम वाला दश वर्ष पर्यन्त इस भूमण्डल का भोग करेगा । ये दश शुङ्ग नामधारी राजा इस वसुधरा का सुखोपभोग करेंगे ॥२०१॥ अथवा एक सौ बारह वर्ष तक यह वचपन से व्यासनी अपार्थिव सुदेव नृप की यह रहेगी ॥२०२॥ इसके पश्चात् एक अन्य देवभूमि नृप शृङ्गो मे होगा । वह कण्ठायन राजा सौ वर्ष तक रहेगा ॥२०३॥ उसका पुत्र भूतिमित्र होगा और वह चौबीस

वर्ष तक भूमि का शासन करेगा। उससे फिर नारायण नाम वाला राजा बारह वर्ष तक भूमि का भोग करेगा ॥२०४॥

सुशर्म्मा तत्सुतश्चापि भविष्यति समा दश।
चतुरस्तुङ्गकृत्यास्ते नृपाः कण्ठायना द्विजा. ॥२०५
भाव्या प्रणतसामन्ताश्चत्वारिंशच्च पञ्च च।
तेषां पर्य्यायकाले तु तरन्धा तु भविष्यति ॥२०६
कण्ठायनमथोद्धृत्य सुशर्म्माणं प्रसह्य तम्।
शृङ्गाणां चापि यच्छिष्ट क्षययित्वा बल तदा।
सिन्धुको ह्यन्ध्रजातीय प्राप्स्यतीमा वसुन्धराम् ॥२०७
त्रयोविंशत्समा राजा सिन्धुको भविता त्वथ।
अष्टौ भातश्च वर्षाणि तस्माद्दश भविष्यति ॥२०८
श्रीसातकर्णिर्भविता तस्य पुत्रस्तु वै महान्।
पञ्चाशत समा. षट् च सातकर्णिर्भविष्यति ॥१०९
आपादबद्धो दश वै तस्य पुत्रो भविष्यति।
चतुर्विंशत्तु वर्षाणि षट् समा वै भविष्यति ॥२१०
भविता नेमिकृष्णस्तु वर्षाणा पञ्चविंशतिम्।
तत संवत्सर पूर्णं हालो राजा भविष्यति २११

उसका पुत्र सुशर्मा नामधारी दश वर्ष तक राजा होगा। हे द्विजवृन्द! ये चार कण्ठायन शुङ्गकृत्य राजा होंगे ॥२०५॥ पैंतालीस प्रणत सामन्त होंगे। उनके पर्याय काल में तरन्धा होगा ॥२०६॥ कण्ठायन सुशर्मा को बलपूर्वक उद्धृत करके और शृङ्गों का जो भी कुछ शेष था उस बल को क्षीण करके आन्ध्र जाति वाला सिन्धुक नामक राजा इस वसुन्धरा को प्राप्त करेगा ॥२०७॥ इसके अनन्तर वह सिन्धुक तेईस वर्ष तक राज्य का शासक नृप होगा। फिर भात अठारह वर्ष तक रहेगा ॥२०८॥ उसका महान् पुत्र श्री सातकर्णि छप्पन वर्ष पर्यन्त राज्य-शासन करने वाला होगा ॥२०९॥ दश आपाद बद्ध उसका पुत्र होगा। वह तीस वर्ष तक यहाँ भूमि का राजा होगा ॥२१०॥ फिर नेमि कृष्ण नाम वाला पच्चीस वर्ष तक राजा रहेगा। फिर पूरे एक वर्ष तक 'हाल'—इस नाम वाला राजा होगा ॥२११॥

पञ्च सप्तक राजानो भविष्यन्ति महाबला ।
भाव्य पुत्रिकपेणस्तु समा सोऽप्येकविंशतिम् ॥२१२
सातकर्णिर्वर्षमेव भविष्यति नराधिपः ।
अष्टाविंशत्तु वर्षाणि शिवस्वामी भविष्यति ॥२१३
राजा च गौतमीपुत्र एकविंशत्समा नृपः ।
एकोनविंशति राजा यज्ञश्री सातकण्यथ ॥२१४
षडेव भविता तस्माद्विजयस्तु समा नृप ।
दण्डश्री सातकर्णी च तस्य पुत्रः समास्त्रय ॥२१५
पुलोवापि समा सप्त अन्येषाञ्च भविष्यति ।
इत्येते वै नृपास्त्रिंशदन्ध्रा भोक्ष्यन्ति ये महीम् ॥२१६
समा शतानि चत्वारि पञ्च षड् वै तथैव च ।
अन्ध्राणा संस्थिता पञ्च तेषां वंशा समा पुन ॥२१७
सप्तैव तु भविष्यन्ति दशाभीरास्ततो नृपा ।
सप्त गर्दभिनश्चापि ततोऽथ दश वै शका ॥२१८
यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषारास्तु चतुर्दश ।
त्रयोदश गरुण्डाश्च मौना ह्यष्टादशैव तु २१९
अन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वसुधा शते द्वे च शतं च वै ।
शतानि त्र्यण्यशीतिश्च भोक्ष्यन्ति वसुधा शका ॥२२०

पञ्च सप्तक महान् बलवान् राजा होंगे । एक पुत्रिकषेण होगा वह भी एक और बीस वर्ष तक राजा रहेगा ॥२१२॥ सातकर्णि एक ही वर्ष तक नराधिप होगा । अट्ठाईस वर्ष तक शिव स्वामी राजा होगा ॥२१३॥ गौतमी पुत्र नाम वाला राजा मनुष्यो पर इक्कीस वर्ष पर्यन्त शासन करेगा । उन्नीस वर्ष तक राजा यज्ञ श्री और इसके अनन्तर सातकर्णि होगा ॥२१४॥ उनसे फिर छै ही राजा होंगे । विजय–दण्ड श्री और सातकर्णि उसके ये तीन पुत्र होंगे ॥२१५॥ सात वर्ष तक पुलोवापि होगा और दूसरो का भी होगा । ये तीस अन्ध्र राजा इस मही का भोग करेंगे ॥२१६॥ चार सौ ग्यारह उन अन्ध्रो के समान पाँच वंश संस्थित होंगे ॥२१७॥ सात ही दशाभीरद नृप होंगे ।

सात गर्दभी होंगे फिर इनके पश्चात् दश शक होंगे ॥२१८॥ आठ यवन राजा होंगे फिर चौदह तुषार नाम वाले राजा होंगे। तेरह गरुड़ और इनके पश्चात अठारह मौन होंगे ॥२१९॥ तीन सौ वर्ष तक अन्ध्र जाति वाले लोग इस वसुधा का भोग करेंगे और फिर तीनसौ अस्सी वर्ष तक शक जाति वाले इस वसुधरा का भोग करेंगे ॥२२०॥

अशीतिश्चैव वर्षाणि भोक्तारो यवना महीम् ।
पञ्चवर्षशतानीह तुषाराणां मही स्मृता ॥२२१
शतान्यर्द्धचतुर्थानि भवितारस्त्रयोदश ।
गरुण्डा वृषलैः सार्द्धं भाव्याम्याम्लेच्छजातय ॥२२२
शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ति म्लेच्छा एकादशैव तु ।
तच्छन्नेन च कालेन तत कोलिकिला नृपाः ॥२२३
ततः कोलिकिलेभ्यश्च विन्ध्यशक्तिर्भविष्यति ।
समा षण्णवति ज्ञात्वा पृथिवी च समेष्यति ॥२२४
नृपान् वै विदिशश्चापि भविष्यांश्च निबोधत ।
शेषस्य नागराज्यस्य पुत्रः स्वरपुरञ्जय ॥२२५
भोगी भविष्यते राजा नृपो नागकुलोद्वह ।
सदाचन्द्रस्तु चन्द्रांशो द्वितीयो नखवास्तथा ॥२२६
धनधर्मा ततश्चापि चतुर्थो विशज स्मृत ।
भूतिनन्दस्ततश्चापि वैदेशे तु भविष्यति ॥२२७
मङ्गाना नन्दनस्यान्ते मधुनन्दिर्भविष्यति ।
तस्य भ्राता यवीयास्तु नाम्ना नन्दियशा किल ॥२२८
तस्यान्वये भविष्यन्ति राजानस्ते त्रयस्तु वै ।
दौहित्र शिशुको नामपुरिकाया नृपोऽभवत् ॥२२९
विन्ध्यशक्तिसुतश्चापि प्रवीरो नाम वीर्यवान् ।
भोक्ष्यन्ति च समा षष्टि पुरी काञ्चनकाञ्च वै ॥२३०
यक्ष्यन्ति वाजपेयैश्च समाप्तवरदक्षिणैः ।
तस्य पुत्रास्तु चत्वारो भविष्यन्ति नराधिपा २३१

विन्ध्यकाना कुलेऽतीते नृपा वै बाह्लिकास्त्रय ।
सुप्रतीको नभीरस्तु समा भोक्ष्यति त्रिशतिम् ॥२३२

अस्सी वर्ष तक यवन लोग इस मही को भोगेंगे। यहाँ पांच सौ वर्ष तक तुसारों की यह भूमि कही जायगी ॥२२१॥ अर्द्ध चतुर्थ सौ वर्ष तक तेरह मरुण्ड वृषला के साथ होंगे जो अन्य म्लेच्छ जाति वाले होंगे ॥२२२॥ ग्यारह म्लेच्छ तीन सौ वर्ष तक इस भूमि का भोग करेंगे। और उनके अन्तकाल में कोलिकिल वृप होंगे ॥२२३॥ फिर उन कोलिकिलों से विन्ध्य शक्ति होगा। छयानवे वर्ष तक पृथिवी को ज्ञान प्राप्त करके आयेगा ॥२२४॥ अब वृपों को और दिशको को जोकि आगे होने वाले हैं भली भाँति समझ लो। नागराज शेष का पुत्र स्वरपुरञ्जय नाम कुलका उद्वहन करने वाला भोग करने वाला राजा होगा। चन्द्रांश सदाचन्द्र और दूसरा नखवान् है ॥२२५॥ इसके बाद धनधर्मा और चौथा विशज कहा गया है। इसके पश्चात् भूतिनन्द जोकि वैदेश में होगा ॥२२७॥ अगो के नन्दन के अन्त में मधुनन्दि राजा होगा। उसका छोटा भाई नन्दियश नाम वाला है ॥२२८॥ उसके अन्वय में (वंश में) तीन राजा होंगे। शिशुक नाम वाला दौहित्र पुरिका में राजा होगा ॥२२६॥ विन्ध्य शक्ति का पुत्र वीर्य वाला प्रवीर नामधारी होगा और साठ वर्ष तक काञ्चनका पुरी का भोग करेंगे ॥२३०॥ वे श्रेष्ठ दक्षिणा देकर समाप्त करने वाले वाजपेयो के द्वारा यजन करेंगे। उसके चार पुत्र नराधिप होंगे ॥२३१॥ विन्ध्यको के कुल के व्यतीत होजाने पर तीन बाह्लीक राजा होंगे। सुप्रतीक नभीर सौ तीस वर्ष तक पृथ्वी का भोग करेगा ॥२३२॥

शक्यमा नाम वै राजा माहिषीना महीपतिः ।
पुष्पमित्रा भविष्यन्ति पट्टमित्रास्त्रयोदश ॥२३३
मेकलाया नृपा सप्त भविष्यन्ति च सत्तमा ।
कोमलायन्तु राजानो भविष्यन्ति महाबला ॥२३४
मेधा इति समाख्याता बुद्धिमन्तो नवैव तु ।
नैषधा पार्थिवा सर्व्वे भविष्यन्त्यामनुक्षयात् ॥२३५

नलवंशप्रसूतास्ते वीर्यवन्तो महाबला ।
मागधाना महावीर्यो विश्वस्फानिर्भविष्यति ॥२३६
उत्साद्य पार्थिवान् सर्व्वान्सोऽन्यान् वर्णान् करिष्यति ।
कैवर्त्तान् पञ्चकांश्चैव पुलिन्दान् ब्राह्मणांस्तथा ॥२३७
स्थापयिष्यन्ति राजानो नानादेशेषु तेजसा ।
विश्वस्फानिर्महासत्त्वो युद्धे विष्णुसमो बली ॥२३८
विश्वस्फानिर्नरपति क्लीबाकृतिरिवोच्यते ।
उत्सादयित्वा क्षत्रन्तु क्षत्रमन्यत् करिष्यति ॥२३९
देवान् पितॄंश्च विप्रांश्च तर्पयित्वा सकृत्पुन ।
जाह्नवीतीरमासाद्य शरीरं यस्यते बली ॥२४०
सन्यस्य स्वशरीरन्तु शक्रलोकं गमिष्यति ।
नवनाकास्तु भोक्ष्यन्ति पुरीं चम्पावती नृपा ॥२४१

शकयमा नाम वाला राजा माहिषियो का महीपति होगा । पुष्पमित्र होंगे और तेरह पट्टमित्र होंगे ॥२३३॥ मेकला में सात श्रेष्ठतम राजा होंगे । कोमला मे तो महान् बल वाले राजा होंगे ॥२३४॥ मेघ इस नाम से समाख्यात होने वाले नौ बुद्धिमान् राजा होंगे । मनुक्षय पर्यन्त सब नैषध पार्थिव होंगे ॥२३५॥ वे सब नल के बंश मे उत्पन्न वाले महान् बलवान् और वीर्य वाले राजा होंगे । मागधो में विश्व स्फानि नाम वाला महान् वीर्य वाला राजा होगा ॥२३६॥ वह समस्त पार्थिवो को उत्सादित करके अन्य वर्णो को करेगा । कैवर्त्तो को–पञ्चको को–पुलिन्दो तथा ब्राह्मणो को अनेक देशो म तेज से राजाओ को स्थापित करेंगे । विश्वस्फानि महान् सत्व वाला और युद्ध मे विष्णु के समान बली था ॥२३७-२३८॥ विश्वस्फानि जो राजा होगा वह क्लीव के समान आकृति वाला कहा जाता है । क्षत्र को उत्सादित करके अन्य क्षत्र को करेगा ॥२३९॥ यह बली देवो को–पितरो को और ब्राह्मणो फिर एक बार तृप्त करके अन्त मे गङ्गा के तट पर पहुँच कर शरीर को त्याग करेगा ॥२४०॥ अपने शरीर का त्याग करके फिर इन्द्र के लोक को चला जायगा । नव नाक राजा चम्पावती पुरी का भोग करेंगे ॥२४१॥

मथुराञ्च पुरी रम्यां नागा भोक्ष्यन्ति सप्त वै ।
अनुगङ्ग प्रयागञ्च साकेत मगधास्तथा ।
एताञ्जनपदान् सर्व्वान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजा ॥२४२
निषान् यदुकांश्चैव शैशीतान् कालतोयकान् ।
एताञ्जनपदान् सर्व्वान् भोक्ष्यन्ति मणिधान्यजा ॥२४३
कोशलांश्चान्ध्रपौण्ड्राश्च ताम्रलिप्तान् ससागरान् ।
चम्पा चैव पुरी रम्या भोक्ष्यन्ति देवरक्षिताम् ॥२४४
कलिङ्गा महिषाश्चैव महेन्द्रनिलयाश्च ये ।
एताञ्जनपदान् सर्व्वान् पालयिष्यति वै गुह ॥२४५
स्त्रीराष्ट्र भक्ष्यकाश्चैव भोक्ष्यते कनकाह्वय ।
तुल्यकाल भविष्यन्ति सर्वे ह्येते महीक्षित ॥२४६
अल्पप्रसादा ह्यनृता महाक्रोधा ह्यधार्मिका. ।
भविष्यन्तीह यवना धर्मतः कामतोऽर्थतः ॥२४७
नैव मूर्द्धाभिषिक्तास्ते भविष्यन्ति नराधिपा ।
युगदोषदुराचारा भविष्यन्ति नृपास्तु ते ॥२४८
स्त्रीणां बालवधेनैव हत्वा चैव परस्परम् ।
भोक्ष्यन्ति कलिशेषे तु वसुधा पार्थिवास्तथा ॥२४९

परम रम्य मथुरा नगरी को सात नाग उपभोग करेंगे । गङ्गा के साथ-साथ प्रयाग—साकेत तथा मगध देशों को—इन जनपदों को सबको गुप्त वंश में उत्पन्न होने वाले नृप भोग करेंगे ॥२४२॥ मणिधान्यज लोग निषध देशों को—यदुकों को—शैशीतों को—काल तोयकों को—इन समस्त जनपदों को भोग करेंगे कलिङ्ग—महिष और जो महेन्द्र निलय हैं वे कोशल देशों को—आन्ध्र पौण्ड्रों को—ताम्रलिप्तों को सागरों के सहित तथा सुरम्य चम्पा नगरी जोकि देवों के द्वारा सुरक्षित है, भोग करेंगे इन समस्त जनपदों को गुह पालन करेगा ॥२४४-२४५॥ कनक नाम वाला स्त्री राष्ट्र और भक्ष्यकों का भोग करेगा । ये समस्त राजा तुल्य काल में ही होंगे ॥२४६॥ यहाँ पर धर्म में और काम से अल्प प्रमाद वाले—झूठे—महान् क्रोध करने वाले और अधार्मिक यवन होंगे ॥२४७॥ ये राजा मूर्द्धा-

भिषिक्त नहीं होंगे। वे समस्त नृप युग के दोषों से दुराचार वाले होंगे ॥२४८॥ ये समस्त राजा स्त्रियों का बलपूर्वक वध के द्वारा आपस में हनन करके कलियुग के दोष में वसुधा का भोग करेंगे ॥२४९॥

उदितोदितवंशास्ते उदितास्तमितास्तथा ।
भविष्यन्तीह पर्याये कालेन पृथिवीक्षित ॥२५०
विहीनास्तु भविष्यन्ति धर्म्मतः कामतोऽर्थतः ।
तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाचाराश्च सर्वशः ॥२५१
विपर्य्ययेन वर्त्तन्ते नाशयिष्यन्ति वै प्रजाः ।
लुब्धानृतरताश्चैव भवितारस्तदा नृपाः ॥२५२
तेषां व्यतीते पर्याये बहुस्त्रीके युगे तदा ।
लवातिलवं भ्रश्यमाना आयूरूपबलश्रुतैः ॥२५३
तथा गतासु वै काष्ठां प्रजासु जगतीश्वराः ।
राजानः सम्प्रणश्यन्ति कालेनोपहतास्तदा ॥२५४
कल्किनोपहताः सर्वे म्लेच्छा यास्यन्ति सर्वशः ।
अधार्मिकाश्च तेऽत्यर्थं पाषण्डाश्चैव सर्वशः ॥२५५
प्रनष्टे नृपशब्दे च सन्ध्याश्लिष्टे कलौ युगे ।
किञ्चिच्छिष्टाः प्रजास्ता वै धर्म्मे नष्टेऽपरिग्रहाः ॥२५६

समय के प्रभाव से राजा लोग उदितोदित वंश वाले तथा उदितास्तमित यहाँ पर्याय में होंगे ॥२५०॥ ये समस्त काम से और धर्म से विहीन होंगे। उनके द्वारा विशेष रूप से मिश्रित म्लेच्छों के समान आचार करने वाले सभी प्रकार से दूषित जनपद हो जाँयगे ॥२५१॥ ये सभी विपरीत व्यवहार करते हैं तथा हर प्रकार से प्रजाओं का नाश करेंगे। उस समय में राजा लोग लोभी और मिथ्या में रति करने वाले हो जाँयगे ॥२५२॥ उनके पर्याय के व्यतीत हो जाने पर और उस समय में बहुत स्त्रियों वाले युग में क्षण में क्षण में आयु-रूप-बल और श्रुत सभी भ्रश्यमान हो जाँयगे ॥२५३॥ इस प्रकार से प्रजाओं के विषय में परम सीमा को प्राप्त हुए राजा लोग उस समय कालवश सब उपहत होते हुए नष्ट हो जाँयगे ॥२५४॥ समस्त म्लेच्छगण कल्कि के द्वारा सब

घोर मे उत्पन्न होंगे। वे सभी परम अधार्मिक और सब तरह से पापण्ड युक्त होंगे ॥२५५॥ कलियुग के सन्ध्या क्षिष्ट होने पर 'नृप'—यह शब्द ही प्रणष्ट हो जायगा जो कुछ थोड़ी सी प्रजा शेष रहेगी वह भी धर्म के नष्ट हो जाने पर बिना परिग्रह वाली हो जायगी ॥२५६॥

प्रसाधना हुताश्वाश्च व्याधिशोकेन पीडिता ।
अनावृष्टिहताश्चैव परस्परवधेन च ॥२५७
अनाथा हि परित्रस्ता वार्तामुत्सृज्य दुःखिताः ।
त्यक्त्वा पुराणि ग्रामाश्च भविष्यन्ति वनौकस ॥२५८
एव नृपेषु नष्टेषु प्रजास्त्यक्त्वा गृहाणि तु ।
नष्टे स्नेहे दुरापन्ना भ्रष्टस्नेहा सुहृज्जना ॥२५६
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टा सङ्कटं घोरमास्थिता ।
सरित्पर्वतसेविन्यो भविष्यन्ति प्रजास्तदा ॥२६०
सरितः सागरानूपान् सेवन्ते पर्वतानि च ।
अङ्गान् कलिङ्गान् वङ्गाश्च काश्मीरान् काशिकोशलान् ॥२६१
ऋषिकान्तगिरिद्रोणी सश्रयिष्यन्ति मानवा ।
कृत्स्न हिमवतः पृष्ठं कूलं हि लवणाम्भस ॥२६२
अरण्यान्यभिपत्स्यन्ति ह्यार्या म्लेच्छजनैः सह ।
मृगैर्मीनैर्विहङ्गैश्च श्वापदैस्तशुभिस्तथा ।
मधुशाकफलैर्मूलैर्वर्तयिष्यन्ति मानवा ॥२६३

समस्त प्रजा साधनों से शून्य—हुताश्वास और व्याधि तथा शोक से परम पीड़ित—वर्षा के बिल्कुल ही अभाव होने के कारण हत तथा आपस मे ही एक-दूसरों के वध करने से अनाथ—भयभीत—रोगी का त्याग करके अत्यन्त ही दुःखित प्रजाजन नगरो का तथा ग्रामो का त्याग करके वन मे निवास करने वाले जगली जैसे हो जायेंगे ॥२५७ २५८॥ इस प्रकार से समस्त नृपों के नष्ट हो जाने पर प्रजा अपने अपने घरो को त्याग करके स्नेह के नष्ट हो जाने पर दुरापन्न—भ्रष्ट स्नेह और सुहृज्जनों से रहित हो जायगी ॥२५६॥ वर्णों तथा आश्रमो से परिभ्रष्ट होते हुए घोर सङ्कट अवस्था मे आस्थित, नदी तथा पर्वतो

के सेवन करने वाली उस समय समस्त प्रजा हो जायगी। २६०॥ मनुष्य नदियों को—सागरों को—अनूपों को और पर्वतों को सेवन करते हैं। अङ्ग—वङ्ग—कलिङ्ग काश्मीर—काशि कोशलों को सेवन करते हैं ॥२६१॥ तथा मानव ऋषिकान्त गिरि द्रोणी का समय ग्रहण करेंगे। पूरा हिमवान् पर्वत का पृष्ठ भाग तथा क्षार समुद्र का तट और अरण्यों को आर्य लोग म्लेच्छों के साथ चले जायेंगे। और मानव मृग—मीन—विहङ्ग तथा श्वापद तथा तक्षुओं से एवं मधु—शाक—फल—मूलों से अपना उदरपूर्ति का निर्वाह करेंगे ॥२६२ २६३॥

चीरं पर्णञ्च विविधं वल्कलान्यजिनानि च ।
स्वयं कृत्वा विवसिष्यन्ति यथा मुनिजनास्तथा ॥२६४
बीजाद्यानि तथा निम्नेष्वीहन्त काष्ठशङ्कुभिः ।
अजैडकं खरोष्ट्रञ्च पालयिष्यन्ति यत्नतः ॥२६५
नदीर्वत्स्यन्ति तोयार्थं कूलमाश्रित्य मानवाः ।
पार्थिवान् व्यवहारेण विबाधन्त परस्परम् ॥२६६
बहुमन्या प्रजाहीना शौचाचारविवर्जिता ।
एवं भविष्यन्ति नरास्तदाधर्म्मे व्यवस्थिता ॥२६७
हीनाद्धीनास्तथा धर्म्मात् प्रजा समनुवर्त्तते ।
आयुस्तदा त्रयोविंश न कश्चिदतिवर्त्तते ॥२६८
दुर्बला विषयग्लाना जरया सपरिप्लुता ।
पत्रमूलफलाहाराश्चीरकृष्णाजिनाम्बरा ॥२६९

चीर—पर्ण (पत्ते) विविध प्रकार की पेड़ों की छाल और चमड़ों को स्वयं काट कर मुनिजनों की भाँति धारण करेंगे ॥२६४॥ बीजाद्यों को निम्न भागों काष्ठ तथा शङ्कुओं से इच्छा करते हुए अर्थात् निकाल कर प्राप्त करने की चेष्टा करते हुए बकरी—भेड़—गधा ऊँटों को बड़े यत्न से पालेंगे ॥२६५॥ मानव जल के प्राप्त करने के लिए नदियों के किनारों के निकट आश्रय ग्रहण कर वास किया करेंगे। व्यवहार ऐसा होगा कि उनके द्वारा परस्पर में राजाओं को विशेष बाधा पहुँचायेंगे ॥२६६॥ अपने आपको बहुत कुछ मानने वाले—सन्तति से हीन और शौच (शुद्धि) और आचार से रहित अधर्म में पूर्ण रूप से व्यव-

स्थित रहने वाले ऐसे ही उस समय में मनुष्य हो जाँयगे। ।२६७।। उस समय में प्रजा हीन से भी हीन धर्मों का समनुवर्त्तन करेंगे। उस समय में तेईस वर्ष की आयु को कोई भी पार नहीं करेंगे अर्थात् परमायु इतनी कम हो जायगी ।।२६८।। मनुष्य उस समय में अत्यन्त कमजोर हो जाँयगे और वह ऐसा भीषण समय आयेगा कि सभी विषयों में खिन्न और जरा से (वार्द्धक्य से) सपरिप्लुत होंगे। पत्र-फल और मूलों के आहार वाले होंगे तथा चीर-कतीर और कृष्णाजिन के वस्त्र वाले हो जाँयगे ।।२६६।।

वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्तश्चरिष्यन्ति वसुन्धराम् ।
एतत्कालमनुप्राप्ताः प्रजा कलियुगान्तके ।।२७०
क्षीणे कलियुगे तस्मिन् दिव्ये वर्षसहस्रके ।
नि:शेषास्तु भविष्यन्ति सार्द्धं कलियुगेन तु ।
ससन्ध्यांशे तु नि:शेषे कृतं वै प्रतिपत्स्यते ।।२७१
यदा चन्द्रश्च सूर्य्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती ।
एकराशौ भविष्यन्ति तदा कृतयुगं भवेत् ।।२७२
एष वर्षक्रमः कृत्स्नः कीर्त्तितो वो यथाक्रमम् ।
अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ।।२७३
महादेवाभिषेकात्तु जन्म यावत्परिक्षित ।
एतद्वर्षसहस्रन्तु ज्ञेयं पञ्चाशदुत्तरम् ।।२७४
प्रमाणं वै तथा चोक्तं महापद्मान्तरं च यत् ।
अन्तरं तच्छतान्यष्टौ षट्त्रिंशच्च समाः स्मृताः ।।२७५
एतत्कालान्तरं भाव्या अन्ध्रान्ता ये प्रकीर्त्तिताः ।
भविष्यैस्तत्र सङ्ख्याता पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः ।।२७६
सप्तर्षयस्तदा प्राहुः प्रतीपे राज्ञि वै शतम् ।
सप्तविंशैः शतैर्भाव्या अन्ध्राणां ते त्वया पुनः ।।२७७
नक्षत्रानितिपर्य्यन्ते कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले ।
सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं शतम् ।
सप्तर्षीणां युगं ह्येतद्दिव्यया सङ्ख्यया स्मृतम् ।।२७८

अपनी वृत्ति (रोजी) के लिये अत्यन्त लालायित होते हुए पृथ्वी पर विचरण किया करेंगे। कलियुग के अन्त में समस्त प्रजा ऐसा समय प्राप्त करने वाले होंगे ॥२७०॥ दिव्य एक सहस्र वर्ष वाले कलियुग के क्षीण होजाने पर कलियुग के साथ ही सब निःशेष हो जायगे। सन्ध्यांश के सहित निःशेष होजाने पर फिर कृतयुग की प्राप्ति होगी ॥२७१॥ जिस समय में चन्द्र और सूर्य तथा तिष्य और बृहस्पति एक होकर दिन में भर जायगे तब कृतयुग का प्रारम्भ होगा ॥२७२॥ मैंने यह वंश का क्रम आप लोगों के सामने यथाक्रम वर्णित कर दिया है। जो व्यतीत हो चुके हैं और वर्त्तमान है तथा जो अनागत अर्थात् भविष्य में होने वाले हैं सबका पूरा वर्णन कर दिया है ॥२७३॥ परीक्षित महादेव के अभिषेक से जितना भी समय है वह एक सहस्र पचास वर्ष जानना चाहिये ॥२७४॥ इसका प्रमाण महापद्मान्तर में कहा गया है वह अन्तर आठसौ छत्तीस वर्ष कहा गया है ॥२७५॥ वह कालान्तर में जो अन्धान्त कहे गये हैं वे होंगे। वहाँ पर होने वाले भूतपि पुराणों के ज्ञाताओं के द्वारा सख्यात हुए हैं ॥२७६॥ उस समय में महर्षियों ने वे प्रतीप राजा सौ कहे हैं और आपने अन्धों के सत्ताईस सौ होने वाले बताये हैं ॥२७७॥ सप्तविंशति पर्यन्त पूरे नक्षत्र मण्डल में पर्याय से सौ सौ सप्तर्षिगण रहा करते हैं। वह युग दिव्य सख्या के द्वारा महर्षियों का कहा गया है ॥२७८॥

सा सा दिव्या स्मृता षष्टिर्दिव्याह्वाश्चैव सप्तभिः ।
तेभ्यः प्रवर्त्तते कालो दिव्यः सप्तर्षिभिस्तु तैः ॥२७६
सप्तर्षीणान्तु ये पूर्वा दृश्यन्ते उत्तरादिशि ।
ततो मध्येन च क्षेत्रं दृश्यते यत्समं दिवि ॥२८०
तेन सप्तर्षयो युक्ता ज्ञेया व्योम्नि शतं समाः ।
नक्षत्राणामृषीणाञ्च योगस्यैतन्निदर्शनम् ॥२८१
सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारिक्षिते शतम् ।
अन्ध्रांशे स चतुर्विंशे भविष्यन्ति मते मम ॥२८२
इमास्तदा तु प्रकृतिर्व्यापत्स्यन्ति प्रजा भृशम् ।
अनृतोपहताः सर्वा धर्मतः कामतोऽर्थतः ॥२८३

श्रौतस्मार्ते प्रशिथिले धर्मे वर्णाश्रमे तदा ।
सङ्कर दुर्बलात्मान प्रतिपत्स्यन्ति मोहिता ॥२८४
ससक्ताश्च भविष्यन्ति शूद्रा सार्द्धं द्विजातिभि ।
ब्राह्मणा शूद्रयष्टार शूद्रा वै मन्त्रयोनयः ॥२८५

यह–वह दिव्य वर्ष कही गई है और सातो के द्वारा दिव्याह्न कहे गये हैं। उन सप्तर्षियो के द्वारा दिव्यकाल प्रवृत्त होता है ॥२७६॥ सप्तर्षियो के पहिले उत्तर दिशा मे जो दिखलाई देते हैं और उसके मध्य से जो दिव म क्षेत्र दिखलाई देता है ॥२८०॥ उससे आकाश म सौ वर्ष युक्त सप्तर्षिगण जानने चाहिये। और ऋषियो का तथा नक्षत्रो का जो योग है उसका यही निदर्शन होता है ॥२८१॥ पारिक्षित काल मे मघा से युक्त सौ सप्तर्षिगण हैं। वह मेरे मत म चौबीसवें अन्ध्रास मे होंगे ॥२८२॥ उस समय ये प्रकृति बहुत अधिक प्रजा को प्राप्त करेगी। धर्म म और काम स तथा अर्थ से सभी प्रजा अनृत (मिथ्या) से उपहत होगी ॥२८३॥ उस समय मे श्रौत (वैदिक) तथा स्मार्त वर्णों और आश्रमो के धर्मों के विशेष रूप स शिथिल होजाने पर दुर्बल आत्मा वाले एव मोहको प्राप्त होजाने वाले मनुष्य सङ्कुरावस्था को प्राप्त हो जायगे ॥२८४॥ शूद्र लोग द्विजातियो के साथ ससक्त हो जायगे। ब्राह्मण लोग तो शूद्रयष्टा हो जायगे और शूद्र लोग मन्त्रयोनि वाले हो जायगे ॥२८५॥

उपस्थास्यन्ति तान् विप्रास्तदा वै वृत्तिलिप्सव ।
लव लव भ्रस्यमाना प्रजा सर्वा क्रमेण तु ॥२८६
क्षयमेव गमिष्यन्ति क्षीणशेषा युगक्षये ।
यस्मिन् कृष्णो दिव यातस्तस्मिन्नेव तदा दिने ॥२८७
प्रतिपन्न कलियुगस्तस्य सङ्ख्या निबोधत ।
सहस्राणि शतानीह त्रीणि मानुपसङ्ख्यया ।
षष्टि चैव सहस्राणि वर्षाणामुच्यते कलि ॥२८८
दिव्ये वर्षसहस्रन्तु तत्सन्ध्याश प्रकीर्त्तितम् ।
नि शेषे च तदा तस्मिन् कृत वै प्रतिपत्स्यते ॥२८९

ऐल इक्ष्वाकुवंशश्च सह भेदैः प्रकीर्त्तितौ ।
इक्ष्वाकोस्तु स्मृतः क्षत्र सुमित्रान्तं विवस्वतः ।।२९०
ऐल क्षत्रं क्षेमकान्त सोमवंशविदो विदुः ।
एते विवस्वत. पुत्राः कीर्त्तिता कीर्त्तिवर्द्धनाः ।।२९१
अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चं वान्वये स्मृताः ।।२९२
युगे युगे महात्मान समतीता सहस्रश ।
बहुत्वान्नामधेयाना परिसंख्या कुले कुले ।।२९३

विप्रगण अपनी वृत्ति के लालच में रहने वाले होते हुए उस समय में उन शूद्रों के समीप में आकर स्थित होंगे। क्षण-क्षण में अपने कर्त्तव्य से भ्रष्ट होते हुए समस्त प्रजा जन क्रम से क्षय को प्राप्त होंगे जो भी उस युग के क्षय में क्षीण होने से शेष रह जायगे। जिस दिन में श्रीकृष्ण अन्तर्हित होकर दिव-लोक को गये उसी दिन और उसी समय में कलियुग प्रतिपन्न होगया अब इसकी संख्या को आप लोग जान लो। मानुष संख्या से कलियुग तीन सौ हजार अर्थात् तीन लाख साठ हजार वर्ष की कही जाती है ।।२८६-२८७-२८८।। दिव्य में एक सहस्र वर्ष उसका सन्ध्यांश कहा गया है। फिर उस समय इसके निःशेष में कृतयुग प्राप्त हो जायगा ।।२८९।। ऐल वंश और इक्ष्वाकु का वंश भेदों के सहित प्रकीर्त्तित किये गये हैं। विवस्वान् इक्ष्वाकु का क्षत्र सुमित्र से अन्त तक कहा गया है ।।२९०।। ऐल क्षत्रिय वंश को सोमवंश के ज्ञाता लोग क्षेमक के अन्त

तर मन्वन्तर का क्षय होता है युगाख्या का अनुगमन करते हैं ॥३०७॥ जमदग्नि के पुत्र परशुराम के द्वारा क्षत्रियो को निरवशेषित करने पर सभी वसुधा के स्वामी क्षत्रियो के द्वारा वंशकुल और दो वंशधरस्य मे उनको मैं अब बतलाऊँगा उनका ज्ञान प्राप्त करलो ॥३०८॥ इक्ष्वाकु के पुत्र ऐल की प्रकृति परिवर्तित होती है। अग्रिबद्ध राजा लोग तथा अन्य क्षत्रिय नृप ॥३०९॥ जो कि ऐल वंश के ख्यात थे उसी प्रकार से इक्ष्वाकु के वंश के नृप थे। अभिषेक प्राप्त करने वाले कुलो की पूर्ण संख्या एकवान थी ॥३१०॥

तावदेव तु भोजाना विस्तारो द्विगुण स्मृत ।
भजते त्रिंशक क्षत्र चतुर्धा तद्यथादिशम् ॥३११
तेष्वतीता समाना ये ब्रुवतस्तान्निबोधत ।
शत वै प्रतिविन्ध्याना शत नागा शत हया ॥३१२
धृतराष्ट्राश्चैकशतमशीतिर्जनमेजया ।
शतञ्च ब्रह्मदत्ताना शौरिणा वीरिणा शतम् ॥३१३
तत शत पुलोमाना श्वेतकाशकुशादय ।
ततोऽपरे सहस्र वै येऽतीता शतबिन्दव ॥३१४
ईजिरे चाश्वमेधस्ते सर्वे नियुतदक्षिणै ।
एव राजर्षयोऽतीता शतशोऽथ सहस्रश ॥३१५
मनर्वैवस्वतस्यास्मिन् वर्त्तमानेऽन्तरे तु ये ।
तेषा निबोधतोत्पन्ना लोके सन्ततय स्मृता ॥३१६
न शक्य विस्तर तेषा सन्तानाना परम्परा ।
तत्पूर्वापरयोगेन वक्तु वर्षशतैरपि ॥३१७
अष्टाविंशद्युगाख्यास्तु गता वैवस्वतेऽन्तरे ।
एता राजर्षिभि सार्द्धं शिष्टा यास्ता निबोधत ॥३१८

उतना ही भोजो का विस्तार दुगुना कहा गया है। वह क्षत्र तीस थे जो यथा दिशा मे चारों ओर थे ॥३११॥ उनमें जो अतीत होगये और जो समान हैं उन्हे बतलाने वाले मुझ से भली भाँति जान लो। सौ तो प्रतिविन्ध्यों का था और एक सौ नागा थे तथा सौ हय थे ॥३१२॥ धृतराष्ट्र के एक सौ थे

तथा जनमेजय के अस्सी थे। ब्रह्मदत्तो के एक सौ थे तथा सीरि और वीरियो के एक शत थे ॥३१३॥ इसके अनन्तर पुलोमो के सौ श्वेत काश कुशादि थे। इसके पश्चात् दूसरे एक सहस्र थे जो शतविन्द व अतीत हो चुके हैं ॥३१४॥ उन सब ने नियुत दक्षिणा वाले अश्वमेघो के द्वारा यजन किया था। इस प्रकार से सैकड़ो तथा सहस्रो ही राजर्षि गण अतीत हो चुके हैं ॥३१५॥ वैवस्वत मन्वन्तर मे जो जो उत्पन्न हुए उनकी सन्तति लोक मे कही गई है, उसका ज्ञान प्राप्त करलो ॥३१६॥ विस्तार से वह नही कहा जा सकता है। उनके सन्तानो की परम्परा तथा उनका पूर्वा पर योग यह सब सैकड़ो वर्षों मे भी नही बतलाया जा सकता है ॥३१७॥ वैवस्वत मन्तर से अट्ठाईस युगाख्या गण होगई। यह राजर्षियो के साथ जो शिष्ट है उसे जानलो ॥३१८॥

चत्वारिंशच्च ये चैव भविष्या सह राजभि ।
युगाख्याना विशिष्टास्तु ततो वैवस्वतक्षये ॥३१६
एतद्व कथित सर्व्वं समासव्यासयोगत ।
पुनरुक्त बहुत्वाच्च न शक्यन्तु युगै सह ॥३२०
एते ययातिपुत्राणा पञ्चविंशा विशा हिता ।
कीर्त्तिताश्चामिता ये मे लोकान् वै धारयन्त्युत ॥३२१
लभते च वरेण्यश्च दुर्लभानिह लौकिकान् ।
आयु कीर्त्ति धन पुत्रान् स्वर्गं चानन्त्यमश्नुते ॥३२२
धारणाच्छ्रवणाच्चैव ते लोकान् धारयन्त्युत ।
इत्येष वो मया पादस्तृतीय कथितो द्विजा ।
विस्तरेणानुपूर्व्वी च किम्भूयो वर्त्तयाम्यहम् ॥३२३

जो चालीस राजाओ के साथ आगे होवे इसके पश्चात् वैवस्वत के क्षय युगाख्याओ के वे विशिष्ट हैं ॥३१६॥ यह सब कुछ सक्षेप और विस्तार से मैने कह दिया है। बहुत होने के कारण से पुन कहना युगो के साथ नहीं हो सकता है ॥३२०॥ ये विशो के हित करने वाले ययाति के पुत्रो के पच्चीस हुए उन्हें मेरे द्वारा बतला दिया गया है और जो लोको को धारण किया करते ॥३२१॥ के वरेण्यता को प्राप्त किया करते हैं और यहाँ पर लौकिक दुर्लभ

पदार्थों को प्राप्त करते हैं। आयु-कीर्ति-धन-पुत्र-स्वर्ग और अनन्तता को भी प्राप्त किया करते हैं ॥३२॥ धारण करने से तथा श्रवण करने से वे लोकों को धारण किया करते हैं। हे द्विजवृन्द ! यह मैंने तृतीय याद कह दिया है जोकि विस्तार पूर्वक तथा आनुपूर्वी के सहित ही कह दिया है। अब पुन क्या मैं कहूं ॥ ३३

प्रकरण ६२—मन्वन्तर कथन

निःशेषेषु च सर्वेषु तदा मन्वन्तरेष्विह ।
अन्तेऽनेकयुगे तस्मिन् क्षीणे संहार उच्यते ॥१
सप्तर्षयो मनुश्चैव देवा मन्ते मन्वन्तरे तदा ।
भुक्त्वा त्रैलोक्यमध्यस्था युगाख्या ह्येकसप्ततिम् ॥२
पितृभिर्मनुभिश्चैव सार्द्धं सप्तर्षिभिस्तु ये ।
यज्वानश्चैव तेऽप्यन्ये तद्भक्ताश्चैव ते सह ॥३
महर्लोकं गमिष्यन्ति त्यक्त्वा त्रैलोक्यमीश्वराः ।
ततस्तेषु गतेपूर्द्ध्वं क्षीणे मन्वन्तरे तदा ।
अनाधारमिदं सर्वं त्रैलोक्यं वै भविष्यति ॥४
तत स्थानानि शून्यानि स्थानिना तानि वै द्विजा ।
प्रभ्रश्यन्ति विमुक्तानि ताराऋक्षग्रहैस्तथा ॥५
ततस्तेषु व्यतीतेषु त्रैलोक्यस्येश्वरेष्विह ।
ऐन्द्राद्येषु महर्लोकं यस्मिंस्ते कल्पवासिन ॥६
जिताद्याश्च गणा ह्यत्र चाक्षुषान्ताश्चतुर्दश ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवास्तु वै महौजस ॥७
ततस्तेषु गतेपूर्द्ध्वं सायोज्यं कल्पवासिनाम् ।
समेत्य देवास्ते सर्वे प्राप्ते सङ्कलने तदा ॥८

श्री सूतजी ने कहा—यहाँ उस समय सब मन्वन्तरों के निःशेष होजाने पर अनेक युग के अन्त में उसके क्षीण होजाने पर संहार कहा जाता है ॥१॥

उस समय मन्वन्तर के अन्त मे ये मान भार्गव देव हुए जो त्रैलोक्य के मध्य मे मे स्थित होते हुए एक राप्तति अर्थात् इकहत्तर युगाख्या का भोग करने वाले थे ॥२॥ पितरगण–मनुवृन्द और सप्तर्षियो के साथ जो यज्वा थे और जो अन्य उनके भक्त थे उनके साथ इस त्रैलोक्य का त्याग करके महर्लोक मे वे ईश्वर चले जायेंगे । इसके पश्चात् उनके ऊर्द्ध को चले जाने पर उस समय मन्वन्तर के क्षीण होने पर यह समस्त त्रैलोक्य अनाधार हो जायगा ॥३-४॥ हे द्विज-गण ! तब स्थानियो के वे देव समस्त स्थान शून्य होते हुए तारा ऋक्ष और ग्रहो के द्वारा विमुक्त होकर प्रभ्रष्ट हो जायेंगे ॥५॥ इसके अनन्तर त्रैलोक्य के व्यतीत हो जाने पर जोकि इन्द्र के सहित आठ थे, वे सभी कल्प तक महर्लोक मे वास करने वाले हैं ॥यहाँ पर जिताद्य और चाक्षुपान्त चौदहगण हैं समस्त मन्वन्तरो मे वे महान् ओज वाले देव थे ॥७॥ इसके पश्चात् उनके ऊपर चले जाने पर कल्प वासियो के सायोज्य को प्राप्त कर उस समय सकलत प्राप्त होने पर वे सब देव जो थे ॥८॥

महर्लोकं परित्यज्य गणास्ते वै चतुर्दश ।
सशरीराश्च श्रूयन्ते जनलोकं सहानुगा ॥६
एवं देवेष्वतीतेषु महर्लोकाज्जनं प्रति ।
भूतादिष्ववशिष्टेषु स्थावरान्तेषु चाप्युत ॥१०
शून्येषु लोकस्थानेषु महान्तेषु भूरादिषु ।
देवेषु च गतेषूर्द्ध्वं सायोज्यं कल्पवासिनाम् ॥११
संहृत्य तास्ततो ब्रह्मा देवर्षिपितृदानवान् ।
संस्थापयति वै सर्गं महद्दृष्ट्वा युगक्षये ॥१२
तत्र युगसहस्रान्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तामहोरात्रविदो जनाः ॥१३
नैमित्तिकः प्राकृतिको यश्चैवात्यन्तिकोऽर्थत ।
त्रिविधः सर्वभूतानामित्येष प्रतिसञ्चरः ॥१४
ब्राह्मो नैमित्तिकस्तस्य कल्पदाह प्रसंयम. ।
प्रतिसर्गे तु भूताना प्राकृत करणक्षय. ॥१५

ज्ञानाच्चात्यन्तिक प्रोक्त कारणानामसम्भव ।
तत सहृत्य तान् ब्रह्मा देवास्त्रैलोक्यवासिन ॥१६
अहरन्ते प्रकुरुते सर्गस्य प्रलय पुन ।
सुषुप्सुर्भगवान् ब्रह्मा प्रजा सहरते तदा ॥१७

वे सब देव महर्लोक का परित्याग करके सशरीर चौदहगण अनुगों के साथ जनलोक म गये ऐसा सुना जाता है ॥६॥ इस प्रकार से महर्लोक से उन देवो के जनलोक के प्रति चले जाने पर अवशिष्ट भूतादि और स्थान राशी के साथ लोक स्थानों के एव महान् भू आदि के शून्य होजाने पर फिर उन देवों के ऊपर जाने पर कल्प पर्यन्त वास हुआ और उनको सायोज्य प्राप्त हुआ था ॥१०-११॥ इसके उपरान्त उनको वहाँ से सहृत करके ब्रह्माजी देवर्षि-पितृ तथा मानवो को युगक्षय म महद्दृष्टि स सर्ग को सस्थापित करते हैं ॥१२॥ वहाँ एक सहस्र युग तक जो ब्रह्माजी का दिन कहा जाता है और रात्रि का युग सहस्र पर्यन्त होता है। इस प्रकार से ब्रह्मा के अहोरात्र को मनुष्य जानते हैं ॥१३॥ नैमित्तिक-प्राकृतिक और जो अर्थ से आत्यन्तिक यह तीन प्रकार का समस्त प्राणियो का सञ्चार होना है ॥१४॥ ब्राह्म नैमित्तिक होता है उसका कल्पहार प्रसयम होता है। प्राणियो के असोक सर्ग मे कारण क्षय प्राकृतिक होता है ॥१५॥ और ज्ञान आत्यन्तिक कहा गया है जो कारणो का असम्भव होता है। इसके पश्चात् ब्रह्माजी त्रैलोक्य वासी उन देवो को सहृत करके दिन के अन्त मे सर्ग का प्रलय किया करते हैं। सोने की इच्छा वाले ब्रह्मा उस समय मे प्रजाओं का सहार किया करते हैं ॥१६-१७॥

ततो युगसहस्रान्ते सप्राप्ते च युगक्षये ।
तत्रात्मस्था प्रजा कर्तुं प्रपेदे स प्रजापति ॥१८
तदा भवत्यनावृष्टिस्तदा सा शतवार्षिकी ।
तथा यान्यल्पसाराणि सत्त्वानि पृथिवीतले ॥१९
तान्येवात्र प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च
सप्तरश्मिरथो भूत्वा ह्युदतिष्ठद्विभावसु ॥२०

असह्यारश्मिर्भगवान् पिवन्नम्भो गभस्तिभि ।
हरिता रश्मयस्तस्य दीप्यमानास्तु सप्तभिः ॥२१
भूय एव विवर्तन्ते व्याप्नुवन्तो वन शनै ।
भौम काष्ठं धन तेजो भृशमद्भिस्तु दीप्यते ॥२२
तस्मादुदक सूर्य्यस्य तपतोऽति हि कथ्यते ।
नावृष्ट्या तपते सूर्यो नावृष्ट्या परिविष्यते ॥२३

इसके पश्चात् सहस्र युग के अन्त में युग क्षय के सम्प्राप्त होने पर वह प्रजापति वहाँ पर अपनी आत्मा मे स्थित प्रजा के करने के लिये प्रस्तुत होते हैं ॥१८॥ उस समय मे सौ वर्ष पर्यन्त अनावृष्टि हुआ करती है। इस प्रकार से अल्पसार वाले जो जीव इस पृथ्वी तल में होते हैं वे यहाँ पर ही प्रलीन हो जाया करते हैं और भूमि मे मिल जाया करते हैं। इसके उपरान्त विभावसु (सूर्य) सप्तरश्मि होकर उदित होता है ॥१९-२०॥ भगवान् सूर्य बहुत ही तीक्ष्ण किरणों वाले होते है। जिनको कोई सहन नहीं कर सकता है। वे अपनी किरणों के द्वारा जल का पान किया करते है। उसकी हरित रश्मियाँ अत्यन्त ही सप्तो के द्वारा ही दीप्यमान होती हैं ॥२१॥ शनै शनै वन मे व्याप्त होते हुए फिर विवर्तित होती हैं। भूमि के काष्ठ, धन, तेज को बहुत ही भक्षण करते हुए दीप्त होते हैं ॥२२॥ इसम तपते हुए सूर्य का उदक कहा जाता है। अनावृष्टि मे सूर्य तपता है और नावृष्टि से परिविष्ट होता है ॥२३॥

नावृष्ट्या परिचिन्वन्ति वारिणा दीप्यते रवि ।
तस्मादप पिवन् या वै दीप्यते रविरम्बरे ॥२४
तस्य ते रश्मय सप्त पिवन्त्यम्भो महार्णवात् ।
तेनाहारेण सन्दीप्त सूर्य्य सप्त भवन्त्युत ॥२५
ततस्ते रश्मय सप्त सूर्य्यभूताश्चतुर्दिशम् ।
चतुर्लोकमिम सर्वं दहन्ति शिखिनस्तदा ॥२६
प्राप्नुवन्ति च भाभिस्तु ह्यूर्द्ध चाधश्च रश्मिभिः ।
दीप्यन्ते भास्कराः सप्त युगान्ताग्नि प्रतापिनः ॥२७

ते वारिणा च सदीप्ता बहुसाहस्रगणमयः ।
स समावृत्य तिष्ठन्ति निर्दहन्तो वसुन्धराम् ॥२८
ततस्तेषां प्रतापेन दह्यमाना वसुन्धरा ।
साद्रि नद्यर्णवा पृथ्वी निःस्नेहा समपद्यत ॥२९
दीप्ताभि सन्तताभिश्च चित्राभिश्च समन्तत ।
अधश्चोर्ध्वश्च तिर्यङ् च सरुद्ध सूर्यरश्मिभिः ॥३०

नाड़ियों से रवि परिविच्छिन्न होता है और वारि (जल) से दीप्त हुआ करता है। इससे जो जल का पान करती हैं उनसे सूर्य अम्बर में दीप्त हुआ करता है ॥२४॥ उनकी सात रश्मियाँ महार्णव से जल का पान किया करती हैं। उस आहार से सन्दीप्त होने वाला सूर्य सप्त होता है ॥२५॥ इसके अनन्तर सात रश्मियाँ चारों दिशाओं में सूर्य भूत होती हुईं उस समय शिखी (अग्नि रूप) वे इस चतुर्लोक को सर्व को दग्ध किया करती हैं ॥२६॥ ऊपर और नीचे अपनी दीप्तियों से रश्मियाँ सर्वत्र प्राप्त हो जाती हैं। प्रताप वाले सूर्य की युगान्त सप्त भास्कर दीप्यमान होते हैं ॥२७॥ ये बहु सहस्र रश्मियाँ जल के द्वारा सदीप्त हो जाया करती हैं। इस वसुन्धरा को जलाती हुईं आकाश को आवृत करके रहा करती हैं ॥२८॥ इसके अनन्तर उनके प्रकृष्ट ताप से यह समस्त वसुन्धरा दह्यमान हो जाया करती है। पर्वतों से सहित नदी और समुद्र से युक्त यह समस्त पृथ्वी बिना स्नेह वाली अर्थात् एकदम शुष्क हो जाती है ॥२९॥ दीप्त—सर्वत्र फैली हुई—विचित्र तेज से युक्त सूर्य की किरणों से नीचे के भाग और ऊपर का भाग और तिरछे भाग सभी सरुद्ध हो जाते हैं ॥३०॥

सूर्याग्नीनां प्रवृद्धानां ससृष्टानां परस्परम् ।
एकत्वमुपयातानामेकज्वालं भवत्युत ॥३१
सर्वलोकप्रणाशाश्च सोऽग्निर्भूत्वा तु मण्डली ।
चतुर्लोकमिदं सर्वं निर्दहत्याशु तेजसा ॥३२
ततः प्रलीयते सर्वं जङ्गमं स्थावरं तदा ।
निर्वृक्षा निस्तृणा भूमि कूर्मपृष्ठसमा भवेत् ॥३३

अम्बरीषमिवाभाति सर्वं मारिगित जगत् ।
सर्वमेव तदार्चिभिः पूर्णं जज्वाल्यते नभः ॥३४
पाताले यानि भूतानि महोदधिगतानि च ।
ततस्तानि प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च ॥३५

इस प्रकार से बढ़ी हुई और परस्पर में ससृष्ट अर्थात् मिली हुई सूर्य की अर्चियों का जोकि सभी मिलकर एक स्वरूप को प्राप्त हो गई हैं फिर सबकी एक ही महान् ज्वाला का रूप हो जाया करता है ॥३१॥ यह मण्डली इस प्रकार से भीषण अग्नि का स्वरूप धारण करके तेज से समस्त लोकों का प्रदृष्ट नाश किया करता है और इस चतुर्लोक को समस्त को शीघ्र ही तेज से निर्दग्ध कर देता है ॥३२॥ इसके पश्चात् यह समस्त स्थावर और जङ्गम उस समय प्रलीन हो जाता है। यह भूमि ऐसी हो जाती है कि इस पर एक भी वृक्ष नहीं रहता है तथा तृणों से हीन कूर्म के पृष्ठ के समान एकदम पट्ट सी होजाती है ॥३३॥ यह समस्त मागीपित जगत् अम्बरीष की भाँति प्रतीत होता है। उस समय में अर्चियों के द्वारा यह सबस्त आकाश मण्डल परिपूर्ण रूप से जाज्वल्यमान हो जाता है ॥३४॥ पाताल में जो प्राणी हैं और महा समुद्र में हैं वे भी उस समय प्रलीन हो जाते हैं और भूमित्व को प्राप्त हो जाया करते हैं अर्थात् भूमि में मिलकर अपना अस्तित्व खो देते हैं ॥३५॥

द्वीपाश्च पर्वताश्चैव वर्षाण्यथ महादधि ।
सर्वं तद्भस्मसात्चक्र सर्वात्मा पावकस्तु स ॥३६
समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च पातालेभ्यश्च सर्वत ।
पिबन्नप समिद्धोऽग्नि पृथिवीमाश्रितो ज्वलन् ॥३७
तत सवर्त्तक शैलानतिक्रम्य महास्तथा ।
लोकान् सहरते दीप्तो घोर सवर्त्तोऽनल ॥३८
तत स पृथिवी भित्त्वा रसातलमशोषयत् ।
निर्दह्य तान्तु पातालाद्यामलोकमथादहत् ॥३९
अधस्तात्पृथिवी दग्ध्वा ह्यूर्द्ध स दहते दिवम् ।
योजनाना सहस्राणि ह्ययुनान्यर्बुदानि च ॥४०

उदतिष्ठञ्छिखास्तस्य वह्नेश्च सवर्त्तकस्य तु ।
गन्धर्वांश्च पिशाचांश्च समहोरगराक्षसान् ।
तदा दहति संदीप्तो गोलकं चैव सर्व्वशः ॥४१
भूर्लोकन्तु भुवर्लोकं स्वर्लोकञ्च महस्तथा ।
घोर दहति कालाग्निरेव लोकचतुष्टयम् ॥४२
व्याप्तेषु तेषु लोकेषु तिर्यगूर्द्ध्वमथाग्निना ।
तत्तेजः समनुप्राप्त कृत्स्नं जगदिदं शनैः ।
अयोगुडनिभ सर्व्वं तदा ह्येव प्रकाशते ॥४३
ततो गजकुलाकारास्तडिद्भिः समलङ्कृताः ।
उत्तिष्ठन्ति तदा घोरा व्योम्नि सवर्त्तका घनाः ॥४४

सर्वात्मा उस पावक ने द्वीप–पर्वत–वर्ष और महा समुद्र इन सबको भस्म सात् कर दिया था ।३६। समुद्रों से–नदियों से और पातालों से सब ओर से जल का पान करते हुए समिद्ध हुआ वह अग्नि जलता हुआ पृथिवी में आश्रित होगया था। इसके अनन्तर वह महान् सवर्त्तक अग्नि शैलों का अति क्रमण करके अत्यन्त घोर तथा दीप्त होता हुआ लोकों का संहार करता है ॥३७ ३८॥ इसके पश्चात् वह इस पृथ्वी का भेदन करके रसातल में पहुँचता है और उसने उसका शोषण कर दिया था। उन पाताल लोकों को निर्दग्ध करके उसके पश्चात् उसने नागलोक को भी जला दिया था ॥३९॥ नीचे के समस्त भाग में पृथ्वी को दग्ध करके वह फिर ऊर्द्ध भाग में दिवलोक जला देता है। *सहस्र अयुत और अर्बुद योजनों तक उस सवर्त्तक अग्नि की बहुत सी शाखाएँ* उठ गई थी। फिर वह गन्धर्वों को–पिशाचों को–महोरगों को और राक्षसों को उस समय संदीप्त होता हुआ जलाता है ॥४०-४१॥ भूर्लोक–भुवर्लोक–स्वर्लोक और महर्लोक इन चारों लोकों को इस प्रकार से यह घोर कालाग्नि दग्ध कर दिया करता है ॥४२॥ तिर्यक और ऊर्द्ध्व भाग में उस अग्नि के द्वारा उन लोकों में व्याप्त हो जाने पर वह तेज धीरे धीरे सम्पूर्ण इस जगत् में प्राप्त हो जाता है। उस समय यह सब अयोगुड के समान प्रकाशित होने लगता है ॥४३॥

इसके पश्चात् हाथियों के समान आकार वाले विद्युत् से अलङ्कृत उस समय आकाश में परम घोर स्वरूप वाले संवर्त्तक मेघ उठ आते हैं ॥४४॥

केचिन्नीलोत्पलश्यामा केचित्कुमुदसन्निभा ।
केचिद्वैदूर्यसंकाशा इन्द्रनीलनिभा परे ॥४५
शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जात्यञ्जननिभास्तथा ।
धूम्रवर्णा घना केचित्केचित्पीता पयोधरा ॥४६
केचिद्रासभवर्णाभा लाक्षारक्तनिभास्तथा ।
मनःशिलाभास्त्वपरे कपोताभास्तथाम्बुदा ॥४७
इन्द्रगोपनिभा केचिद्धरितालनिभा घना दिवि ।
केचित्पुरवराकारा केचिद्गजकुलोपमा ॥४८
केचित्पर्वतसंकाशा केचित्स्थलनिभा घना ।
कूटागारनिभा केचित्केचिन्मीनकुलोपमा ॥४९

उन मेघों में कुछ तो नील कमल के सदृश श्याम होते हैं और कुछ कुमुद के समान हुआ करते हैं। कुछ वैदूर्य के तुल्य हैं तो दूसरे इन्द्र नील के सदृश होते हैं ॥४५॥ अन्य शङ्ख और कुन्द के तुल्य हैं तो कुछ अञ्जन के समान होते हैं। कुछ मेघ धूम्र वर्ण वाले होते हैं तो कुछ मेघ पीत हैं ॥४६॥ कुछ रासभ (गधा) के वर्ण जैसे वर्ण वाले हैं तो कुछ लाख के जैसे रक्त वर्ण वाले हैं। कुछ मैनसिल के समान आभा से युक्त हैं तथा कुछ मेघ कपोत (कबूतर) की सी आभा वाले होते हैं ॥४७॥ कुछ बादल इन्द्र गोप के तुल्य इस आकाश में उठते हैं। कुछ पुरवर के आकार वाले हैं तो कुछ गजों के समूह के समान होते हैं ॥४८॥ कुछ पर्वतों के समान हैं तो कुछ स्थल के सदृश मेघ होते हैं। कूटागार के तुल्य कुछ हैं तो कुछ मीन कुल के तुल्य होते हैं ॥४९॥

बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरनिनादिनः ।
तदा जलधरा सर्वे पूरयन्ति नभःस्थलम् ॥५०
ततस्ते जलदा घोरा नवीना भास्करात्मजा ।
सप्तधा संवृतात्मानस्तमग्निं शमयन्त्युत ॥५१

ततस्ते जलदा वर्षं मुञ्चन्ति च महोद्यमम् ।
सुघोरमशिव नाशयन्ति च त पावकम् ॥५२
प्रवृष्टैश्च तथात्यर्थं वारिभि पूर्य्यते जगत् ।
अद्भिस्तेजोऽभिभूतश्च तदाग्नि प्राविशत्यप. ॥५३
नष्टे चाग्नौ वर्षशते पयोदा पाकसम्भवा ।
प्लावयन्ति जगत्सर्वं बृहज्जालपरिस्रवै ॥५४

बहुत से रूपों वाले तथा घोर स्वरूप धारी और अति घोर निनाद करने वाले जलधर उस समय मे नभ के स्थल भर दिया करते हैं ॥५०॥ इसके अनन्तर भास्करात्मिक वे नये मेघ जिनका कि परम घोर स्वरूप है सात प्रकार से सवृत आत्मा वाले उस अग्नि को शमन कर देते हैं ॥५१॥ इसके उपरान्त वे जलधर महान् उद्यम वाली वर्षा का त्याग किया करते हैं अर्थात् अत्यन्त जोर से बरसते हैं और उस परम घोर अमङ्गल उस पावक का नाश कर देते हैं ॥५२॥ प्रवृष्ट रूप से वर्षा करने वाले अति जलो के द्वारा यह जगत् पूरित हो जाता है। फिर वह तेजोऽभिभूत अग्नि जलो के द्वारा जल ही मे प्रवेश कर जाता था ॥५३॥ पाक से समुत्पन्न वे जलद वृन्द सौ वर्ष तक बरसते हुए अग्नि को शान्त कर देने पर बृहत् जल के समूह के परिस्रवो के द्वारा इस समस्त जगत् को प्लावित कर देते हैं ॥५४॥

धाराभि पूरयन्तीम चोद्यमाना स्वयम्भुवा ।
अन्यं तु सलिलौघैस्तु वेलामभिभवन्त्यपि ।
साद्रिद्वीपान्तर पृथ्वी ह्यद्भि सछाद्यते तदा ॥५५
तस्य वृष्ट्या च ताय तत्सर्वं हि परिमण्डितम् ।
प्रविशत्युदधौ विप्राः प्रोत सूर्य्यस्य रश्मिभि ॥५६
आदित्यरश्मिभि पीत जलमभ्रेषु तिष्ठति ।
पुन पतति तद्भूमौ तेन पूर्य्यन्ति चार्णवा ॥५७
तत समुद्रा स्वा वेला परिक्रामन्ति सर्वश ।
पर्व्वताश्च विशीर्य्यन्ते मही चाप्सु निमज्जति ॥५८

ततस्तु महसोद्भ्रान्त पयोदास्तान्नभस्तले ।
सवेष्टयति घोरात्मा दिवि वायुः समन्ततः ॥५९
तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
पूर्णे युगसहस्रे वै निःशेष कल्प उच्यते ॥६०
अथाम्भसा वृते लोके प्राहुरेकार्णवं बुधा ।
अथ भूमितलं खञ्च वायुश्चैकार्णवे तदा ।
नष्टे भावेऽवलीन तत्प्राज्ञायत न किञ्चन ॥६१
पार्थिवास्त्वथ सामुद्रा आपो हैमाश्च सर्वश ।
प्रसरन्त्यो व्रजन्त्येव सलिलाख्या भजन्त्युत ॥६२

स्वयम्भू के द्वारा प्रेरित हुए ये मेघ अपनी मूसलाधार धाराओं के द्वारा इस जगत् को भर दिया करते हैं। अन्य तो अपने जल के ओघों के द्वारा वेला को भी अभिभूत कर देते हैं। उस समय में पर्वत और द्वीपों के अन्तरों के सहित यह पृथ्वी जलों के द्वारा समाच्छादित हो जाया करती है ॥५५॥ और उसकी वृष्टि से हे द्विजगण ! परिमण्डित यह समस्त जल सूर्य की किरणों के द्वारा पान किये गये समुद्र में प्रवेश करता है ॥५६॥ सूर्य के द्वारा पीया हुआ यह जल मेघों में स्थित हो जाता है फिर वही जल यहाँ पर भूमि में पड़ता है उससे समुद्र भर जाया करते हैं ॥५७॥ इसके उपरान्त ये समुद्र अपनी वेला को सभी ओर से परिक्रान्त कर दिया करते हैं। तब पर्वत विशीर्ण हो जाते हैं और समस्त भूमि जल में डूब जाया करती है ॥५८॥ इसके पश्चात् सहसा उद्भ्रान्त वायु सभी ओर से घोर रूप धारण करके आकाश में उन मेघों को संवेष्टित कर लेता है ॥५९॥ उस समुद्र में समस्त स्थावर और जङ्गम के नष्ट हो जाने पर पूरे एक सहस्र युग में निःशेष कल्प कहा जाता है ॥६०॥ इसके अनन्तर एकमात्र जल के द्वारा समस्त लोक के आवृत हो जाने पर बुध एकार्णव रहा करते हैं और इस भूतल तथा आकाश को वायु जब एकार्णव बना देता है तब उस समय में भाव के नष्ट होने पर कुछ भी नहीं जाना जाता था ॥६१॥ पार्थिव—सामुद्र और हिम से होने वाले जल सभी ओर फैले हुए एवं सलिलाख्या को प्राप्त किया करते हैं ॥६२॥

आगतागतिक चैव तदा तत्सलिल स्मृतम् ।
प्रच्छाद्य तिष्ठति महीमर्णवाख्य च तज्जलम् ॥६३
आभान्ति यस्मात्ता भाभिभाशब्दव्याप्तिदीप्तिषु ।
भस्म सर्व्वमनुप्राप्य तस्मादम्भो निरुच्यत ॥६४
नानात्वे चैव शीघ्रे च धातुर्वै अर उच्यते ।
एकार्णवे तदा यो वै न शीघ्रास्तेन ता नरा ॥६५
तस्मिन् युगसहस्रान्ते दिवसे ब्रह्मणो गते ।
तावन्त कालमेव तु भवन्त्येकार्णव जगत्
तदा तु सर्व्वव्यापारा निवर्त्तन्ते प्रजापते ॥६६
एवमेकार्णवे तस्मिन्नष्टे स्थावर जङ्गमे ।
तदा स भवति ब्रह्मा सहस्राक्ष सहस्रपात् ॥६७
सहस्रशीर्षा सुमना सहस्रपात् सहस्रचक्षुर्वदन सहस्रवाक् ।
सहस्रबाहु प्रथम प्रजापतिस्त्रयीपथे य पुरुषो निरुच्यते ॥६८
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता ह्यपूर्व्व एकः प्रथमस्तुराषाट् ।
हिरण्यगर्भ पुरुषो महान् वै सपठ्यते वै तमस परस्तात् ॥६९
चतुर्युगसहस्रान्ते सर्वत सलिलप्लुत ।
सुषुप्सुरप्रकाशा स्वा रात्रि तु कुरुते प्रभु ॥७०

उस समय म वह जल आगतागतिक कहा गया है। अर्णव के नाम वाला वह जल इस भूमि को ढक कर स्थित रहता है ॥६३॥ क्योकि वह भाभो के द्वारा भी—इस शब्द की व्याप्ति की दीप्तियो म आभा युक्त होता है सबको भस्म में अनु प्राप्त करता है इसलिय वह अम्भ कहा जाता है ॥६४॥ और नानात्व म एव शीघ्र मे अरधातु कही जाती है। उस समय मे एकार्णव म जो शीघ्र नही है उससे वह नर कहा गया है ॥६५॥ ब्रह्मा के युग सहस्र वाले उस दिन के गत होने पर उस समय तक ही यह जगत् एकार्णव रहता है और तब प्रजापति के समस्त व्यापार निवृत्त हो जाया करते हैं ॥६६॥ इस प्रकार से उस एक अर्णव मे समस्त स्थावर और जङ्गम क नष्ट हो जाने पर तब ब्रह्मा सहस्र नेत्रा और सहस्र चरणा वाले होत हैं ॥६७॥ सहस्र शीर्ष वाले-सुमना-

सहस्र पादो से युक्त सहस्र चक्षु और मुखो से पूर्ण—सहस्र नाक्-सहस्र बाहुओ वाला अधीश्व म प्रथम प्रजापति होता है जाकि पुरुष कहा जाता है ॥६८॥ आदित्य के समान वर्ण वाला—इस भुवन को गोप्ता प्रथम तुरापाट एक अपूर्व ही होता है। वह हिरण्य गर्भ पुरुष तम से परे महान् सम्पन्न होता है ॥६९॥ एक सहस्र वारो युगा के अ त म सब ओर स जल म स्नुत म सोने की इच्छा करने वाला वह प्रभु प्रकाश हीन उस अपनी रात्रि को किया करता है ॥७०॥

चतुर्विधा यदा शेते प्रजा सर्व्वाण्डमण्डिता ।
पश्यन्ते त महात्मान काल सप्त महर्षय ॥७१
जनलोकविवर्तन्तस्तपमा लब्धचक्षुष ।
भृग्वादयो महात्मान पूर्वो व्याख्यातलक्षणा ॥७२
सत्यादीन् सप्तलोकान् वै त हि पश्यन्ति चक्षुषा ।
ब्रह्माण त तु पश्यन्ति महाद्याह्नीषु रात्रिषु ॥७३
कल्पाना परमेष्ठित्वात्तस्मादाद्य स पठ्यते ॥७४
स स्रष्टा सर्व्वभूताना कल्पादिषु पुन पुन ।
एवमावशयित्वा तु स्वात्मन्यव प्रजापति ॥७५
अथात्मनि महानजा सर्व्वमादाय सर्व्वहृत् ।
समस्त वसत रात्रि तमस्यैकार्णवे जले ॥७६
ततो रात्रिक्षये प्राप्त प्रतिवुद्ध प्रजापति ।
मन सिसृक्षया युक्त सर्गाय निदधे पुन ॥७७
एव सर्गोऽर्हे निर्वृत्त उपशान्ते प्रजापतौ ।
ब्रह्मनैमित्तिके तस्मिन् कल्पित वै प्रसयम ॥७८
देहैर्वियोग सत्वाना तस्मिन् वै कृत्स्नश स्मृत ।
ततो दग्धेषु भूतेषु सर्व्वेष्वादित्यरश्मिभि ।
दर्षिम नवर्य्येषु तस्मिन् सङ्कुलने तदा ॥७९
गन्धर्वादीनि सत्वानि पिशाचान्तानि सर्व्वश ।
कल्पादावप्रतप्तानि जनमवाश्रयन्ति वै ॥८०

जिस समय म सर्वाण्ड मण्डित चार प्रकार की प्रजा शयन करती है

तो सप्तर्षिगण उस महान् आत्मा वाले काल को देखा करते हैं ।।७१।। जल लोक में विद्यमान और तप के द्वारा नेत्रों की दृष्टि को प्राप्त करने वाले भृगु आदि महात्मा होते हैं जिनका पूर्व में लक्षणों की व्याख्या करदी गई है । सत्य प्रभृति सातो लोकों को वे ही चक्षु के द्वारा देखा करते हैं । उन महा ब्राह्मी रात्रियों में वे ब्रह्मा को भी देखा करते हैं ।।७२।। सप्तर्षिगण अपनी रात्रियों में सोये हुए काल को देखते हैं । कल्पो का परमेष्ठी होने से वह आद्य पढ़ा जाया करता है ।।७३-७४।। वह समस्त प्राणियों का कल्पों के आदि में पुन पुन स्रष्टा होता है । इस प्रकार से प्रजापति अपनी आत्मा में ही आवेशयित होता है ।।७५।। इसके अनन्तर महान् तेज वाला सबको आत्मा में लाकर सब कुछ के करने वाला इसके पश्चात् एकार्णव जल में जोकि एकदम अन्धकारमय है वहाँ रात्रि में वास किया करता है ।।७६।। इसके उपरान्त उस रात्रि के क्षय हो जाने पर वह प्रजापति प्रति बुद्ध होता है और फिर सृजन करने की इच्छा से मनको युक्त करके पुन सर्ग के लिये निश्चित किया करता है ।।७७।। इस तरह से सलोक के निवृत्त होने पर और प्रजापति के उपशान्त होने पर तथा ब्रह्म नैमित्तिक उस कल्पित के प्रसयम होने पर सत्वों का देहों से वियोग होता है और उसको पूर्णरूप से कहा गया है । इसके पश्चात् सूर्य की किरणों के द्वारा समस्त प्राणियों के दग्ध हो जाने पर उस समय से मनुज श्रेष्ठ देवर्षियों के उस सङ्कलन से गन्धर्व आदि जीव और पिशाचान्त तक कल्प के आदि से अप्रनस होते हुए जन्म लोक का आश्रय लिया करते हैं ।।७८-७९-८०।।

तिर्य्यग्योनीनि सत्वानि नारकेयानि यान्यपि ।
जने तान्युपपद्यन्ते यावत्सम्प्लवते जगत् ।।८१
व्युष्टायान्तु रजन्या तु ब्रह्मणोऽव्यक्तयोनये ।
जायन्ते हि पुनस्तानि सर्व्वभूतानि कृत्स्नश ।।८२
ऋषयो मनवो देवा प्रजा सर्व्वाश्चतुर्विधा ।
तेषामपीह सिद्धाना निधनोत्पत्तिरुच्यते ।।८३
यथा सूर्यस्य लोकेऽस्मिन्नुदयास्तमन स्मृतम् ।
तथा जन्मनिरोधश्च भूतानामिह दृश्यते ।।८४

प्राभूतसम्प्लवात्तस्मादूर्ध्व. संसार उच्यते ।
यथा सर्वाणि भूतानि जायन्ते हि वर्षास्विह ॥८५
स्थावरादीनि सत्त्वानि कल्पे कल्पे तथा प्रजाः ।
यथार्त्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्य्यये ॥८६
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्रह्मासरात्रिषु ।
प्रत्याहारे च सर्गे च गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥८७
निष्क्रमन्ते विशन्ते च प्रजाधार प्रजापतिम् ।
ब्रह्माणं सर्वभूतानि महायोग महेश्वरम् ॥८८

जो तिर्यक् योनि वाले जीव थे और जो नारकीय जीव थे उस समय वे सभी सब प्रकार से नष्ट पापों वाले होते हुए दग्ध होगये थे । जब तक जगत् संप्लावित रहता है तब तक ये सभी सत्त्व जनलोक में उत्पन्न हुआ करते हैं ॥८१॥ अव्यक्त योनि ब्रह्मा के निश रजनी के व्युष्ट हो जाने पर फिर वे समस्त प्राणी पूर्ण रूप से उत्पन्न होते हैं ॥८२॥ ऋषिगण–मनुष्य–देवता–प्रजा समस्त चारों प्रकार की—इन सबका और यहाँ पर सिद्धों का भी निधन होना तथा उत्पन्न होना कहा जाता है ॥८३॥ जिस तरह से इस लोक में सूर्य का उदय होना और अस्त होना कहा गया है—उसी तरह से प्राणियों का जन्म और निरोध दिखाई देता है ॥८४॥ उस भूत सम्प्लव से लेकर सब संसार कहा जाता है । जैसे समस्त प्राणी यहाँ वर्षा में उत्पन्न हुआ करते हैं ॥८५॥ जिस तरह ऋतु के समय में पर्यय होने पर अनेक प्रकार के ऋतु के चिह्न होते हैं उसी तरह कल्प–कल्प में स्थावर आदि सत्त्व और प्रजा हुआ करते हैं ॥८६॥ ब्रह्मा की प्रात रात्रियों में वे–वे ही प्रत्याहार में और सर्ग में ध्रुव और गतिमान् दिखाई दिया करते हैं ॥८७॥ महान् योग वाले महेश्वर प्रजा के आधार वाले प्रजापति ब्रह्मा में समस्त प्राणी प्रवेश करते हैं और निष्क्रमण किया करते हैं ॥८८॥

मन्वन्तरा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः ।
अव्यक्तात्मानो महादेवस्य सर्वमिदं जगत् ॥८९

येनैव सृष्टा प्रथम प्रयाता ग्रापो हि मार्गेण महीतलेऽस्मिन् ।
पूर्वंप्रयातेन तथा ह्यापोऽन्यास्तेनैव तेनैव तु सव्रजन्ति ॥६०
यथा शुभेन त्वशुभेन कर्मणा तत्रैव च तेन विवर्त्तमाना ।
मर्त्यास्तु देहान्तरभावितत्वाद्रवेर्वशादूर्द्ध मधश्चरन्ति ॥६१
ये चापि देवा मनव प्रजेशा अन्येऽपि ये स्वर्गगताश्च सिद्धा ।
सद्भाविताख्यातिवशाच्च धर्म्या. पुनर्निसर्गेण भवन्ति सत्त्वा ॥६२
अत ऊर्द्ध प्रवक्ष्यामि कालमाभूतसप्लवम् ।
मन्वन्तराणि यानि स्युर्व्याख्यातानि मया द्विजा ।
सह प्रजानिसर्गेण सह देवैश्चतुर्द्दश ॥६३
स युगाख्या सहस्रं तु सर्वाण्येवान्तराणि वै ।
अस्या सहस्रे द्वे पूर्णे निःशेष कल्प उच्यते ॥६४
एतद्ब्राह्ममहो ज्ञेय तस्य सख्या निवोधत ।
निमेषस्तुल्य मात्रा हि कृतो लघ्वक्षरेण तु । ६५
मानुषाक्षिनिमेषास्तु काष्ठा पञ्चदश स्मृता ।
लव क्षणास्तु पञ्चैव विशत्काष्ठा तु ते त्रय ॥६६

कल्पो के आदि कालो मे समस्त प्राणियो का बार बार सस्रष्टा, व्यक्त और अव्यक्त महादेव हैं और उसका यह सारा जगत् है ॥८६॥ जिस मार्ग के ही द्वारा प्रथम सृष्ट किये हुए जल इस महीतल मे गये है उसी प्रकार म पूर्व प्रयात मार्ग से अन्य जल भी जाया करते हैं ॥६०॥ जैसे शुभ और अशुभ कर्म से वहाँ-वहाँ पर ही विवर्त्तमान मनुष्य अन्य देहों मे भावित होने के कारण मे रवि के वश से ऊद्‌र्ध्व मे तथा अधोभाग मे विचरण किया करते हैं ॥६१॥ जो भी देव-मनुगण-प्रजेश और अन्य भी जो स्वर्ग मे गये हुए सिद्ध हैं वे सब सद्भावित ख्याति के वश होने से पुन निसर्ग के द्वारा धर्म से युक्त जीव होते हैं ॥६२॥ हे द्विजगण ! मैंने मन्वन्तरो की व्याख्या जोकि यह भली भाँति करदी है अब इस से आगे आभून सप्लव काल को वतलाऊँगा । मनुगण प्रजा निसर्ग के साथ और देवो के साथ चौदह हुए थे ॥६३॥ वह सब अन्तर युगाख्या सहस्र है । इसके दो सहस्र पूर्ण नि शेष कल्प कहा जाता है ॥६४॥ यह ब्राह्म नाम

वाला जानना चाहिये उसकी संख्या का ज्ञान प्राप्त करलो। लघ्वक्षर के द्वारा किया हुआ निमेष तुल्य माना वाला होता है ॥६५॥ मनुष्यों की आँखों के निमेष तो पन्द्रह काष्ठा कही गई है। पाँच क्षण का लव होता है और तीन लवों की बीस काष्ठा होती हैं ॥६६॥

प्रस्थ सप्तोदकाश्चैव साधिकास्तु लव स्मृत ।
लवास्त्रिशत्कला ज्ञेया मुहूर्तस्त्रिशत कला ॥६७
मुहूर्त्तास्तु पुनस्त्रिशदहोरात्रमिति स्थिति ।
अहोरात्र कलानान्तु व्यधिकानि शतानि पट् ॥६८
ताश्चैव सख्यया ज्ञेय चन्द्रादित्यगतिर्यथा ।
निमेषा दश पञ्चैव काष्ठास्तास्त्रिशत कला ॥६९
त्रिशत्कला मुहूर्त्तस्तु दशभागः कला स्मृता ।
चत्वारिंशत्कलानान्तु मुहूर्त्त इति सज्ञित ॥१००
मुहूर्त्ताश्च लवाश्चापि प्रमाणज्ञैं प्रकल्पिता ।
तत्स्थाने नाम्भसाश्चापि पलान्यथ त्रयोदश ॥१०१
मागधेनैव मानेन जलप्रस्थो विधीयत ।
एते चाप्युदकप्रस्थाश्चत्वारो नालिको घट ॥१०२
हेममाषै कृतच्छिद्रं श्चतुर्भिश्चतुरगुले ।
समाहनि च रात्रौ च मुहूर्त्तो वै द्विनालिको ॥१०३
रवेर्गतिविशेषेण सर्वेषु नृपु नित्यश ।
अधिक पट् शत पञ्च कलाना प्रविधीयते ॥१०४

सप्तोदक का प्रस्थ होता है और साधिका लव कहा गया है। तीस लव की एक कला जाननी चाहिये तथा तीस कला का मुहूर्त होता है ॥६७॥ तीस मुहूर्त का अहोरात्र होता है। एक सौ कलाओं का अहोरात्र होता है ॥६८॥ उनकी संख्या से चन्द्र और सूर्य की गति की भाँति जानना चाहिये। पन्द्रह निमेष और तीस काष्ठाओं की कला होती है ॥६९॥ तीस कला का मुहूर्त और दश भाग कला कही गई है। चालीस कलाओं का मुहूर्त यह सज्ञा वाला होता है ॥१००॥ प्रमाण के ज्ञाताओं के द्वारा मुहूर्त तथा लव प्रकल्पित किये गये

हैं। उस स्थान वाले जल से भी तेरह पल होते हैं ॥१०१॥ मागध मान के द्वारा ही जल प्रस्थ का विधान होता है। ये चारे उदक प्रस्थ हैं और नालिक घट होता है ॥१०२॥ छेद किये हुए चार अगुल वाले चार हेममाषो के समान दिन मे और रात्रि मे द्विनालिक मुहूर्त होता है ॥१०३॥ सूर्य की गति विशेष से समस्त मनुष्यो मे निश्य ही पाँचसो छै कलाओ का प्रविधान होता है ॥१०४॥

तदहर्मानुष ज्ञेय नाक्षत्रन्तु दशाधिकम् ।
सावनेन तु मासेन ह्यब्दोऽय मानुष स्मृत ॥१०५
एतद्दिव्यमहोरात्रमिति शास्त्रविनिश्चय ।
अह्नाऽनेन तु या सख्या मासत्वंयनवार्षिकी ॥१०६
तदा वद्धमिद ज्ञान सज्ञा या ह्युपलक्ष्यताम् ।
कलाना सुपरीमाणात्काल इत्यभिधीयते ॥१०७
यदहर्ब्रह्मण प्रोक्त दिव्या कोटी तु तत् स्मृता ।
शतानाञ्च सहस्राणि दशद्विगुणितानि च ।
नवतिञ्च सहस्राणि तथैवान्यानि यानि तु ॥१०८
एतच्छ्रुत्वा तु ऋषयो विस्मय परमाद्भुतम् ।
सस्थासम्भजन ज्ञानमपृच्छन्नन्तरन्तदा ॥१०९
सम्प्लावनस्य कालस्तु मानुषेणैव सम्मतम् ।
मानेन श्रोतुमिच्छाम सक्षेपार्थपदाक्षरम् ॥११०
तेषा श्रुत्वा स देवस्तु वायुर्लोकहिते रत ।
सक्षेपाद्दिव्यचक्षुष्मान् प्रोवाच भगवान् प्रभु ॥१११
एते राज्यहनी पूर्व कीर्त्तिते त्विह लौकिके ।
तासा सख्याय वर्षाग्र ब्राह्म वक्ष्याम्यह क्षये ॥११२

वह मानुष दिन जानना चाहिये और नक्षत्र तो दस अधिक वाला होता है। सावन मास मे यह मानुष शब्द कहा गया है ॥१०५॥ यह दिव्य अहोरात्र होता है—ऐसा शास्त्र का विनिश्चय है। इस दिन से जो सख्या है वह मास अयन ऋतु और वर्ष की है ॥१०६॥ उस समय यह बद्ध ज्ञान जो सज्ञा है उसे उपलक्षित करो। कलाओ के सुपरीमाण से काल ऐसा नामसे कहा जाता है ॥१०७॥

जो ब्रह्मा का दिन कहा गया है वह दिव्यकोटी कही गई है। सौ सहस्र दश और दो से गुणित होते हैं। और नव्वे सहस्र तथा जो अन्य हैं वे इस प्रकार के होते हैं ॥१०८॥ इसे श्रवण करके ऋषिगण परम अद्भुत विस्मय को प्राप्त हुए यह संख्या का सम्मजन ज्ञान ऐसा ही अद्भुत था। उस समय उन्होंने फिर पूछा ॥१०६॥ ऋषियों ने कहा—सम्प्लावन होने का समय मानुष के द्वारा ही सम्मत है। हम मान से श्रवण करने की इच्छा करते हैं जो कि सर्वेशार्थ प्रकाशक है ॥११०॥ लोक के हित में रति रखने वाले उस वायुदेव ने उनकी इस बात को सुनकर भगवान् प्रभु जो कि दिव्य नेत्रों वाले थे, संक्षेप से बोले ॥१११॥ ये रात्रि और दिन यहाँ लौकिक पहिले कीर्त्तित किये हैं। उनके वर्षाग्र की संख्या करके अब दिन के क्षय में जो ब्राह्म है उसे बताऊँगा ॥११२॥

कोटिशतानि चत्वारि वर्षाणि मानुषाणि तु।
द्वात्रिंशच्च तथा कोट्यः सङ्ख्याता सङ्ख्यया द्विजैः ॥११३
तथा शतसहस्राणि एकोननवति पुनः।
आशीतिश्च सहस्राणि एष कालः प्लवस्य तु ॥११४
मानुषाख्येण सङ्ख्यातः कालो ह्याभूतसम्प्लवः।
सप्त सूर्य्यास्तदाऽग्रेषु तदा लोकेषु तेषु वै ॥११५
महाभूतेषु लीयन्ते प्रजा सर्व्वाश्चतुर्विधा।
सलिलेनाप्लुते लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥११६
विनिवृत्ते च संहारे उपशान्ते प्रजापतौ।
निरालोके प्रदग्धे तु नैमेन तु समावृते।
ईश्वराधिष्ठिते ह्यस्मिंस्तदा ह्येकार्णवे तदा ॥११७
तावदेकार्णवो ज्ञेयो यावदासीदहः प्रभो।
रात्रिस्तु सलिलावस्था निवृत्तौ चाप्यहः स्मृतम् ॥११८
अहोरात्रस्तथैवास्य क्रमेण परिवर्त्तते।
आभूतसम्प्लवो ह्येष अहोरात्रः स्मृतः प्रभो ॥११६
त्रैलोक्ये यानि सत्वानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च।
आभूतेभ्यः प्रलीयन्ते तस्मादाभूतसम्प्लवः ॥१२०

चारसी करोड मानुष वर्ष तथा बत्तीस कोटि द्वय के द्वारा सख्या में सैम्यात किये गये हैं ॥११३॥ तथा सौ सहस नवासी और अस्सी सहस्र यह काल प्लव का होता है ॥११४॥ यह प्राभूत सम्प्लव काल मानुषाख्य के द्वारा सम्यात किया गया है। उस समय उन अप्रलोको मे सप्त सूर्य होते हैं ॥११५॥ चारो प्रकार की समस्त प्रजा महाभूतो मे लीन होजाती है। जबकि लोक जल से प्लावित होजाता है और स्थावर और जङ्गम सब नष्ट हो जाते हैं ॥११६॥ सहार के विनिवृत्त होने पर और प्रजापति के उपशान्त होजाने पर बिना प्रकाश वाले प्रकृष्ट रूप से जले हुए होने पर तथा रात्रि के अन्धकार समावृत होने पर उस समय यह एकार्णव केवल ईश्वर से अधिष्ठित होता है ॥११७॥ उसका जब तक दिन रहता है तब तक यह एकार्णव जानना चाहिये। जलकी अवस्था ही रात्रि है और उसकी निवृत्ति होजाने पर दिन कहा गया है ॥११८॥ उस प्रकार से इसका अहोरात्र क्रम से परिवर्तित हुआ करता है। यह प्राभूत सम्प्लव प्रभु का अहोरात्र ही कहा गया है ॥११९॥ त्रैलोक्य म जो गति वाले ध्रुव सत्व हैं वे अभूता से प्रलीन हो जाया करते हैं इस कारण से इसका नाम आभूत सम्प्लव ऐसा कहा गया है ॥१२०॥

अग्रं भूत प्रजानान्तु तस्माद्भूत प्रजापति ।
आभूत प्लवते चैव तस्मादाभूतसम्प्लव ॥१२१
शाश्वते चामृतत्वे च शब्दे चाभूतसम्प्लव ।
अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागता प्रजाः ।
दिव्यसङ्ख्या प्रसङ्ख्याता ह्यपरार्थगुणीकृता ॥१२२
परार्थद्विगुणञ्चापि परमायु प्रकीर्त्तितम् ।
एतावान् स्थितिकालस्तु ह्यजस्येह प्रजापते. ।
स्थित्यन्ते प्रतिसर्गस्य ब्रह्मण परमेष्ठिनः ॥१२३
यथा वायुप्रवेगेन दीपार्चिरुपशाम्यति ।
तथैव प्रतिसर्गेण ब्रह्मा समुपशाम्यति ॥१२४
तथा ह्यप्रतिसमृष्टे महदादौ महेश्वरे ।
महत्प्रलीयतेऽव्यक्ते गुणसाम्य ततो भवेत् ॥१२५

इत्येष च समाख्यातो मया ह्याभूतसम्प्लव ।
ब्रह्मनैमित्तिको ह्येष सप्रक्षालनसयम ॥१२६
समासेन समाख्यातो भूयः किं वर्त्तयामि व ।
य इद धारयेन्नित्य शृणुयाद्वाप्यमीक्ष्णश ।
कीर्त्तनाच्छ्रवणाच्चापि महती सिद्धिमाप्नुयात् ॥१२६

समस्त प्रजाओ के आगे हुआ था इससे प्रजापति भूत है और आभूत सम्प्लवित होता है इस कारण से आभूत सम्प्लव इस नाम से इसे कहा जाया करता है ॥१२१॥ और ग्राम्यत अमृतत्त्व शब्द मे आभूत सम्प्लव है । जो व्यतीत होगये हैं वे–वर्त्तमान मे रहने वाले और उसी प्रकार से अनागत अर्थात् भविष्य मे होने वाले समस्त प्रजा की अपरार्ध गुणीकृत दिव्य सख्या होते हैं ॥१२२॥ परार्द्धिगुण भी परमायु कही गई है । प्रजापति प्रजका इतना ही स्थिति का काल होता है । प्रत्येक सर्ग की स्थिति के अन्त मे परमेष्ठी ब्रह्मा का स्थिति काल होता है ॥१२३॥ जिस तरह वायु के प्रवेग वाले झोके से दीपो की अर्चि (लौ) उपशान्त होजाया करती है उसी प्रकार से प्रत्येक सर्ग से ब्रह्मा भी उपशान्त होजाया करता है ॥१२४॥ तथा महदादि मे महेश्वर के अप्रति समृष्ट होने पर महत् अव्यक्त मे प्रलीन हो जाता है तब गुणो की साम्यावस्था होजाया करती है ॥१२५॥ इस तरह मैंने यह आभूत सम्प्लव समाख्यात कर दिया है यह सम्प्रक्षालन सयम ब्रह्मा के निमित्त वाला होता है ॥१२६॥ मैंने यह सक्षेप से कह दिया है । अब आगे आप लोगो को क्या बताऊं ? इसे जो नित्य ही धारण किया करता है अथवा बार–बार श्रवण किया करता है । इसके कीर्त्तन करने मे तथा श्रवण करने से महती सिद्धि को प्राप्त होता है ॥१२७॥

प्रकरण ६३—शिवपुर वर्णन

असाधारणवृत्तैस्तु हुतशेषादिभिर्द्विजे ।
धर्मवैशेषिकैश्चैव ह्याचूर्णसूक्ष्मदर्शिभि ॥१

ते देवैं सह तिष्ठन्ति महर्लोकनिवासिनः ।
चतुर्द्दशैते मनव कीर्त्तिता कीर्त्तिवर्धना ॥२
अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ।
ऋषिभिर्देवतैश्चैव सह गन्धर्वराक्षसैः ॥३
मन्वन्तराधिकारेषु जायन्तीह पुन· पुन ।
देवाः सप्तर्षयश्चैव मनव पितरस्तथा ॥४
सर्व्वे ह्यपि क्रमातीता महर्लोक समाश्रिता ।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्धार्मिकैं सहितैः सुराः ॥५
तैस्तथ्यकारिभिर्युक्तैः श्रद्धावद्भिरदर्पितैः ।
वर्णाश्रमाणां धर्म्मेषु श्रौतस्मार्त्तेषु संस्थितैः ।
विनिवृत्ताधिकारास्ते यावन्मन्वन्तरक्षय ॥६
महर्लोकेति यत्प्रोक्तं मातरिश्वस्त्वया विभो ।
प्रतिलोके च यत्तं व्यमनेकं समधिष्ठिता ॥७
यावतश्चैव ते लोका दह्यन्ते ये न ते प्रभो ।
एतन्नः कथय प्रीत्या त्वं हि वेत्थ यथातथम् ॥८

श्री वायुदेव ने कहा—असाधारण चरित्र वाले हुत शेष आदि द्विजो के साथ तथा धर्म के वैशेषिक आपूर्ण सूक्ष्म ऋषियों के साथ और देवो के साथ वे महर्लोक के निवासी होते हुए रहा करते हैं। ये कीर्ति के बढ़ाने वाले चौदह मनु बताये गये हैं ॥१-२॥ अतीत—वर्त्तमान और अनागत जो हैं वे ऋषियों के—देवतो के और गन्धर्वों के एव राक्षसो के साथ मन्वन्तरों के अधिकारो म बारम्बार उत्पन्न होते हैं। इसी तरह देव—सप्तर्षिगण—मनु और पितृवृन्द हुआ करते हैं ॥३-४॥ सभी क्रम से अतीत हुए महर्लोक मे समाश्रित होते हैं। ब्राह्मण—क्षत्रिय और वैश्यों के सहित सुर वहाँ आश्रय किया करते हैं ॥५॥ तथ्यों के करने वाले—श्रद्धा से युक्त—दर्प से रहित—युक्त—वर्णाश्रमो के धर्मों मे तथा श्रौत एव स्मार्त धर्मों मे वे स्थित उनसे विनिवृत्त अधिकार वाले ये जब तक मन्वन्तर का क्षय होता है वहाँ रहा करते हैं ॥६॥ ऋषियों ने कहा—हे मातरिश्वन् ! हे विभो ! आपने महर्लोक—यह कहा है और प्रतिलोक मे अनेकों

के द्वारा कर्त्तव्य मे समधिष्ठित बताये हैं ॥७॥ हे प्रभो ! और जितने वे लोक हैं उनमे जो नही दग्ध होते हैं—यह सब हमको बताइये और प्रेम के साथ वर्णन करिये क्योंकि आप सभी कुछ ठीक ठीक जानते हैं ॥८॥

एवमुक्तस्ततो वायुर्मु निभिर्विनयात्मभि ।
प्रोवाच मधुर वाक्य यथातत्त्वेन तत्त्ववित् ॥९
चतुर्द्दशैव स्थानानि वर्णितानि महर्षिभि ।
लोकाख्यानि तु यानि स्युर्येषु तिष्ठन्ति मानवा ॥१०
सप्त तेषु कृतान्याहुरकृतानि तु सप्त वै ।
भूरादयस्तु सङ्ख्याता सप्त लोका कृतास्त्विह ॥११
अकृतानि तु सप्तैव प्राकृतानि तु यानि वै ।
स्थानानि स्थानिभि सार्द्ध कृतानि तु निबन्धनम् ॥१२
पृथिवी चान्तरिक्ष च दिव्य यच्च मह स्मृतम् ।
स्थाना येतानि चत्वारि स्मृतान्यावरणानि च ॥१३
क्षयातिशययुक्तानि तथा युक्तानि वक्ष्यते ।
यानि नैमित्तिकानि स्युस्तिष्ठन्त्याभूतसप्लवम् ॥१४
जनस्तपश्च सत्यश्च स्थानान्येतानि त्रीणि तु ।
ऐकान्तिकानि सत्त्वानि तिष्ठन्तीहाप्रलयमात् ॥१५
व्यक्तानि तु प्रवक्ष्यामि स्थानान्येतानि सप्त वै ।
भूर्लोक प्रथमस्तेषा द्वितीयस्तु भुव स्मृत ॥१६

विनय से युक्त आत्मा वाले मुनियो के द्वारा इस तरह कहे गये वायु देव मधुर वाक्य बोले क्योंकि वे तत्त्वो के वेत्ता थे अत यथा तत्त्व ही उनके वचन भी थे ॥९॥ श्री वायु ने कहा—महर्षियो ने चौदह ही स्थानो का वर्णन किया है जो कि लोक—इस नाम से प्रसिद्ध हैं और जिनमे मनुष्य निवास की स्थिति किया करते हैं ॥१०॥ उनमे सात तो कृत हैं और सात अकृत हैं। भूर्लोक आदि नामा से जो सख्यात होते हैं ये ही सात लोक यहाँ कृत होते हैं ॥११॥ और अकृत तो सात ही होते हैं जो कि प्राकृत हैं। स्थानियो के साथ ये स्थान कृत हैं और निवन्धन होते हैं ॥१२॥ पृथिवी और अन्तरिक्ष और दिव्य जो

महर्लोक कहा गया है ये चार स्थान प्राणंवक कहे गये हैं ॥१३॥ ये छायातिशय से युक्त होते हैं तथा युक्त कहे जाते हैं। जो नैमित्तिक होते हैं वे भासूत सम्प्लव तक रहा करते हैं ॥१४॥ जन–तप और सत्य ये तीन स्थान हैं जहाँ पर माम-सयम से एकान्तिक सत्त्व ठहरा करते हैं ॥१५॥ ये सात स्थान व्यक्त हैं इनको मैं बतलाता हूँ—भूर्लोक इनमें प्रथम है, दूसरा तो भुवर्लोक कहा गया है ॥१६॥

स्वस्तृतीयस्तु विज्ञेयश्चतुर्थो वै मह स्मृत ।
जनस्तु पञ्चमो लोकस्तप षष्ठो विभाव्यते ॥१७
सत्यन्तु सप्तमो लोको निरालोकस्तत परम् ।
भूरिति व्याहृते पूर्वं भूर्लोकश्च ततोऽभवत् ॥१८
द्वितीय भुव इत्युक्त अन्तरिक्ष ततोऽभवत् ।
तृतीय स्वरितीत्युक्ते दिव प्रादुर्बभूव ह ॥१९
व्याहारैस्त्रिभिरेतैस्तु ब्रह्मलोकमकल्पयत् ।
ततो भू पार्थिवो लोक अन्तरिक्ष भुवः स्मृतम् ॥२०
स्वर्लोको वै दिव ह्येतत्पुराणे निश्चय गतम् ।
भूतस्याधिपतिश्चाग्निस्ततो भूतपति स्मृत ॥२१
वायुर्भुवस्याधिपतिस्तेन वायुर्भुवपति ।
भव्यस्य सूर्योऽधिपतिस्तेन सूर्यो दिवस्पति ॥२२
महेतिव्याहृतेनैव महर्लोकस्ततोऽभवत् ।
विनिवृत्ताधिकाराणा देवाना तत्र वै क्षय ॥२३
जनस्तु पञ्चमो लोकस्तस्माज्जायन्ति वै जना ।
तासा स्वाय भुवाद्याना प्रजाना जनजाज्जनः ॥२४

तृतीय स्वर्लोक होता है और चतुर्थ महर्लोक जानने के योग्य कहा गया है। जनलोक पाँचवाँ होता है और छटा तपलोक होता है ॥१७॥ सत्यलोक नाम वाला सप्तम लोक होता है इसके आगे निरालोक होता है। पूर्व मे भू–यह व्याहृत होने पर इससे ही भूर्लोक हुआ ॥१८॥ फिर दूसरा भुव –यह कहा गया वह अन्तरिक्ष भुव कहा गया है। तीसरा स्व–यह कहने पर दिव का प्रादुर्भाव हुआ था ॥१९॥ इन तीन व्याहारों के द्वारा ब्रह्मलोक कल्पित हुआ

था। इसमे भू पार्थिव लोक है और भुव यह अन्तरिक्ष कहा गया है ॥२०॥ और स्वर्लोक यह दिव है—ऐसा पुराण मे निश्चय को प्राप्त हुआ है। भूत का अधि पति अग्नि है इसके पश्चात् भूत पति कहा गया है ॥२१॥ वायु भुव पति है। भव्य का अधिपति सूर्य होता है इससे सूर्य दिवस्पति कहा गया है ॥२२॥ यह इस तरह व्याहृत होनेसे ही इस प्रकार स महर्लोक फिर हुआ था। विनिवृत्त अधिकार वाले देवो का वहाँ पर क्षय होता है ॥२३॥ जन पाँचवाँ लोक है उससे जन उत्पन्न हुआ करते हैं। उन स्वायम्भुवादि प्रजाओ के जनन से जन होता है ॥२४॥

याास्ता स्वायम्भुवाद्या हि पुरस्तात्परिकीर्तिता ।
कल्पदग्धे तदा लोके प्रतिष्ठन्ति तदा तप ॥२५
ऋभु सनत्कुमाराद्या यत्र सन्त्यूर्द्ध रेतस ।
तपसा भावितात्मानस्तत्र सन्तीति वा तप ॥२६
सत्येति ब्रह्मण: शब्द सत्तामात्रस्तु स स्मृत. ।
ब्रह्मलोकस्तत: सत्य सप्तम स तु भास्कर ॥२७
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा गुह्यकास्तु सराक्षसा ।
सर्वभूतपिशाचाश्च नागाश्च सह मानुषं ।
स्वर्लोकवासिन सर्वे देवा भुवि निवासिन ॥२८
मरुतो मातरिश्वानो रुद्रा देवास्तथाश्विनो ।
अनिकेतान्तरिक्षास्ते भुवर्लोकं क्या दिवौकस ॥२६
आदित्या ऋभवो विश्वे साध्याश्च पितरस्तथा ।
ऋषयोऽङ्गिरसश्चैव भुवर्लोक समाश्रिता ॥३०
एते वैमानिका देवास्ताराग्रहनिवासिन ।
इत्येते क्रमश प्रोक्ता ब्रह्मव्याहारसम्भवा ॥३१
भूर्लोकप्रथमा लोका महदन्ताश्च ते स्मृता ।
आरभ्यन्ते तु तन्मात्रं शुद्धास्तेषा परस्परम् ॥३२

जो स्वायम्भुवादि पहिले कहे गये हैं कल्प के दग्ध होने पर उस समय लोक मे तप को प्रतिष्ठित किया करते है ॥२५॥ ऋभु सनत्कुमार आदि जहाँ पर

ये ऊर्द्ध रेता लोग होते हैं जो तप के द्वारा भावित आत्मा वाले वहाँ पर हैं इसमें तप कहा गया है ॥२६॥ सत्य—यह ब्रह्म का शब्द है और वह सत्तामात्र कहा गया है । इससे सत्य लोक जो है वह ब्रह्मलोक सप्तम है और वह भास्वर है ॥२७॥ गन्धर्व—अप्सरायें—यक्ष—गुह्यक राक्षसों के सहित—समस्त भूत और पिशाच नाग मनुष्यों के सहित ये सब देव स्वर्लोक के निवास करने वाले हैं जो कि भुवि निवासी हैं ॥२८॥ मरुत—मातरिश्वान—रुद्र—देवता तथा अश्विनीकुमार होवों के अनिकेतान्तरिक्ष हैं और किन के स्थान वाले सब भुवर्लोक्य होते हैं ॥२९॥ आदित्य—ऋभु—विश्वेदेव—साध्य—पितर—ऋषिगण और अङ्गिरस ये सब भुवर्लोक में समाश्रित होते हैं ॥३०॥ ये ताराग्रह निवासी देव वैमानिक होते हैं । ये सब क्रम से सत्य के व्याहार से उत्पन्न होने वाले वह दिये गये हैं ॥३१॥ भूर्लोक प्रथम लोक है और महदन्त ये कहे गये हैं । परस्पर म उनकी तन्मात्राओं से युद्ध प्रारब्ध किये जाते हैं ॥३२॥

शुक्राद्याश्चाक्षुषान्ताश्च ये व्यतीता भुव श्रिता ।
महर्लोकश्चतुर्थस्तु तस्मिंस्ते कल्पवासिन ॥३३
भूर्लोकप्रथमा लोका महदन्ताश्च ये स्मृता ।
तान् सर्वान् सप्त सूर्यास्ते अर्चिर्भिर्निर्दहन्ति वै ॥३४
मरीचि कश्यपो दक्षस्तथा स्वायम्भुवोऽङ्गिरा ।
भृगु पुलस्त्यः पुलहः क्रतुरित्येवमादयः ॥३५
प्रजाना पतय सर्वे वर्त्तन्ते तत्र तै सह ।
नि सङ्गा निर्ममाश्चैव तत्र ते ह्यूर्द्ध रेतस ॥३६
ऋभु सनत्कुमाराद्या वैराग्यास्ते तपोधना ।
मन्वन्तराणा सर्वेषा सावर्णाना तत. स्मृताः ।
चतुर्द्दशाना सर्वेषा पुनरावृत्तिहेतव ॥३७
योग तपश्च सत्यञ्च समाधाय तदात्मनि ।
षष्ठे काले निवर्त्तन्ते तत्तदाहर्विपर्यये ॥३८
सत्यन्तु सप्तमो लोको ह्यपुनर्मार्गगामिनाम् ।
ब्रह्मलोक· समाख्यातो ह्यप्रतीघातलक्षण ॥३९

पर्यासपारिमाण्येन भूर्लोकं समिति स्मृतः ।
भूम्यन्तर यदादित्यादन्तरिक्ष भुवः स्मृतम् ॥४०

शुक्राद्य और चाक्षुपान्त जो व्यतीत है वे भुव मे आश्रित होते हैं। महर्लोक तो चौथा है उसमे वे कल्प वासी रहते हैं ॥३३॥ भूर्लोक से प्रथम लोक जो महदन्त कहे गये हैं उन सबको सप्त सूर्य अपनी मरीचियो के द्वारा निर्दग्ध कर दिया करते हैं ॥३४॥ मरीचि-कश्यप-दक्ष-स्वायम्भुव-अङ्गिरा-भृगु-पुलस्त्य-पुलह और क्रतु इत्येवमादि हैं ॥३५॥ वे सब प्रजाओ के पति हैं और वहाँ पर वे उनके साथ रहते हैं। वे वहाँ नि सत्व और निगम एव ऊर्ध्व-रेता होते हैं ॥३६॥ ऋभु और सनत्कुमार आद्य वे सब तपोधन वैराग्य हैं। मावर्णं समस्त मन्वन्तरो के वे कहे गये है जो कि चौदहो लोको के सब के पुनरावृत्ति होने के हेतु होते हैं ॥३७॥ उस समय मे योग-तप और सत्य की आत्माम समाधान करके वह काल मे उस अह के विपर्यय म निवृत्त होजाते हैं ॥३८॥ सत्य तो सप्तम लोक है जो कि अपुनर्मार्ग गामियो का लोक होता है। वह अप्रतीघात लक्षण वाला ब्रह्मलोक कहा गया है ॥३९॥ पर्याप्त पारिमाण्य मे भूर्लोक समिति कहा गया है। भूमि के अन्तर म जो आदित्य से अन्तरिक्ष है वह भुव कहा गया है ॥४०॥

सूर्यध्रुवान्तर यत्र स्वर्गलोको दिव स्मृत ।
ध्रुवाज्जनान्तर यत्र महर्लोकस्तदुच्यते ॥४१
विख्याता सप्तलोकास्तु तेपा वक्ष्यामि सिद्धय ।
भूर्लोकवासिन सर्वे ह्यन्नादास्तु रसात्मका ॥४२
भुवे स्वर्गे च ये सर्वे सोमपा आज्यपाश्च ये ।
चतुर्थे येऽपि वर्त्तन्ते महर्लोक समाश्रिता ॥४३
विज्ञे या मानसी तेपा सिद्धिर्वै पञ्चलक्षणा ।
सद्यश्चोत्पद्यते तेपा मनसा सर्व्वमीप्सितम् ॥४४
एते देवा यजन्ते वै यज्ञ सर्वे परस्परम् ।
अतीतान् वर्तमानाश्च वर्त्तमानाननागतान् ॥४५

प्रथमानन्तरैरिष्ट्वा ह्यन्तरा. साम्प्रतैः पुन. ।
निवर्त्ततीत्यासम्बन्धोऽतीते देवगणे ततः ॥४६
विनिवृत्ताधिकाराणा सिद्धिस्तेषान्तु मानसी ।
तेषान्तु मानसी ज्ञेया शुद्धा सिद्धिपरम्परा ॥४७
उक्ता लोकाश्च चत्वारो जनस्यानुविधिस्तथा ।
समासेन मया विप्रा भूयस्त वर्त्तयामि व. ॥४८

और जो सूर्य ध्रुवान्तर मे है वह स्वर्ग लोक दिन कहा गया है। ध्रुव से अनान्तर जो है वह महर्लोक कहा जाता है ॥४१॥ ये सात लोक विख्यात हैं अब उनकी सिद्धियो को बताता हूं। भूर्लोक के निवास करने वाले सभी अन्न खाने वाले रसात्मक होते हैं ॥४२॥ ध्रुव में और स्वर्ग मे जो सब हैं वे सोम पान करने वाले और आज्य पान करने वाले होते हैं। चौथे मे जो रहा करते हैं जोकि महर्लोक को आश्रय किये हुए हैं ॥४३॥ उनकी पाँच लक्षणों वाली मानसी सिद्धि जानने के योग्य है। उनके मन से जो भी कुछ अभीष्ट होता है वह तुरन्त ही उत्पन्न हो जाता है ॥४४॥ ये देव समस्त यज्ञों के द्वारा परस्पर में यजन किया करते हैं। जो अतीत होगये हैं—जो वर्तमान हैं और जो अनागत हैं उन सभी को करते हैं ॥४५॥ प्रथमो को अन्तरो के द्वारा यजन करके फिर साम्प्रतों के द्वारा अन्तरो को करते हैं फिर देवगण के अतीत होने पर असम्बन्ध निर्वात्तत हो जाता है ॥४६॥ उन विनिवृत्त अधिकार वालो की मानसी सिद्धि हुआ करती है। उनकी शुद्ध सिद्धियो की परम्परा मानसी जाननी चाहिए ॥४७॥ चार लोक कह दिये गये हैं तथा हे विप्रवृन्द ! जनकी अनुविधि भी संक्षेप से मैंने बतला दी है मैं पुन उसको तुम्हारे सामने कहता हूँ ॥४८॥

मरीचि कश्यपो दक्षो वसिष्ठश्चाङ्गिरा भृगु ।
पुलस्त्य पुलहश्चैव क्रतुरित्येवमादय ॥४९
पूर्वं ते सम्प्रसूयन्ते ब्रह्मणो मनसा इह ।
तत. प्रजा प्रतिष्ठाप्य जनमेवाश्रयन्ति ते ॥५०
कल्पदाहप्रदीप्तेपु तदा कालेपु तेपु वै ।
भूरादिपु महान्तेपु भृश व्याप्तेष्वयाग्निना ॥५१

शिखा सवर्त्तका ज्ञेया प्राप्नुवन्ति सदा जना ।
यामादयो गणा सर्वे महर्लोकनिवासिन ॥५२
महर्लोकेषु दीप्तेषु जनमेवाश्रयन्ति ते ।
सर्वे सूक्ष्मशरीरास्ते तत्रस्थास्तु भवन्ति ते ॥५३
तेषा ते तुल्यसामर्थ्यास्तुल्यमूर्त्तिधरास्तथा ।
जन लोके विवर्त्तन्ते यावत्सप्लवते जगत् ॥५४
व्युष्टायान्तु रजन्या वै ब्रह्मणोऽव्यक्तयोनिन ।
अहरादौ प्रसूयन्ते पूर्ववत्क्रमशस्त्विह ॥५५
स्वायम्भुवादय सर्वे मरीच्यन्तास्तु साधका ।
देवास्ते वै पुनस्तेषा जायन्ते निधनेष्विह ॥५६

श्री वायुदेव ने कहा—मरीचि—कश्यप—दक्ष—वसिष्ठ—अङ्गिरा—भृगु—पुलस्त्य—पुलह और क्रतु इत्येवमादि लोग पहिले यहाँ ब्रह्मा के मन से उत्पन्न होते हैं फिर ये प्रजाओं को प्रतिष्ठापित करके जन का ही आश्रय लिया करते हैं ॥४६ ५०॥ कल्पदाह के प्रदीप्त उन कालों मे भू से आदि लेकर महान्त तक अग्नि के अच्छी तरह व्याप्त हो जाने पर सवर्तिका शिखा जाननी चाहिए जिसको कि मनुष्य सदा ही प्राप्त किया करते हैं । यामादि समस्तगण जो महर्लोक के निवास करने वाले हैं ॥५१-५२॥ वे महर्लोक के दीप्त होजाने पर जन लोक का आश्रय ग्रहण कर लेते हैं । वहाँ पर वे सभी सूक्ष्म शरीर वाले होते हुए वहाँ ही अपनी स्थिति किया करते हैं ॥५३॥ उनके वे तुल्य सामर्थ्य वाले और समान ही मूर्त्तियों को धारण करने वाले जब तक यह जगत् सप्लावित होता है जनलोक मे ही विशेष रूप से रहा करते हैं ॥५४॥ अव्यक्त योनि ब्रह्मा की रजनी के व्युष्ट होजाने पर दिन के आदि म यहाँ पुन पूर्व की भाँति क्रम से उत्पन्न किया करते हैं ॥५५॥ यह निधन होने पर समस्त स्वायम्भुवादि और मरीच्यन्त साधक देव वे फिर उनके जन्म ग्रहण किया करते हैं ॥५६ ।

यामादय क्रमेणैव कनिष्ठाद्या प्रजापतेः ।
पूर्वं पूर्वं प्रसूयन्ते पश्चिमे पश्चिमास्तथा ॥५७

देवान्वये देवता हि सप्त सम्भूतय स्मृता ।
व्यतीता कल्पजास्तेषा तिस्रः शिष्टास्तथापरे ॥५८
आवर्तमाना देवास्तु क्रमेणैते न सर्व्वशः ।
गत्वा जवन्तवीभावन्दशकृत्वः पुन पुन ॥५६
ततस्ते वै गणा सर्व्वे दृष्ट्वा भावेष्वनित्यताम् ।
भाविनोऽर्थस्य च बलात् पुण्याख्यातिबलेन च ॥६०
निवृत्तवृत्तयः सर्वे स्वस्था सुमनसस्तथा ।
वैराजे तूपपद्यन्ते लोकमुत्सृज्य तज्जनम् ॥६१
ततोऽन्येनैव कालेन नित्ययुक्तास्तपस्विनः ।
कथनाच्चैव धर्मस्य तेषा ते जज्ञिरेऽन्वये ॥६२
इहोत्पन्नास्ततस्ते वै स्थाना आपूरयन्त्युत ।
देवत्वे च ऋषित्वे च मनुष्यत्वे च सर्वश ॥६३
एव देवगणा सर्वे दशकृत्वो निवर्त्य वै ।
वैराजेपूपपन्नास्ते दश तिष्ठन्त्युपप्लवात् ॥६४
पूर्णे पूर्णे तत कल्पे स्थित्वा वैराजके पुन. ।
ब्रह्मलोके विवर्त्तते पूर्व्वपूर्व्वक्रमेण तु ॥६५

यामादि और कनिष्ठादि क्रम से ही प्रजापति होते हैं । जो पहिले हैं प्रथम वे प्रसूत होते हैं और जो पीछे वाले हैं वे पीछे समुत्पन्न हुआ करते हैं । देवो के अन्वय मे देवताओ की सात सम्भूतियाँ कही गई हैं । उनके व्यतीत कल्पज होते हैं तीन शिष्ट हैं तथा अन्य होते हैं ॥५८॥ वे देव क्रम से आवर्त्तमान होते हैं सभी नही होते हैं । ये पुन पुन दशवार जान्तवीभाव की प्राप्ति किया करते हैं वे सब गण भावो मे अनित्यता का दर्शन करके भावी अर्थ के बल से और पुण्याख्याति के बल से सब निवृत्त वृत्ति स्वस्थ सुमनस उस जनलोक का त्याग कर वैराज मे उत्पन्न होते हैं ॥६०-६१॥ इसके अनन्तर अन्य काल से ही ये नित्य युक्त तपस्वी धर्म के कथन से वे उनके वश मे उत्पन्न हुए हैं ॥६२॥ यहाँ पर उत्पन्न हुए वे फिर निश्चय ही स्थानो को आपूरित कर देते हैं कहीं देवत्व मे तो कही ऋषित्व के रूप मे और सब और मनुष्यत्व के स्वरूप मे उत्पन्न हुआ

वाले व्यासजी के पुत्र और पुराणों के पूर्ण ज्ञाता सूतजी से कहा—॥३०॥ ऋषिवृन्द बोले—वे वैराज जिस आहार वाले जिस मन्त्रों वाले और जिस आश्रय वाले होकर रहते हैं और कितने समय तक ठहरते हैं वह हमसे ठीक-ठीक कहिए ॥३१॥

तदुक्तमृषिभिर्वाक्यं श्रुत्वा लोकार्थतत्त्ववित् ।
सूत पौराणिको वाक्यं विनयेनेदमब्रवीत् ॥३२
ततः प्राप्स्यन्ति ते सर्वे शुद्धिमुद्गतमाश्च ये ।
आभूत सम्प्लवास्तत्र दश तिष्ठन्ति वै जनाः ॥३३
सर्वे सूक्ष्मशरीरास्ते दिव्यासो घनमूर्त्तयः ।
स्थितलोकास्थितत्वाच्च तेषां भूत न विद्यते ॥३४
ऋभु सनत्कुमाराद्याः सिद्धास्त योगधर्मिणः ।
स्थानि नैमित्तिकी तेषां पर्य्यायि समुपस्थिते ॥३५
स्थानत्यागे मनश्चापि युगपत्सम्प्रवर्त्तते ।
ऊचुः सर्वे तदान्योन्य वैराजाः सुवृद्धयः ॥३६
एवमेव महाभागाः प्रणवं सम्प्रविश्य ह ।
ब्रह्मलोके प्रवर्त्तास्ततः श्रेयो भविष्यति ॥३७
एवमुक्त्वा तदा सर्वे ब्रह्मान्ते व्यवसायिनः ।
योजयित्वा तदा सर्वे वर्त्तन्ते योगधर्मिणः ॥३८
तत्रैव सम्प्रमोयन्ते शान्ता दीपार्चिषो यथा ।
ब्रह्मा रायमवर्तन्त पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥३९
लोकं ॥ समनुप्राप्य सर्वे ते भावनामयम् ।
आनन्द ब्रह्मणः प्राप्य ह्यमृतत्वाय ते गताः ॥८०
वैराजेभ्यस्तु वर्षोऽन्तरे पञ्चगुणे तत ।
ब्रह्मणः समाख्यातो यत्र ब्रह्मा पुरोहित ॥८१

प्राभूत सम्प्लव तक ठहरा करते हैं ॥७३॥ वे सब सूक्ष्म शरीर वाले विद्वान् और धन मूर्त्ति वाले हैं और स्थित लोक में भ्रास्थित होने से उनका भूत नहीं होता है ॥७४॥ सनत्कुमार प्राय सिद्ध और योग धर्मी उनके पर्याय के समुपस्थित होने पर नैमित्तिकी ख्याति को कहते हैं ॥७५॥ स्थान के त्याग करने पर मन भरे एक ही साथ सम्प्रवृत्त होता है। उस समय शुद्ध बुद्धि वाले सब अन्योन्य में वैराजो को कहते हैं ॥७६॥ इसी प्रकार से ही महाभाग प्रणव में सप्रवेश करके ब्रह्मलोक में प्रवर्त्तन करने वाले हमारा श्रेय होगा ॥७७॥ इस रीति से कहकर उस समय में सब ब्रह्मान्त में व्यवसाय करने वाले योजित करके सब सब योग धर्मी होते हैं ॥७८॥ वहीं पर ही जैसे दीप की अर्चियाँ शान्त होजाया करती हैं वे सम्प्रलीन हो जाते हैं ॥७९॥ वे सब उस भावनामय लोक को अनुप्राप्त करके और ब्रह्म के आनन्द की प्राप्ति करके वे अमृतत्व को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥८०॥ वैराजो से उसी प्रकार से ऊर्द्ध में पद्गुण अन्तर में ब्रह्मलोक गत है जहाँ ब्रह्मा पुरोहित हैं ॥८१॥

ते सर्वे प्रणवासानो बुद्धशुद्धतपास्तथा ।
आनन्द ब्रह्मण प्राप्यामृतत्वञ्च भजन्त्युत ॥८२
द्वन्द्वैस्ते नाभिभूयन्ते भावत्रयविवर्जिता ।
आधिपत्य विना तुल्या ब्रह्मणस्ते महौजस ॥८३
प्रभावविर्यश्चर्यंस्थितिवैराग्यदर्शने ।
ते ब्रह्मलौकिका. सर्वे गतिं प्राप्य विवर्त्तनीम् ॥८४
ब्रह्मणा सह देवैश्च सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे ।
तपसोऽन्ते क्रियात्मानो बुद्धावस्था मनीषिण: ।
अव्यक्ते सम्प्रलीयन्ते सर्वे ते क्षणदर्शिन ॥८५
इत्येतदमृत शुक्रं नित्यमक्षयमव्ययम् ।
देवर्षयो ब्रह्मसत्र सनातनमुपासते ॥८६
अपुनर्मार्गगादीना तेषा चैवोर्द्धरेतसाम् ।
मर्माभ्यासकृता शुद्धिर्वेदान्तेषूपलक्ष्यते ॥८७

शतमाहु परिद्ढ सहस्र परिपद्मकम् ।
विज्ञेयमयुत तस्मान्नियुत प्रयुत तत: ॥१००
अर्बुद निर्बुदश्चैव खर्बुदश्च तत स्मृतम् ।
खर्वश्चैव निखर्वश्च शङ्कु पद्म तथैव च ॥१०१
समुद्र मध्यमञ्चैव परार्द्धमपर तत ।
एवमष्टादशैतानि स्थानानि गणनाविधौ ॥१०२
शतानीति विजानीयात् सञ्ज्ञितानि महर्षिभि ।
कल्पसख्या प्रवृत्तस्य परार्द्धं ब्रह्मण स्मृतम् ॥१०३
तावच्छेषोऽपि कालोऽस्य तस्यान्ते प्रतिसृज्यते ।
पर एष परार्द्धञ्च सख्यात सख्यया मया ॥१०४

सौ सहस्र करोडो को शकु—इस नाम से कहा जाता है। सहस्रों करोडो के सहस्र को फिर दसवार गुणित कर देने पर सख्या के वेत्ता लोग उसे समुद्र इस नाम से कहते हैं ॥६७॥ कोटियों का सहस्र अयुत है—यह मध्य कहा जाता है। कोटि सहस्र नियुत जो है वह 'अन्त'—इस सज्ञा वाला होता है कोटियों के कोटि सहस्र परार्द्ध इस नाम से कहा जाता है। परार्द्ध का दुगुना भी मनीषियो के द्वारा परम कहा जाता है ॥६६॥ शत को परिद्ढ कहते हैं और सहस्र को परिवध्नक कहते हैं। उससे अयुत जानना चाहिए और फिर नियुत तथा प्रयुत होता है ॥१००॥ अर्बुद–निर्बुद और खर्बुद कहा गया है। खर्व–निखर्व और फिर शकु तथा पद्म कहा जाता है ॥१०१॥ समुद्र और मध्यम और इसके पश्चात् परार्द्ध होता है। इस तरह से इस गणना की विधि के अठारह स्थान होते हैं ॥१०२॥ शतानि–यह जानना चाहिए जोकि मनीषियो के द्वारा सज्ञा वाले हुए हैं। कल्प सख्या में प्रवृत्त उस ब्रह्मा का परार्द्ध कहा गया है ॥१०३॥ उतना उसका शेष काल भी उसके अन्त में प्रति सृष्ट किया जाता है। यह पर और परार्द्ध मैंने सख्या से गिना हुआ किया है ॥१०४॥

यस्मादस्य पर वीर्यं परमायु परन्तपः ।
परा शक्ति परो धर्म्म परा विद्या परा धृति ॥१०

पर ब्रह्म पर ज्ञान परमैश्वर्यमेव च ।
तस्मात्परतर भूत ब्रह्मणोऽन्यन्न विद्यते ॥१०६
परे स्थितो ह्येप पर: सर्वार्थेषु तत: पर: ।
सख्यातस्तु परो ब्रह्मा तस्यार्द्ध तु परार्द्धता ॥१०७
सख्येय चाप्यसख्येय सतत चापि त त्रिकम् ।
सख्येय सख्यया दृष्टमपारार्द्धाद्विभाष्यते ॥१०८
राशौ दृष्टे न सख्यास्ति तदसख्यस्य लक्षणम् ।
आनन्त्य सिषताख्येषु दृष्टवान् पञ्चलक्षणम् ॥१०९
ईश्वरैस्तत्प्रसम्ख्यात शुद्धत्वाद्दिव्यदृष्टिभि ।
एव ज्ञानप्रतिष्ठत्वात् सर्व्वं ब्रह्मानुपश्यति ॥११०
एतच्छ्रुत्वा तु ते सर्वे नैमिषेयास्तपस्विन ।
बाष्पपर्य्याकुलाक्षास्तु प्रहर्षाद्गद्गदस्वरा ॥१११
पप्रच्छुर्मतिरिमान सर्व्वे ते ब्रह्मवादिन ।
ब्रह्माण्डमन्तु भगवन् यावन्मात्रान्तर प्रभो ॥११२
योजनाग्रेण सख्यातः साधन योजनस्य तु ।
क्रोशस्य च परीमाण श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥११३

जिस कारण से इसकी पर वीर्य है—परम आयु—परम तप—परा शक्ति—पर धर्म—परा विद्या—परा धृति—परम ब्रह्म—परम ज्ञान और परम ऐश्वर्य होता है उससे परतर भूत होता है क्योंकि ब्रह्म से अन्यत् कोई नहीं है ॥१०५-१०६॥ पर में स्थित यह पर है और समस्त अर्थों में पर है उससे पर ब्रह्मा सख्यात होता है और उसका अर्द्ध ही परार्द्धता होती है ॥१०७॥ सख्या करने के योग्य और सख्या न करने के भी योग्य सर्वदा उस त्रिक को सख्या से सख्या करने के योग्य देखा है जो अपरार्द्ध से विभाषित किया जाता है ॥१०८॥ राशि के देखने पर सख्या नहीं है वह असख्य का लक्षण है। सिक्ता नाम वालों का पञ्च लक्षण वाला आनन्त्य देखा है ॥१०९॥ दिव्य दृष्टि वाले ईश्वरो के द्वारा शुद्ध होने से वह प्रसख्यात है। इस प्रकार से ज्ञान प्रतिष्ठ होने से सब ब्रह्म का अनुदर्शन करता है ॥११०॥ यह श्रवण कर के सब नैमिषेय तपस्वी लोग बाष्पों

से आकुल नत्रों वाले प्रहृष्ट हर्ष से गदगद स्वर वाले होगये थे ॥१११॥ उन समस्त ब्रह्म वादियों ने वायुदेव से पूछा—हे प्रभो ! हे भगवान् ! ब्रह्मलोक जितना अन्तर वाला है वह योजनाग्र से सव्याघात किया गया है। योजन का साधन और कोस का परीमाण तत्त्व पूर्वक हम लोग सुनने की इच्छा करते हैं ॥११२-११३॥

तेषा तद्वचन श्रुत्वा मातरिश्वा विनीतवाक् ।
उवाच मधुर वाक्य यथादृष्ट यथाक्रमम् ॥११४
एतद्वोऽह प्रवक्ष्यामि शृणुध्व मे विवक्षितम् ।
अव्यक्ताव्यक्तभागो वै महास्थूलो विभाव्यते ॥११५
दशैव महता भागा भूतादिः स्थूल उच्यते ।
दशभागाधिक चापि भूतादि परमाणुक ॥११६
परमाणु सुसूक्ष्मस्तु भावग्राह्यो न चक्षुषा ।
यदभेद्यतम लोके विज्ञेय परमाणु तत् ॥११७
जालान्तरगत भानोर्यत्सूक्ष्म दृश्यते रज ।
प्रथम तत्प्रमाणाना परमाणु प्रचक्षते ॥११८
अष्टाना परमाणूना समवायो यदा भवेत् ।
त्रसरेणु समाख्यातस्तत्पद्मरज उच्यते ॥११९
त्रसरेणवश्च येऽप्यष्टौ रथरेणुस्तु स स्मृत ।
तेऽप्यष्टौ समवायस्था बालाग्र तत्स्मृत बुधै ॥१२०
बालाग्राण्यष्ट लिक्षा स्याद्यूका तन्नाष्टक भवेत् ।
यूकाष्टक यव प्राहुरङ्गुलन्तु यवाष्टकम् ॥१२१

उनके उस वचन का श्रवण कर विनीत वचन वाले वायुदेव जैसा भी देखा है उसे यथाक्रम से मधुर वाक्य कहने लगे ॥११४॥ वायु ने कहा—यह मैं आपको बतला दूँगा मेरे विवक्षित को आप सुनिये। अव्यक्त भाग निश्चय ही महान् स्थूल विभावित होता है ॥११५॥ महता के दश ही भाग हैं। भूतादि स्थूल कहा जाता है। दश भागों से अधिक भी भूतादि परमाणुक होता है ॥११६॥ परमाणु बहुत ही सूक्ष्म होता है और वह भावग्राह्य है चक्षु के द्वारा

ग्राह्य नहीं होता है। जो लोक में प्रत्येकनम होता है उसी को परमाणु जानना चाहिए ॥११७॥ भानु के जान के अन्तगत जो सूक्ष्म रज के कण दिखलाई देते हैं। प्रथम उसके प्रमाण वालो को परमाणु कहते हैं ॥११८॥ आठ परमाणुओं का समवाय जब हो जाता है तो उसे त्रसरेणु इस नाम से समाख्यात करते हैं यह पद्मरज कहा जाता है। आठ त्रसरेणुओं का रथरेणु कहा जाता है। आठ रथरेणुओं का जब समवाय होता है तो बुधो के द्वारा बलाग्र कहा गया है ॥११९ १२०॥ आठ बलाग्रों का एक लिक्षा और आठ लिक्षाओं का एक यूका होती है। आठ यूकाओं का एक यव और आठ यवों का एक अंगुल होता है ॥१२१॥

द्वादशांगुलपर्वाणि वितस्तिस्थानमुच्यते।
रत्निश्चांगुलपर्वाणि विज्ञेयो ह्येकविंशति ॥१२२
चत्वारि विंशतिश्चैव हस्त स्यादंगुलानि तु।
किष्कुर्द्विरत्निर्विज्ञेयो द्विचत्वारिंशदंगुल ॥१२३
षण्णवत्यंगुलश्चैव धनुराहुर्मनीषिण।
एतद्गव्यूतिसंख्याया पादाना धनुष स्मृत ॥१२४
धनुर्दण्डा युग नाली तुल्यान्येता यथांगुलै।
धनुःत्रिंशत नल्वमाहु संख्याविदो जना ॥१२५
धनु सहस्रे द्वे चापि गव्यूतिरुपदिश्यते।
अष्टौ धनु सहस्राणि योजनन्तु विधीयते ॥१२६
एतेन धनुषा चैव योजन तु समाप्यते।
एतत्सहस्र विज्ञेय शक्रक्रोशान्तरन्तथा ॥१२७
योजनानान्तु संख्यात संख्याज्ञानविशारदै।
एतेन योजनाग्रेण शृणुध्व ब्रह्माणोऽन्तरम् ॥१२८
महीतलात्सहस्राणा शतादूर्ध्वं दिवाकर।
दिवाकरात्सहस्रेण तावदूर्ध्वं निशाकर ॥१२९
पूर्णं शतसहस्रन्तु योजनाना निशाकरात्।
नक्षत्रमण्डल कृत्स्नमुपरिष्टात्प्रकाशते ॥१३०

द्वादश अंगुलों के पर्वों का एक वितस्ति होता है। क्योंकि वधों के द्वारा वितस्ति स्थान कहा जाता है। इक्कीस अंगुलों का एक पर्व जानना चाहिये ॥१२२॥ चौबीस अंगुलों का एक हस्त होता है। दो रात्रियों का जिसमें बयालीस अंगुल हुआ करते हैं एक किष्कु होता है ॥१२३॥ छयानवे अंगुल वाला जो होता है उसे मनीषी लोग एक धनु कहते हैं। यह गव्यूति सख्या में पादों का कहा गया है ॥१२४॥ दो धनुर्दण्ड वाला नीली है जैसे अंगुलों के तुल्य हैं। तीनसौ धनुषों का नल्व सख्या के विद्वान् जन कहते हैं ॥१२५॥ दो सहस्र धनुर्षों का एक गव्यूति कहा जाता है। आठ सहस्र धनुर्षों का एक योजन होता है ॥१२६॥ इस धनुष से योजन समाप्त किया जाता है। यह जब एक सहस्र हो तो शक्र क्रोशान्तर होता है ॥१२७॥ सख्या के ज्ञान रखने वाले पण्डितों के द्वारा योजनों की सख्या की गई है। इस योजनाग्र से ब्रह्मा का अन्तर श्रवण करो ॥१२८॥ महीतल से सौ सहस्र ऊपर दिवाकर होता है। दिवाकर से सहस्र ऊपर निशा कर होता है ॥१२९॥ निशाकर से ऊपर एक पूरे सौ सहस्र समस्त ताराग्रहों का नक्षत्र मण्डल होता है जोकि प्रकाश करता है ॥१३०॥

शत सहस्र सख्यातो मेरुर्द्विगुणित पुन ।
ग्रहान्तरमथैकैकमूर्ध्वं नक्षत्रमण्डलात् ॥१३१
ताराग्रहाणा सर्वेषामधस्ताच्चरते बुध ।
तस्योर्ध्वंश्चरते शुक्रस्तस्मादूर्ध्वं च लोहित ॥१३२
ततो बृहस्पतिश्चोर्ध्वं तस्मादूर्ध्वं शनैश्चर ।
ऊर्ध्वं शतसहस्रन्तु योजनाना शनैश्चरात् ॥१३३
सप्तर्षिमण्डल कृत्स्नमुपरिष्टात्प्रकाशते ।
ऋषिभिस्तु सहस्राणा शतदूर्ध्वं विभाव्यते ॥१३४
योऽसौ तारामये दिव्ये विमाने ह्रस्वरूपके ।
उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढिभूतो ध्रुवो दिवि ॥१३५
त्रैलोक्यस्यैष उत्सेधो व्याख्यातो योजनैर्मया ।
मन्वन्तरेषु देवानामिज्या यत्रैव लौकिकी ॥१३६

वर्णाश्रमेभ्य इज्या तु लोकेऽस्मिन्या प्रवर्त्तते ।
सर्वेषा देवयोनीना स्थितिहेतु स वै स्मृत ॥१३७

त्रैलोक्यमेतद्व्याख्यातम ऊर्ध्वं निबोधत ।
ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यस्मिस्ते कल्पवासिन ।
एकयोजनकोटी सा इत्येव निश्चय गतम् ॥१३८

सौ सहस्र सख्या से मेरु द्विगुणित बताया गया है। ग्रहो का एक-एक से ऊपर नक्षत्र मण्डल से अन्तर होता है ॥१३१॥ समस्त ताराग्रहो के नीचे के भाग मे बुध रहता है। उसके ऊपर शुक्र है और उसमे ऊपर लोहित चरण करता है ॥१३२॥ उससे ऊपर बृहस्पति और उसके ऊपर शनैश्चर होता है। शनैश्चर से सौ सहस्र योजन ऊपर सप्तर्षियो का मण्डल हुआ करता है जोकि पूर्ण रूप से प्रकाशित हुआ करता है। ऋषियो से भी सहस्र ऊपर शुसवरूपक इस दिव्य ताराभय विमान मे जो यह मेढिभूत उत्तानपाद राजा का पुत्र ध्रुव दिव मे प्रकाशित होता है ॥१३३,१३४-१३५॥ मैंने यह त्रैलोक्य का उत्सेध (ऊँचाई) व्याख्यात कर दिया है अर्थात् खुलासा बतला दिया है जोकि योजना के द्वारा होता है। मन्वन्तरो मे यहाँ पर ही लौकिकी देवो की इज्या होती है ॥१३६॥ जो इज्या यहाँ लोक मे वर्णाश्रमो से प्रवृत्त हुआ करती है। समस्त देव योनि वालो की वह ही स्थिति का हेतु बताया गया है ॥१३७॥ मैंने यह इस तरह त्रैलोक्य की व्याख्या करदी है अब इससे आगे समझलो। ध्रुव से ऊपर महर्लोक है जिसमे कि वे कल्पवासी रहते हैं। वह एक कोटि योजन है इसी प्रकार निश्चय किया गया है ॥१३८॥

द्वे कोट्यौ तु महर्लोकाद्यस्मिस्ते कल्पवासिन ।
यत्र ते ब्रह्मण पुत्रा दक्षाद्या साधका स्मृता ॥१३९
चतुर्गुणोत्तराद्दूर्ध्वं जनलोकात्तप स्मृतम् ।
वैराजा यत्र ते देवा भूतदाहविवर्जिता ॥१४०

षड्गुणन्तु तपोलोकात्सत्यलोकान्तरं स्मृतम् ।
अपुनर्मारकामाना ब्रह्मलोक स उच्यते ॥१४१

यस्मान्न च्यवते भूयो ब्रह्माण स उपासते ।
एककोटिर्योजनाना पञ्चाशन्नियुतानि तु ॥१४२
ऊर्ध्वं भागस्ततोऽण्डस्य ब्रह्मलोकात्पर स्मृत ।
चतुरश्चैव कोटयस्तु नियुता पञ्चषष्टि च ॥१४३
एषोऽर्द्धप्रचारोऽस्य गत्यन्तश्चापर स्मृत ।
प्र_साग्रमेतद्व्याख्यात योजनाग्राद्यथाश्रुतम् ॥१४४
अधोगतीना वक्ष्यामि भूताना स्थानकल्पनाम् ।
गच्छन्ति घोरकर्म्माण प्राणिनो यत्र कर्मभि ॥१४५
नरको रौरवो रोध सूकरस्ताल एव च ।
संतप्तकुम्भो महाज्वाल शवलोऽथ विमोचन ॥१४६
कृमी च कृमिभक्षश्च लालाभक्षो विशसन ।
अध शिरा पूयवहो रुधिरान्धस्तथैव च ॥१४७
तथा वैतरण कृष्णमसिपत्रवन तथा ।
अग्निज्वालो महाघोर सदशोऽथ श्वभोजन ॥१४८
तमश्च कृष्णसूत्रश्च लाहश्चाप्यसिजस्तथा ।
अप्रतिष्ठोऽथ वीच्यश्च नरका ह्येवमादय ॥१४९

महर्लोक से दो कोटि ऊपर जहाँ वे कल्प पर्यन्त वास करने वाले हैं और ... ...ा के पुत्र दक्ष आदि साधक कहे गये हैं ॥१३९॥ जनलोक से चतुर्गुण ऊपर तपोलोक बताया गया है जहाँ पर वैराज देव रहते हैं जोकि भूत दाह से रहित रहा करते हैं ॥१४०॥ तपोलोक से छह गुणा ऊपर सत्यलोक का अन्तर होता है । जो अपुनर्मारको का ब्रह्मलोक कहा जाता है ॥१४१॥ जहाँ से फिर कोई भी च्यवन नहीं किया करता है और वह ब्रह्मा की उपासना किया करता है । एक करोड योजन और पचास नियुत ऊपर उससे अण्ड का भाग है जो ब्रह्मलोक से भी पर कहा गया है चार कोटि और पैंसठ नियुत है ॥१४२ १४३॥ इसका यह अर्द्धांश प्रचार अपर गत्यन्त कहा गया है । यह जैसा भी सुना गया है योजनाग्र से प्रसाग्र की व्याख्या करदी गई है ॥१४४॥ अब अधोगति वाले प्राणियों की स्थान कल्पना को बतलाता हूँ । जहाँ पर घोर कर्म करने वाले

प्राणीगण अपने कर्मों के द्वारा जाया करते हैं ॥१४४ १४५॥ नरकों के नाम ये हैं– रौरव–रोध–सूकर–ताल–तप्तकुम्भ–महाज्वाल–शबल विमोचन–कृमी–कृमिभक्ष–लालाभक्ष–विषमन–अधशिरा–पूयवह–रुधिरा ध–वैतरणी–कृष्ण–असि पत्र वन–अग्निज्वाल–महाघोर–सदंश–अभोजन–तम–कृष्णसूत्र–लोह – अभिज–अप्रतिष्ठ–वीच्यश्च इस प्रकार से ये नरक होते हैं ॥१४६ से १४९॥

तामसा नरका सर्वे यमस्य विषये स्थिता ।
येषु दुष्कृतकर्माण पतन्तीह पृथक्पृथक् ॥१५०
भूमेरधस्तात्ते सर्वे रौरवाद्या प्रकीर्त्तिता ।
रौरवे कूटसाक्षी तु मिथ्या यश्चाभिभाषति ।
कूरग्रहे पक्षवादी ह्यसत्य पतते नर ॥१५१
रोधे गोघ्नो भ्रूणहा च ह्यग्निदाता पुरस्य च ।
सूकरे ब्रह्महा मज्जेत्सुराप स्वर्णतस्कर ॥१५२
ताले पतेत्क्षत्रियहा हत्वा वैश्यञ्च दुर्गतिम् ।
ब्रह्महत्याञ्च य कुर्याद्यश्च स्याद्गुरुतल्पग ॥१५३
तप्तकुम्भी स्वसागामी तथा राजभटश्च य ।
तप्तलोहे चाश्वविणिक्तथा बन्धनरक्षिता ॥१५४
साध्वीविक्रयकर्त्ता च यस्तु भक्त परित्यजेत् ।
महाज्वाले दुहितर स्नुषा गच्छति यस्तु वै ॥

ये समस्त तामस नरक यमराज के इन म स्थित होते हैं। उन नरकों मे जो पाप कर्मों के करने वाले पृथक होते है वे अपने अपने कृत कर्मों के अनुसार पृथक पृथक् पतित होते हैं ॥१५०॥ वे सब नरक भूमि के नीचे भाग म रौरव आदि होते हैं। जो कूटसाक्षी अर्थात् झूठी गवाही देने वाला है और सर्वदा मिथ्या बोलता है वह कूरग्रह रौरव नामक नरक म मिथ्यावादी तथा पक्ष मे बोलने वाला जाकर गिरता है ॥१५१॥ रोध नामक नरक म गौ की हत्या करने वाला तथा भ्रूणा का वध करने वाला और नगर में आग लगाने वाला जाया करता है। ब्राह्मण का वध करने वाला सूकर म गिरता है। सुरापान करने वाला और स्वर्ण का चुराने वाला ताल नाम वाले नरक म गिरता है। क्षत्रिय

का हनन करने वाला तथा वैश्य की दुर्गति करने वाला और जो ब्रह्महत्या करता है एवं जो गुरुपत्नी का गमन करता है वह तप्तकुम्भ नरक में जाता है। स्वसा का गमन करने वाला और जो राजभट होता है वह और अश्वों का बेचने वाला तथा बन्धन रक्षिता ये सब तप्तलोह नामक नरक में पतन प्राप्त किया करते हैं ॥१५२-१५३-१५४॥ स्वाध्वी के विक्रय करने वाला और भक्त का परित्याग कर देता है तथा पुत्री एवं स्नुषा का गमन किया करता है वह महाज्वाल नाम वाले नरक में गमन करके पापों के फल को भोगता है ॥१५५॥

वेदो विक्रीयते येन वेदं दूषयते च यः ।
गुरूंश्चैवावमन्यन्ते वाक्क्रोशैस्ताडयन्ति च ॥१५६
अगम्यगामी च नरो नरकं शबलं व्रजेत् ।
विमोहे पतिते चौरे मर्यादां यो भिनत्ति वै ॥१५७
दुरध्वं कुरुते यस्तु कीटलोहं प्रपद्यते ।
देवब्राह्मणविद्वेष्टा गुरूणाश्चाप्यपूजकः ।
रत्नं दूषयते यस्तु कृमिभक्ष्यं प्रपद्यते ॥१५८
पर्य्यश्नाति य एकोऽन्यो ब्राह्मणो सुहृदः सुतात् ।
लालाभक्षे स पतति दुर्गन्धे नरके गतः ॥१५९
काण्डकर्त्ता कुलालश्च निष्कहर्त्ता चिकित्सकः ।
आरामेष्वग्निदाता यः पतते स विशसने ॥१६०
असत्प्रतिग्रही यश्च तथैवायाज्ययाजकः ।
नक्षत्रैर्जीवितो यश्च नरो गच्छत्यधोमुखम् ॥१६१

जिसके द्वारा वेदों का विक्रय किया जाता है और जो वेदों को दूषित किया करता है तथा गुरुगण का जो अपमान करता है एवं वाक्क्रोशों के द्वारा जो ताड़ना किया करते हैं एवं अगम्या गमन करते हैं वे सभी शबल नामक नरक में जाया करते हैं। और विमोह नाम में पतित होते हैं और जो मर्यादा को तोड़ते हैं वे भी उसी नरक में जाते हैं ॥१५६-१५७॥ जो दुरध्व करता है वह कीटलोह नरक में जाता है। देवा-ब्राह्मणों का द्वेष करने वाला तथा गुरुओं की पूजा न करने वाला और जो रत्न को दूषित किया करता है वह कृमिभक्ष्य

नामक नरक में प्राप्त हुआ करता है ॥१५८॥ जो एक अन्य ब्राह्मणी और सुहृद की पुत्री का उपभोग करता है वह दुर्गन्ध वाले लालाभक्ष नामक नरक में जाकर गिरता है ॥१५९॥ काण्डकर्त्ता–कुम्हार–निम्न का हरण करने वाला तथा चिकित्सा करने वाला एवं वाग में आग लगाने वाला व्यक्ति जो होता है वह विषमन नाम वाले नरक में गिरता है ॥१६०॥ असत् वस्तु के प्रतिग्रह का लेने वाला और उसी तरह से जो याजन के अयोग्य है उसको याजन कराने वाला तथा नक्षत्रों के द्वारा जो जीविका चलाता है अर्थात् गलत ज्योतिषी मनुष्य होता है वह अधोमुख नामक नरक में जाता है ॥१६१॥

क्षीरं सुरा च मांसं च लाक्षा गन्ध रसन्तिलान् ।
एवमादीनि विक्रीणन्घोरे पूयवहे पतेत् ॥१६२
य कुक्कुटानि वध्नाति मार्जारान्सूकरांश्च तान् ।
पक्षिणश्च मृगान्छागान्सोऽप्येन नरकं व्रजेत् ॥१६३
आजीविको माहिषकस्तथा चक्रध्वजी च य ।
जङ्गोपजीविको विप्र शाकुनिग्राम याजक ॥१६४
अगारदाही गरद कुण्डाशी सोमविक्रयी ।
सुरापो मांसभक्षश्च तथा च पशुघातक ॥१६५
विश (श्च) स्ता महिषादीना मृगहन्ता तथैव च ।
पर्वकारश्च सूची च यश्च स्यान्मित्रघातक ।
रुधिरान्धे पतन्त्येते एवमाहुर्मनीषिण ॥१६६

क्षीर (दूध)–सुरा–मांस–लाक्ष–गन्ध (सुगन्धित पदार्थ)–रस और तिलों को एवं इस प्रकार की वस्तुओं को बेचने वाला व्यक्ति घोर पूय वह नामक नरक में जाकर गिरता है ॥१६२॥ जो मुर्गों को वध करता है तथा मार्जारों को और सूकरों को–पक्षियों को–मृगों को तथा छागों को वध किया करता है वह भी इसी नरक में गिरता है ॥१६३॥ आजीविक–माहिषिक और जो चक्रध्वजी होता है—जो रङ्गों से उपजीविका करने वाला विप्र है तथा शाकुनि एवं ग्राम याजक होता है—अगार को दाह करने वाला–विष देने वाला–कुण्डाशी–सोम का विक्रय करने वाला–मदिरा पीने वाला–माँस भक्षण करने वाला–

पशुओं का वध करने वाला—महिष आदि का विक्रेता—मृगों का हनन करने वाला—पर्व कार—सूचो और जो मित्र घातक होता है—ये सब रुधिरान्ध में जाकर गिरा करते हैं ऐसा मनीषीगण कहते हैं ॥१६४-१६५-१६६॥

पतन्ति नरके घोरे विड्भुजे नात्र संशयः ॥१६७
मृषावादी नरो यश्च तथा प्राक्रोशकोऽशुभ ।
पतेत्तु नरके घोरे मृषाकीर्णे स पापकृत् ॥१६८
मधुग्राहाभिहन्तारो यान्ति वैतरणीं नरा ।
उन्मत्ताश्चित्तभग्नाश्च शौचाचारविवर्जिता ॥१६९
क्रोधना दुःखदाश्चैव कुहका कूटगामिन ।
असि पत्रवने छेदी तथा ह्यौरभ्रिकाश्च ये ।
कर्त्तनैश्च विकृष्यन्ते मृगव्याधा सुदारुणे ॥१७०
आश्रमप्रत्यवसिता अग्निज्वाले पतन्ति वै ।
भोज्यन्ते श्याम शवलैरयस्तुण्डैश्च वायसै ॥१७१
इज्याया व्रतमालोपात्सन्दंशे नरके पतेत् ।
स्कन्दन्ते यदि वा स्वप्ने व्रतिनो ब्रह्मचारिण ॥१७२
पुत्रैरध्यापिता ये च पुत्रैराज्ञापिताश्च ये ।
ते सर्वे नरक यान्ति नियतन्तु श्वभोजने ॥१७३
वर्णाश्रमविरुद्धानि क्रोधहर्षसमन्विता ।
धर्माणि ये तु कुर्वन्ति सर्वे निरयगामिन ॥१७४

एक ही पंक्ति में बैठे हुए व्यक्ति को जो विषम भोजन कराता है। वह विड्भुज नामक घोर नरक में गिरता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१६७॥ जो मनुष्य मिथ्यावाद करने वाला होता है तथा जो अशुभ एवं आक्रोश करने वाला होता है। वह पापी मृषाकीर्ण नामक नरक में जोकि बड़ा ही घोर होता है गिरता है ॥१६८॥ मधुग्राह के अभि हनन करने वाले नर वैतरणी में जाया करते हैं। जो उन्मत्त-भग्न-चित्त वाले-शौच एवं आचार से रहित-अत्यन्त अकारण क्रोध करने वाले-दुःख देने वाले-कुहक और कूटगामी मनुष्य हैं वे असि पत्रवन नाम वाले नरक में जाया करते हैं। जो छेदन करने वाले तथा

और भिन्न एक कर्त्तनी (छुरियो) के जैसे सुदारुणो शस्त्रो से मृग एव व्याधो का विकर्त्तन किया करते है वे अपने आश्रमसे प्रच्यवसित होते हुए अग्निज्वाल नामक नरक मे गिरते हैं। जो श्याम और शबल अयस्तुण्ड और वायसो के साथ खाया करते हैं इज्या मे अन्न के आलोप से सन्देश नामक नरक मे गिरते हैं। व्रतधारी ब्रह्मचारी गण यदि स्वप्न मे भी स्कन्दित होते हैं और जो पुत्रो के द्वारा अध्यापित एव पुत्रो के द्वारा आज्ञापित होते हैं वे सब श्वभोजन नामक नरक मे नियत रूप से जाकर पडा करते है ॥१६६ से १७३॥ क्रोध तथा हर्ष समन्वित होते हुए जो लोग वर्णों तथा आश्रमो के विपरीत कर्मों को किया करते हैं वे सब नरक के गामी हुआ करते है ॥१७४॥

उपरिष्टात्सितो घोर उष्णात्मा रौरवो महान् ।
सुदारुणस्तु शीतात्मा तस्याधस्तात्तप स्मृत ॥१७५
एवमादि क्रमेणैव वर्ण्यमानान्निबोधत ।
भूमेरधस्तात्सप्तैव नरका परिकीर्तिता ॥१७६
अधर्मसूनवस्ते स्युरन्धतामिस्रकादय ।
रौरव प्रथमस्तेषा महा रौरव एव च ॥१७७
अस्याध पुनरप्यन्य शीतस्तप इति स्मृत ।
तृतीय कालसूत्र स्यान्महाहविविधि स्मृत ॥१७८
अप्रतिष्ठ श्चतुर्थ स्यादवीची पञ्चम स्मृत ।
लोहपृष्ठन्तमस्तेषामविधेयस्तु सप्तम ॥१७९
घोरत्वाद्रौरव प्रोक्त साम्भको दहन स्मृत ।
सुदारुणस्तु शीताध्मा तस्याधस्तात्तपोऽधमः ॥१८०
सर्पो निकृन्तन प्रोक्त कालसूत्रेति दारुण ।
अप्रतिष्ठे स्थितिर्नास्ति भ्रमस्तस्मिन्सुदारुण ॥१८१
अवीचिर्दारुण प्रोक्तो यन्त्रसपीडनाच्च स ।
तस्मात्सुदारुणो लोहः कर्मणा क्षयणाच्च स ॥१८२

ऊपर से सित–घोर उष्मा स्वरूप वाला महान् रौरव नरक होना है। सुदारुण तो शीतात्मा होना है किन्तु उसके नीचे तप कहा गया है ॥१७५॥

एवम दि क्रम से ही वर्णन किये हुए नरकों का समझ लो। भूमि के नीचे के भाग म सात ही नरक कहे गये हैं ॥१७६॥ वे अन्य तामिस्नकादि प्रथम के सूतु हैं। रौरव और महा रौरव उत्तम प्रथम है ॥१७७॥ इसके नीचे फिर भी अन्य शीनस्तय कहा गया है। तीसरा काल सूत्र होना है जो महा हवि विधि कहा गया है ॥१७८॥ अप्रतिष्ठ चौथा और पाँचवाँ अवीची नाम वाला होता है। उनमे लोह पृष्ठ स्तम जो अविधेय है सातवाँ होता है ॥१७६॥ घोर होने से रौरव कहा गया है और साम्भक दहन कहा गया है। सुदारुण तो शीतात्मा होता है उनके नीचे अधम तप होना है ॥१८०॥ सप निकृन्तन कहा गया है। काल सूत्र यह दारुण है। अप्रतिष्ठ मे स्थिति नहीं है उसम सुदारुण भ्रम होता है ॥१८१॥ अवीचि नरक दारुण कहा गया है क्यो वह यन्त्र पीडित करता है। उसमें भी सुदारुण कर्मों के क्षय के कारण लोह नामक नरक होता है ॥१८२॥

तथाभूतो शरीरत्वादविधिम्यस्तु स स्मृत ।
पीडवन्धवधासङ्गादप्रतीवारलक्षण ॥१८३
ऊर्द्ध्वं दीलमितास्ते तु निरालोकाश्च ते स्मृता ।
दु खोत्कपस्तु सर्वेपु ह्यधमस्य निमित्तत ॥१८४
ऊर्द्ध्वं लोर्षे समावेतौ निरालोकौ च तावुभौ ।
कूटाङ्गारप्रमाणश्च शरीरी मूत्रनायक ॥१८५
उपभोगसमर्थस्तु सद्यो जायन्ति कर्मभि ।
दु ख प्रकर्पश्चोग्रत्व तेपु सर्वेपु वै स्मृतः ॥१८६
यातनाश्चाप्यसंख्येया नारकाणा तथा स्मृता ।
तत्रानुभूयत दु ख क्षीणे कर्मणि वै पुन ॥१८७
तिर्यग्योनौ प्रसूयन्त कर्मशेषे गते तत ।
देवाश्च नारकाश्चैव ह्यूर्द्ध्वं चाधश्च संस्थिता ॥१८८
धर्माधर्मनिमित्तेन सद्यो जायन्ति मूर्त्तय ।
उपभोगार्थमुत्पत्तिरौपपत्तिककर्मत ॥१८६
पश्यन्ति नारकान्देवा ह्यधोवक्त्रान् ह्यधोगतान् ।
नारकाश्च तथा देवान् सर्वान्पश्यन्त्यधो मुखान् ॥१६०

अनग्रमूलता यस्माद्धारणाश्च स्वभावत ।
तस्मादूद्ध्वंमघोभावो लोकालोके न विद्यते ॥१६१
एषा स्वाभाविकी सज्ञा लोकालोके प्रवर्त्तते ।
अथाब्रुवन्पुनर्वायु ब्राह्मणा सत्रिणस्तदा ॥१६२
सर्वेषामेव भूताना लोकालोकनिवासिनाम् ।
ससारे ससरन्तीह यावन्त प्राणिनश्च तान् ॥१६३
सङ्ख्यया परिसङ्ख्याय तत प्रब्रूहि कृत्स्नश ।
ऋषीणा तद्वच श्रुत्वा मारुतो वाक्यमब्रवीत् ॥१६४

तथा भूत शरीर होने प्रविधिन्य यह कहा गया है। पीडबन्ध और बध के प्रामङ्ग होने से प्रप्रतीकार लक्षण वाला होता है ॥१८३॥ वे ऊपर मे नील को गये हुए तथा बिना आलोक वाले कहे गये हैं। प्रधर्म के निमित्त होने से सब मे दुःख का उत्कर्ष हुआ करता है ॥१८४॥ ऊद्ध्वं भाग मे ये लोको के समान होते हैं तथा ये दोनो निरालोक होते हैं। और कूटाकार प्रमाणो म शरीरी सूत्र नायक होता है ॥१८५॥ उपभोग मे समर्थ कर्मो से तुरन्त ही होते हैं। उन सब मे दुःखो का प्रकर्ष और उग्रता कहे गये हैं ॥१८६॥ नरको मे होने वाली यातनाएँ असह्य कही गई हैं। यहाँ पर फिर क्षीण कर्म मे दुःख का अनुभव किया जाता है ॥१८७॥ इसके पश्चात् कर्म्मो के शेष रहने पर जीवात्मा तिर्यक् योनि मे जन्म लिया करते हैं। देवगण और नारकीगण ऊपर और नीचे के भागो म सस्थित होते हैं ॥१८८॥ धर्म और अधर्म के निमित्त होने से तुरन्त मूर्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। औपपत्तिक कर्म से उपभोग करने के लिये उत्पत्ति होती है ॥१८९॥ देवगण अधोगत और नीचे की ओर मुख करने वाले नारकी प्राणियो को देखा करते हैं। और नारक समस्त देवों को अधो मुख किये हुए देखते हैं ॥१९०॥ जिस कारण से अनग्रमूलता और स्वभाव से धारण होती है उससे लोकालोक मे ऊद्ध्वंभाव तथा अधोभाव नहीं होता है ॥१९१॥ लोकालोक मे यह स्वाभाविकी सज्ञा होती है। इसके अनन्तर उस समय मे सत्र करने वाले ब्राह्मणो ने फिर वायुदेव कहा—॥१९२॥ ऋषियो ने कहा—लोकालोक के निवास करने वाले सभी प्राणियों मे से यहाँ ससार म जितने प्राणी ससरण

रिया करते हैं उनको सख्या से सख्यान करने इसके पश्चात् पूर्ण रूप से बता इए। ऋषियों के उस वचन को सुनकर मारुत देव ने कहा—॥१६४॥

न शक्या जन्तवः कृत्स्ना प्रसंख्यातुं कथञ्चन ।
अनाद्यन्ताश्च सकीर्णा ह्यप्यूहेन व्यवस्थिताः ।
गणना विनिवृत्तैषामानन्त्येन प्रकीर्तिता ॥१६५
न दिव्यचक्षुषा ज्ञातुं शक्या ज्ञानेन वा पुनः ।
चक्षुषा वो प्रसंख्यातुमतो ह्यन्ते नराधिप ॥१६६
अनाध्यानादवेद्यत्वान्नैव प्रश्नो विधीयते ।
ब्रह्मणा संज्ञितं यत्तु सख्या तन्निबोधत ॥१६७
यः सहस्रतमो भागः स्थावराणां भवेदिह ।
पार्थिवाः कृमयस्तावत्ससेकार्थेषु सम्मताः ॥१६८
ससेकजानाम्भागेन सहस्रेणैव सम्मिताः ।
औदका जन्तवः सर्वे निश्चयात्तद्विचारितम् ॥१६९
सहस्रेणैव भागेन सत्वाना सलिलौकसाम् ।
विहङ्गमास्तु विज्ञेया लौकिकास्ते च सर्वशः ॥२००

वायु देव बोले—सम्पूर्ण जन्तुगण किसी भी प्रकार से प्रसख्यान नहीं किये जा सकते हैं। वे सब अनाद्यन्त-सकीर्ण और ऊह से भी व्यवस्थित हैं। इनकी गणना आनन्त्य होने से विनिवृत्त कही गई है ॥१६५॥ अथवा दिव्य चक्षु से भी ज्ञान के द्वारा नहीं जानी जा सकती है। इसलिये अन्त में नराधिप सख्यान करने के लिए लिया गया है ॥१६६॥ अनाध्यान होने से तथा अवेद्यत्व होने से यह प्रश्न ही नहीं किया जाता है। ब्रह्मा के द्वारा जो सख्या से सज्ञित किया गया है उसको जान लो ॥१६७॥ यहाँ पर स्थावरो का जो सहस्रतम भाग होता है उतने ससेकादि में होने वाले पार्थिव कृमि होते हैं ॥१६८॥ ससेकजो के सहस्रतम भाग के सम्मित समस्त औदक (जल में रहने वाले) जन्तुगण होते हैं यह निश्चय से विचार किया गया है ॥१६९॥ सलिल में रहने वाले सत्त्वो के सहस्र ही भाग से विहङ्गम जानने चाहिए और वे सब लौकिक हैं ॥२००॥

य सहस्रतमो भागस्तेषां वै पक्षिणा भवेत् ।
पशवस्तत्समा ज्ञेया लौकिकास्तु चतुष्पदा ॥२०१
चतुष्पदाना सर्वेषा सहस्रेणैव समता ।
भागेन द्विपदा ज्ञेया लौकिकेऽस्मिस्तु सर्वश ॥२०२
य सहस्रतमो भागो भागे तु द्विपदा पुन ।
धार्मिकास्तेन भागेन विज्ञेया सम्मिता पुन ॥२०३
ससस्रणैव भागेन धार्म्मिकेभ्यो दिवङ्गता ।
य सहस्रतमो भागो धार्म्मिकाणा भवेद्दिवि ।
सम्मितास्तेन भागेन मोक्षिणस्तावदेव हि ॥२०४
स्वर्गोपपादकैस्तुल्या यातना स्थानवासिन ।
पतिता पूर्णमुद्देशाद्दुरात्मनो म्रियन्ति ये ।
रौरवे तामसे ह्येते शीतोष्ण प्राप्नुवन्ति ते ॥२०५
वेदनाकटुकास्तथा यातना स्थानमागता ।
उष्णस्तु रौरवो ज्ञेयस्तेजो घोररसात्मक ॥२०६
तता घनाग्निश्चापि शीतात्मा सतत तप ।
एव सुदुर्लभा सन्त स्वर्गे च धार्मिका नरा ॥२०७
एपा सरया कृता सरया ईश्वरेण स्वयम्भुवा ।
गणना त्रिनिवृत्तेषा सङ्ख्या ब्राह्मी च मानुषी ॥२०८

जो उन पक्षियों का हजारवां हिस्सा होता है उनके बराबर लौकिक चतुष्पद पशु जानने चाहिये ॥२०१॥ समस्त चतुष्पदों के सहस्र भाग से सम्मित इस समस्त लौकिक में द्विपद जन्तु जानने चाहिए ॥२०२॥ फिर उन द्विपदों में भाग में जो सहस्रवां भाग होता है उस भाग से धार्मिक जानने चाहिए ॥२०३॥ हजारवें भाग से ही उन धार्मिकों में से प्राणी दिवलोक में प्राप्त होने वाले होते हैं। उस दिवलोक में भी उन गये हुए धार्मिकों में से हजारवाँ भाग मोक्ष प्राप्त करने वाला हुआ करते हैं ॥२०४॥ स्वर्ग के उपपादकों के तुल्य यातना स्थान वासी की है। उद्देश्य से पूर्ण की पतित दुष्ट आत्मा वाले मरते हैं ये सब रौरव तामस में गिरते हैं और शीतोष्ण को वे

प्राप्त किया करते हैं। २०५॥ वेदना से कटुक एवं स्तब्ध यातना के स्थान को प्राप्त हो गये। उष्ण तो रौरव जानना चाहिये जो कि घोर रमात्मक रोज है ॥२०६॥ इसके पश्चात् घनात्मिक भी शीतात्मा सतत तप हैं। इस प्रकार से सुदुर्लभ होते हुए भी स्वर्ग में धार्मिक नर होते हैं ॥२०७॥ यह सख्या स्वयं ईश्वर के द्वारा की गई है। यह संख्या ब्राह्मी और मानुषी है। यह गणना विनिवृत्त हो गई है ॥२०८॥

महोजनस्तप. सत्य भूतो भाव्यो भवस्तथा ।
उक्ता ह्येते त्वया लोका लोकानामन्तरेण च ।
लोकान्तरञ्च यादृग्वै तन्नो ब्रूहि यथातथम् ॥२०९
तेषा तद्वचन श्रुत्वा ऋषीणामूर्द्ध्वरेतसाम् ।
स वायुर्दृष्टतत्त्वार्थ इदन्तत्त्वमुवाच ह ॥२१०
व्यक्त तर्केण पश्यन्ति योगात्प्रत्यक्षदर्शिन. ।
प्रत्याहारेण ध्यानेन तपसा च क्रियात्मन ॥२११
ऋभु' सनत्कुमाराद्या सम्बुद्धा. शुद्धबुद्धयः ।
व्यपेतशोका विरजाः सन्तो ब्रह्मे वसत्तमाः ॥२१२
अक्षया प्रीतिसयुक्ता ब्रह्मे तिष्ठन्ति योगिनः ।
ऋषीणा वालखिल्याना तैर्यथाहूतमी श्वरं. ॥२१३
यथा चैव मया दृष्टं सान्निध्यन्तत्र कुर्वता ।
अनह्यसत्कृतार्थानामालय नेश्वरस्य यत् ॥२१४
ईश्वर परमाणुत्वादभावग्राह्यो मनीषिणाम् ।
ज्ञान वैराग्यमैश्वर्यन्तप सत्य क्षमा धृति ॥२१५
द्रष्टृत्वमात्मसम्बन्धमधिष्ठानत्वमेव च ।
अव्ययानि दर्शतानि तस्मिंस्तिष्ठति शङ्करे ॥२१६

ऋषियों ने कहा—आपने मह-जन तप-सत्य-भूत भाव्य और भव ये सब लोक हमको बताये हैं। अब लोकों के अन्तर से अन्य जिस प्रकार के लोक हैं उन्हें ठीक-ठीक हमको बताइये ॥२०९॥ उन ऋषियों ने जो कि ऊर्ध्वरेता थे उस वचन का श्रवण कर तत्वार्थ को देख लेने वाले उस वायुदेव ने उस

तत्व को कहा था ।।२१०।। वायुदेव ने कहा—प्रत्यक्षदर्शी योग से तर्क के द्वारा व्यक्त को देखा करते हैं और क्रिया के स्वरूप वाले प्रत्याहार-ध्यान तथा तप के द्वारा देखते हैं ।।२११।। श्रभु सनत्कुमार आदि सब भली भाँति ज्ञान युक्त तथा सम्बुद्ध बुद्धि वाले हैं। ये सब शोक रहित विरज ब्रह्मा की भाँति ही श्रेष्ठ हैं ।।२१२।। ये क्षय से रहित-प्रीति से संयुक्त योगी हैं जो ब्रह्म में ही समास्थित रहा करते हैं। इन परम समर्थ प्रभुओं ने बालखिल्य ऋषियों से जैसा कहा था और उनका सान्निध्य करने वाले मैंने जिस तरह से देखा था कि ये लय पर्यन्त ईश्वर के प्रसरकृत वाले नहीं होते हैं ।।२१३।।२१४।। ईश्वर परम अणु होने के कारण से मनीषियों के भाव के द्वारा ही ग्रहण करने के योग्य होता है। उस शङ्कर में ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य तप-सत्य क्षमा-धृति-द्रष्टृत्व होना-आत्म सम्बन्ध और अधिष्ठातृत्व ये अव्यय दश बातें स्थित रहा करती हैं ।।२१५।।२१६।।

विभुत्वात्खलु योगाग्निर्ब्रह्मणोऽनुग्रहे रत ।
स लोकविग्रहो भूत्वा साहाय्यमुपतिष्ठते ।।२१७

अक्षर ध्रुवमव्ययमष्टमन्त्वौपसर्गिकम् ।
तस्येश्वरस्य यन्मात्रस्थान मायामय परम् ।।२१८

मायया कृतमाचष्टे मायी देवो महेश्वर ।
देवानामूहसहारस्तत्प्रमाण हि कीर्त्यते ।।२१९
विस्तरेणानुपूर्व्या च श्रुवतो मे निबोधत ।
त्रयोदशैव कोटचस्तु नियुता दश पञ्च च ।
भूर्लोकाद् ब्रह्मलोको वै योजनै सम्प्रकीर्त्यते ।।२२०

एकयोजनकोटी तु पञ्चाशन्नियुतानि च ।
ऊर्द्ध भागयताण्डन्तु ब्रह्मलोकात्पर स्मृतम् ।।२२१
एषोर्द्ध गप्रचारस्तु गत्यन्तश्च तत स्मृतम् ।
नित्या ह्यपरिसख्येया परस्परगुणाश्रया ।।२२२
सूक्ष्मा प्रसवधर्मिण्यस्तत प्रकृतय. स्मृता ।
येभ्योऽधिकर्त्ता सजज्ञे क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंसित ।।२२३

विभु होने के कारण वह योग की अग्नि वाला प्रभु ब्रह्मा के अनुग्रह में रत रहने हैं। वे लोक विग्रह होकर सहायता किया करते हैं ॥२१७॥ उस ईश्वर के अक्षर ध्रुव अव्यय अक्षम औपसर्गिक परम मायामय यामात्र स्थान है ॥२१८॥ महेश्वर देव माया से युक्त हैं और माया के द्वारा ही सब कुछ किया करते हैं। देवों का उप संहार भी इसी प्रकार किया करते हैं। उसका प्रमाण अब कहा जा रहा है। मैं विस्तार के साथ उसे आनुपूर्वी से कहता हूँ। आप लोग उसे मुझसे जान लेवें। इस भूलोक से ब्रह्मलोक त्रयोदश कोटि तथा पन्द्रह नियुत योजनों से युक्त कहा जाया करता है ॥२१६॥२२०॥ इस ब्रह्म लोक से भी ऊपर एक करोड पचास नियुत योजन भागवताण्ड स्थित है ऐसा कहा गया है ॥२२१॥ यह इससे ऊपर गमन करने वाला प्रचार है और वहां गति का अन्त होता है ऐसा बताया गया है। परस्पर में गुणों के आश्रय जो है वे नित्य हैं और अपरिसख्यय होते है ॥२२२॥ प्रसव के धर्म वाली जो प्रकृतियां हैं व परम सूक्ष्म हैं जिनमे अधिकर्ता ब्रह्मा ही सज्ञा वाला क्षेत्रज्ञ उत्पन्न होता है ॥२२३॥

तासु प्रकृतिमत्सूक्ष्ममधिष्ठातृत्वमव्ययम् ।
अनुत्पाद्य परंधाम परमाणु परंज्ञेयम् ॥२२४
अक्षयश्चाप्यनुह्यश्च अमूर्त्तिमूर्त्तिमानसौ ।
प्रादुर्भावस्तिरोभाव स्थितिश्चैवाप्यनुग्रह ॥२२५
त्रिविधरन्यैरनौपम्य परमाणु महेश्वर ।
मतेजा एप तमसो य परस्तात्प्रकाशक ॥२२६
सदण्डमासीत्तत्सौवर्णं प्रथमन्त्वौपसर्गिकम् ।
वृहत सर्वतोवृत्तमीश्वराद्व्यवजायत ॥२२६
ईश्वरदाद् वीजनिर्भेद क्षेत्रज्ञो वीज उच्यते ।
यानि प्रकृतिमाचष्टे सा च नारायणात्मिका ॥१२८
विभुर्लोकस्य सृष्ट्यर्थं लोकसस्थानमव च ।
सचिसर्ग स तन्वा च लोकधातुमहात्मन ॥२२६

पुरस्ताद्ब्रह्मलोकस्य ह्यण्डादर्वाक्च ब्रह्मणः ।
तयोर्मध्ये पुरं दिव्यं स्थानं यस्य मनोमयम् ॥ २३०
तद्विग्रहवतः स्थानमीश्वरस्यामितौजसः ।
शिवं नाम पुरं तत्र शरणं जन्मभीरुणाम् ॥ २३१

उसमें प्रकृति वाला सूक्ष्म एवं अव्यय अधिष्ठातृत्व होता है। यह परमाणु सर्वशेष परधाम अनुत्पादन के योग्य होता है ॥२२४॥ वह क्षय से रहित—उहा करने के प्रयोग बिना मूर्त्ति वाला और यह मूर्तिमान् है जिसका आविर्भाव और तिरोभाव तथा स्थिति भी एक प्रकार का अनुग्रह ही होता है ॥२२५॥ यह परमाणु महेश्वर अन्यों के द्वारा अनुपम विधि होता है। यह समस्त परम प्रकाश करने वाला तेज से युक्त होता है ॥२२६॥ जो यह प्रथम सौवर्ण एवं औपसर्गिक अणु होता है। सभी ओर से वृत्त और परम विशाल वह ईश्वर से उत्पन्न हुआ था ॥२२७॥ ईश्वर से बीज का निर्भेद होता है। जो क्षेत्रज्ञ होता है वही बीज होता है। प्रकृति को उस बीज को धारण करने वाली योनि कहा जाता है और यह भी नारायण के स्वरूप वाली होती है ॥२२८॥ विभु ने लोक की सृष्टि के लिए लाख संस्थान किया है लोकों के धाता उस महात्मा के शरीर में ही यह निमग्न होता है ॥२२६॥ सबसे पहले ब्रह्म होता है और फिर ब्रह्म का अण्ड है। इन दोनों के मध्य में पुर जिसका मनोमय परम दिव्य स्थान होता है ॥२३०॥ अपरिमित ओज वाले विग्रहधारी उस ईश्वर का स्थान है। यह शिव नाम वाला पुर है और वहां पर जन्म मरण के भय से भी न जीवों की रक्षा होती है अर्थात् यही शिवपुर उनका शरण है ॥२३१॥

सहस्राणां शतं पूर्णं योजनानां द्विजोत्तमा ।
अभ्यन्तरे तु विस्तीर्णं महीमण्डलसंस्थितम् ॥२३२
मध्याह्नार्कप्रकाशेन परतेजोऽभिमर्दिना ।
शातकौम्भेन महता प्राकारेणार्कवर्चसा ॥ २३३
द्विरंभ्रनुभिः सौवर्णैर्मुक्तादामविभूषितैः ।
तपनीयनिभं शुभ्रं गाढं सुकृतवेष्टनम् ॥ २३४

तच्चाकाशे पुर रम्य दिव्य घण्टादिनादितम् ।
न तत्र क्रमते मृत्युर्न तपो न जरा श्रमाः ॥२३५
न हि तस्य पुरस्यान्यैरुपमा कर्तु मर्हति ।
सहस्राणां शत पूर्णं योजनाना दिशो दश ॥२३६
तत्पुर गोवृषाङ्कस्य तेजसा व्याप्य तिष्ठति ।
भावेन मनसो भूमिर्विन्यस्ता कनकामयी ॥ २३७
रत्नवालुकया तत्र विन्यस्ता शुशुभेऽधिकम् ।
शारदेन्दुप्रकाशानि बालसूर्यनिभानि च । २३८
अर्द्धं श्वेतार्द्धं रक्तानि सौवर्णानि तथैव च ।
रथचक्रप्रमाणानि नालैर्मरकतप्रभैः ॥२३९
सौकुमारेण रूपेण गन्धिनाप्रतिमेन च ।
तत्र दिव्यानि पद्मानि वनेपूपवनेषु च ॥ २४०
भृङ्गपत्रनिकाशानि तपनीयानि यानि च ।
अर्द्धं कृष्णार्द्धं रक्तानि सुकुमारान्तराणि च ॥ २४१
आतपत्र प्रमाणानि पङ्कजैः सवृतानि च ।
भूय सप्त महानद्यस्तासान्नामानि बोधत ॥ २४२
वरा वरेण्या वरदा वरार्हा वरवर्णिनी ।
वरमा वरभद्रा च रम्यास्तस्मिन्पुरोत्तमे ॥ २४३
पद्मोत्पदलोर्म्मिश्र फेनाद्यावर्त्त विग्रहम् ।
जल मणिदलप्रख्यमावहन्ति सरिद्वरा ॥२४४

हे द्विजोत्तमो । वह सौ सहस्र योजनों से पूर्ण है । उसके अन्दर एक परम विस्तीर्ण महीमण्डल सस्थित होता है ॥२३२॥ मध्याह्न के सूर्य के प्रकाश का भी अभिमर्दन करने वाला वहा तेज का प्रकाश है । उसका सुवर्ण का विशाल प्राकार होता है जो सूर्य के वचम जैसा है ॥२३३॥ सुवर्ण निर्मित चार उसम द्वार हैं जो कि मुक्ताओ की मालाओं से समलङ्कृत हैं । सोने के समान परम भास्वर वस्त्रो से भली भाति वेष्टित हैं ॥२३४॥ वह पुर अत्यन्त रम्य आकाश म है जो नि घण्टानाद से निनादित एव अति दिव्य है । वहा

पर मृत्यु ताप-जरा और श्रम ये कोई भी नहीं पहुँच सकते हैं। ऐसा अन्य कोई भी पुर या स्थल नहीं है जिसकी उपमा इस पुर को दी जा सके अर्थात् सारांश यह है कि यह अत्यन्त अनुपम है। दसों दिशाओं में यह सौ सहस्र योजन तक फैला हुआ है ॥२३६॥ वह पुर गोवृषाङ्क के दिवा तेज से व्याप्त होता हुआ सस्थित रहता है। मन के भाव के द्वारा वहां कनकामयी भूमि विन्यस्त की गई है ॥२३७॥ रत्नों की बालुका के द्वारा वह और भी अधिक शोभा से शोभित है। बाल सूर्य के समान शारदीय चन्द्र के प्रकाश वाले आधे श्वेत और आधे रक्त सुवर्ण निर्मित जैसे वन और उपवनों में पद्म हैं जिनका प्रमाण रथ के चक्र के समान है और मरकत मणिकी प्रभा के तुल्य उनके नाल हैं। परम सौकुमार रूप है और अप्रतिम गन्ध से युक्त हैं ऐसे दिवा पद्म वहां पर हैं ॥२३८॥२३९॥२४०॥ मृग पत्र के तुल्य जो तपनीय थे वे आधे कृष्ण और आधे रक्त थे और सुकोमल अन्तर वाले थे ॥२४१॥ आतपत्र (छत्र) के प्रमाण वाले तथा पङ्कजों से संवृत थे। अब सात जो महा नदियां हैं उनके नामों को समझ लो ॥२४२॥ महा नदियों के नाम ये हैं—वरा-वरेण्या वरदा-वराही वर वार्णिनी- वरमा और वरभद्रा। ये सात महानदी उस उत्तम पुर में परम रम्य हैं ॥२४३॥ ये श्रेष्ठ नदियां मणिदल के समान अति स्वच्छ जल के प्रवाह वाली थी वह जल पद्मोत्पल दलों में उन्मिश्र था और फेन आदि आवर्त्तों के स्वरूप से युक्त था ॥२४४॥

न तु ब्रह्मर्षयो देवा नासुरा पितरस्तथा ।
न खल्वन्येऽप्रमेयस्य विदुरीशस्य तत्पुरम् ॥ २४५

तत्र ये ध्यानमव्यग्रा सुयुक्ता विजितेन्द्रिया ।
पश्यन्तीह महात्मान पुरन्तद्गोवृषात्मन ॥२४६

मध्ये पुरवरेन्द्रस्य तस्याप्रतिमतेजस ।
सुमहान्मेरुसङ्काशो दिव्यो भद्रश्रिया वृत ॥ २४७

सहस्र पाद प्रासादस्तपनीयमय शुभ ।
अनुपमेयं रत्नैश्च सवत स विभूपित ॥२४८

स्फटिकैश्चन्द्रसङ्काशैर्वैदूर्य सोमसप्रभैः ।
बालसूर्य्यप्रभैश्चैव सौवर्णैश्चाग्निसप्रभैः ॥ २४९
राजतैश्चापि शुशुभे इन्द्रनीलमयैः शुभैः ।
दृढैर्वज्रमयैश्चैव इत्येव सुमहाहितैः ॥२५०

ईश के उस परम सुन्दर पुर को ब्रह्मर्षि-देव-असुर-पितर तथा अन्य कोई भी नहीं जानते हैं क्या कि ईश स्वयं अप्रमेय हैं अर्थात् प्रभा के विषय नहीं हैं ॥२४५॥ उस गोवृषात्मा प्रभु के उस पुर को ऐसे ही महान् आत्मा वाले ही पुरुष देखते हैं जो ध्यान में सदा अव्यग्र रहते हैं युक्त और विजित इन्द्रियों वाले होते हैं ॥२४६॥ उस परम रमणीय श्रेष्ठतम पुर के मध्य में अप्रमित तेज वाले उस ईश्वर का अट्टश्री से वृत-अतिदिक्र और सुविशाल मेरु के सदृश महत्पाद् प्रासाद हैं जो परम शुभ एवं सुवर्ण के समान हैं। वह प्रासाद (महल) अनुपम रत्नों के द्वारा सभी ओर से सुविभूषित है। २४७॥२४८॥ चन्द्रमा के तुल्य स्फटिक मणि और सोम के सदृश प्रभा वाली वैदूर्य मणियों से वह सुशोभित था। बालसूर्य अर्थात् प्रातःकालीन सूर्य की प्रभा वाली तथा अग्नि के समान प्रभा से युक्त एवं सुवर्ण को और राजत (चाँदी को) वस्तुओं से वह विभूषित था और शुभ इन्द्र नील मणियों से सुन्दर शोभा से युक्त हो रहा था। हीरा से जटित परम दृढ़ एवं शोभा से सम्पन्न वह पुर था ॥२४९॥२५०॥

जलैश्च विविधाकारैर्दीप्यद्भिरधिवासितम् ।
चन्द्ररश्मिप्रकाशाभिः पताकाभिरलङ्कृतम् ॥२५१
स्वमघण्टानिनादैश्च नित्यप्रमुदितोत्सवं ।
पितृराणामधीवासं सन्ध्याप्राकारराजितं ॥२५२
परिवारसमन्तात्तु हेमपुष्पोदयप्रभं ।
यथा हि मेरुशैलेन्द्रो हमश्रृङ्गैर्विराजते ॥२५३
चामीकरमयीभिस्तु पताकाभिस्तथा पुरम् ।
एवं प्रासादराजोऽपि भूमिराभिर्विराजते ॥२५४

वसन्तप्रतिमा यत्र त्र्यम्बकस्य निवेशने ।
लक्ष्मीः श्रीश्च वपुर्म्माया कीर्ति. शोभा सरस्वती ॥२५५
देव्या वै सहिता ह्येता ह्यगन्धसमन्विता ।
नित्या ह्यपरिसङ्ख्याता परम्परगुणाश्रया ।
भूषणं सर्वरत्नानां योन्य कान्तिविलासयो ॥२५६
कोटिशत महाभागा विभज्यात्मानमात्मना ।
भगवन्त महात्मानं प्रतिमोदन्त्यतन्द्रिता ॥२५७

विविध प्रकार वाले जलों से अर्थात् जलाशयों से वह युक्त था जोकि दीप्यमान थे । चन्द्रमा की किरणों के तुल्य प्रकाश वाली पताकाओं से वह पुर समलंकृत होरहा था ॥२५१॥ सुवर्ण के बने हुए घण्टा वहाँ पर थे जिनकी ध्वनियों से सदा ही प्रमुदित जनवर्ग वाला रहता है । शिखरों के वहाँ अधिवास थे जो सन्ध्याकाल के मेघों के समान शोभा वाले और हम पुष्पोदर की प्रभा से संयुक्त परिवार वाले वहाँ वास किया करते थे । जिस तरह मेरु गिरि-राज हो उसी भाँति वह सुवर्ण के शिखरों से युक्त विराजमान है ॥२५२-२५३॥ सुवर्ण की पताकाओं से वह पुर जिस तरह सुशोभित था उसी भाँति यह प्रासाद राज भी भूमिकाओं से विभूषित था । २५४॥ जहाँ पर भगवान् त्र्यम्बक के निवेशन (भवन) में वसन्त की प्रतिमा वाली लक्ष्मी–श्री–वपुर्माया–कीर्ति–शोभा–सरस्वती रूप–लावण्य गन्ध से समन्वित थे सब देवी के सहित वहाँ समवस्थित थी । ये नित्य तथा अपरिसंख्यात (अगणित) थीं जोकि परम्परा से गुणों की आधार थी । ये समस्त प्रकार के रत्नों की भूषण तथा कान्ति और विलास की योनियाँ थीं ॥२५५ २५६॥ ये महान् भाग वाली आत्मा से आत्मा को विभक्त करके सैकड़ों करोड़ थी जोकि अतन्द्रित होकर अर्थात् अति सावधान होती हुई महान् आत्मा भगवान् का अभिमोदित किया करती हैं ॥२५७॥

सागरा मत्स्यसंघाद्या पृथुल परिचारिका ।
हरिण्याक्षिया युक्ता सर्वा कमललोचना ॥२५८
लीलाविलाससंयुक्तं भीमरमिमनोहरं ।
गर्गागता सह मादन्ते शैलाभे पावकोपमं ॥२५९

कुब्जा कामनिकामैश्च वरगात्रा हयानना ।
पुण्ड्राश्च विकटाश्चैव करालाश्चिपिटानना ॥२६०
लम्बोदरा ह्रस्वभुजा विनेत्रा ह्रस्वपादिका ।
मृगेन्द्रवदनाश्चान्या गजवक्त्रोदरास्तथा ॥२६१
गजाननास्तथैवान्या सिंह व्याघ्राननास्तथा ।
लोहिताक्षा महास्तन्य सुभगाश्चारुलोचना ॥२६२
ह्रस्वकुञ्चितकेशाश्च सुन्दर्यश्चारुलोचना ।
अन्याश्च कामरूपिण्यो नानावेषधरा स्त्रियः ॥२६३
अभ्यन्तरपरिस्कन्धा देवावासगृहोचिता ।
रराम भगवांस्तत्र दशबाहुर्महेश्वर ॥२६४

स भी पीछे अन्य सहस्रों ही परिचारिकाऐं थीं जो परम सुन्दर रूप वाली श्री सम्पन्न और सभी कमल के समान लोचनों वाली हैं ॥२५८॥ लीला के विलासों से संयुक्त अत्यन्त मनोहर भावों के द्वारा वे सब शैल के समान आभा वाले तथा अग्नि के तुल्य तेज से युक्त गणों के साथ आनन्द विहार किया करते हैं ॥२२६॥ उन विलासिनियों के विभिन्न रूप थे—कुब्जा हैं और काम निकामों से श्रेष्ठ गात्रों वाली हैं। कोई हय के समान मुख वाली हैं। पुण्ड्रा–विकटा–कराल और चिपिट मुख वाली हैं ॥२६०॥ उनमें कुछ लम्बे उदर वाली–छोटी भुजाओं से युक्त–विनेत्रा ह्रस्व पादों वाली–मृगेन्द्र के समान वदन से युक्त तथा अन्य गज के समान मुख तथा उदर वाली हैं ॥२६१॥ कुछ गज के जैसे आनन वाली तथा अन्य सिंह और व्याघ्र के समान मुख वाली हैं। कुछ ऐसी हैं जिनकी आंखे एकम्म लोहित हैं और कतिपय महान् स्तनों वाली हैं तथा परम सुभगा और सुन्दर नेत्रों वाली हैं ॥२६२॥ कुछ विलासिनी ऐसी थी जिनके केश छोटे और कुञ्चित थे। कतिपय वहाँ पर परम सुन्दरी तथा चारु लोचनों वाली थी। अन्य ऐसी थी जो अपनी इच्छा से ही मनोवाञ्छित रूप धारण कर लिया करती थी। ऐसे वहाँ नाना प्रकार के वेषों को धारण करने वाली स्त्रियाँ थी ॥२६३॥ ये सब अन्दर ही रहने वाली और देव वास गृह के उचित थी। दशबाहुओं वाले भगवान् महेश्वर वहाँ पर इन सबके साथ रमण किया करते थे ॥२६४॥

नन्दिना च गणै- सार्द्धं विश्वरूपेर्महात्मभि ।
तथा रुद्रगणैश्चापि तुल्यौदार्य्यपराक्रमै. ॥२६५
पावकात्मजसङ्काशै यूपदंष्ट्रोत्कटाननै ।
वन्द्यमानो विमानश्च पूज्यमानश्च तत्परै: ॥२६६
सर्वर्तुकुसुमा माला जिघ्रमाणोरसि स्थिताम् ।
नीलोत्पलदलश्याम पृथुताम्रायतेक्षणम् ॥२६७
ईषत्कराललम्बोष्ठ तीक्ष्णदंष्ट्रा गणान्वितम् ।
पद्मूर्द्ध्वनेत्र दुष्प्रेक्ष्य रुचिरश्चीरवाससम् ॥२६८
आहवेष्वपरिक्लिष्ट देवानामरिनाशनम् ।
बाहुना बाहुमाविश्य पार्श्वे सव्येऽन्तरे स्थितम् ॥२६९
रराजापदिशान्तस्य वामाग्रकरगोचरम् ।
महाभैरवनिर्घोष बलेनाप्रतिमौजसम् ।
दशवर्णधनुश्चैव विचित्र शोभतेऽधिकम् ॥२७०
त्रिशूल विद्युताभासममोघ शत्रुनाशनम् ।
जाज्वल्यमान वपुषा परम तस्विपा युतम् ॥२७१

वहाँ पर नन्दी तथा अन्य गणों के साथ भगवान् महेश्वर रमण करते हैं जोकि विश्वरूप वाले तथा महान् आत्मा वाले है । समान औदार्य और पराक्रम से समन्वित रुद्रगण भी वहा है ॥२६५॥ जो पावकात्मज के तुल्य हैं और यूप के समान दंष्ट्रा तथा उत्कट मुखो वाले हैं । ये सब महेश्वर की सेवा मे परायण रहा करते हैं । इनके द्वारा भगवान् सर्वदा वन्द्यमान एव विमान और पूज्यमान रहते हैं ॥२६६॥ समान ऋतुओं के कुसुमो की माला उनके वक्ष स्थल मे धारण है उसकी गन्ध का घ्राण करते हुए हैं । आपका वर्ण नील उत्पल के दल के समान श्याम है और नेत्र अत्यन्त ताम्र वर्ण के समान रक्त हैं ॥२६७॥ थोडे कराल एव लम्बे ओष्ठ वाले-तीक्ष्ण दंष्ट्रा वाले गणो के द्वारा पूजित हैं । ऊर्ध्व नेत्रो वाले—दर्शन करने म असह्य-परम रुचिर और चीर धारण करने वाले हैं ॥२६८॥ युद्धो मे अत्यन्त परिक्लेश से रहित तथा देवो के शत्रुओं का नाश करने वाले हैं । बाहु से बाहु को आविष्ट करके सव्य पार्श्व के अन्तर मे

स्थित हैं ॥२६६॥ वामाग्र करसे गोचर होने वाले अपदेश करते हुए सुशोभित हो रहे हैं। आपका निर्घोष महान् भैरव हैं और वल के द्वारा अप्रतिम (अनुपम) ओज वाले हैं। दमवर्ण धनुष जोकि परम विचित्र है अत्यधिक शोभा दे रहा है। भगवान् महेश्वर का त्रिशूल विद्युत् की आभा के समान एवं अमोघ आयुध जोकि शत्रुओं का एकदम नाश कर देने वाला है। उसकी कान्ति से युक्त वायु से आज्वल्यमान हैं ॥२७०-२७१॥

अग्निश्चौजसा श्रेष्ठ शीतरश्मिः शशी तथा।
तेजसा वपुषा कान्त्या देवेशस्य महात्मनः।
शुशुभेऽभ्यधिकं तत्र वेद्यामग्निशिखा इव ॥२७२
स्थित पुरस्ताद् देवस्य शातकौम्भमयो महान्।
शुशुभे रुचिरः श्रीमान्सोदकः सकमण्डलुः ॥२७३
अतिमावेदय चाङ्गेषु पाण्डुराम्बर धारिणी।
उरश्छदेन महता मौक्तिकेन विराजिता।
चतुर्भुजा महाभागा विजया लोकसम्मता ॥२७४
देव्या आद्य प्रतीहारी श्रीरिवाप्रतिमा परा।
विभ्राजतो स्थिता चैव कृत्वा देवस्य चाञ्जलिम् ॥२७५
तस्याः पृष्ठानुगाश्चान्या स्त्रियोऽप्सरोगुणान्विताः।
ता स्वरूपभिनवं. कान्तैरपतिष्ठन्ति शङ्करम् ॥२७६
सर्वलक्षणसम्पन्ना वादित्रै रुपबृंहिता।
उपगायन्ति देवेशं गणा गन्धर्वयोनयः ॥२७७
अभ्युन्नतो महोरस्कः शारमेयसमद्युतिः।
शोभते नन्दमानश्च गोरनिस्तस्य वेश्मनि ॥२७८

भगवान् महेश्वर ओजस्वियों में परम श्रेष्ठ हैं और अग्नि के आयुध को धारण किये हुए हैं तथा शीत किरणों वाला चन्द्र भी विराजमान है। तेज और वपु तथा कान्ति से महान् आत्मा वाले देवों के स्वामी महेश्वर वहाँ पर वेदी में अग्नि की शिखा के समान अत्यधिक शोभा से युक्त हो रहे थे ॥२७२॥ भगवान् महेश्वर देव के आगे पर सुवर्ण का निर्मित महान् परम सुन्दर तथा जल

से भरा हुआ एक कमण्डलु स्थित है जिसकी एक अत्यद्भुत शोभा हो रही थी ॥२७३॥ अपने हाथों में असि को धारण किये हुए तथा पाण्डुर वर्ण के वस्त्र धारण करने वाली एवं महान् मोतियों के उरश्छद से विराजित–धार भुजाओं वाली महान् भाग वाली लोक सम्मता विजया वहाँ पर विद्यमान है ॥२७४॥ यह देवी की सर्व प्रथम प्रतीहारी है जोकि अनुपम दूसरी श्री के ही तुल्य है। यह देव के आगे अञ्जलि करके अति विभ्राजमान होती हुई संस्थित रहा करती है ॥२७५॥ उसके पृष्ठ भाग में अनुगमन करने वाली अन्य स्त्रियाँ हैं जोकि अप्सराओं के गुण से युक्त हैं। वे सब अभिनव एवं अति कान्त वाद्यादि के द्वारा भगवान् शङ्कर का उपस्थान किया करती हैं ॥२७६॥ समस्त शुभ लक्षणों से सम्पन्न तथा अनेक वादित्रों से उपबृंहित गन्धर्वों की योनियाँ एवं गण भगवान् देवेश का उपगायन किया करते हैं ॥२७७॥ भगवान् गोपति अपने वेश में परमानन्द करते हुए शोभित होते हैं। अत्यन्त उन्नत आपका कलवर है तथा विशाल वक्ष स्थल है और शरत्काल के मेघ के समान आपके शरीर की कान्ति है ॥२७८॥

स्कन्दश्च सपरीवार पुनोऽप्यामितवीर्य्यवान् ।
रक्ताम्बरधर श्रीमान्वराम्बुजदलेक्षण ॥२७९
तस्य शाखा विशाखश्च नैगमेयश्च चाटवान् ।
व्यपेतव्यसनाक्रूरा प्रजाना पालने रता ॥२८०
तै सार्द्धं स महावीर्य्य शोभते शिखिवाहन ।
व्यालक्रीडनकैस्तत्र क्रीडते विश्वतोमुख ॥२८१
ये नृपा विबुधेन्द्राणा काश्चनस्य प्रदायिन ।
ये च स्वायतना विप्रा गृहस्था ब्रह्मवादिन ॥२८२
गूढस्वाध्याय तपसस्तथा चैवोञ्छवृत्तय ।
एते सभासदस्तस्य देवेशस्य च सम्मता ॥२८३
मन्वन्तराण्यनेकानि व्यवर्त्तन्त पुन पुन ।
श्रूयता देवदेवस्य भविष्याश्चर्यमुत्तमम् ॥२८४

व्याघ्राश्चै वानुगास्तत्र काञ्चनाभास्तरस्विन ।
स्वच्छन्दचारिण सर्वे स्वय देवेन निर्म्मिता ॥२८५
मृत्योर्मृ त्युसमास्ते तु यमदर्पापहारिण ।
विभूतिमप्यसख्येया को न खल्वभिधास्यते ॥२८६
अत परमिद भूयो भवेनाद्भुतमुत्तमम् ।
भूतानामनुकपार्थं यत्कृत तन्निबोधत ॥२८७

भगवान् महेश्वर के पुत्र स्कन्द हैं जोकि अमित वीर्य–पराक्रम से युक्त हैं। यह भी परिवार के सहित वहाँ पर विराजमान हैं। स्कन्द रक्त वर्णों से वस्त्र धारण करने वाले हैं। श्री से सम्पन्न और कमल दल के तुल्य नेत्रों वाले हैं ॥२७६॥ उनके परिकर मे शाख–विशाख–नैगमेय–मद्दयान् हैं जोकि व्यसन रहित एव क्रूर हैं तथा प्रजा के पालन करने मे सदारत रहने वाले है ॥२८०॥ इनके साथ वह महान् वीर्य वाले शिखिवाहन स्कन्द शोभित होते हैं। यह विश्व-तोमुख स्कन्द व्यालों (सर्पो) के खिलौनों से वहाँ क्रीडा किया करते हैं ॥२८१॥ काञ्चन के प्रदान करने वाले विबुधेन्द्रों के जो नृप हैं तथा जो गृहस्थ ब्रह्मवादी स्वाध्यन विप्र हैं तथा गूढ स्वाध्याय मे जो रत रहने वाले—तपश्चर्या करने वाले और उग्र वृत्ति वाले लोग हैं वे ही सब उन देवो के देव भगवान् के समासद हैं। भगवान् ऐसे ही सभासदो को पसन्द किया करते हैं ॥२८२-२८३॥ अनेक मन्वन्तर बारम्बार व्यतीत हो जाते हैं। अब देवो के देव महेश्वर का उत्तम भविष्याश्चर्य का आप लोग श्रवण करे ॥२८४॥ यहाँ पर व्याघ्र और काञ्चन क समान आभा वाले तपस्वी (वेग वाले) अनुगामी गण सभी स्वच्छन्द चारण करने वाले हैं और इन सबकी रचना स्वय ही देव के द्वारा हुई है ॥२८५॥ वे मृत्यु को मृत्यु के समान हैं और यमराज के भी दर्प के हरण करने वाले हैं। अगस्य अपरिमित विभूति का देवदेव ने निर्माण किया था उसे कौन कह सकता है ? अर्थात् वह अवर्णनीय है ॥२८६॥ इनके भी आगे भव ने यह एक दूसरी वस्तु बहुत ही अद्भुत एव उत्तम की थी। यह सब भूतों पर अनुकम्पा के ही लिये जो कुछ भी है किया है। उसे भी आप लोग समझ कर जान लेवें ॥२८७॥

मन्दरादिप्रकाशाना वलेनाप्रतिमौजसाम् ।
हारकुन्देन्दुवर्णाना विद्युद्घननिनादिनाम् ॥२८८
चूडामणिधराणा वै मेघसन्निभवाससाम् ।
श्रीवत्साङ्कितवक्षाणामङ्गुलीशूलपाणिनाम् ॥२८९
एव दिशाना देवाना रूपेणोत्तमशालिनाम् ।
तस्य प्रासादमुख्यस्य स्तम्भेषूत्तमशोभिषु ॥२६०
सयताग्निमयीभिस्तु शृङ्खलाभि पृथक्पृथक् ।
मायासहस्र सिंहाना सुख तत्र निवासिनाम् ॥२६१
स्तम्भेऽप्यपासृताप8 त्र्यम्बकस्य निवेशने ।
अथ तत्प्रतिसपूज्य वायोर्वाक्य सुविस्मिता. ।
ऋषय प्रत्यभाषन्त नैमिषेयास्तपस्विनः ॥२६२
भगवन्सर्वभूताना प्राण सर्वत्रग प्रभो ।
के ते सिंहमहाभूता. क्व ते जाता किमात्मका: ॥२६३
सिंहा. केनापराधेन भूजाला प्रवर्ध्दित्युला ।
*तैश्वानरमयैं पाशै सरुद्धास्तु पृथक्पृथक् ॥२६४
तेषा तद्वचन श्रुत्वा वायुर्वाक्य जगाद ह ।
यद्वै सहस्र सिंहानामीश्वरेण महात्मना ।
व्यपनीय स्वकाद्देहात्क्रोधास्ते सिंहविग्रहा ॥२६५

मन्दिर आदि के प्रकाश वाले—बल के द्वारा अमित ओज से युक्त-हार, [illegible] पुष्प और चन्द्रमा के तुल्य वर्ण वाले—विद्युत् के घन निनाद से समन्वित-[illegible]मणि को धारण करने वाले-मेघ के समान वस्त्रों वाले-श्री वत्स से अंकित [illegible]ो से युक्त तथा अगुली युक्त शूल हाथ मे रखने वाले दिशाओं और देवों के [illegible]से उत्तमता युक्तों के मध्यमें उस देव के मुख्य प्रासाद के उत्तम शोभा वाले [illegible]म हैं ॥२८८-२८९-२६०॥ उन स्तम्भों मे सयत अग्निमयी शृङ्खलाओं से [illegible]ह् २ मायद्ध माया से सहस्र सिंह हैं जोकि वहाँ पर सुख पूर्वक निवास करते [illegible]२६१॥ भगवान् त्र्यम्बक के निवेशन म वे स्तम्भ मे भी अपसृता पठ है । [illegible] अनन्तर वायुदेव के इस वाक्य का भली भाँति समादर सस्तुति करके

मुदितमन होते हुए ऋषियों ने जोकि नैमिषारण्य में रहा करते थे और तपश्चर्या करने वाले थे वायुदेव से कहा—॥२६२॥ हे भगवन् ! आप तो सम्पूर्ण प्राणियों के भी प्राण स्वरूप है—सर्वत्र गमन करने वाले हैं तथा प्रभु हैं। यह कृपा कर हमको बताइये कि ये सिंह महाप्रभु कौन हैं और वे कहाँ समुत्पन्न हुए हैं और उनका क्या स्वरूप है ? ॥२६३॥ वे सिंह किस अपराध से भूतों के प्रभविष्णु अर्थात् समुत्पन्न करने वाले समर्थ स्वामी ने अग्निमय पाशों में पृथक् पृथक् उन्हें सरुद्ध कर रक्खा था ? ॥२६४॥ उन तापस ऋषियों के इस वचन का श्रवण कर वायुदेव यह वाक्य बहा था। महान् आत्मा वाले ईश्वर ने अपने देह से व्यतीत (अलग) करके उन्हें जो रक्खा था वे क्रोध हैं और उनका विग्रह सिंह का है अर्थात् वे सिंह के शरीर को धारण करने वाले हैं ॥२६५॥

भूतानामभयं दत्त्वा पुरा वह्नाग्निबन्धने ।
यज्ञभागनिमित्तं च ईश्वरस्याज्ञया तदा ॥२६६
तेषां विधानमुक्तं न सिंहैर्नैवेन लीलया ।
दव्या मन्यु कृत ज्ञात्वा हतो दक्षस्य स क्रतु ॥२६७
निःसृता च महादेव्या महाकाली महेश्वरी ।
आत्मनः कर्मसाक्षिण्या भूतं सार्द्धं तदानुगं ॥२६८
स एष भगवान्क्रोधो रुद्रावासकृतालयः ।
वीरभद्रोऽसमेयात्मा देव्या मन्युप्रमार्जनः ॥२६६
तस्य वेश्म सुरेन्द्रस्य सर्वगुह्यतमस्य वै ।
गणेशवेशस्त्वनौपम्यो मया व परिकीर्तितः ॥३००
अतः परं प्रवक्ष्यामि ये तत्र प्रतिवासिनः ।
रम्ये पुरवरश्रेष्ठे तस्मिन्वैहायसभूमिषु ॥३०१
नानारत्नविचित्रेषु धनावादृतेषु च ।
सर्वकामसमृद्धेषु वनोपवनशोभिषु ॥३०२
राजतेषु महान्तेषु शातकौम्भमयेषु च ।
सन्ध्याभ्रप्रतिमानेषु कैलासप्रतिमेषु च ॥३०३

चक्रुशुर्श्च पय श्रुत्वा नैमिषेयास्तपस्विन ।
आपन्नसंशयाश्चेम वाक्यमूचु समीरणम् ॥३०६

शब्दादि इष्ट भोगो क द्वारा जो भगवान् भव के अनुसरण करने वाले हैं वे सुन्दर व्रत वाले उन प्रसादो मे परम श्रेष्ठो मे ग्रानन्द विहार किया करते है ॥३०४॥ वहाँ पर अविरत रूप से ब्रह्मघोष अर्थात् वेदध्वनि हुआ करती है और निरन्तर विविध प्रकार की परम शुभ कथायें होती रहा करती हैं। सर्वदा गीत तथा वादित्रो के वहाँ पर घोष हुआ करते हैं और चारो ओर बहुत से सत्स्वन सुनाई देते हैं ॥३०५॥ ये सब सहस्र रहते हैं तथा अतुल होते हैं और नाना आश्रमो मे किय जाया करते हैं। उन प्रासादो के ऊपर के भाग म इसी प्रकार के अनेक आनन्द प्रद प्रमोदोत्सव होते रहा करते हैं ॥३०६॥ यह प्रासाद सहस्र पाद है और सुवर्ण के सदृश परम शुभ एव सुन्दर है। अनुपम जो श्रेष्ठ तम रत्न हैं उनसे यह सभी ओर से परिभूषित है ॥३०७॥ इस प्रासाद म स्फटिक मणियाँ जटित हैं जोकि चन्द्रमा के तुल्य देदीप्यमान एव मनोरम हैं। वैदूर्य मणियो के समान प्रभा वाली मणियो से यह सुभूषित है। अग्नि के तुल्य प्रभा से परिपूर्ण सुवर्ण से तथा बालसूर्य की प्रभा स पूर्ण मणियो के द्वारा यह समलङ्कृत है ॥३०८॥ नैमिषारण्य निवासी तपश्चर्या करने वाल समस्त ऋषिगण इसका श्रवण करके बहुत ही हैरान होगये थे। उनके हृदय मे बडा भारी संशय समुत्पन्न होगया था। उन्होने उन वायुदेव से यह वचन कहा था ॥३०९॥

के तु तत्र महात्मानो ये भवस्यानुसारिण ।
अनुग्राह्यतमा सम्यक् प्रमोदन्ते पुरोत्तमे ।
ऋषीणा वचन श्रुत्वा वायुर्वाक्यमथाब्रवीत् ॥३१०
श्रूयता देवदेवस्य भक्तिर्यैरनुकल्पिता ।
ह्रीमन्त. सूर्जिता दान्ताः धैर्ययुक्ता ह्यलोलुपा ॥३११
मध्याहाराश्च मात्राश्च ह्यात्मारामा जितेन्द्रिया ।
जितद्वन्द्वा महोत्साहाः सौम्या विगतमत्सरा ॥३१२
भावस्था सर्वभूतानामव्यापारा अनाकुला ।

कर्मणा मनसा वाचा विशुद्धेनान्तरात्मना ।
अनन्यमनसो भूत्वा प्रपन्ना ये महेश्वरम् ॥३१३
तैर्लब्धं रुद्रसालोक्यं शाश्वतं पदमव्ययम् ।
भवस्य रूपसादृश्यं नीताश्चैव ह्यनुत्तमम् ॥३१४

ऋषियों ने कहा—हे भगवन् ! कृपा करके हमें यह बताइये कि वहाँ पर वे कौन से महात्मा लोग थे जो भगवान् भव के अनुसरण करने वाले थे । जोकि परम अनुग्राह्य थे अर्थात् भव के अनुग्रह के पात्र हुए थे और अति श्रेष्ठ पुर में आनन्द-विनोद किया करते हैं । ऋषिगण के इस वचन का श्रवण करके वायुदेव ने यह वाक्य कहा था ॥३१०॥ वायुदेव ने कहा—हे ऋषिगण ! अब आप मुझसे सुनिये, देवों के देव की जिन्होंने भक्ति अनुकल्पित की थी । वे लज्जायुक्त थे—पूजित—दमनशील—शूरवीरता से समन्वित और अलोलुप थे ॥३११॥ ये लोग मध्य आहार करने वाले—आत्मारमण—आत्मा में ही रमण करने वाले और इन्द्रियों को जीतने वाले थे । शीतोष्णादि द्वन्द्वों पर विजय प्राप्त करने वाले—महान् उत्साह से पूर्ण—परम सौम्य स्वरूप वाले तथा मात्सर्य से बिल्कुल रहित रहने वाले थे । ॥३१२॥ समस्त भूतों के भावनाओं में स्थित रहने वाले थे । ये व्यापार से शून्य तथा आकुलता से रहित थे । कर्म के द्वारा—मन से और वचन के द्वारा तथा वचन से विशुद्ध अन्तरात्मा के द्वारा अनन्य मन वाले होकर भगवान् महेश्वर की शरणागति में प्राप्त होने वाले थे ॥३१३॥ उन्होंने भगवान् रुद्र का सालोक्य प्राप्त किया है जोकि शाश्वत अनन्य पद है और वे सब सर्वोत्तम भगवान् भव के रूप की सदृशता को भी प्राप्त हुए हैं अर्थात् उन सब का स्वरूप शिव के ही सदृश होगया है ॥३१४॥

वैश्वानरमुखाः सर्वे विश्वरूपाः कपर्दिनः ।
नीलकण्ठाः सितग्रीवास्तीक्ष्णदंष्ट्रास्त्रिलोचनाः ॥३१५
अर्द्धचन्द्रकृतोष्णीषा जटामुकुटधारिणः ।
सर्वे दशभुजा वीराः पद्मान्तरसुगन्धिनः ॥३१६
तरुणादित्यसङ्काशाः सर्वे ते पीतवाससः ।
पिनाकपाणयः सर्वे श्वेतगोवृषवाहनाः ॥३१७

श्रियान्विताः कुण्डलिनो मुक्ताहारविभूषिताः ।
तेजसोऽभ्यधिका देवैः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः ॥३१८
विभज्य बहुधात्मानं जरामृत्युविवर्जिताः ।
क्रीडन्ते विविधैर्भावैर्भोगान् प्राप्य सुदुर्लभान् ॥३१९

सब के सब वे वैश्वानर के मुख वाले है और विश्वरूप—कपर्दी—नील-कण्ठ वाले—श्वेत ग्रीवा से युक्त—तीक्ष्ण दाढ़ों वाले तथा तीन नेत्रों वाले हैं ॥३१५॥ सभी वे मस्तक पर आधे चन्द्रमा से उष्णीष बना हुआ है और जटा तथा मस्तक पर मुकुट शिव के ही समान धारण करने वाले हैं ; सभी के दश भुजायें हैं—सब महान् वीर हैं और पद्मान्त की सुगन्ध वाले हैं ॥३१६॥ ये सब भगवान् भव के सालोक्य को प्राप्त होने वाले भक्त तरुण सूर्य के समान तेज से युक्त हैं और सबने पीतवर्ण के वस्त्र धारण कर रक्खे हैं। उन सब के हाथों में भगवान् भव की ही भाँति पिनाक धनुष लगा हुआ है। सबके वाहन भी गोवृष होते हैं ॥३१७॥ सब श्री से समन्वित होते हैं और सभी के कानों में कुण्डल धारण कर रक्खे हैं। उन सब भक्तों ने मोतियों के हार धारण कर अपने आप को विभूषित बना रक्खा है। वे सब देवों से भी अधिक तेज वाले हैं। समस्त भक्त जो वहाँ निवास करते हैं सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी होते हैं। अर्थात् सभी कुछ भूत—भविष्य वर्त्तमान के जानने वाले और सब कुछ को प्रत्यक्ष की भाँति देखने वाले हैं ॥३१८॥ वे सब अपनी आत्मा को अनेक प्रकार से विभक्त करके सन्स्थित रहा करते हैं और वृद्धता तथा मृत्यु से रहित होते हैं। ये विविध प्रकार के भावों के द्वारा क्रीड़ा किया करते हैं और परम सुदुर्लभ भोगों को प्राप्त करके उनका आस्वादन करते हैं ॥३१९॥

स्वच्छन्दगतयः सिद्धा सिद्धैश्चान्यैर्विबोधिताः ।
एकादशानां रुद्राणां कोट्योऽत्रैव महात्मनाम् ॥३२०
एभिः सह महात्मा हि देवदेवो महेश्वरः ।
भक्तानुकम्पी भगवान्मोदते पार्वतीप्रियः ॥३२१
नाहन्तैषान्तु रुद्राणां सख्यस्य च महात्मनः ।
नानात्वमनुपश्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि च ॥३२२

मातरिश्वाऽब्रवीत्पुण्यामित्येतामीश्वरोऽप्युत ।
अथ ते ऋषय सर्वे दिवाकरसमप्रभा ।
श्रुत्वेमा परमा पुण्या कथा नैयम्बवी तत ॥३२३
मृशश्चानुग्रह प्राप्य हर्षं चैवाप्यनुत्तमम् ।
सम्भावयित्वा चाप्येना वायुमूचुर्महावलम् ॥३२४
समीरण महाभाग ह्यस्माक च त्वया विभो ।
ईश्वरस्योत्तम पुण्यमष्टमन्त्वौपसर्गिकम् ॥३२५
तस्य स्थान प्रमाणञ्च यथावत्परिकीर्तितम् ।
यो गन्धेन समृद्ध वै परम परमात्मन ॥३२६
महादेवस्य माहात्म्य दुर्विज्ञेय सुरैरपि ।
स्वेन माहात्म्ययोगेन सहस्रस्यामितौजस ॥३२७

स्वच्छन्द गति वाले सिद्ध और अन्य सिद्धों के द्वारा विशेष रूप से वोधित किये हुए हैं। अनेक महात्माओ एकादश रुद्रों की कोटियाँ हैं ॥३२०॥ इनके साथ महात्मा देवों के देव महेश्वर जो भक्तों पर दया करने वाले पार्वती के प्यारे भगवान् प्रसन्न होते हैं। ६११॥ मैं तो उन रुद्रों का महात्मा मन का नानात्व देखता हूँ यह मैं आपसे विल्कुल सत्य कहता हूँ ॥३२२॥ मातरिश्वा अर्थात् वायुदेव ने इस पुण्य कथा को कहा था और ईश्वर ने कहा था। इसके अनन्तर दिवाकर के समान प्रभा वाले वे ऋषिगण अब इस परम पुण्य कथा को जो कि नैयाम्बिकी है, सुनकर और बहुत ही अनुग्रह प्राप्त करके तथा अनुपम हर्ष प्राप्त करके और इसका बहुत आदर करके महान् बलवान् वायु से वोले ॥३२३ ३२४॥ ऋषियों ने कहा—हे समीरण ! हे महाभाग ! हे विभो ! आपने हमको ईश्वर का उत्तम अष्टम औपसर्गिक उसके स्थान को और प्रमाण को यथावत् बतलाया है। जो परमात्मा के गन्ध से परम समृद्ध है ॥३२५-३२६॥ महादेव का माहात्म्य देवों के द्वारा भी दुर्विज्ञेय है अर्थात् अमित ओज वाले सहस्र का अपने माहात्म्य के योग से सुरों के द्वारा भी कठिनता से जानने के योग्य है ॥३२७॥

यस्य भक्तेष्वसमोहा ह्यनुकम्पार्थमेव च ।
ब्राह्मलक्ष्म्या स्वयं जुष्टा या साप्रतिमशालिनी ॥३२८
ज्योत्स्नया व्याप्य खं चन्द्रं विन्यस्ता विश्वरूपधृक् ।
विभूतिर्भ्राजतेऽत्यर्थं देवदेवस्य वेश्मनि ॥३२९
महादेवस्य तुल्यानां रुद्राणान्तु महात्मनाम् ।
तत्सर्वं निखिलेनेद वक्त्रादमृतनिस्रवम् ॥३३०
अपीत्वा खलु सर्वस्य भवत्यास्माभिस्तु सुव्रता ।
नास्ति किञ्चिदविज्ञेयमस्यच्चैवानुगामिन ।
प्रश्नं देववर प्राण यथावद्वक्तुमर्हसि ॥३३१
स तमुवाच भगवान्किं भूयो वर्त्तयाम्यहम् ।
किं मया चैव वक्तव्यं तद्वदिष्यामि सुव्रता ॥३३२
आदित्याः पारिपार्श्वेया सिंहा वै क्रोधविक्रमाः ।
वैश्वानरा भूतगणा व्याघ्राश्चैवानुगामिन ॥३३३
आभूतसम्प्लवे घोरे सर्वप्राण भृता क्षये ।
किमवस्था भवन्त्येते तन्नो ब्रूहि यथार्थवत् ॥३३४

अनुकम्पा के लिए ही जिनके भक्तों में असमोह का अभाव होता है। जो ब्राह्मलक्ष्मी के द्वारा स्वयं सेवित है वह अप्रतिमशालिनी होती है ॥३२८॥ ज्योत्स्ना से आकाश को व्याप्त करके चन्द्र में विन्यस्त विश्व के रूप को धारण करने वाली विभूति देवों के देव के घर में बहुत ही अधिक भ्राजमान है ॥३२९॥ महात्मा रुद्रों के तुल्य महादेव का वह सब निखिल के द्वारा वक्त्र से अमृत का निस्रव है ॥३३०॥ हम भक्ति से सब का पान न करके सुन्दर व्रत वाले हैं। अनुगमन करने वाले का अन्य कुछ भी न जानने के योग्य नहीं है। हे देववर! हे प्राणु! इस प्रश्न को यथावत् आप बोलने के योग्य हैं ॥३३१॥ श्री सूतजी ने कहा—वह भगवान् बोले कि अब आगे फिर मैं क्या व्यवहार करूँ? और मुझे क्या कहना चाहिए। हे सुव्रत वालो! यह कहूँगा ॥३३२॥ ऋषियों ने कहा—आदित्य-पारिपार्श्वेय- सिंह जो क्रोध विक्रम हैं वैश्वानर-भूतगण और अनुगामी व्याघ्र घोर आभूत सम्प्लव में समस्त प्राणधारियों के

भय हो जाने पर ये गूण किस अवस्था वाले होते हैं इसे आप यथार्थवत् हमको बोलें ॥३३३-३३४॥

एते ये वै त्वया प्रोक्ता सिद्व्याघ्रगणैः सह ।
ये चान्ये सिद्धिसम्प्राप्ता मातरिश्वा जगाद ह ॥३३५
इदञ्च परमं तत्त्वं समाख्यास्यामि शृण्वताम् ।
विज्ञानेश्वरसद्भावमव्यक्तं प्रभवं तथा ॥३३६
तत्र पूर्वगतास्तेषु कुमारा ब्रह्मणः सुताः ।
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥३३७
वोढुश्च कपिलस्तेषामासुरिश्च महायशाः ।
मुनिः पञ्चशिखश्चैव ये चान्येऽप्येवमादयः ॥३३८
ततः काले व्यतिक्रान्ते कल्पानां पर्यये गते ।
महाभूतविनाशान्ते प्रलये प्रत्युपस्थिते ॥३३९
अनेककल्पकोट्यन्तु या प्रसन्ना महेश्वरी ।
शब्दादीन्विषयान्भोगान्सत्यस्याष्टविधस्य यात् (?) ॥३४०
प्रविश्य सर्वभूतानि ज्ञानयुक्तेन तेजसा ।
वोढारपदमव्यग्रं भूतानामनुकम्पया ॥३४१
तत्र यान्ति महात्मानं परमाणुं महेश्वरम् ।
तरन्ति सुमहावर्त्तां जन्ममृत्यूदवां नदीम् ॥३४२
ततः पश्यन्ति सर्वाणि परं ब्रह्माणमेव च ।
देव्या ते सहिता सर्व या देव्यः परिकीर्त्तिताः ॥३४३
यत्तत्महत्स्त्र सिद्धानामादित्यानां तथैव च ।
वैश्वानरभूतभव्यव्याघ्राश्चैवानुगामिनः ॥३४४

ये सब आपने सिंह व्याघ्र गणों के साथ बताये हैं और जो अन्य सिद्धि को सम्प्राप्त होने वाले हैं वायुदेव ने जिनको कहा था। इस परम तत्त्व को कहूँगा, आप सुनिये। विज्ञान ईश्वर सद्भाव और अव्यक्त प्रभाव को भी कहूँगा ॥३३५-३३६॥ वहाँ पर उनमें ब्रह्मा के पुत्र कुमार पूर्वगत हैं जो सनक-सनन्द और तृतीय सनातन हैं ॥३३७॥ उनमें वोढु-कपिल और महान् यश

वाला आसुरि और पञ्चशिख मुनि और जो अन्य इसी प्रकार के हैं ।।३३८।। इसके पश्चात् काल के व्यतिक्रान्त होने पर तथा कल्पों के पर्य्यय के गत होने पर महाभूतों के विनाश हो जाने पर तथा प्रलय के प्रत्युपस्थित होने पर अनेक स्द्रों की कोटियाँ और प्रमन्न महेश्वरी शब्दादि विषयों को तथा भोगों को सत्य के अष्टविश्रमय से ज्ञान से युक्त तज के द्वारा समस्त भूतों में प्रवेश करके प्राणियों पर अनुकम्पा करने से अव्यग्र वैहायस पद को प्राप्त होते हैं ।।३३६-३४०।। वहाँ पर महान् आत्मा वान परमाणु महेश्वर में चले जाते हैं और महान् आवर्तों वाली तथा जन्म और मौत के जल वाली नदी को पार किया करते हैं ।।३४१।। इसके अनन्तर वहाँ महादेव को तथा परब्रह्म का दर्शन किया करते हैं। देवी के साथ साल को देखते हैं जो देवियाँ कीर्त्तित की गई हैं। जो वह लिङ्गो तथा आदित्यों का सहस्र हैं तथा अनुगमन करने वाले वैश्वानर-भूत भव्य व्याघ्र हैं उनको भी देखते हैं ।।३४२-३४३-३४४।।

प्रकरण ६४—प्रलयादि पुनः सृष्टि वर्णन

प्रत्याहारं प्रवक्ष्यामि परस्यान्ते स्वयम्भुवः ।
ब्रह्मण स्थितिकाले तु क्षीणे तस्मिंस्तदा प्रभो ।।१
यथेदं कुरुतेऽध्यात्मं सुसूक्ष्मं विश्वमीश्वरः ।
अव्यक्तान्ग्रसते व्यक्तं प्रत्याहारे च कृत्स्नश ।।२
परं तदनुकल्पानामपूर्णे कल्पसङ्क्षये ।
उपस्थिते महाघोरे ह्यप्रत्यक्षे तु कस्यचित् ।।३
अन्ते द्रुमस्य सम्प्राप्ते पश्चिमस्य मनोस्तदा ।
अन्ते कलियुगे तस्मिन्क्षीणे संहार उच्यते ।।४
सम्प्रक्षाले तदा वृत्ते प्रत्याहारे ह्युपस्थिते ।
प्रत्याहारे तदा तस्मिन् भूततन्मात्रसंक्षये ।।५

महदादेर्विकारस्य विशेषान्तस्य सक्षये ।
स्वभावकारिते तस्मिन्प्रवृत्ते प्रतिसञ्चरे ॥६
आपो ग्रसन्ति वै पूर्वं भूमेर्गन्धात्मकं गुणम् ।
आत्तगन्धा ततो भूमि. प्रलयत्वाय कल्पते ।
प्रविष्टे गन्धतन्मात्रे तोयावस्था धरा भवेत् ॥७
आपस्तदा प्रनष्टा वै वेगवत्यो महास्वना ।
सर्वमापूरयित्वेद तिष्ठन्ति विचरन्ति च ॥८

श्री सूतजी ने कहा—अब मैं पर स्वयम्भू के अन्त में जो प्रत्याहार होता है उसको बतलाऊँगा । उस स्थिति काल के क्षीण हो जाने पर जो उस समय में प्रभु ब्रह्मा का हुआ करता है ॥१॥ जिस प्रकार से ईश्वर इस अध्यात्म–सुसूक्ष्म विश्व को रचा करता है वही प्रभु प्रत्याहार के समय में यह व्यक्त पूर्ण रूप में अव्यक्त को ग्रस लिया करता है ॥२॥ किन्तु उसके मनुन्तरों का सम्पूर्ण सक्षय होने पर किसी के अप्रत्यक्ष महाघोर के उपस्थित होने पर अन्त में उस समय मनु के पश्चिम द्रुम के सम्प्राप्त होने पर अन्त में उस कलियुग के क्षीण हो जाने के समय में सहार कहा गया है ॥३-४॥ उस समय में सम्प्रक्षाल के होने पर प्रत्याहार के उपस्थित हो जाने पर उस समय में उस भूततन्मात्राओं के सक्षय वाले प्रत्याहार में महद् आदि विकार के विशेषान्त के सक्षय होने पर और स्वभाव कारित उस प्रतिसञ्चार के प्रवृत्त होने पर सर्व प्रथम जल भूमि के गन्ध स्वरूप वाले गुण को ग्रसता है। फिर वह आत्त गन्धवाली भूमि प्रलय होने के लिए कल्पित होती है। गन्ध तन्मात्रा के प्रविष्ट हो जाने पर यह भूमि जल की अवस्था में हो जाया करती है। ॥५-६-७॥ उस समय में प्रनष्ट जल वेग वाला और महान् शब्द वाला इस सबको आपूरित कर स्थित रहता है और विचरण किया करता है ॥८॥

अपामस्ति गुणोयस्तु ज्योतिषे लीयते रस ।
नश्यन्त्यापस्तदान्ते च रसतन्मात्रसङ्क्षयात् ॥६
तेजसा सहृतरसा ज्योतिष्ट्वं प्राप्नुवन्त्युत ।
ग्रस्ते च सलिले तेज सर्वतोमुखमीक्षयते ॥१०

अथाग्निः सर्वतो व्याप्त आदत्ते तज्जलन्तदा ।
सर्वमापूर्य्यतेऽर्चिभिस्तदा जगदिदं शनैः ॥११
अर्चिभिः सन्तते तस्मिंस्तिर्यगूर्ध्वमधस्तत ।
ज्योतिषोऽपि गुण रूप वायुरत्ति प्रकाशकम् ।
प्रलीयते तदा तस्मिन्दीपार्चिरिव मारुते ॥१२
प्रनष्टे रूपतन्मात्रे हृतरूपो विभावसु ।
उपशाम्यति तेजो हि वायुना धूयते महत् ॥१३
निरालोके तदा लोके वायुभूते च तेजसि ।
ततस्तु मूलमासाद्य वायु सम्भवमात्मन ॥१४
ऊर्ध्वं चाधश्च तिर्यक्च दोधवीति दिशो दश ।
वायोरपि गुण स्पर्शमाकाश ग्रसते च तत् ॥१५
प्रशाम्यति तदा वायु खन्तु तिष्ठत्यनावृतम् ।
अरूपमरसस्पर्शमगन्धं न च मूर्तिमत् ॥१६

जलों के अन्दर जो गुण होता है वह रस तेज में लीन हो जाया करता है। सब अन्त में रस तन्मात्रा के संक्षय होने से जल नष्ट हो जाया करते हैं ॥६॥ तेज के द्वारा सहरण वाले जल तेज के स्वरूप को ही प्राप्त कर लिया करते हैं। सलिल के ग्रस्त हो जाने पर सभी ओर तेज ही दिखलाई दिया करता है ॥१०॥ इसके पश्चात् सभी ओर व्याप्त तेज स्वरूप अग्नि उस जल को उस समय ग्रहण कर लेता है। धीरे धीरे यह समस्त जगत् सब अर्चियों से पूरित हो जाता है ॥११॥ तब ऊपर-नीचे और इधर-उधर अर्चियाँ फैल जाने पर ज्योति का जो प्रकाश रूपी गुण है उसे वायु खा जाता है और वह प्रलीन हो जाता है जैसे वायु के झोके में दिये की लौ नष्ट हो जाया करती है ॥१२॥ रूप तन्मात्रा के प्रनष्ट हो जाने के बाद विभा वसु नष्ट रूप वाला हो जाया करता है। तेज वायु के द्वारा उपशान्त होता है तथा वायु खूब बढ़ा करती है ॥१३॥ तेज के वायु स्वरूप हो जाने पर यह समस्त लोक प्रकाशहीन निरालोक हो जाया करता है। इसके पश्चात् यह वायु भी अपने उत्पत्ति स्थान मूल को प्राप्त होकर ऊपर नीचे और तिरछा दस दिशाओं

को कम्पित किया करता है। उस वायु का जो स्पर्श गुण है उसे आकाश ग्रस लिया करता है ॥१४-१५॥ तब यह प्रशमित हो जाता है और अनावृत आकाश मे रहा करता है। रूप-रस स्पर्श और गन्ध तथा मूर्त्ति से रहित होता है ॥१६॥

सर्वमापूरयन्नादैः सुमहत्तत्प्रकाशते ।
परिमण्डलन्तत्सुषिरमाकाशं शब्दलक्षणम् ॥१७
शब्दमात्रं तदाकाशं सर्वमावृत्य तिष्ठति ।
तन्तु शब्दगुणन्तस्य भूतादि ग्रसते पुनः ॥१८
भूतेन्द्रियेषु युगपद् भूतादौ संस्थितेषु वै ।
अभिमानात्मको ह्येष भूतादिस्तामसः स्मृतः ॥१९
भूतादिं ग्रसते चापि महान्वै बुद्धिलक्षण ।
महानात्मा तु विज्ञेय सङ्कल्पो व्यवसायकः ॥२०
बुद्धिर्मनश्च लिङ्गश्च महानक्षर एव च ।
पर्यायवाचकैः शब्दैस्तमाहुस्तत्त्वचिन्तका ॥२१
सम्प्रलीनेषु भूतेषु गुणसाम्ये तमोमये ।
स्वात्मन्येव स्थितं चैव कारणं लोककारणे ॥२२
विनिवृत्ते तदा सर्गे प्रकृत्यावस्थितेन वै ।
तदाद्यन्तपरोक्षत्वाददृष्टत्वाच्च कस्यचित् ॥२३
अनाख्यानादबोधत्वादज्ञानाज्ज्ञानिनामपि ।
आगतागतिकत्वाच्च ग्रहणं तस्य विद्यते ॥२४
भावग्राह्यानुमानाच्च चिन्तयित्वेदमुच्यते ।
स्थिते तु कारणे तस्मिन्नित्ये सदसदात्मके ॥२५
अनिर्देश्या प्रकृतिर्वै स्वात्मिका कारणे न तु ।
एवं समादयोऽप्यस्तात्कमात्प्रकृतयस्तु वै ॥२६

सबको नादों के द्वारा आपूरित कर वह सुमहत् प्रकाशित होता है। परिमण्डल सुषिर आकाश का शब्द गुण ही लक्षण अर्थात् स्वरूप होता है ॥१७॥ उस समय शब्द मात्र वह आकाश सबको आवृत करके स्थित रहा करता है।

उसके उस शब्द गुण को भूतादि ग्रस लेते हैं ॥१८॥ भूतेन्द्रियों के एक साथ भूतादि में संस्थित होने पर अभिमानात्मक यह भूतादि तामस कहा गया है ॥१६॥ और बुद्धि लक्षण वाला महान् भूतादि को भी ग्रस लेता है। महान् स्वरूप वाला व्यावसायक सद्रूप जानना चाहिए ॥२०॥ तत्व के चिन्तक लोग बुद्धि–मन–लिङ्ग–महान् और अक्षर इन पर्याय वाचक शब्दों मे उसको कहते है ॥२१॥ तमोमय गुणों के साम्य मे भूतों के सम्प्रलीन होने पर और लोकों के कारण को अपनी आत्मा में ही स्थित होने पर उस समय में सर्ग के विषय रूप मे निवृत्त हो जाने पर प्रकृति से अवस्थित होने से किसी के आद्यन्त परोक्ष होने के कारण से–और अदृष्ट होने से—अनाख्यात होने से–अबोध होन से तथा ज्ञानियों को भी अज्ञान से एव असामान्तिक होने से वह ग्रहण नहीं होता है ॥२२ २३ २४॥ और भाव ग्राह्य अनुमान से यह सोचकर कहा जाता है। उस नित्य सद् और प्रसन् स्वरूप वाले कारण के स्थित होने पर कारण में निश्चय ही स्वाभिक प्रवृत्ति अनिर्देश्य होती है। इस प्रकार से अन्यस्त क्रम से सप्तादि प्रकृतियाँ होती हैं ॥२५ २६॥

प्रत्याहारे तदा सर्गे प्रविशयन्ति परस्परम् ।
येनेदमावृत सर्वं मण्डलन्तु प्रलीयते ॥२७
सप्तद्वीपसमुद्रान्त सप्तलोक सपर्वतम् ।
उदकावरण यत्र ज्योतिषा लीयते तु तत् ॥२८
यत्तैजस चावरणमावाश ग्रसते तु तत् ।
यद्वायव्य चावरणमाकाश ग्रसते तु तत् ॥२९
आकाशावरण यत्र भूतादिर्ग्रसते तु तत् ।
भूतादि ग्रसते चापि महान्वै बुद्धि लक्षण ॥३०
महान्त ग्रसतेऽव्यक्त गुणसाम्य तत परम् ।
एतौ सहारविस्तारौ ब्रह्माव्यक्तौ तत पुन. ॥३१
सृजते ग्रसते चैव विकारान्सर्गसयमे ।
सहारकार्यकारणा ससिद्धा ज्ञानिनस्तु ये ॥३२

यस्मात्प्रतिशरीर हि सुखदुःखोपपत्तिना ।
तस्मात्पुरुषनानात्वं विज्ञेयं तु विजानता ॥३८
यदा प्रवर्त्तते चैषां भेदानां चैव संयमा ।
स्वभावकारिताः सर्वे कालेन महता तदा ॥३९
निवर्त्तते तदा तस्य स्थितिरागः स्वयम्भुवः ।
सहसा योज्यकैः सर्वैर्ब्रह्मलोक निवासिभिः ॥४०
विनिवृत्ते तदा रागे स्थितावात्मनिवासिनाम् ।
तत्कालवासिना तेषां तदा तद्दोषदर्शिनाम् ॥४१
उत्पद्यतेऽथ वैराग्यमात्मप्रसाद प्रशमात्मकम् ।
भोग्यमोक्तृत्वनानात्वे तेषां तद्भूतदर्शिनाम् ॥४२
पृथग्ज्ञानेन क्षेत्रज्ञास्ततस्ते ब्रह्मलोकिनः ।
प्रवृत्ती कारणं नीताः सर्वे नानाप्रदर्शिनः ॥४३
स्वात्मन्येवावतिष्ठन्ते प्रशान्ता दर्शनात्मकाः ।
शुद्धा निरञ्जनाः सर्वे चेतनाचेतनास्तथा ॥४४
तत्रैव परिनिर्वाणा स्मृता नागामिनस्तु ते ।
निर्गुणत्वान्निरात्मानः प्रवृत्त्यन्ते व्यतिक्रमात् ॥४५

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ इन दोनों का विषयाविषयत्व कहा गया है। ब्रह्म विषय को जानना चाहिए और क्षेत्र अविषय कहा जाता है ॥३६॥ क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के लिए ही होता है। शरीरों के बहुत अधिक होने के कारण से यह शरीरी भी बहुत प्रकार का कहा जाता है ॥३७॥ और प्रभूत शङ्कर में ही ज्योतिर्वत् अवस्थित होता है। इससे प्रत्येक शरीर सुख और दुःख को उपलब्ध करने वाला होता है। इस कारण से विज्ञान रखने वाले को पुरुषों का नाना होना जानना चाहिए ॥३८॥ जिस समय में इन भेदों के संयम प्रवृत्त होते हैं उस समय में महान् काल से सब स्वभावकारी होते हैं ॥३९॥ तब उस स्वयम्भू का स्थिति राग निवृत्त हो जाता है और समस्त ब्रह्मलोक के निवासी योज्यकों के साथ सहसा ही निवृत्ति होती है ॥४०॥ उस काल में वास करने वाले आत्म निवासी और उनके दोषों को देखने वाले उनका उस

समय मे स्थिति मे राग के विनिवृत्त हो जाने पर आत्मवाद का प्रकाश करने वाला भोक्ता और भोज्य के अनेक प्रकार होने मे तद्रूव को देखने वाले उनका वैराग्य उत्पन्न हो जाता है ॥४१-४२॥ पृथक् ज्ञान से इसके पश्चात् नाना प्रदर्शी वे समस्त ब्रह्म लौकिक प्रकृति मे करण नीत हुए ॥४३॥ परम प्रशान्त शुद्ध दर्शनात्मक-निरञ्जन तथा चेतन और अचेतन स्वरूप वाले अपनी आत्मा मे ही अवस्थित होते हैं ॥४४॥ यहाँ पर ही परिनिर्वाण निर्गुण होने से निरात्मा और प्रकृति के अन्त मे व्यक्ति क्रम से वे आगामी नहीं कहे गये हैं ॥४५॥

इत्येष प्राकृत प्रोक्त प्रतिसर्ग स्वयम्भुव ।
भिद्यन्ते सर्वभूताना करणानि प्रसयमे ॥४६
इत्येष सयमश्चै व तत्त्वाना करणै सह ।
तत्त्वप्रसयमो ह्येष स्मृता ह्यवर्त्तको द्विजा ॥४७
धर्माधर्मौ तपो ज्ञान शुभे सत्यानृते तथा ।
ऊर्ध्वं भावो ह्यधोभावो सुखदु खे प्रियाप्रिये ॥४८
सर्वमेतत्प्रधानस्य गुणमात्रात्मक स्मृतम् ।
निरिन्द्रियाणा च तदा ज्ञानिना यच्छुभाशुभम् ॥४९
प्रकृत्या चैव तत्सर्व पुण्य पाप प्रतिष्ठित ।
योऽन्ययस्या स्वभावे च देहिना तु निविश्यते ॥५०
जन्तूना पापपुण्यन्तु प्रकृतौ यत्प्रतिष्ठितम् ।
अव्यक्तस्थानि तान्येव पुण्यपापानि जन्तव ।
ये जयन्ति पुनर्देहे देहान्यत्वे तथैव च ॥५१
धर्माधर्मौ तु जन्तूना गुणमात्रात्मकावुभौ ।
करणै स्तै प्रवोधेन कार्यतेनेह जन्तुभि ॥५२
गुणैनना प्रलीयन्ते क्षेत्रज्ञाधिष्ठिता गुणा ।
सर्गे च प्रतिसर्गे च ससारे चैव जन्तवः ।
सयुज्यन्ते वियुज्यन्ते करणै सञ्चरन्ति च ॥५३

राजसी तामसी चैव सात्त्विकी चैव वृत्तय. ।
गुणमात्रा प्रवर्त्तन्ते पुरुषाधिष्ठितास्त्रिधा ॥५४
ऊर्द्ध्वं देवात्मकं सत्त्वमधोभागात्मकं तम· ।
तयो. प्रवर्त्तकं मध्ये इहैवावर्त्तकं रजः ॥५५

इस प्रकार से यह स्वयम्भू का प्राकृत प्रतिसर्ग कह दिया गया है। समस्त प्राणियों के प्रसयम में करण विद्यमान होते हैं ॥४६॥ हे द्विजवृन्द ! यह ही तत्त्वों का करणों के साथ सयम है। और आवर्तक तत्त्व प्रसयन यही कहा गया है ॥४७॥ श्री सूतजी ने कहा—धर्म, अधर्म, सत्-ज्ञान तथा शुभ सत्य और अनृत ऊर्द्ध्व भाव और अधोभाव–सुख तथा दु ख–प्रिय और अप्रिय यह सब प्रयाण किये हुए का गुणमात्रात्मक कहा गया है। और उस समय में बिना इन्द्रियों वाले प्राणियों का जो भी कुछ शुभ तथा अशुभ है वह भी गुण-मात्रात्मक होता है ॥४८-४९॥ वह सब प्रकृति में पुण्य और पाप प्रतिष्ठित होता है। और देहधारियों के स्वभाव म योन्यवस्था निमित्त होती है ॥५०॥ जन्तुओं का पुण्य और पाप जो प्रकृति में प्रतिष्ठित है। जन्तुगण जो उन्हीं अव्यक्त में स्थित पुण्य और पापों को जीत लेते हैं जोकि पुनर्देह म तथा देहान्यत्व में होते हैं ॥५१॥ जन्तुओं के धर्म और अधर्म दोनों गुणमात्रात्मक होते हैं। यहाँ पर करणों के द्वारा जन्तुओं से कार्य के होने से बढ जाया करते हैं ॥५२॥ सुचेतन क्षेत्रज्ञों में स्थित गुण प्रलीन हो जाया करते हैं। सर्ग म और प्रतिसर्ग में ससार में जन्तुगण सयुक्त और वियुक्त होते हैं और करणों के साथ सञ्चरण किया करते हैं ॥५३॥ राजसी–तामसी और सात्त्विकी वृत्तियाँ पुरुषों म अधिष्ठित गुणमात्रा तीन प्रकार से प्रवृत्त होती हैं ॥५४॥ ऊर्द्ध्व में देवात्मक सत्त्व है और अधोभागात्मक तम है। उन दोनों के मध्य में प्रवर्तक यहाँ पर ही आवर्तक रजोगुण होता है ॥५५॥

इत्येव परिवर्त्तन्ते त्रय स्रोतागुणात्मका ।
लोकेषु सर्वभूताना तत्र कार्यं विजानता ॥५६
अविद्याप्रत्ययारम्भा आरभन्तो हि मानवं ।
एतास्तु गतयस्तिस्र शुभा पापात्मिकाः स्मृताः ॥५७

तम साभिभवाज्जन्तुर्याथातथ्य न विन्दति ।
अतत्तद्दर्शनात्सोऽय त्रिविध वध्यते तत ॥५८
प्राकृतेन बन्धेन तथा वैकारिकेन च ।
दक्षिणाभि स्तृतीयेन बद्धोऽत्यन्त विवर्त्तते ॥५९
इत्येते वै त्रय· प्रोक्ता बन्धा ह्यज्ञानहेतुका ।
अनित्ये नित्यसज्ञा च दु खे च सुखदर्शनम् ॥६०
अस्वे स्वमिति च ज्ञानमशुचौ शुचिनिश्चयः ।
येपामेते मनोदोपा ज्ञानदोपा विपर्य्ययात् ॥६१
रागद्वेपनिवृत्तिश्च तज्ज्ञान समुदाहृतम् ।
अज्ञान तमसो मूल कर्म्मद्वयफल रज ।
कर्म्मजस्तु पुनर्देहो महादु ख प्रवर्त्तते ॥६२
श्रोत्रजा नेत्रजा चैव त्वग्जिह्वाघ्राणतस्तथा ।
पुनर्भवकरी दु खा कर्म्मणा जायते तु सा ॥६३

इस प्रकार से ये तीन कोप गुणात्मक लोकों में समस्त प्राणियों के परिवर्तित होते हैं। इसको विशेष रूप से जानने वाले को नहीं करना चाहिए ॥५६॥ मानवों के द्वारा अविद्या प्रत्यय आरम्भ आरम्भ किये जाया करते हैं। ये तीन गतियाँ शुभ और पापात्मिका कही गई हैं ॥५७॥ तमोगुण से अभिभव होने से जन्तु याथातथ्य को प्राप्त नहीं होता है। इसके पश्चात् वह तत्त्व दर्शन के न होने से तीन प्रकार का बद्ध होता है ॥५८॥ प्राकृत बन्ध से तथा वैकारिक बन्ध से और तीसरे दक्षिणाभि से बद्ध हुआ अत्यन्त विवर्तित होता है ॥५९॥ ये तीनों बन्ध अज्ञान के हेतु वाले कहे गये हैं। अनित्य में नित्य होने की सज्ञा और दु ख में सुख का देखना यह मनोदोष है ॥६०॥ जो अपना नहीं है उस अस्व में अपना है ऐसा ज्ञान रखना तथा अशुचि में शुचि अर्थात् पवित्र होने का निश्चय कर लेना जिनके ये मनोदोष और विपर्यय से ज्ञान दोष होते हैं ॥६१॥ राग तथा द्वेष की निवृत्ति वह ज्ञान कहा गया है। अज्ञान तम का मूल होता है। कर्म द्वय का फल रज होता है। फिर कर्म से उत्पन्न होने वाला देह होता है और महा दु ख प्रवृत्त होता है ॥६२॥ श्रोत्र से जन्म लेने वाली—नेत्रों से

उत्पन्न होने वाली तथा त्वचा, जिह्वा और घ्राण अर्थात् नासिका से पुनर्जन्म करने वाली दुःख स्वरूपा वह कर्मों की उत्पन्न होती है ॥६३॥

सतृष्णोऽभिहितो बाल स्त्वकृतैः कर्म्मणः फलैः ।
तैलपालीकवज्जीवस्तत्रैव परि वर्त्तते ॥६४
तस्मात्स्थूलमनर्थानामज्ञानमुपदिश्यते ।
स शक्तमवधार्य्यैकं ज्ञाने यत्नं समाचरेत् ॥६५
ज्ञानाद्विजयते सर्वं त्यागाद्वुद्धिर्विरज्यते ।
वैराग्याच्छुद्ध्यते चापि शुद्धः सत्वेन मुच्यते ॥६६
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि राग भूतापहारिणम् ।
अभिषङ्गाय यो यस्माद्विषयोऽप्यवशात्मनः ॥६७
अनिष्टमभिषङ्गं हि प्रीतितापविषादनम् ।
दुःखलाभे न तापश्च सुखानुस्मरणं तथा ॥६८
इत्येष वैषयो रागः सम्भूत्या कारणं स्मृतम् ।
ब्रह्मादौ स्थावरान्ते वै संसारे ह्याधिभौतिके ।
अज्ञानपूर्वकं तस्मादज्ञानन्तु विवर्जयेत् ॥६९
यस्य चार्यं न प्रमाणं शिष्टाचारं तथैव च ।
वर्णाश्रमविरोधी य शिष्टशास्त्रविरोधकः ॥७०
एष मार्गो हि निरधितिर्यग्योनौ च कारणम् ।
तिर्यग्योनिगतश्चैव कारणं स निरुच्यते ॥७१
विविधा यातना स्थाने तिर्यग्योनौ च पङ्क्त्वधे ।
कारणे विषये चैव प्रतिघातस्तु सर्वदा ॥७२
अनैश्वर्य्यन्तु तत्सर्वं प्रतिघातात्मकं स्मृतम् ।
इत्येषा तामसी वृत्तिर्भूतादीनां चतुर्विधा ॥७३

अपने किये हुए कर्मों के फलों में बाल सतृष्ण कहा गया है। तैल पाली कवत् जीव वहाँ पर ही परिवर्त्तित होता है ॥६४॥ इससे अनर्थों का स्थूल अज्ञान ही उपदिष्ट होता है। उस एक को शक्त समझ कर ज्ञान में यत्न करना चाहिए ॥६५॥ ज्ञान से सबकी विजय होती है और त्याग से बुद्धि विरजित

होती है तथा वराग्य से शुद्धि होनी है और जो शुद्ध होना है वह सत्व से मुक्ति प्राप्त किया करता है ॥६६॥ इससे आगे भूताप के हरण करने वाले राग को बतलाऊँगा। जो जिससे अवश्य आत्मा वाले का विषय अभिपङ्ग के लिये होता हैं ॥६७॥ अनिष्ट अभिपङ्ग निश्चय ही प्रीति ताप का विषाद करने वाला होता है। दु ख लाभ मे ताप तथा सुखानुस्मरण नही होता है ॥६८॥ यह वैषय राग सम्भूति का कारण कहा गया है। ब्रह्मा से आदि मे स्थावरो के अन्त मे इस आधिभौतिक ससार मे अज्ञान पूर्वक सब है इसलिये अज्ञान का त्याग करना ही चाहिए ॥६९॥ जिसके लिये ऋषियो के द्वारा कहा हुआ प्रमाण नही होता है अर्थात् कोई प्रमाण के रूप मे नही माना जाता है और शिष्टाचार भी नहीं होता है। जो वर्णों और आश्रमो का विरोध करने वाला होता है तथा जो शिष्टो के निमित्त शास्त्रो का विरोध करने वाला होता है ॥७०॥ यह मार्ग निरय और तिर्यक् योनि मे कारण बना करता है। वह तिर्यक् योनि गत कारण कहा जाया करता है ॥७१॥ छै प्रकार के तिर्यक् योनिगत कारण कहा जाया करता है ॥७१॥ छै प्रकार के तिर्यक् योनि के स्थान म अनेक प्रकार की यातनाऐ होती हैं। कारण और विषय मे सब ओर से प्रतिघात होता है ॥७२॥ इस प्रकार से वह समस्त अनैश्वर्य प्रतिघात क स्वरूप वाला कहा गया है। यह प्राणियो की तामसी वृत्ति चार प्रकार की होती है ॥७३॥

सत्वस्थमात्रक चित्त यथा सत्वप्रदर्शनात् ।
तत्वानाश्च तथा तत्व दृष्ट्वा वै तत्वदर्शनात् ॥७४
सत्वक्षेत्रज्ञनानात्वमेतज्ज्ञानार्थदर्शनम् ।
नानात्वदर्शन ज्ञान ज्ञानाद्वै योगमुच्यते ॥७५
तेन बद्धस्य वै बन्धो मोक्षो मुक्तस्य तेन च ।
समारे विनिवृत्ते तु मुक्तो लिङ्गे न मुच्यते ॥७६
नि सम्बन्धो ह्यचैतन्य: स्वात्मन्येवावतिष्ठते ।
स्वात्मन्यवस्थितश्चापि विरूपाख्येन लिप्यते ॥७७
इत्येतल्लक्षण प्रोक्त समासाज्ज्ञानमोक्षयो. ।
स चापि त्रिविध. प्रोक्तो मोक्षो वै तत्वदर्शिभि ॥७८

पूर्वं वियोगो ज्ञानेन द्वितीयो रागसंक्षयात् ।
लिङ्गाभावात्तु कैवल्यं कैवल्यात्तु निरञ्जनम् ॥७९
निरञ्जनत्वाच्छुद्धस्तु ततो नेता न विद्यते ।
तृष्णाक्षयात्तृतीयस्तु व्याख्यात मोक्षकारणम् ॥८०
निमित्तमप्रतीघाते इष्टशब्दादिलक्षणे ।
अष्टावेतानि रूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम् ॥८१

केवल सत्त्व में स्थित रहने वाला चित्त जिस प्रकार से सत्त्व से दर्शन से होता है उसी प्रकार से तत्त्व को देखकर तत्त्व दर्शन से तत्त्वों का होता है ॥७४॥ सत्त्व क्षेत्रज्ञों का नानात्व होता है और यह ज्ञानाख्य दर्शन है। नानात्व के दर्शन को ज्ञान करते हैं और उस ज्ञान से योग दर्शन होता है जोकि योग कहा जाता है ॥७५॥ उसमें जो बद्ध होता है उसका बन्धन होता है और जो उससे मुक्त होता है उसका मोक्ष हुआ करता है। रागार के विनिवृत्त होने पर मुक्त लिङ्ग से छुटकारा पा जाया करता है ॥७६॥ निःसम्बन्ध अर्थात् सम्बन्ध से रहित अचैतन्य अपनी आत्मा में ही अवस्थित हुआ करता है। और स्वात्म व्यवस्थित ही विश्वरूप के द्वारा लिखा जाता है ॥७७॥ यह इतना ही संक्षेप से ज्ञान और मोक्ष का लक्षण कहा गया है। वह मोक्ष भी तत्त्वों के दखने वाले पुरुषों के द्वारा तीन प्रकार का कहा गया है ॥७८॥ प्रथम ज्ञान के साथ वियोग है। दूसरा राग के संक्षय से होता है लिङ्ग के अभाव से कैवल्य होता है और कैवल्य से तो निरञ्जन होता है ॥७९॥ निरञ्जन होने से शुद्ध होता है फिर नेता नहीं होता है। तृष्णा के क्षय से तीसरा होता है जोकि मोक्ष का कारण व्याख्यात किया गया है ॥८०॥ इष्ट शब्द आदि स्वरूप वाले अप्रतिघात में निमित्त होता है। इसके आठ रूप होते हैं जोकि यथाक्रम प्राकृत होते हैं ॥८१॥

दोषश्रेष्ववसज्यन्ते गुणमात्रात्मकानि तु ।
अत उर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि वैराग्यं दोषदर्शनात् ॥८२
दिव्ये च मानुषे चैव विषये पञ्चलक्षणे ।
अप्रद्वेषोऽनभिष्वङ्ग वर्त्तव्यो दोषदर्शनात् ॥८३

तापप्रीतिविषादाना वार्य्यन्तु परिवर्जनम् ।
एव वैराग्यमास्थाय शरीरी निर्ममो भवेत् ॥८४
अनित्यमशिव दु खमिति बुद्धयानुचिन्त्य च ।
विशुद्ध कार्य्यकरण सत्वाप्येति तरान्तु य ॥८५
परिपक्वकषायो हि कृत्स्नान्दोषान्प्रपश्यति ।
तत प्रयाणकाले हि दोषैर्नैमित्तिकैस्तथा ॥८६
ऊष्मा प्रकुपित काये तीव्रवायुसमीरित ।
स शरीरमुपाश्रित्य कृत्स्नान्दोषान्रुणद्धि वै ॥८७
प्राणस्थानानि भिन्दन्हि छिन्दन्मर्माण्यतीत्य च ।
शैत्यात्प्रकुपितो वायुरूर्द्ध्वन्तु क्रमते तत ॥८८
स चाय सर्वभूताना प्राणस्थानेष्ववस्थित ।
समासात्सवृते ज्ञाने सवृतेषु च कर्म्मसु ॥८९
स जीवोऽनम्यधिष्ठान कर्म्मभि स्वै पुराकृतै ।
अष्टाङ्गप्राणवृत्तीर्वै स विच्यावयते पुन ॥९०
शरीर प्रजहसो वै निरुच्छवासस्ततो भवेत् ।
एव प्राणै परित्यक्तो मृत इत्यभिधीयते ॥९१

गुणमात्रात्मक क्षेत्रज्ञो मे अब सज्जित होते हैं। अब इससे आगे दोष दर्शन से वैराग्य को बतलाऊंगा ॥८२॥ दिव्य और मानुष पञ्च लक्षण विषय में दोष दर्शन से प्रद्वेष अनभिषङ्ग करना चाहिए ॥८३॥ ताप–प्रीति और विषादों का परिवर्जन करना चाहिए। इस प्रकार से वैराग्य में प्रास्थित होकर यह शरीर धारी निर्मम हो जाता है। अर्थात् इस शरीरी को ममता से रहित हो जाना चाहिए ॥८४॥ बुद्धि के द्वारा दु ख अनित्य अशिव है इस प्रकार से अनुचिन्तन करके जो विशुद्ध कार्य का करता है वह सत्व की प्राप्ति करता है ॥८५॥ फिर परिपक्व कषाय वाला होकर समस्त दोषों को देखता है। प्रयाण करने के समय में निश्चय ही नैमित्तिक दोषों से कायां में प्रकुपित ऊष्मा होते हुए तीव्र वायु से समीरित हो जाता है वह शरीर में उपाश्रित होकर समस्त दोषों को रुद्ध कर देता है ॥८६ ८७॥ प्राण के स्थानों को भेदन करता

हुआ और मर्मों को छेदन करता हुआ आगे चलकर शैत्य से प्रकुपित होने वाला वायु ऊर्ध्व भाग को फिर क्रान्त किया करता है ॥८८॥ और यह वह समस्त प्राणियों के प्राण स्थानों मे अवस्थित रहा करता है। सक्षेप से ज्ञान के सवृत हो जाने पर और समस्त कर्मों के सवृत होने पर वह जीव पुरा कृत अर्थात् पहिले जन्म मे किये हुए अपने कर्मों से अनन्यधिष्ठान हो जाता है। फिर अष्टाङ्ग प्राण वृत्ति वाला वह विच्यावयित हो जाता है ॥८६-६०॥ शरीर को प्रकृष्टता से त्यागता हुआ वह फिर बिना उच्छ्वासों वाला होता है। इस रीति से प्राणों के द्वारा परित्यक्त होने वाला मृत इस नाम से कहा जाता है ॥६१॥

अथेह लोके खद्योत नीयमानमितस्तत ।
रञ्जन तद्वधे यत्तु नेता नेता न विद्यते ॥६२
तृष्णाक्षयस्तृतीयस्तु व्याख्यात मोक्षलक्षणम् ।
शब्दाद्यं विषये दोषविषये पञ्चलक्षणे ॥६३
अप्रद्वेषोऽन भिष्वङ्ग प्रीतितापविवर्जनम् ।
वैराग्यकारण ह्येते प्रकृतीना लयस्य च ॥६४
अष्टौ प्रकृतयो ज्ञेया पूर्वोक्ता वै यथाक्रमम् ।
अव्यक्ताद्यास्तु विज्ञेया भूतान्ता प्रकृतेर्लयाः ॥६५
वर्णाश्रमाचारयुक्ता शिष्टा शास्त्राविरोधिन ।
वर्णाश्रमाणा धर्मोऽय देवस्थानेषु कारणम् ॥६६
ब्रह्मादीनि पिशाचान्तान्यष्टौ स्थानानि देवता ।
ऐश्वर्यमणिमाद्य हि कारण ह्यष्टलक्षणम् ॥६७
निमित्तमप्रतिघात इष्टे शब्दादिलक्षणे ।
अष्टावेतानि रूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम् ॥६८

जिस प्रकार से यहाँ लोक मे इधर उधर ले जाया गया खद्योत (जुगुनू) रञ्जन होता है और उसके वध होने पर नेता नेता नही रहता है ॥६२॥ तृष्णा का क्षय तीसरा मोक्ष का लक्षण व्याख्यात किया गया है। शब्दादि विषय मे पञ्चलक्षणों वाले दोष विषय मे अप्रद्वेष अनभिष्वङ्ग प्रीति और ताप का विव-

जैन होना ये वैराग्य मे कारण और प्रवृत्तियो मे लय के कारण होते हैं ॥९३-९४॥ पूर्व मे कथित की हुई आठ प्रकृतियाँ क्रम के अनुसार जानलेनी चाहिये । अव्यक्त आदि प्रकृति लय भूतान्त होते हैं ॥९५॥ शिष्ट जो होते हैं वे वर्णो और आश्रमो के धर्मो से युक्त हुआ करते हैं तथा वे शास्त्रो के भी विरोध न करने वाले होते हैं। चार वर्णो और चारो आश्रमो का यह धर्म देवो के स्थानो मे कारण होता है ॥९६॥ ब्रह्मा से आदि लेकर पिशाचो के अन्तक आठ स्थान देवता होते हैं। ऐश्वर्य तथा अणिमा आदि अष्ट लक्षण वाला कारण होता है ॥९७॥ शब्दादि लक्षण इष्ट मे जो अप्रतिघात होता है वह निमित्त होता है। ये आठ यथाक्रम आठ प्राकृति रूप होते हैं ॥९८॥

क्षेत्रज्ञेष्वनुसज्यन्ते गुणामात्रात्मकानि तु ।
प्रावृट्काले पृथक्त्वेन पश्यन्तीह न चक्षुषा ॥९९
पश्यन्त्येवविधं सिद्धा जीव दिव्येन चक्षुषा ।
आविती आनपानश्च योनी प्रविशतस्तथा ॥१००
तिर्य्यगूर्द्धमधस्ताच्च धावतोऽपि यथाक्रमम् ।
जीवप्राणास्तथा लिङ्ग कारणञ्च चतुष्टयम् ॥१०१
पर्य्यायवाचकं शब्दैरेकार्थं सोऽभिलिख्यते ।
व्यक्ताव्यक्ते प्रमाणेऽप्य स वै रूप तु कृत्स्नश ॥१०२
अव्यक्तान्त गृहीत च क्षेत्रज्ञाधिष्ठितश्च यत् ।
एव ज्ञात्वा शुचिर्भूत्वा ज्ञानाद्वै विप्रमुच्यते ॥१०३
नष्टश्चैव यथा तत्त्व तत्त्वाना तत्त्वदर्शनम् ।
यथेष्ट परिनिर्य्याति भिन्ने देहे सुनिर्वृते ॥१०४

गुण मात्रात्मिक क्षेत्रज्ञो मे अनुसञ्जित होते हैं। प्रावृट् अर्थात् वर्षा के समय मे यहाँ पर पृथक्त्व होने से नेत्र के द्वारा नहीं देखते हैं ॥९९॥ इस प्रकार वाले जीव को सिद्ध लोग दिव्य चक्षु के द्वारा देखा करते हैं। श्वाविति और श्वान के पान वाला तथा तिर्यक् योनियों मे प्रवेश करता हुआ ऊपर और नीचे की ओर दौडता हुआ भी यथाक्रम जीव प्राण तथा लिङ्ग यह चार कारण हैं ॥१००-१०१॥ एक ही अर्थ रखने वाले पर्याय वाचक शब्दो से वह अभि-

लिखित किया जाता है। व्यक्त और अव्यक्त में यह प्रमाण है और वह पूर्णतया रूप होता है ॥१०२॥ जो अव्यक्त के अन्त तक ग्रहण किया हुआ है और क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित है इस रीति से ज्ञान प्राप्त करके और शुचि होकर निश्चय ही ज्ञानमें प्रकृष्ट रूपसे मुक्त होजाता है ॥१०३॥ जैसे ही तत्त्व और तत्त्वों का तत्त्वदर्शन नष्ट होता है वह भिन्न निवृत्त देह में स्थित होता है और वह चला जाता है ॥१०४॥

भिद्यते करणञ्चापि ह्यव्यक्ताज्ञानिनस्तत ।
मुक्तो गुणशरीरेण प्राणाद्येन तु सर्वश ॥१०५
नान्यच्छरीर मादत्ते दग्धे बीजे यथाकुर ।
जीविक सर्वससाराद्वीजशारीरमानस ॥१०६
ज्ञानात्त्वतुर्द्दशाच्छुद्ध प्रकृति सोऽनुवर्त्तते ।
प्रकृति सत्यमित्याहुर्विकारोऽनृतमुच्यते ॥१०७
तरसद्भावोऽनृत ज्ञेय सद्भाव सत्यमुच्यते ।
अनामरूपक्षेत्रज्ञनामरूप प्रचक्षते ॥१०८
यस्मात्क्षेत्र विजानाति तस्मात्क्षेत्रज्ञ उच्यते ।
क्षत्रप्रत्ययतो यस्मात्क्षेत्रज्ञ शुभ उच्यते ॥१०९
क्षेत्रज्ञः स्मर्य्यते तस्मात्क्षेत्र तज्ज्ञैर्विभाव्यते ।
क्षत्रत्वप्रत्यय दृष्ट क्षेत्रज्ञ प्रत्ययी सदा ॥११०
क्षयणात् करणाच्चैव क्षतत्राणात्तथैव च ।
भोग्यत्वाद्विपयत्वाच्च क्षेत्र क्षेत्रविदो विदु ॥१११
महदाद्य विशेषान्त सवैरूप्य विलक्षणम् ।
विकारलक्षण तद्वै साक्षरक्षरमेव च ॥११२
तमेव च विकारन्तु यस्माद्वै क्षरते पुन ।
तस्माच्च कारणाच्चैव क्षरमित्यभिधीयते ॥११३

इसके अनन्तर जो अव्यक्त ज्ञानी होना है उसका करण भी भिद्यमान होता है। गुण शरीर प्राणाद्य से सभी प्रकार से युक्त होना है ॥१०५॥ फिर वह मुक्त हुआ प्राणी अन्य शरीर को धारण नहीं किया करता है जिस तरह

बीज के दग्ध होने पर फिर उससे अंकुर नहीं होते हैं उसी रीति से यशोयात्मा बीज शरीर मानस संसार से चतुर्दश ज्ञान से शुद्ध हुआ वह प्रकृति का अनुवर्तन किया करता है। सत्य को प्रकृति कहते हैं और जो विकार होता है वह अनृत कहा जाता है ॥१०६-१०७॥ उसका सद्भाव अनृत जानना चाहिये और सद्भाव सत्य कहा जाता है। अनाम रूप वाले क्षेत्रज्ञ का नाम रूप कहा जाता है।१०८। जिससे क्षेत्र को जानते हैं उसमें वह क्षेत्रज्ञ कहा जाया करता है। जिस क्षेत्र के प्रत्यय में क्षेत्रज्ञ शुभ कहा जाता है ॥१०९॥ उससे क्षेत्रज्ञ का स्मरण किया जाता है। उन ज्ञाताओं के द्वारा विशेष रूप से कहा जाया करता है। क्षेत्रत्व का प्रत्यय जब दृष्ट होता है तो क्षेत्रज्ञ सर्वदा प्रत्ययी होता है ॥११०॥ क्षयण से और क्षरण से ही तथा क्षन त्राण से भोज्य होने से और विषय के होने से क्षेत्र के वेत्ता लोग क्षेत्र जानते हैं ॥१११॥ महत् से आद्य और विशेष के अन्त तक विलक्षण सर्वरूप होता है। वह निश्चय ही विकार लक्षण साक्षर क्षर ही होता है ॥११२॥ फिर उस ही विकार को जिससे वह क्षर होता है और उसही कारण से क्षर ऐसा अभिहित हुआ करता है ॥११३॥

सुखदु खमोहभावा भोज्यमित्यभिधीयते ।
अचेतत्वाद्धि विषयस्तद्धि धर्मविमु स्मृत ॥११४
न क्षीयते न क्षरति विकारप्रसृतस्तु तत् ।
अक्षर तेन चाप्युक्तमक्षीणत्वात्तथैव च ॥११५
यस्मात्पुर्यनुशेते च तस्मात्पुरुष उच्यते ।
पुरप्रत्ययिको यस्मात्पुरुषेत्यभिधीयते ॥११६
पुरुष वचयस्त्वाथ वाथन्तज्ज्ञैर्विभाव्यते ।
शुद्धो निरञ्जनाभासो ज्ञानाज्ञानविवर्जित ॥११७
अस्ति नास्तीति सोऽन्यो वा बद्धो मुक्तो गत. स्थितः ।
नेहेतिवान्तनिर्देश्यमुक्तमस्मिन्न विद्यते ॥११८
शुद्धत्वान्न तु देश्यो वैरदृष्टत्वात्ममदर्शन ।
आत्मप्रत्ययकारी सारनूनश्चापि हेतुकम् ।
भावग्राह्यमनुमान्य चिन्तयन्न प्रमुह्यते ॥११९

यदा पश्यति ज्ञातारं शान्तार्थं दर्शनात्मकम् ।
दृश्यादृश्येषु निर्द्देश्य तदा तदुद्धर वरम् ॥१२०

मुख-दुःख और मोह के भाव भोज्य इस नाम से कहे जाते है। अचेन मे होने से जो विषय है वह ही धर्म विभु कहा गया है ॥११४॥ वह विकार का प्रसृत न तो क्षीण होता है और न क्षर ही होता है और उस ही रीति से उससे अक्षीण होने के कारण से अक्षर ऐसा कहा गया है ॥११५॥ जिससे वह पुरी मे अनुशयन किया करता है उस कारण से वह पुरुष ऐसा कहा जाया करता है। पुर प्रत्यधिष्ठ जिससे होता है वह पुरुष इस नाम से बोला जाया करता है ॥११६॥ पुरुष कहो इसके अनन्तर उसके ज्ञाताओं के द्वारा वह शुद्ध-निरञ्जनाभास और ज्ञान तथा अज्ञान से रहित कहो विज्ञापित किया जाता है ॥११७॥ है और नहीं है—इससे अथवा वह अन्य है, बद्ध एवं मुक्त गया हुआ स्थित है। उसमें नैहेंतिवात निर्द्देश्य मुक्त नहीं होता है ॥११८॥ शुद्ध होने से वह देश्य नहीं है और दृष्ट होने से समदर्शन होता है। आत्मा का प्रत्यय कारी होता है। सारभूत हेतुक मात्र ग्राह्य एवं अनुमाप्य का चिन्तन करता हुआ मोह को प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥११९॥ जब जिस समय शान्तार्थ दर्शनात्मक ज्ञाता को देख लेता है तब उस समय दृश्यादृश्यो मे निर्द्देश्य उसका श्रेष्ठ उद्धार होता है ॥१२०॥

एवं ज्ञात्वा स विज्ञाता तत शान्तिं नियच्छति ।
कार्य्ये च कारणे चैव बुद्धयादौ भौतिके तदा ॥१२१
सम्प्रयुक्तो वियुक्तो वा जीवतो वा मृतस्य च ।
विज्ञाता न च दृश्येत पृथक्त्वेनेह सर्व्वदा ॥१२२
स्वेनात्मानं तमात्मानं कारणात्मा नियच्छति ।
प्रकृतौ कारणे चैव स्वात्मन्येवोपतिष्ठति ॥१२३
अस्ति नास्तीति सोऽन्यो वा इहामुत्रेति वा पुनः ।
एकत्वं वा पृथक्त्वं वा क्षेत्रज्ञपुरुषेति वा ॥१२४
आत्मवान् स निरात्मा वा चेतनोऽचेतनोऽपि वा ।
कर्त्ता वा सोऽप्यकर्त्ता वा भोक्ता वा भोज्यमेव वा ॥१२५

यज्ज्ञात्वा न निवर्त्तन्ते क्षेत्रज्ञे तु निरञ्जने ।
अवाच्य तदनाख्यानादग्राह्यत्वादहेतुनि ॥१२६

इस प्रकार से वह विशेष रूप से ज्ञान रखने वाला फिर शान्ति को प्राप्त किया करता है। कार्य मे और कारण मे तथा बुद्धि आदि भौतिक मे उस समय संयुक्त अथवा वियुक्त होना हुआ, जीवित का अथवा मृत का विज्ञाता यहाँ सब प्रकार में पृथक्त्व होने से दिखाई नहीं देता है ॥१२१-१२२॥ कारणात्मा वह अपने से आत्मा को और उस आत्मा को प्राप्त करता है। प्रकृति मे और कारण मे अपनी ही आत्मा में उप तिष्ठमान होना है ॥१२३॥ है और नही है—यह अथवा वह अन्य है—यहाँ अथवा परलोक में है—एकत्व है अथवा पृथक्त्व है—क्षेत्रज्ञ है अथवा पुरुष है—वह आत्मवान् अथवा निरात्मा है—चेतन है अथवा अचेतन है—वह कर्त्ता है किम्वा वह अकर्त्ता है—वह भोक्ता अथवा भोग्य ही है—यह जानकर क्षेत्रज्ञ निरञ्जन मे निवृत्त नही होते है। अपितु उसमे अनाख्यान होने से तथा अग्राह्य होने से यह कहने योग्य नही है ॥१२४-१२५-१२६॥

अप्रतर्क्यमचिन्त्यत्वादवाप्यत्वाच्च सर्वश. ।
नाभिलिप्सति तत्तत्त्व सम्प्राप्य मनसा सह ॥१२७
क्षेत्रज्ञे निर्गुणे शुद्धे शान्ते क्षीणे निरञ्जने ।
व्यपे(पे)तसुखदुःखे च निरुद्धे शान्तिमाप्नते ॥१२८
निरात्मके पुनस्तस्मिन्वाच्यावाच्यो न विद्यते ।
एतौ सहारविस्तारौ व्यक्ताव्यक्तौ तत पुन ॥१२९
सृजते ग्रसते चैव ग्रस्तः पर्यवतिष्ठते ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठित सर्व पुन सर्व प्रवर्त्तते ॥१३०
अधिष्ठानप्रवृत्तेन तस्य ते बुद्धिपूर्वकम् ।
साधर्म्यवैधर्म्यकृतसयोगो विधितस्तयो. ।
अनादिमान् स सयोगो महापुरुषज स्मृत ॥१३१
यावत्तु सर्गप्रतिसर्गकालस्तावत्तु तिष्ठति सुसन्निरुध्य ।
पूर्व हितत्वे तदबुद्धिपूर्व प्रवर्त्तते तत्पुरुषार्थमेव ॥१३२

एषा निसर्गप्रतिसर्गपूर्वं प्राधानिकी चेश्वरकारिता च ।
अनाद्यनन्ता ह्यभिमानपूर्वक विलासयन्ती जगदभ्युपैति ॥१३३
इत्येष प्राकृत सर्गस्तृतीयो हेतुलक्षण ।
उक्तो ह्यस्मिस्तदात्यन्त कविभिस्तत्प्रमुच्यते ॥१३४

अचिन्त्य होने से और सर्व प्रकार से अवाप्य होने से अप्रतर्क्य है । मनके साथ उस तत्त्व को सम्प्राप्त करके वह अभिलिप्त नही होता है ॥१२७॥ क्षेत्रज्ञ–शुद्ध–निर्गुण–दान्त–क्षीण–निरञ्जन मे सुख और दुःख व्यपेत होते हुए निरुद्ध होकर शान्ति को प्राप्त होजाते है ॥१२८॥ वह निरात्मा होता है इसलिये उसमे फिर कुछ भी वाच्य तथा अवाच्य नही रहता है । ये सहार और विस्तार तथा व्यक्त और अव्यक्त फिर सृजन करता है और ग्रसन करता है और ग्रस्त होता हुआ पर्यवस्थित रहता है । क्षेत्रज्ञ मे अधिष्ठित सभी फिर प्रवृत्त होता है ॥१२९-१३०॥ अधिष्ठान प्रवृत्त होने से उसके बुद्धिपूर्वक साधर्म्य और वैधर्म्य से किया हुआ सयोग उन दोनो का विधि से वह अनादिमान् सयोग होता है और महापुरुष से जायमान कहा गया है ॥१३१॥ और जितना सर्ग तथा प्रतिसर्ग का काल है उतना सुमनिरुद्ध होकर रहता है । पहिले हितव्य मे वह अबुद्धि पूर्वक प्रवृत्त होता है और पुरुषार्थ ही होता है ॥१३२॥ यह निसर्ग और प्रतिसर्ग पूर्वक प्राधानिकी ईश्वर कारिता है जो अनाद्यन्त वाली अभिमान पूर्वक विलास करती हुई जगद् को प्राप्त होती है । यह हेतु लक्षण वाला तृतीय प्राकृत सर्ग है जोकि कहा गया है उसमे अत्यन्त रूप से कवियो के द्वारा प्रमुक्ति प्राप्त की जाती है ॥१३४॥

प्रकरण ६५—सृष्टि वर्णन

सूत सुमहदाख्यान भवता परिकीर्तितम् ।
प्रजाना मनुभि सार्द्ध देवानामृषिभि सह ॥१
पितृगन्धर्वभूताना पिशाचोरगरक्षसाम् ।
दैत्याना दानवाना च यक्षाणामेव पक्षिणाम् ॥२

अत्यद्भुतानि कर्माणि विधिमान्धर्मनिश्चय ।
विचित्राश्च कथायोगा जन्म चाग्र्यमनुत्तमम् ॥३
तत्कथ्यमानमस्माक भवता श्लक्ष्णया गिरा ।
मन कर्णसुख सोते प्रीणात्यामृतसम्भवम् ॥४
एवमाराध्य ते सूत सत्कृत्य च महर्षय ।
पप्रच्छुः सत्रिण. सर्वे पुन सर्गप्रवर्त्तनम् ॥५
कथ सूत महाप्राज्ञ पुन सर्ग प्रवर्त्स्यते ।
बन्धेषु सम्प्रलीनेषु गुणसाम्ये तमोमये ॥६
विकारस्त्वविसृष्टेषु ह्यव्यक्ते चात्मनि स्थिते ।
अप्रवृत्तौ प्रधानस्य महासायुज्यगैस्तदा ।
कथ प्रपत्स्यते सर्गस्तन्न प्रब्र हि पृच्छताम् ॥७

ऋषियो ने कहा—हे सूतजी ! महान् आख्यान का वर्णन किया है जिसमे मनुष्यो के साथ प्रजाओ का तथा ऋषियो के साथ देवो का पूरा वर्णन है। इस आख्यान म पितृ–गन्धर्व–भूत–पिशाच–उरग–राक्षस–दैत्य–दानव–यक्ष और पक्षियो के अत्यद्भुत कर्मो का वर्णन भी किया गया है। इसमे आपन विधि स युक्त धर्म का भी निश्चय बताया है। इसमे विचित्र कथाओ के योग हैं तथा श्रेष्ठतम अग्र्य जन्म का भी वर्णन किया है ॥१-२-३॥ हे सौत ! आपका अपनी अतीव श्लक्ष्ण सुन्दर वाणी स मन तथा कानो को परम सुख समुत्पन्न करते हुए सभी कुछ का वर्णन करके समस्त प्राणियो का प्रसन्नता प्रदान किया करते हैं ॥४॥ इस प्रकार से उन महर्षियो ने सूतजी का समाराधन एव भली भाँति सत्कार करके पुन उन सत्रधारियो ने सर्ग के प्रवर्तन के विषय म उनसे पूछा था ॥५॥ हे सूतजी ! आपतो महान् पण्डित हैं। यह सर्ग फिर कैसे होगा क्योकि समस्त बन्ध जब प्रलीन होजाते हैं और इस तमोमय मे गुणो की समता होजाया करती है ? समस्त विकार तो उस समय मे विसृष्ट रहते ही नहीं हैं क्योकि यह अव्यक्त आत्मा मे ही स्थित होजाया करता है। महान् सायुज्य को प्राप्त होने पर प्रधान की प्रवृत्ति उस समय म होती ही नही है फिर यह सर्ग कैसे होता है ? हम सब यही आपसे पूछना चाहते हैं सो आप कृपा करके वर्णन कर दीजिये ॥६-७॥

एवमुक्त स्ततः सूतस्तदासौ लोमहर्षण. ।
व्यास्यानुमुपचक्राम पुन सर्गप्रवर्त्तनम् ॥८
ग्रह वो वर्त्तयिष्यामि यथा सर्गः प्रपत्स्यते ।
पूर्ववत्स तु विज्ञेय समासात्त निवोधद ॥६
दृष्ट चैवानुमेयञ्च तर्कं वक्ष्यामि युक्तित ।
तस्माद्वाचो निवर्त्तन्ते ह्यप्राप्य मनसा सह ॥१०
ग्रव्यक्तवन् परोक्षत्वाद् ग्रहण तद्दुरासदम् ।
विकारै. प्रतिसंदृष्टे गुणसाम्ये निवर्त्तते ॥११
प्रधान पुरुषाणाञ्च साधर्म्येणैव तिष्ठति ।
धर्माधर्मौ प्रलीयेते ग्रव्यक्तौ प्राणिना सदा ॥१२
सन्वमात्रात्मको धर्मो गुणसत्त्वे प्रतिष्ठितः ।
तमोमात्रात्मकोऽधर्मो गुणे तमसि तिष्ठति ॥१३
ग्रविभागवत्तावेतौ गुणसाम्यस्थितावुभौ ।
सर्वकार्य्यं बुद्धिपूर्वं प्रधानस्य प्रपत्स्यते ॥१४

इस प्रकार से महर्षियो के द्वारा जब सूतजी से कहा गया तो वे लोम हर्षण पुन. सर्ग की प्रवृत्ति का वर्णन करने का आरम्भ करने लगे थे ॥८॥ हे ऋषियो ! मैं आप सबको बतलाता हूँ कि यह सर्ग किस प्रकार से प्रवृत्त हुआ करता है। यह पूर्व की भाँति ही जानने के योग्य है। अत यहाँ पर अतीव सक्षेप में इसे समझलो ॥६॥ यह दृष्ट तथा अनुमान करने के योग्य है। मैं युक्ति से तर्क को बतलाता हूँ। यहाँ से मन के साथ वाणी भी निवृत्त हो जाया करती है और किसी की भी पहुच नहीं होती है ॥१०॥ अव्यक्त की ही भाति वह परोक्ष वस्तु है और इसका ग्रहण करना अत्यन्त कठिन है। गुणो की साम्यावस्था प्रति सदृष्ट हो जाने पर वह विकारो से पुन: निवृत्त होती है ॥११॥ पुरुषो के साधर्म्य से ही प्रधान स्थित होता है। प्राणियो के धर्म और अधर्म अव्यक्त होकर सदा प्रलीन हो जाया करते हैं ॥१२॥ सत्वमात्रात्मक एक धर्म गुण सत्त्व मे प्रतिष्ठित रहा करता है। तमोमात्रात्मक अधर्म तमोगुण मे स्थित रहा करता है ॥१३॥ ये दोनो गुण–साम्य मे स्थित रहते

हुये उस समय मे विभाग से रहित होने है। प्रधान के समस्त कार्य मे बुद्धि पूर्वक ही प्रवृत्त होंगे ॥१४॥

अबुद्धिपूर्व क्षेत्रज्ञ अधिष्ठास्यति तान् गुणान् ।
एव तानभिमानेन प्रपत्स्येत पुरस्तदा ॥१५
यदा प्रवर्त्तितव्यन्तु क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयो. ।
भोज्यभोक्तृत्वसम्बन्ध प्रपत्स्येते युतावुभौ ॥१६
तस्माच्छरणमव्यक्त साम्ये स्थित्वा गुणात्मकान् ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठित तत्त्व वैषम्य भजते तु तत् ॥१७
तत प्रपत्स्यते व्यक्त क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठित सत्व विकार जनयिष्यति ॥१८
महदाद्य विशेषान्त चतुर्विंशगुणात्मकम् ।
क्षेत्रज्ञस्य प्रधानस्य पुरुषस्य प्रपत्स्यते ॥१९
ब्रह्माण्डे प्रथम सोऽथ भविता चेश्वर पुन ।
ततो ज्ञेयस्य कृत्स्नस्य सर्वभूतपति शिव ॥२०
ईश्वर सर्व्वमुक्ताना ब्रह्मा ब्रह्ममयो महान् ।
आदि देव प्रधानस्यानुग्रहाय प्रवक्ष्यते ॥२१॥

यह क्षेत्रज्ञ बिना ही बुद्धि के योग किए हुए उस समय उन गुणो म अधिष्ठित रहा करता है। इस प्रकार से उस समय म उन गुणों को पहले प्रवृत्त कराया जाता है ॥१५॥ जिस समय म क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ इन दोनो को प्रवृत्त करना होता है तो ये दोनो ही भोज्य और भोक्ता इनके सम्बन्ध की प्राप्ति किया करते हैं ॥१६॥ इसके गुण स्वरूपो को साम्यावस्था मे स्थित करके वह कारण ■ यक्त क्षेत्रज्ञ मे अधिष्ठित होता है और वही जब विषमावस्था को प्राप्त होते हैं तो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों का व्यक्त स्वरूप हो जाता है। क्षेत्रज्ञ मे अधिष्ठित स व विकार को उत्पन्न किया करता है ॥१७-१८॥ महत्तत्त्व से आरम्भ करके निमेष के अन्त पर्यन्त और चौबीस गुणो के स्वरूप वाला क्षेत्रज्ञ पुरुष का और प्रधान का रूप हो जाया करता है ॥१९॥ इस ब्रह्माण्ड मे वह प्रथम होता है। इसके अनन्तर फिर ईश्वर होता है। इसके

पश्चात् इस सम्पूर्ण ज्ञेय (जानने के योग्य) का समस्त भूतों का स्वामी शिव होता है ।।२०।। समस्त भक्तों का ईश्वर महान् ब्रह्ममय ब्रह्मा है । वह प्रधान के अनुग्रह के लिये आदि देव कहा जायगा ।।२१।।

अनाद्यौ स्वयमुत्पन्नावुभौ सूक्ष्मौ तु तौ स्मृतौ ।
अनादिसंयोगयुतौ सर्वं क्षेत्रज्ञमेव च ।।२२
अबुद्धि पूर्वकं युक्तौ महान्तौ तु वरौ तदा ।
अप्रत्ययमनाद्य च स्थितावुदकमप्स्यदा ।।२३
प्रवृत्ते पूर्वतः पूर्वं पुनः सर्गे प्रपत्स्यते ।
प्रज्ञागुणैः प्रवर्त्तन्ते रजः सत्वतमात्मकम् ।।२४
प्रवृत्तिकाले रजसाभिपन्नमहत्वभूतादिविशेषयताश्च ।
विशेषता चेन्द्रियताश्च यान्ति गुणावसाने पतिभिर्मनुष्याः ।।२५
सत्याभिध्यायिनस्तस्य ध्यायिनः सन्निमित्तकम् ।
रजः सत्वतमा व्यक्ता विधर्म्माणः परस्परम् ।।२६
आद्यन्ते सम्प्रपत्स्यन्ते क्षेत्रतज्ज्ञास्तु सर्वशः ।
ससिद्धकार्य्यकरणा उत्पद्यन्तेऽभिमानिनः ।।२७
सर्वे सत्वा प्रपद्यन्ते ह्यव्यक्तात्पूर्वमेव च ।
प्रसूत या च सुवहा साधिकाश्चाप्यसाधिका ।।२८

ये दोनों अनाद्य हैं और स्वयमुत्पन्न होने वाले हैं तथा सूक्ष्म कहे गये हैं एवं अनादि संयोग से युक्त हैं यह सब क्षेत्रज्ञ ही हैं ।।२२।। ये अबुद्धि पूर्वक उस समय महान् वर हैं तथा अप्रत्यय एवं अनाद्य उदक में स्थित रहा करते हैं ।।२३।। पूर्व से भी पूर्व सर्ग के प्रवृत्त होने पर ये युक्त प्रवृत्ति को प्राप्त होने वाले होते हैं । प्रज्ञागुणों के द्वारा रज सत्वतमात्मक होकर प्रवृत्त होते हैं । ।।२४।। प्रवृत्ति के काल में रजोगुण से अभिपन्न महत्व भूतादि विशेषता तथा विशेषता और इन्द्रियता को मनुष्य गुणों के अवसान में पतियों के साथ प्राप्त होते हैं ।।२५।। सत्य के अभिध्यायी उसके सन्निमित्तक ध्यायी हैं । व्यक्त रज-सत्व और तम परस्पर में विधर्मा होते हैं ।।२६।। आदि और अन्त में सब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ हो जाते हैं । ससिद्ध कार्य के कारण अभिमान वाले

उत्पन्न होते हैं ॥२७॥ समस्त सत्व पहले ही अव्यक्त से प्रतिपन्न होते हैं। जो कि सुवहासाधिका और असाधिकाओं का प्रसव करती है ॥२८॥

ससरन्तस्तु ते सर्वे स्थानप्रकरणैं सह ।
कार्याणि प्रतिपत्स्यन्ते उत्पद्यन्ते पुन पुन. ॥२६
गुणमात्रात्मकाश्चैव धर्म्माधर्म्मौ परस्परम् ।
आरम्भन्तीह चान्योन्य वरेणानुग्रहेण च ॥३०
सर्गे तुल्याः प्रसृष्टार्थं सर्गादौ यान्ति विक्रियाम् ।
गुणास्तत्प्रतिपावन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥३१
गुणास्ते यानि सर्वाणि प्राक् दृष्टे प्रतिपेदिरे ।
तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमाना पुन पुनः ॥३२
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्म्माधर्म्मावृतानृते ।
तद्भाविता प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥३३
महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्त्तिषु ।
विप्रयोगाश्च भूताना गुणेभ्य सप्रवर्त्तते ॥३४
इत्येष वो मया ख्यात पुनः सर्ग समासत ।
समासादेव वक्ष्यामि ब्रह्मणोऽथ समुद्भवम् ॥३५

ये सब सत्व स्थान और प्रकरणो के साथ यहाँ ससरण करते हुए पुन - पुन उत्पन्न होते हैं और कार्यों को प्राप्त किया करते हैं ॥२६॥ यहाँ पर वे सब परस्पर मे गुणमात्र स्वरूप वाले धर्म और अधर्म को वर तथा अनुग्रह से आरम्भ किया करते हैं ॥३०॥ सब तुल्य हैं और प्रसृष्ट होने के लिये सर्ग के आदि विक्रिया को प्राप्त हुआ करते हैं। उनके प्रति गुण धावन किया करते हैं। जो–जो जिसको रुचता है वे गुण सृष्टि से पूर्व जो थे उन सबको प्राप्त हो जाते हैं और वे ही सृज्यमान होते हुए पुन पुन प्रतिपन्न होते हैं ॥३१-३२॥ हिंस्र–अहिंस्र, मृदु–क्रूर, धर्म–अधर्म, और आवृत तथा अनृत मे तत्तत् भावो से भावित होते हुए जो जिसको रुचता है प्रपन्न हुआ करते हैं ॥३३॥ इन्द्रियार्थ मूर्त्तियो में और महाभूतो मे नानात्व होता है। भूतो के विप्रयोग गुणो से सवृत्त हुआ करते

है ॥३४॥ यह मैंन सर्वेश से पुन सर्ग का वर्णन कर दिया है । अब सर्वेश से ही ब्रह्मा का समुद्भव कहूँगा ॥३५॥

अव्यक्तात्कारणात्तस्मान्नित्यात्सदसदात्मकात् ।
प्रधानपुरुषाभ्यान्तु जायते च महेश्वरः ॥३६
स पुन सम्भावयिता जायते ब्रह्मसंज्ञित ।
सृजते स पुनर्लोकानभिमानगुणात्मवान् ॥३७
अहङ्कारस्तु महतस्तस्माद्भूतानि चात्मन ।
युगपत् सम्प्रवर्त्तन्ते भूतान्येवेन्द्रियाणि च ।
भूतभेदाश्च भूतेभ्य इति सर्गः प्रवर्त्तते ॥३८
विस्तरावयवस्तेषां यथाप्रज्ञ यथाश्रुतम् ।
कीर्तित वो यथा पूर्वं तथैवाभ्युपधार्य्यताम् ॥३९
एतच्छ्रुत्वा नैमिषेयास्तदानीं लोकोत्पत्ति संस्थितिं च व्ययञ्च ।
तस्मिन् सत्रेऽवभृथं प्राप्य शुद्धाः पुण्यं लोकमृषयः प्राप्नुवन्ति ॥४०
यथा यूय विधिवद्देवतादीनिष्ट्वा चैवावभृथं प्राप्य शुद्धा ।
त्यक्त्वा देहानायुषोऽन्ते कृतार्थान्पुण्याँल्लोकान्प्राप्य यथेष्ट चरिष्यथ४१
एते ते नैमिषेया दृष्ट्वा सृष्ट्वा च वै तदा ।
जग्मुश्चावभृथस्नाता स्वर्गं सर्वे तु सत्रिण ॥४२

सत् और असत् स्वरूप वाले तथा नित्य उस अव्यक्त कारण से और प्रधान पुरुषों से महेश्वर समुत्पन्न होते हैं ॥३६॥ वह फिर सम्भावयित ब्रह्मा सज्ञा वाला होता है और वह अभिमान गुणात्मक लोकों का सृजन किया करता है ॥३७॥ महत् तत्व से अहङ्कार उत्पन्न होता है और उस अहङ्कार से भूतों की तन्मात्राएं उत्पन्न होती हैं और फिर एक ही साथ भूत तथा इन्द्रियाँ समुत्पन्न हुआ करते हैं । भूतों से भूतों के भेद होते हैं—इस प्रकार से यह सर्ग प्रवृत्त हुआ करता है ॥३८॥ उनका विस्तरावयव मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार और जैसा कुछ सुना था उसके अनुसार तुम्हारे सामने कह दिया है । जैसा पहिले कहा था वैसा ही इसे समझ लेना चाहिए॥३९॥ नैमिषारण्य के निवास करने वाले ऋषियों ने उस समय यह श्रवण करके जिसमें लोकों की उत्पत्ति—

सम्स्थिति और उपसहृति भी उस यज्ञ में अवभृथ को—प्राप्त करके शुद्ध होने वाले ऋषिगण परम पुण्य लोक को प्राप्त होते हैं ॥४०॥ जिस प्रकार से आप लोग विधि-विधान के साथ देवता आदि का यजन करके और अवभृथ को प्राप्त करके शुद्ध हुए आयु के अन्त में देहो का परित्याग करके जिनके द्वारा सभी अर्थों की प्राप्ति कर ली गई है और सफल हो चुके हैं फिर परम पुण्य लोकों की प्राप्ति करके यथेष्ट विचरण करोगे ॥४१॥ ये सब नैमिषारण्य वासी मुनिगण यजन और पूजन करके उस समय में अवभृथ स्नान करने वाले सब सत्री स्वर्ग लोक को चले गए थे ॥४२॥

विप्रास्तथा यूयमपि चेष्ट्वा बहुविधैर्मखैः ।
आयुषोऽन्ते ततः स्वर्गं गन्तारास्थ द्विजोत्तमा ॥४३
प्रक्रिया प्रथमे पादे यथावस्तुपरिग्रह ।
अनुषङ्ग उपोद्घात उपसहार एव च ॥४४
एवमेतच्चतुष्पाद पुराण लोकसम्मतम् ।
उवाच भगवान् साक्षाद्वायुर्लोकहिते रत ॥४५
नैमिषे सत्रमासाद्य मुनिभ्यो मुनिसत्तमा ।
तत्प्रसादादसदिग्ध भूतोत्पत्तिलयानि च ॥४६
प्राधानिकीमिमा सृष्टि तथैवेश्वरकारिताम् ।
सम्यग्विदित्वा मेधावी न मोहमधिगच्छति ॥४७
इद यो ब्राह्मणो विद्वानितिहास पुरातनम् ।
शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि तथाध्यापयतेऽपि च ॥४८
स्थानेषु स महेन्द्रस्य मोदते शाश्वती समा ।
ब्रह्मसायुज्यगो भूत्वा ब्रह्मणा सह मोदते ॥४९

हे विप्रोत्तमो ! हे विप्रगण ! इसी प्रकार से भी आप लोग भी बहुत प्रकार के मखो के द्वारा यजन करके आयु के अन्त में स्वर्गलोक में चले जाओगे ॥४३॥ पुराण के प्रथम पाद में यथा वस्तु का परिग्रह होता है और फिर अनुषङ्ग—उपोद्घात तथा उपसहार होता है ॥४४॥ इस प्रकार से यह चार पादो वाला पुराण लोक सम्मत होता है। लोक-हित में रत रहने

वाले भगवान् वासुदेव ने साक्षात् यह कहा है ॥४५॥ नैमिष क्षेत्र में मुनिगण से किये हुए सत्र को प्राप्त करके हे मुनि श्रेष्ठो ! वहाँ उनके प्रसाद से सन्देह रहित हो जाता है और भूतों की उत्पत्ति तथा लय यह प्राधानिकी अर्थात् प्रधान से होने वाली सृष्टि तथा ईश्वर के द्वारा कराई हुई सृष्टि का भली भाँति ज्ञान प्राप्त करके मेधावी पुरुष फिर कभी मोह को प्राप्त नहीं होता है ॥४६ ४७॥ कोई विद्वान् ब्राह्मण इस पुरातन इतिहास का श्रवण करता है अथवा किसी को श्रवण कराता है या इसे को पढा देता है वह फिर महेन्द्र के स्थानों में अनेक वर्षों तक मोद प्राप्त किया करता है तथा ब्रह्म सायुज्य को प्राप्त करने वाला होकर ब्रह्मा के साथ मोद को प्राप्त हो जायगा ॥४८-४९॥

तेषां कीर्त्तिमतां कीर्त्तिं प्रजेशानां महात्मनाम् ।
प्रथयन्पृथिवीशानां ब्रह्मभूयाय गच्छति ॥५०
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च सम्मतम् ।
कृष्णद्वैपायनेनोक्तं पुराणं ब्रह्मवादिना ॥५१
मन्वन्तरेश्वराणां च यः कीर्तिं प्रथयेदिमाम् ।
देवतानामृषीणाञ्च भूरिद्रविणतेजसाम् ।
स सर्वैर्मुच्यते पापैः पुण्यञ्च महदाप्नुयात् ॥५२
यश्चेदं श्रावयेद्विद्वान्सदा पर्वणि पर्वणि ।
धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५३
यश्चेदं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान्पादमन्ततः ।
अक्षयं सार्वकामीयं पितॄंस्तत्रोपतिष्ठति ॥५४
यस्मात्पुरा ह्यनक्तीदं पुराणं तेन चोच्यते ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५५
तथैव त्रिषु वर्णेषु ये मनुष्याः प्रधानतः ।
इतिहासमिमं श्रुत्वा धर्माय विदधे मतिम् ॥५६
यावन्त्यस्य शरीरेषु रोमकूपाणि सर्वशः ।
तावत्कोटिसहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ।
ब्रह्मसायुज्यगो भूत्वा दैवतैः सह मोदते ॥५७

उन कीर्त्ति वाले महात्मा प्रजाओं के ईश और पृथिवी के स्वामियों की कीर्ति का विस्तार करते हुए यह ब्रह्म भूय अर्थात् ब्रह्म के ही स्वरूप प्राप्त करने के लिये हो जाया करता है ॥५०॥ ब्रह्मवादी श्रीकृष्ण द्वैपायन के द्वारा कथित यह पुराण परम धन्य है तथा अति पुण्यमय है। यह आयु के प्रदान करने वाला-यश बढ़ाने वाला और वेदों के द्वारा सम्मत है ॥५१॥ मन्वन्तरों के ईश-अधिक द्रविण तथा तेज वाले देवता और ऋषि वर्ग कीर्ति को जो प्रथित किया करता है वह सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है एवं महान् पुण्य को प्राप्त किया करता है ॥५२॥ जो विद्वान् इसको पर्व-पर्व पर इसका श्रावण कराता है वह पापों को नष्ट करने वाला और स्वर्ग को भी जीत लेने वाला ब्रह्म के सदृश ही होजाता है ॥५३॥ और जो इसको श्राद्ध में अन्त का पाद ही ब्राह्मणों को श्रवण कराता है वह अक्षय समस्त कामनाओं से पूर्ण पितरों को करके स्वयं भी वहाँ पर उपस्थित हुआ करता है ॥५४॥ जिसके द्वारा यह पुराण पहिले कहा जाता है और जो इसके निरुक्त को जानता है वह सम्पूर्ण पापों से प्रमुक्त होजाता है ॥५५॥ इसी प्रकार से तीनों वर्णों में प्रधानतया जो मनुष्य इस पुनीत पुराण का श्रवण करके धर्म के लिये अपनी मति करता है उसके शरीर में जितने रोमों के छिद्र होते हैं उतने ही सहस्र कोटि वर्ष पर्यन्त वह दिवलोक में रहकर मोद प्राप्त किया करता है ॥५७॥

सर्वपापाहरं पुण्यं पवित्रञ्च यशस्वि च ।
ब्रह्मा ददौ शास्त्रमिदं पुराणं मातरिश्वने ॥५८
तस्माच्चोशनसा प्राप्तं तस्माच्चापि बृहस्पतिः ।
बृहस्पतिस्तु प्रोवाच सवित्रे तदनन्तरम् ॥५९
सविता मृत्यवे प्राह मृत्युश्चेन्द्राय वै पुनः ।
इन्द्रश्चापि वसिष्ठाय सोऽपि सारस्वताय च ॥६०
सारस्वतस्त्रिधाम्ने च त्रिधामा च शरद्वते ।
शरद्वतस्त्रिविष्टाय सोऽन्तरिक्षाय दत्तवान् ॥६१
वर्षिणे चान्तरिक्षो वै सोऽपि त्रय्यारुणाय च ।
त्रय्यारुणो धनञ्जये स च प्रदात्कृतञ्जये ॥६२

कृतञ्जयात्तृणञ्जयो भरद्वाजाय सोऽप्यथ ।
गोतमाय भरद्वाज सोऽपि निर्यन्तरे पुन ॥६३
निर्यन्तरस्तु प्रोवाच तथा वाचश्रवाय च ।
स ददौ सोमशुष्माय स ददौ तृणबिन्दवे ॥६४

समस्त पापो का हरण करने वाला—परम पुण्यमय—पवित्र और यश से परिपूर्ण शास्त्र ब्रह्माजी ने वायुदेव के लिये प्रदान किया था ॥५८॥ उस वायु देव से इसे उशना कवि ने प्राप्त किया था और भार्गव पुत्र से इसकी प्राप्ति बृहस्पति ने की थी। फिर बृहस्पति ने सविता देव को इसको बताया था और इसके अनन्तर सविता ने मृत्यु देव को कहा था। मृत्युदेव ने चन्द्रदेव को बताया था। इन्द्रदेव ने वसिष्ठ मुनि को कहा था तथा वसिष्ठ ने सारस्वत को बताया था ॥५९-६०॥ सारस्वत ने त्रिधामा को इसे बताया था और फिर त्रिधामा ने भारद्वाज् को इसको सुनाया था। भारद्वाज् ने त्रिविष्ट को और त्रिविष्ट ने इसका ज्ञान अन्तरिक्ष को दिया था। अन्तरिक्ष ने वर्षी को इस पुराण का ज्ञान प्रदान किया था और वर्षी ने त्र्यय्यारुण को बताया था त्र्यय्यारुण ने धनञ्जय को और धनञ्जय ने कृतञ्जय को इसका ज्ञान दिया था ॥६१-६२॥ कृतञ्जय से तृणञ्जय ने प्राप्त किया था तथा तृणञ्जय से भरद्वाज मुनि ने इसे पाया था। भरद्वाज ने गौतम को प्रदान किया और निर्यन्तर को प्रदान किया था। निर्यन्तर ने इसका ज्ञान वाजश्रवा को प्रदान किया था। उसने फिर इसे सोमशुष्म को दिया था। सोमशुष्म ने तृणबिन्दु को प्रदान किया था ॥६३-६४॥

तृणबिन्दुस्तु दक्षाय दक्ष प्रोवाच शक्तये ।
शक्ते पराशरश्चापि गर्भस्थः श्रुतवादिनम् ॥६५
पराशराज्जातुकर्णस्तस्माद्द्वैपायन प्रभु ।
द्वैपायनात्पुनश्चापि मया प्राप्त द्विजोत्तमा ॥६६
मया वै तत्पुन प्रोक्त पुत्रायामितबुद्धये ।
इत्येव वाचा ब्रह्मादिगुरुणा समुदाहृता ॥६७
नमस्कार्याश्च गुरव प्रयत्नेन मनीषिभि ।
धन्य यशस्यमायुष्यं पुण्य सर्वार्थसाधकम् ॥६८

पापघ्न नियमेनेद श्रोतव्य ब्राह्मणै सदा ।
नाशुचौ नापि पापाय नाप्यमवत्सरोपिते ॥६६
नाश्रद्दधानाविदुषे नापुत्राय कथञ्चन ।
नाहिताय प्रदातव्य पवित्रमिदमुत्तमम् ॥७०
अव्यक्त वै यस्य योनि वदन्ति व्यक्त देह कालमनार्गतञ्च ।
वह्नि वक्त्र चन्द्र सूर्यौ च नेत्रे दिश श्रोत्रे घ्राणमाहुश्च वायुम् ॥७१
वाचो वेदाश्चान्तरिक्ष शरीर क्षिति पादौ तारका रोमकूपान् ।
सर्वाणि चाङ्गानि तथैव तानि विद्यास्सर्वा यस्य पुच्छ वदन्ति ॥७२
त देवदेव जनन जनाना सर्व्वेषु लोकेषु प्रतिष्ठितञ्च ।
वर वराणा वरद महेश्वर ब्रह्माणमादि प्रयतो नमस्ये ॥७३

तृणविन्दु ने इसको दक्ष को श्रवण कराया था । दक्ष ने शक्ति को दिया था तथा शक्ति के गर्भ मे ही स्थित पराशर ने इसका श्रवण किया था ॥६५॥ पराशर से जातुकर्ण ने तथा जातुकर्ण से द्वैपायन ने इसका ज्ञान प्राप्त किया था और हे द्विजोत्तमो ! द्वैपायन महर्षि से मुझे इसके ज्ञान प्राप्त करने का सौभाग्य मिला था ॥६६॥ वायपायन ने कहा—मैंने फिर इस पुराण रत्न का ज्ञान अमित बुद्धि पुत्र को प्रदान किया था । इसी प्रकार से यह ब्रह्मादि गुरु वर्ग के द्वारा वाणी से यह पुराण कहा गया है । मनीषियो को समस्त गुरु वर्ग को सब प्रथम प्रणाम करना चाहिए यह पुराण परम धन्य है—यश तथा आयु के प्रदान करने वाला परम पुण्यमय और सम्पूर्ण अर्थों का साधक है ॥६७-६८॥ यह पुराण पापो के नाश करने वाला है । ब्राह्मणो को इसका श्रवण नियम पूर्वक सवदा करना चाहिए । यह परम पवित्र तत्र अत्युत्तम पुराण है । इसका श्रवण अशुचि—पापी और ऐसा जो एक वर्ष से कम पास म रहा हो कभी भी उसका श्रवण नही कराना चाहिए । जो श्रद्धालु न हो—विद्वान् न हो तथा पुत्र रहित हो एव अहित हो उसे किसी भी प्रकार से इसका श्रवण नही करावे ॥६६ ७०॥ जिसकी योनि अव्यक्त है तथा देह को व्यक्त और काल को अन्तर्गत कहते हैं । वह्नि को मुख—चन्द्र और सूर्य को नेत्र—दिशाओं को श्रोत्र तथा वायु को प्राण कहा गया है । वेदो को जिसकी वाणी तथा अन्तरिक्ष को

शरीर—क्षिति को चरण एवं तारकों को रोमकूप बताया गया है । उसके अन्य भी सम्पूर्ण अङ्ग भी उसी प्रकार के जानने चाहिए और सभी जिसके पुच्छ कहे जाते हैं उस देव को जो जनों का जन्म स्थान है और सब लोकों में प्रतिष्ठित है । वरों में भी वरदान देने वाले आदि ब्रह्मा महेश्वर को प्रसन्न होकर नमस्कार करता हूँ ।।७१-७२ ७३।।

प्रकरण ६६—व्यास संशय वर्णन

सूत सूत महाभाग त्वया भगवता सता ।
व्यासप्रसादाधिगतशास्त्रसम्बोधनेन च ।।१
अष्टादशपुराणानि सेतिहासानि चानघ ।
उपक्रमोपसंहार विधिनोक्तानि कृत्स्नशः ।।२
पुराणेष्वेषु बहवो धर्मास्ते विनिरूपिता ।
रागिणाञ्च विरागाणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।
गृहस्थानां वनस्थानां स्त्रीशूद्राणां विशेषतः ।।३
ब्राह्मणक्षत्रियविशां ये च सङ्करजातयः ।
गङ्गाद्या या महानद्यो यज्ञव्रततपांसि च ।।४
अनेकविधदानानि यमाश्च नियमैः सह ।
योगधर्मा बहुविधाः सांख्या भागवतास्तथा ।।५
भक्तिमार्गा ज्ञानमार्गा वैराग्यानिलनीरजा ।
उपासनविधिश्चोक्तः कर्मसंशुद्धिचेतसाम् ।।६
ब्राह्मं शैवं वैष्णवं च सौरं शाक्तं तथार्हतम् ।
षड् दर्शनानि चोक्तानि स्वभावनियतानि च ।।७

शौनक आदि ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आप तो महान् भाग वाले हैं आपने भगवान् व्यास देव से भली भाँति ज्ञान पूर्वक परम उनकी कृपा के प्रसाद से इस शास्त्र का अध्ययन किया है हे निष्पाप ! आपने अष्टादश पुराण

तथा इतिहास सम्पूर्ण उपक्रम एवं उपसहार पूर्वक वर्णन किये हैं ॥१-२॥ इन पुराणो मे आपने बहुत-से धर्मों का निरूपण किया है उनमे राशियो के विरागो मे--यतियो के-ब्रह्मचारियो के-गृहस्थो के-वानप्रस्थो के और विशेष रूप से स्त्रियो के तथा शूद्रो के धर्मों का आपने निरूपण किया है ॥३॥ जो ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य द्विजातियाँ और जो सङ्कर जातियाँ हैं—गङ्गा आदि महा नदियाँ और यज्ञ, बल तप प्रभृति हैं। अनेक प्रकार के दान-यम और नियम तथा बहुत तरह के योग धर्म-सांख्य धर्म एवं भागवत धर्म हैं। भक्ति मार्ग और ज्ञान मार्ग जोकि वैराग्य अनिल नीर मे उत्पन्न होने वाले हैं। इन सबका आपने वर्णन किया है तथा कर्मों की मशुद्धि से समन्वित चित्त वालो की उपासना की विधि का आपके द्वारा वर्णन किया गया है ॥३-४-५-६॥ आपने ब्राह्म-शैव-वैष्णव-शाक्त-सौर तथा अर्हत इन स्वभाव से नियत छै दर्शनो को कहा है ॥७॥

एतदन्यच्च विविध पुराणेपु निरूपितम् ।
अत पर किमप्यस्ति न वा वोद्धव्यमुत्तमम् ॥८
न ज्ञायेत यदि व्यासो गोपायेदथ वा भवान् ।
अत्र न सशय छिन्धि पूर्ण पौराणिको यत ॥९
श्रृणु शौनक वक्ष्यामि प्रश्नमेन सुदुर्लभम् ।
अतिगोप्यतर दिव्यमनाख्येय प्रचक्षते ॥१०
पराशरसुतो व्यास कृत्वा पौराणिकी कथाम् ।
सर्ववेदार्थघटिता चिन्तयामास चेतसि ॥११
वर्णाश्रमवता धर्मो मया सम्यगुदाहृत ।
भुक्तिमार्गा बहुविधा उक्ता वेदाविरोधतः ॥१२
जीवेश्वरब्रह्मभेदो निरस्त. सूत्रनिर्णये ।
निरूपित पर ब्रह्म श्रुतियुक्तविचारतः ॥१३
अक्षर परम ब्रह्म परमात्मा पर पदम् ।
यदर्थं ब्रह्मचर्यादिवानप्रस्थयतिव्रतम् ॥१४

यह सब तथा अन्य अनेक प्रकार के विषयो का पुराणो मे आपने निरू-
है। [illegible] कुछ भी [illegible] के मे [illegible]

रहता है ॥८॥ यह नहीं जाना जाता है कि व्यास महर्षि अथवा आपने इसमें कुछ गोपन किया है । यहाँ पर आप हमारे संशय का छेदन कीजिए क्योंकि पूर्ण पौराणिक हैं ॥९॥ श्री सूतजी ने कहा—हे शौनक ! आप ध्यान पूर्वक श्रवण करो मैं इस सुदुर्लभ प्रश्न का उत्तर देता हूँ । अति गोप्य तम वस्तु आख्येय नहीं होती है ॥१०॥ पराशर मुनि के पुत्र महर्षि व्यास देव ने समस्त वेदों के अर्थ से परित पौराणिकी कथा का सम्पादन करके फिर चित्त में चिन्तन किया था ॥११॥ मैंने वर्णों तथा आश्रमों के पालन करने वाले लोगों के धर्म को भली भाँति कथन किया है और वेद के अविरोध रखते हुए बहुत प्रकार के मुक्ति के मार्गों का भी निरूपण कर दिया है ॥१२॥ सूत्र के निर्णय में जीव ईश्वर और ब्रह्म का भेद निरस्त किया है और श्रुति से युक्त विचार द्वारा पर ब्रह्म का निरूपण किया है ॥१३॥ परम ब्रह्म अक्षर है और परमात्मा ही परम पद होता है जिसके प्राप्त करने के लिये ही ब्रह्मचर्य से आदि लेकर वानप्रस्थ एव यति के व्रत करते हैं ॥१४॥

आचरन्ति महाप्राज्ञा धारणाश्च पृथग्विधाम् ।
आसन प्राणरोधश्च प्रत्याहारश्च धारणा ॥१५
ध्यान समाधिरेतानि यमैश्च नियमै सह ।
अष्टाङ्गानि यदर्थश्च चरन्ति मुनिपुङ्गवा ॥१६
यदर्थं कर्म कुर्वन्ति वेदाज्ञामात्रतत्परा ।
परार्पणधिया सम्यग् निष्कामा कलिलोज्झिता ॥१७
यज्ञात्मये निराकर्तुं पापाचरणमात्मन ।
गङ्गादितीर्थचर्याणि निषेवन्ते शुचिव्रता ॥१८
तद्ब्रह्म परम शुद्धमनाद्यन्तमनामयम् ।
नित्य सर्वगत स्थाणु कूटस्थ कूटवर्जितम् ॥१९
सर्वेन्द्रियचराभास प्राकृतेन्द्रियवर्जितम् ।
दिक्कालाद्यनवच्छिन्न नित्य चिन्मात्रमव्ययम् ॥२०
अध्यास्त सर्पवद्यत्र विश्वमेतत्प्रकाशते ।
विश्वस्मिन्नपि चान्वेति निर्विकारश्च रज्जुवत् ॥२१

महान् पण्डित लोग धारणा को पृथक् प्रकार का आचरण किया करते हैं। मुनियों में श्रेष्ठ लोग यम और नियमों के साथ आसन–प्राणरोध–प्रत्याहार–धारणा–ध्यान–समाधि–इन आठ अङ्गों को जिसके लिये किया करते हैं ॥१५-१६॥ वेद की केवल आज्ञा में ही परायण रहने वाले परायणों की बुद्धि में कलिन्दोभिन्न और निष्काम होते हुए भली भाँति जिसके लिये कर्म किया करते हैं ॥१७॥ जिसकी ज्ञप्ति (ज्ञान) के लिये शुचि बन कर होकर अपनी आत्मा के पाप के आवरणों का निराकरण करने के लिये गङ्गा आदि महान् तीर्थों का आचरण और सेवन किया करते हैं ॥१८॥ यह ब्रह्म परम शुद्ध आदि–अन्त से रहित–अनामय–नित्य–सब में रहने वाला–स्थाणु–कूटस्थ–कूटवर्जित–सर्वेन्द्रिय कराभास–प्राकृत इन्द्रियों से वर्जित–दिशा और काल आदि से अनवच्छिन्न–नित्य–चिन्मात्र अर्थात् ज्ञान स्वरूप–अव्यय और सर्वज्ञ अध्यास है जिसमें यह विश्व प्रकाशित होता है और इस विश्व में भी निर्विकार रज्जु की भाँति अनुगमन किया करता है ॥१९-२०-२१॥

सम्यग्विचारितं यद्वत्फेनोर्मिबुद्बुदोदकम् ।
तथा विचारितं ब्रह्म विश्वस्मान्न पृथग्भवेत् ॥२२
सर्वं ब्रह्मैव नानात्वं नास्तीति निगमा जगुः ।
यस्माद्भवन्ति ब्रह्माण्डकोटयो न भवन्ति च ॥२३
यदुन्मेषनिमेषाभ्यां जगतां प्रलयोदयौ ।
भवेतां या परा शक्तिर्यदाधारतया स्थिता ॥२४
यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं यदिदं स्मृतम् ।
यदज्ञानाज्जगद्भाति यस्मिन् ज्ञाते जगन्न हि ॥२५
असत्यं यज्जडं दुःखमवस्त्विति निरूपितम् ।
विपरीतमतो यद्वै सच्चिदानन्दमूर्तिकम् ॥२६
जीवे जाग्रति विश्वाख्यं स्वप्ने यत्तैजसं स्मृतम् ।
सुषुप्तौ प्राज्ञसंज्ञं तत्सर्वात्रिस्थासु संस्मृतम् ॥२७
यच्चक्षुषा चक्षुरथ श्रोत्राणां श्रोत्रमस्ति च ।
त्वच् त्वचा रसनं तस्य प्राणं प्राणस्य यद्विदुः ॥२८

भली भाँति विचार किया हुआ यह फेन की तरङ्ग वाले उदक के बुद-बुदे की भाँति होता है। उसी तरह से विचारित ब्रह्म इस विश्व से पृथक् नहीं होता है ॥२२॥ यह सम्पूर्ण ब्रह्म ही है, नानात्व नहीं है—ऐसा निगमों ने गान किया है अर्थात् वेदों ने बताया है। जिससे करोड़ों ब्रह्माण्ड हुआ करते हैं और नहीं भी होते हैं ॥२३॥ जिसके उन्मेष तथा निमेषों से अर्थात् नेत्र के पलकों के खोलने तथा मूँदने से ही इन समस्त जगतों में उदय तथा प्रलय हुआ करते हैं। जो कि परम आधार की शक्ति है जिसके आधार को ग्रहण करके यह स्थित है ॥२४॥ यह जिसमें है-जिससे यह है-जिसके द्वारा यह है और जो यह कहा गया है। जिसके अज्ञान से यह जगत् प्रतीत होता है अर्थात् दिखलाई देता है और जिसके ज्ञात हो जाने पर अर्थात् जिसका पूर्णतया ज्ञान प्राप्त कर लेने पर यह जगत् कुछ भी नहीं है ॥२५॥ जो असत्य है वही जड़ एवं दुःख स्वरूप होता है—ऐसा निरूपण किया गया है। इसके विपरीत जो है वह सत्-चित् और आनन्द के स्वरूप वाला होता है ॥२६॥ जीव के जाग्रत् होने पर वह विश्व नाम वाला है और स्वप्न में जो तैजस बताया गया है। सुषुप्ति की दशा में प्राज्ञ संज्ञा वाला होता है यह सभी अवस्थाओं में सस्मृत किया गया है ॥२७॥ जो चक्षुओं का चक्षु है—श्रोत्रों का श्रोत्र है—त्वचाओं का त्वक् रसना का रस और प्राण का भी प्राण कहा गया है ॥२८॥

बुद्धिर्मनेन च प्राणः क्रियाशक्त्या निरन्तरम् ।
यन्नेशिरे समभ्येतु ज्ञातु च परमार्थत ॥२६
रज्जावहिर्मरौ वारि नीलिमा गगने यथा ।
असद्विश्वमिदं भाति यस्मिन्नज्ञानकल्पितम् ॥३०
घटावच्छिन्न एवायं महाकाशो विभिद्यते ।
कार्योपाधिपरिच्छिन्न तद्वज्जीवसंज्ञिकम् ॥३१
मायया चित्रकारिण्या विचित्रगुणशीलया ।
ब्रह्माण्ड चित्रमतुलं यस्मिन् भित्ताविवार्पितम् ॥३२
धावतोऽन्यानतिक्रान्त वदतो वागगोचरम् ।
वेदवेदान्तसिद्धान्तैर्विनिर्णीत तदक्षरम् ॥३३

गोलोकवासी भगवानक्षरात्पर उच्यते ।
तस्मादपि परः कोऽसौ गीयते श्रुतिभिः सदा ॥३८
उद्दिष्टो वेद वचनैर्विशेषो ज्ञायते कथम् ।
श्रुतेर्वार्थोऽन्यथा बोध्यः परतस्त्वक्षरादिति ॥३६
श्रुत्यर्थे संशयापन्नो व्यासः सत्यवतीसुतः ।
विचारयामास चिरं न प्रपेदे यथातथम् ॥४०
विचारयन्नपि मुनिर्नापि वेदार्थनिश्चयम् ।
वेदो नारायणः साक्षाद्यत्र मुह्यन्ति सूरयः ॥४१
तथापि महतीमार्त्ति मता हृदयतापिनीम् ।
पुनर्विचारयामास क्व प्रजामि करोमि किम् ॥४२
पश्यामि न जगत्यस्मिन्सर्वज्ञं सर्वदर्शनम् ।
अज्ञात्वाऽन्यतमं लोके सन्देहविनिवर्त्तकम् ॥४४

इस प्रकार से चिन्मात्र (केवल ज्ञान स्वरूप) गुणों से रहित तथा भेद से वर्जित ब्रह्म में जो कि गोलोक की संज्ञा वाले में कृष्ण दीप्यमान होता है—ऐसा मैंने श्रवण किया है ॥३६॥ इससे परे कुछ भी निगम और आगमों में भी नहीं है । तोभी निगम परात्पर अक्षर से भी पर गोलोक में नित्य निवास करने वाले भगवान् हैं—ऐसा कहा जाता है । श्रुतियों के द्वारा सदा उससे भी परे यह कौन है—यह सदा गाया जाता है ॥३७॥ वेद के वचनों के द्वारा जो उद्दिष्ट है वह विशेष कैसे जाना जाता है अथवा "परतोऽक्षरात्" इस प्रश्न का श्रुति का अर्थ अन्य प्रकार से जानना चाहिये । इस प्रकार से सत्यवती के आत्मज व्यासदेव ने इस श्रुति के अर्थ में संशय को प्राप्त होकर अधिक समय तक विचार किया था किन्तु तोभी यथार्थ अर्थ को प्राप्त नहीं होसके थे ॥३८॥-३६-४०॥ श्री सूतजी ने कहा—इस तरह बहुत समय तक विचार करते हुए भी व्यास मुनि वेद के अर्थ का निश्चय नहीं कर सके थे । वेद तो साक्षात् नारायण भगवान् का स्वरूप है जहाँ पर बड़े २ महामनीषी भी मोह को प्राप्त होजाया करते हैं ॥४१॥ सत्पुरुषों के हृदय को ताप पहुँचाने वाली बड़ी भारी भ्रान्ति (पीडा) को वे प्राप्त होकर फिर विचार करने लगे थे कि अब इस हृदय के

संशय को निवारण करने के लिये मैं किसके समीप में जाऊँ और क्या उपाय करूँ ॥४२॥ इस जगत् में मैं ऐसा सर्वज्ञ और सब कुछ को देखने वाला किसी को भी नहीं देखता हूँ। इस तरह अन्य किसी को भी लोक में इस अपने संदेह को निवृत्त कर देने वाला न देखकर उन्होंने तपस्या करने का ही निर्णय किया था ॥४३॥

मेरोः कुहरिणीं गत्वा चचार परमं तपः ।
यत्र कान्तं स्वरस्फूर्जज्ज्योत्स्नाभूर्लैनिरन्तरजा ॥४४
सदा प्रबाधते दिष्वक्तम स्तोम दृशन्तुदम् ।
चकास्ते यत्र परमं कान्तारमतिसुन्दरम् ॥४५
नानाद्रुमलताकुञ्जकूजत्पक्षिनिनादितम् ।
क्षुत्पिपासाभयक्रोधतापग्लानिविवर्जितम् ॥४६
जलाशयैर्बहुविधैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः ।
जातरूपशिलानद्धतटसञ्चारपक्षिभिः ॥४७
युक्तमम्भोज पवनैः सेव्यमानं समन्ततः ।
शिवैरध्यासितम्भावैर्हिंस्रैः मत्त्वैः समुज्झितम् ॥४८
निर्जनं दिव्यलतिकाप्रियखण्डविराजितम् ।
शुकैः पारावतैः हंसैः रुन्मदन्मत्तकोकिलम् ॥४९
उत्पतत्पुष्परजसा पाटलामोददिङ्मुखम् ।
तत्रापि काञ्चनी दिव्या गुहा परमशोभना ॥५०

फिर व्यास मुनि ने मेरु पर्वत की गुफा में जाकर परम उग्र तप किया था जहाँ पर सुवर्ण की स्फुरित ज्योत्स्ना के समूह से निरन्तर पूर्ण प्रकाश रहा करता है ॥४४॥ और सदा ही नेत्रों को पीड़ा देने वाला चारों ओर फैला हुआ अन्धकार का समुदाय प्रबाधित होता है। जहाँ पर वन अत्यन्त सुन्दर स्वरूप से प्रकाशित होता रहता है ॥४५॥ उस वन में अनेक प्रकार के वृक्ष तथा लताएँ सुशोभित हैं और उन पर पक्षियों का कलरव हुआ करता है जो कि बहुत ही श्रुति प्रिय है। वह वन भूख–प्यास–भय–क्रोध–ताप और ग्लानि से रहित है ॥४६॥ वहाँ बहुत से अनेक प्रकार के सुन्दरतम जलाशय हैं जिनमें कमलिनी

क समूहा की सुषमा छाई हुई है और सुवर्ण की शिलाओं से उनके तटा का निर्माण हो रहा है तथा वहा अनेक पक्षियो का सञ्चार बराबर होता रहा करता है ॥४७॥ वह वन पक्षियों की मिश्रित वायु से सव्यमान है तथा कल्याण प्रद भावों म युक्त और हिंसक जीवो से रहित है ॥४८॥ वहाँ एकदम निजन स्थान है और वह परम दिव्य लताओं के द्वारा अत्यन्त शोभायमान है जहा शुक और पारावत अत्यन्त सुन्दर हैं और मत्त कोकिलो की मधुर ध्वनि श्रवण गोचर हुआ करती है ॥४९॥ सभी दिशाओं मे पद्मो की पराग उडकर फैली हुई पाटलवर्ण एव सुगन्ध दिखाई देती है और घ्राण को परम आमोद प्राप्त होता है। उसम भी सुवर्ण की एक अत्यन्त दिव्य और अधिक शोभा से युक्त गुफा है ॥५०॥

ता प्रविश्य जिताहारो जितचित्तो जितासन
सस्मार वेदाश्चतुरस्तदेकाग्रमना मुनि ॥५१
अथो जगाम शरदा द्रतस्य स्मरतोऽस्य हि ।
प्रादुरासस्ततो वेदाश्चत्वारश्चारुदर्शना ॥५२
स्फुरत्पद्मलाशाक्षा जटामुकुटधारिण ।
घुशमुष्टिकराम्भोजा मृगत्वड्मण्डितासका ॥५३
स्वरं षोडशभि वलृप्त वदना प्रणवान्तरा ।
कचवर्गोद्भवैर्वर्णै पञ्चावयवपाणय ॥५४
पवर्गदक्षजरणा वामपादास्तवर्गत ।
तेषामन्तस्थवर्णाभौ येषा कुक्षिद्वयात्मकौ ॥५५
नाभिनिद्रा वान्तपृष्ठा मोदरा यरलवो वचा ।
अग्निदक्षादारचिरा धराग्रीवा भृनासका ॥५६
अन्तस्थसन्धिसस्थाना वैखरीवाग्विजृम्भिता ।
अपश्यन्मयुरामेषा हृदयाम्भोजकल्पिताम् ॥५७
हरेर्भगवत साक्षादाविर्भावस्थली हि सा ।
धाशोमपश्यद् भ्रूमध्ये मालामाधारसस्थिताम् ॥५८

उस गिरि गुफा मे व्यास मुनि ने प्रवेश किया था और आहार–चित्त तथा आसन को जीत कर वहाँ पर मुनि ने अत्यन्त एकाग्र मन करके चारों पदों के अर्थ का भली भाँति स्मरण किया था ॥५१॥ इस प्रकार से स्मरण करते हुए मुनि को तीन सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे इसके अनन्तर वहाँ चारो वेदों का प्रादुर्भाव हुआ था जिनका दर्शन परम सुन्दर था ॥५२॥ वे चारो मूर्तिमान् वेद कमल के समान सुन्दर नेत्रो से युक्त थे तथा मस्तक पर जटा एव मुकुट धारण करने वाले थे। उनके हस्त कमलों मे कुशाओ का पुञ्ज था और कन्धे पर मृगछाला पड़ी हुई थी ॥५३॥ षोडश स्वरो से उनके मुख कमल थे जिनके मध्य मे प्रणव था। कवर्ग और चवर्ग से उत्पन्न होने वाले वर्णों के द्वारा उनके पाँचो अवयव और हाथ थे ॥५४॥ ट वर्ग से उनका दाहिना चरण था और तवर्ग से वाम पाद की रचना थी। उनकी दोनो कुक्षियाँ अन्तस्थ (य र ल व) वर्णों से युक्त थीं ॥५५॥ नाभि निद्रा वाले–शान्त (सुन्दर) पृष्ठ (पीठ) वाले–मोदर तथा मर सब कच (केश) वाले थे। अग्नि दशांश से अत्यन्त रवि–धरा की ग्रीवा (गरदन) वाले और कन्धो वाले थे ॥५६॥ अन्तरूपो से नक्षियो के संस्थान से समन्वित थे तथा वैखरी वाणी से विजृम्भित होने वाले थे। इनके हृदय कमल से कल्पित मथुरा को व्यास मुनि ने देखा था ॥५७॥ वह मथुरा भगवान् हरि की साक्षात् अविर्भाव होने की स्थली थी। भृकुटियों के मध्य मे आकार से संस्थित माया स्वरूपिणी को तथा काशीपुरी को देखा था ॥५८॥

लिङ्गदेशे तत मारवीमवन्ती नाभिमण्डले ।
कण्ठस्यां द्वारकामेषा प्रयाग प्राणगं तथा ॥५९
सव्यापसव्ययोरेषा गङ्गाऽपि यमुना नदी ।
मध्ये सरस्वती साक्षाद् गयाक्षेत्र तथानने ॥६०
हनुग्रीवान्तिमध्यगत प्रभासक्षे त्रमुत्तमम् ।
बदर्य्याश्रममेतेषां ब्रह्मरन्ध्रं ददर्श ह ॥६१
पौण्ड्रवर्धननेपालपीठ नयनयोर्युगे ।
पीठ पूर्णगिरिनाम ललाटे समदृक्षत ॥६२

कण्ठे च मथुरापीठ काञ्चीपीठ कटिस्थितम्
जालन्धर तथा पीठ स्तनदेशेष्वदृश्यत ।।६३
भृगुपीठ कर्णदेशे ह्ययोध्या नासिकापुटे ।
ब्रह्मरन्ध्रे स्थित ब्राह्म शव सीमन्तसोमनि ।।६४

लिङ्ग देश मे काञ्चीपुरी को और नाभि मण्डल मे अवन्तीपुरी को देखा था। कण्ठ देश मे सस्थित द्वारका को तथा प्राणो मे गमन करने वाले प्रयाग का दर्शन किया था ।।५६।। उन वेदो मे बाई और दाहिनी ओर म गङ्गा तथा यमुना नदी को देखा था। उनके मध्य मे सरस्वती नदी थी और मुख के देश मे साक्षात् गया क्षेत्र था ।।६०।। ठोडी और ग्रीवा (गरदन) के मध्य मे रहने वाला उत्तम प्रभास क्षेत्र था। इनके ब्रह्मरन्ध्र मे वदर्याश्रम था जिसका स्पष्ट तप व्यास मुनि ने दर्शन किया था ।।६१।। दोनो देसो मे पौण्ड वर्धन नेपाल पीठ था और ललाट मे पूर्ण गिरिनाम वाला पीठ देखा था ।।६२।। कण्ठ मे मथुरा पीठ तथा कटि प्रदेश मे काञ्ची पीठ था। तथा जाल धर पीठ स्तन देश मे दिखाई दिया था ।।६३।। कर्ण देश मे भृगुपीठ और नासिका देश मे अयोध्या पीठ था। ब्रह्मरन्ध्र मे ब्राह्म पीठ था और सीमान्त की सीमा मे शैव पीठ था ।।६४।।

शाक्त जिह्वाग्र घिषण शैष्णव हृदयाम्बुजे ।
सौर चक्षु प्रदेशस्थ बौद्धञ्छायासु सङ्गतम् ।।६५
सौत्रामणि कण्ठदेशे पशुबन्धमथोरसि ।
वाजपेय कटितटे ह्यग्निहोत्र तथानने ।।६६
अश्वमेध कटितटे नरमेधमथोदरे ।
राजसूय शिरोदेशे आवसथ्य तथाऽधरे ।।६७।।
ऊर्ध्वोष्ठे दक्षिणाग्निश्च गार्हपत्य मुखान्तरे ।
हव्य श्रुतौ मन्त्रभेदास्तथा रोमस्ववस्थितान् ।
भूत्यैरिव महाराज पुराणन्यायमिश्रितं ।।६८
सहिताभिश्च तन्त्रैश्च पृथक्पृथगुपासितान् ।
धर्म ज्ञानोपासनाभिर्जनानुग्रहकारकान् ।।६९

दृष्ट्वा सुविस्मितमना मुनि कृष्णो बभूव तान् ।
ब्रह्मतेजोमयान्दिव्यास्तपतोऽर्कानिव च्युतान् ।
ज्वलतोऽग्नीनिवोदर्कान्कोटीन्दुसमदर्शनान् ॥७०

शाक्त पीठ जिह्वा के अग्र भाग मे स्थित था तथा हृदय कमल मे वैष्णव पीठ था। सौर पीठ चक्षु प्रदेश मे स्थित था तथा बौद्ध छायाओ मे सङ्गत था ॥६५॥ कण्ठ प्रदेश मे सौत्रामणि उर मे पशुबन्ध–कटितट मे बाज पेय तथा आनन मे अग्नि होत्र था ॥६३॥ कटितट मे अश्व मेघ–उदर में नरमेघ शिरोदेश मे राजसूय तथा अधर मे आवसथ्य था ॥६७॥ ऊपर के ओष्ठ मे दक्षिणाग्नि–मुख के अन्दर मे गार्हपत्य अग्नि–श्रुति मे (कान मे) हव्य तथा रोमो मे अवस्थित मन्त्र भेदो को देखा था। न्याय मिश्रित पुराणो मे इस भाँति सेवित थे जैसे भृत्यो के द्वारा कोई महाराज हों ॥६८॥ संहिताओ के और तन्त्रो के द्वारा पृथक् २ समुपासित एव कर्म, ज्ञान और उपासनाओ के द्वारा जनो पर अनुग्रह करने वाले उन वेदो को देख कर कृष्ण द्वैपायन मुनि अत्यन्त विस्मित मन वाले हो गय थे। वे ब्रह्म तेज से परिपूर्ण–परम दिव्य–सूर्य के समान तपे हुए – जलती हुई अग्नि के तुल्य उदर्क एव करोडो चन्द्रो के समान दिखलाई देने वाले थे ॥७६-७०॥

ववन्दे सहसोत्थाय दण्डवत्पतितो मुनि ।
कृतार्थोऽह कृतार्थोऽह कृतार्थोऽहमितीरयन् ॥७१
अद्य मे सफल जन्म अद्य मे सफल मन ।
अद्य मे सफलश्चायुर्यद्भवन्तोऽक्षिगोचरा ॥७२
अलौकिक लौकिकञ्च यत् किञ्चिदपि विद्यते ।
न तद्वोऽविदित वेद्य भूत भव्य भवच्च यत् ॥७३।
न प्रवृत्तिफला यूय दर्शयन्तोऽपि तान्सदा ।
यदृच्छाकरसङ्कोचविधानायेह रागिणाम् ॥७४
प्रपञ्चस्यापि मिथ्यात्वे ब्रह्मत्वे वा विधीतरौ ।
न मृषारागविषयौ तत्सङ्कोचविधिक्षयौ ॥७५

अतो लोकहितैर्नूनं परमार्थं निरूपणे ।
स्वोक्ता स्वर्गादिविषया नश्वरा इति निन्दिता ॥७६
अधिकारिविभेदेन कर्मज्ञानोपदेशतः ।
अतः सर्वं जगन्नूनं शब्दब्रह्मात्समूर्त्तिभिः ॥७७

इस प्रकार के स्वरूप वाले उनका दर्शन प्राप्त कर व्यास मुनि सहसा उठ कर खड़े हो गये और दण्ड की भाँति पड़ कर उनकी वन्दना की थी तथा व्यास मुनि अपने मुख से दण्डवत् प्रणाम करते हुए यह कहते जा रहे थे—मैं कृतार्थ होगया–मैं सफल होगया और पूर्ण मनोरथ वाला हो गया हूँ ॥७१॥ आज मेरी सम्पूर्ण आयु सफल हो गई कि आप मेरी आँखों के समक्ष मे प्रत्यक्ष रूप से गोचर होगये हैं ॥७२॥ आपके लिए कुछ भी अविदित नहीं है। भूत–भव्य और वर्त्तमान सभी आपको वेद्य हैं ॥७३॥ उन सब को सर्वदा देखते हुए भी आप लोग प्रवृत्ति फल वाले नहीं हैं। क्यो कि इस ससार मे रागी पुरुष यदृच्छा कर सङ्कोच से विधान करने वाले होते हैं ॥७४॥ इस प्रपञ्च के मिथ्यात्व होने पर भी तथा ब्रह्मत्व मे विधि निषेध उनके सङ्कोच विधि और क्षय मृषाराग के विषय नहीं हैं ॥७५॥ अतएव लोकहितों के द्वारा परमार्थ के निरूपण मे अपने से कहे हुए स्वर्गादि के विषय नाशवान् हैं इस लिए निन्दित होते हैं ॥७६॥ शब्द ब्रह्म की मूर्त्ति वाले आपने अधिकारी के भेद से कर्म और ज्ञान के उपदेश के द्वारा इस सम्पूर्ण जगत् की निश्चय ही रक्षा की है ॥७७॥

अतोऽहं प्रष्टुमिच्छामि भवन्तश्चेत्कृपालवः ।
कर्मणा फलमादिष्टं सर्गे कामकचेतसाम् ॥७८
ईशार्पितधिया पुंसा कृतस्यापि च कर्मणः ।
चित्तशुद्धिस्ततो ज्ञानं मोक्षश्च तदनन्तरम् ॥७९
मोक्षो ब्रह्मं वयमित्येव सच्चिदानन्दमेव यत् ।
सर्वं समाप्यते तस्मिञ्ज्ञाते यद्धि कृताकृतम् ॥८०
यस्मि मज्ज चिदाकाशं ज्ञानरूपमसंवृतम् ।
निरीहमचलं शुद्धमगुणं व्यापकं स्मृतम् ॥८१

विकारेषु विनश्यत्सु निर्विकार न नश्यति ।
यथान्धतमसा व्याप्तलोकस्य रविरोजसा ॥८२
लोहस्येव मणिस्तद्वदरणिश्चानले यथा ।
यदाभासेन सा सत्ता प्रतिपद्य विजृम्भते ॥८३
जीवेश्वरादिरूपेण विश्वाकारेण चाप्यहो ।
तस्यामपि प्रलीनायां कूटस्थश्च यदेकलम् ॥८४
भवद्भिरेव निर्णीत तत्तथैव न संशय. ।
तथापि मम जिज्ञासा वर्त्तते केवल हृदि ॥८५
अतोऽपि परम किञ्चिद्वर्त्तते किल वा न वा ।
तद्वदन्तु महाभागा भवन्तस्तत्त्वदर्शना ॥८६

यदि आप मेरे ऊपर कृपालु हैं तो मैं आपसे अब यह ही पूछना चाहता हूँ कि कर्म का फल आदिष्ट किया है और कामना से पूर्ण चित्त वालो का सर्ग बताया है । ईश्वर में समर्पित बुद्धि वाले मानवो के किये हुए कर्म से भी चित्त की शुद्धि होती है फिर इसके अनन्तर ज्ञान होता है और इसके पश्चात् मोक्ष होता है ॥७८-७९॥ मोक्ष ब्रह्म के साथ ऐक्य को ही कहा जाता है जोकि सत्-चित् और आनन्द स्वरूप है । जो भी कुछ कृत तथा अकृत है वह उसके ज्ञान करने पर सभी कुछ समाप्त हो जाता है ॥८०॥ जो सङ्ग रहित-चिदा-कारा-ज्ञानस्वरूप वाला-असवृत-निरीह-अचल-शुद्ध-बिना गुण वाला और व्यापक कहा गया है ॥८१॥ समस्त विकारो के विनष्ट होजाने पर भी वह विकार रहित है अतएव नष्ट नही होता है । वह तो इस प्रकार है जैसे अन्ध-कार से व्याप्त लोक के लिये ओज से रवि होता है ॥८२॥ लोहे को मणि की भाँति और अनल मे अरणि के समान वह होता है । जिसके आभास से वह सत्ता को प्राप्त होकर विजृम्भित है ॥८३॥ यह जीव और ईश्वर के स्वरूप मे विश्व का आकार होना है । इसके भी प्रलीन होजाने पर एक कूटस्थ रहता है ॥८४॥ यह सभी कुछ आपने निर्णय किया है और वह उसी प्रकार का ही है, आपके इस कथन मे कुछ भी सशय नही है । तो भी मेरे हृदय मे केवल एक जिज्ञासा होती है ॥८५॥ वह जिज्ञासा यही है कि इससे भी

मागे कुछ है या नहीं है। हे महान् भाग वालो ! आप यही कृपा कर मुझे बताइये क्योंकि आप तो तत्त्वा के पूर्ण ज्ञाता हैं ॥८६॥

यच्छ्रुत्व फलमेवेह जनुषो मे कृतार्थता।
एव ब्रुवन्तमनघ व्यास सत्यवतीसुतम्।
साधु साध्विति सङ्कीर्त्य प्रत्यूचु निगमा वच ॥८७
साधु साधु महाप्राज्ञा विष्णुरात्मा शरीरिणाम्।
अजोऽपि जन्म सम्पद्य लोकानुग्रहमीहसे ॥८८
अन्यथा ते न घटते ससारकर्म्मबन्धनम्।
अस्पृष्टो मायया देव्या वदाजिज्ञानगूढ्या ॥८६
बिभर्षि स्वेच्छया रूप स्वेच्छयैव निगूहसे।
अस्मत्सम्मत एवार्थो भवता सम्प्रदर्शित ६०
पुराणेष्वितिहासेषु सूत्रेष्वपि च नैकधा।
अक्षर ब्रह्म परम सर्वकारणकारणम् ॥६१
तस्यात्मनोऽप्यात्म भावतया पुष्पस्य गन्धवत्।
रसवद्वा स्थित रूपमवेहि परम हि तत् ॥६२
अनुभूत तदस्माभिर्जात प्राकृतिके लये।
अक्षरात्परतस्तस्माद्यत्पर कैवलो रस ।
न च तत्र वय शक्ता शब्दातीते तदात्मवाः ॥६३

यहाँ इसका श्रवण करना ही मेरे जीवन का फल है और इसके करने से मेरे जन्म की सफलता होगी। इस प्रकार से बोलने वाले अघरहित सत्यवती के पुत्र व्यास महर्षि से साधु-साधु (अच्छा-अच्छा)—यह कहकर निगमों (वेदों) ने वचन कहे थे ॥८७॥ वेदों ने कहा—बहुत अच्छा है आप महान् प्राज्ञ हैं और शरीर धारियों के विष्णु आत्मा हैं। आप अजन्मा होकर भी जन्म धारण कर लोगों के अनुग्रह की इच्छा करते हैं ॥८८॥ अन्यथा आपको इस ससार का कर्म बन्धन घटित नहीं होता है - ज्ञान से गूढ़ माया देवी से अस्पृष्ट आप अपनी ही इच्छा से स्वरूप को धारण करते हैं और स्वेच्छा से ही उसे निगूहित किया करते हैं। हमारे सम्मत जो अर्थ है वही आपने भी प्रदर्शन

किया है ।।८६-६०।। पुराणो मे—इतिहासो मे और सूत्रो मे भी एक ही प्रकार से नही बताया गया है । अक्षर परम ब्रह्म है और सब कारणो का भी कारण है ।।६१।। आत्मा स्वरूप उसके भी आत्म भावना से पुष्प की गन्ध की भाँति अथवा रस के समान वह परम रूप स्थित रहता है—ऐसा उसे जान लो ।।६२।। प्राकृतिक लय के होजाने पर हमने अनुभव किया है । उस अक्षर से परे केवल रस ही होना है । शब्दात्मक हम शब्दातीत उसमे पहुँचने को समर्थ नहीं हैं ।।६३।।

प्रकरण ६७—गया माहात्म्य

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि गयामाहात्म्यमुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्रसशय ।।१
सनकाद्यैर्म्महाभागैर्देवर्षिः स च नारद ।
सनत्कुमार पप्रच्छ प्रणम्य विधिपूर्व्वकम् ।।२
सनत्कुमार मे ब्रूहि तीर्थं तीर्थोत्तमोत्तमम् ।
तारक सर्वभूताना पठता शृण्वता तथा ।।३
वक्ष्ये तीर्थवर पुण्य श्राद्धादौ सर्वतारकम् ।
गयातीर्थं सर्वदेशे तीर्थेभ्योऽप्यधिक शृणु ।।४
गयासुरस्तपस्तेपे ब्रह्मणा क्रतवेऽर्थित ।
प्राप्तस्य तस्य शिरसि शिला धर्मो ह्यधारयत् ।।५
तत्र ब्रह्माऽकरोद्याग स्थितश्चापि गदाधर ।
फल्गुतीर्थादिरूपेण निश्चलार्थमहर्निशम् ।
गयासुरस्य विप्रेन्द्रब्रह्माद्यं देवतं सह ।।६
कृतयज्ञो ददौ ब्रह्मा ब्राह्मणेभ्यो गृहादिकम् ।
श्वेतकल्पे तु वाराहे गयायागमकारयत् ।।७
गयानाम्ना गया ख्याता क्षेत्र ब्रह्माभिकाङ्क्षितम् ।
काङ्क्षन्ति पितर पुत्रान्नरकाद्भय भीरव ।।८

वायुदेव ने कहा—इसके आगे मैं अब अत्युत्तम गया का माहात्म्य बताता हूँ। जिसका श्रवण कर मानव समस्त पापों से विमुक्त हो जाता है। इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१॥ सूतजी ने कहा—सनकादि महान् भाग वालों से युक्त देवर्षि नारद ने सनत्कुमार से विधि के साथ प्रणाम करके पूछा था ॥२॥ नारदजी ने कहा—हे सनत्कुमार ! मुझे आप समस्त तीर्थों में सर्वोत्तम जो तीर्थ हो उसे बताओ। जो समस्त प्राणियों का पान या श्रवण करने पर उद्धार करने वाला हो ॥३॥ सनत्कुमार ने कहा—मैं समस्त तीर्थों में श्रेष्ठ परम पुण्यमय और श्राद्ध आदि में सबको तार देने वाला गया तीर्थ को बताता हूँ। यह गया तीर्थ है और सब देश में सम्पूर्ण तीर्थों से भी अधिक है। इसका तुम लोग श्रवण करो ॥४॥ ब्रह्मा के द्वारा प्रार्थित गयासुर ने क्रतु के लिये तपश्चर्या की थी। प्राप्त होने वाले उसके शिर पर धर्म ने शिला को धारण किया था ॥५॥ वहाँ पर ब्रह्मा ने याग किया था और गदाधर भी वहाँ पर स्थित थे। फल्गु तीर्थ आदि के स्वरूप से वह अहर्निश निर्भिन्न अर्थ वाला था। विप्रेन्द्र ब्रह्मादि देवों के साथ यज्ञ करने वाले ब्रह्मा ने ब्राह्मणों को गृह आदि प्रदान किये थे। वाराह श्वेत कल्प में गया याग कराया गया था ॥६ ७॥ ब्रह्मा के द्वारा अभिलषित यह क्षेत्र गया के नाम से गया—यह ख्यात हुआ था। पितृगण पुत्र नरक के भय से भीत होते हुए इसकी इच्छा किया करते हैं ॥८॥

गया यास्यति य पुत्र स नस्त्राता भविष्यति ।
गयाप्राप्तं सुतं दृष्ट्वा पितृणामुत्सवो भवेत् ।
पद्भ्यामपि जलं स्पृष्ट्वा सोऽस्मभ्यं किं न दास्यति । ६
गया गत्वान्नदाता य पितरस्तेन पुत्रिणः ।
पक्षत्रयनिवासी च पुनात्यासप्तमं कुलम् ।
नो चेत्पञ्चदशाहं वा सप्तरात्रिं त्रिरात्रिकम् ॥१०
महाकल्पकृतं पापं गयां प्राप्य विनश्यति ।
पिण्डं दद्याच्च पित्रादेरात्मनोऽपि तिलैर्विना ॥११
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।
पापं तत्सङ्गजं सर्वं गयाश्राद्धाद्विनश्यति ॥१२

आत्मजोऽप्यन्यजो वापि गयाभूमौ यदा तदा ।
यन्नाम्ना पातयेत्पिण्ड त नयेद् ब्रह्म शाश्वतम् ॥१३
ब्रह्मज्ञान गयाश्राद्ध गोगृहे मरण तथा ।
वास पु सा कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ॥१४

जो पुत्र गया को जायेगा वह ही हमारा त्राता अर्थात् उद्धार करने वाला होगा । गया मे प्राप्त होने वाले अपने पुत्र को देखकर पितरो को बहुत ही उत्सव होता है अर्थात् बडा आह्लाद हुआ करता है । अपने पैरो से भी जल का स्पर्श करके वह हमको क्या नही देगा ॥६॥ जो गया मे जाकर अन्न का दान करने वाला है पितृगण उसी से पुत्र वाले हुआ करते हैं । जो तीन पक्ष तक वहाँ निवास करने वाला होता है वह अपने सात कुलो को पवित्र कर दिया करता है । अन्यथा पन्द्रह दिन तक सात रात्रि पर्यन्त अथवा तीन रात्रि तक ही वहाँ निवास करने से गया मे प्राप्त होकर रहने वाले का महापातक कृत पाप भी विनष्ट हो जाया करता है । तिलो के बिना भी अपने पितृगण को वहाँ जो दिया करता है वह ब्रह्म हत्या–सुरापान–स्तेय (चोरी)–गुरु पत्नी का गमन और ससर्ग से समुत्पन्न सम्पूर्ण पाप गया के श्राद्ध से नष्ट हो जाते हैं ॥१०-११-१२॥ आत्मज हो या अन्यज भी हो जिस-किसी भी समय मे गया की भूमि मे जिसके नाम से पिण्ड का पातन करता है वह उसको शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त करा देता है ॥१३॥ ब्रह्म का ज्ञान–गया का श्राद्ध–गौ के गृह मे मृत्यु और कुरुक्षेत्र मे निवास ये चार प्रकार की पुरुषो की मुक्ति बताई गई है ॥१४॥

ब्रह्मज्ञानेन कि कार्य्यं गोगृहे मरणेन किम् ।
वासेन कि कुरुक्षेत्रे यदि पुत्रो गया व्रजेत् ॥१५
गयाया सर्व्वकालेषु पिण्ड दद्याद्विचक्षण. ।
अधिमासे जन्मदिने चास्तेऽपि गुरुशुक्रयो ॥१६
न त्यक्तव्य गयाश्राद्ध सिंहस्थेऽपि बृहस्पतौ ।
तथा दैवप्रमादेन प्रहतेषु ग्रहेषु च ।
पुन कर्म्माधिकारी च श्राद्धकृद् ब्रह्मलोकभाक् ॥१७

वायुदेव ने कहा—इसके आगे मैं अब अत्युत्तम गया का माहात्म्य बताता हूँ। जिसका श्रवण कर मानव समस्त पापों से विमुक्त हो जाता है। इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१॥ सूतजी ने कहा—सनकादि महान् भाग वालों से युक्त देवर्षि नारद ने सनत्कुमार से विधि के साथ प्रणाम करके पूछा था ॥२॥ नारदजी ने कहा—हे सनत्कुमार ! मुझे आप समस्त तीर्थों में सर्वोत्तम जो तीर्थ हो उसे बताओ। जो समस्त प्राणियों का पान या श्रवण करने पर उद्धार करने वाला हो ॥३॥ सनत्कुमार ने कहा—मैं समस्त तीर्थों में श्रेष्ठ परम पुण्यमय और श्राद्ध आदि में सबको तार देने वाला गया तीर्थ को बताता हूँ। यह गया तीर्थ है और सब देश में सम्पूर्ण तीर्थों से भी अधिक है। इसका तुम लोग श्रवण करो ॥४॥ ब्रह्मा के द्वारा प्रार्थित गयासुर ने क्रतु के लिये तपश्चर्या की थी। प्राप्त होने वाले उसके सिर पर धर्म ने शिला को धारण किया था ॥५॥ वहाँ पर ब्रह्मा ने याग किया था और गदाधर भी वहाँ पर स्थित थे। फल्गु तीर्थ आदि के स्वरूप से वह अहर्निश निश्चिन्त धर्म वाला था। विप्रेन्द्र ब्रह्मादि देवों के साथ यज्ञ करने वाले ब्रह्मा ने ब्राह्मणों को गृह आदि प्रदान किये थे। वाराह श्वेत कल्प में गया याग कराया गया था ॥६-७॥ ब्रह्मा के द्वारा अभिलाषित यह क्षेत्र गया के नाम से गया—यह ख्यात हुआ था। पितृगण पुत्र नरक के भय से भीरु होते हुए इसकी इच्छा किया करते हैं ॥८॥

गया यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति।
गयाप्राप्तं सुतं दृष्ट्वा पितृणामुत्सवो भवेत्।
पद्भ्यामपि जलं स्पृष्ट्वा सोऽस्मभ्यं किं न दास्यति। ९
गयां गत्वान्नदाता यः पितरस्तेन पुत्रिणः।
पक्षत्रयनिवासी च पुनात्यासप्तमं कुलम्।
नो चेत्पञ्चदशाहं वा सप्तरात्रिं त्रिरात्रिकम् ॥१०
महाकल्पकृतं पापं गयां प्राप्य विनश्यति।
पिण्डं दद्याच्च पित्रादेरात्मनोऽपि तिलैर्विना ॥११
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
पापं तत्सङ्गजं सर्वं गयाश्राद्धाद्विनश्यति ॥१२

आत्मजोऽप्यन्यजो वापि गयाभूमौ यदा तदा ।
यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं तं नयेद् ब्रह्म शाश्वतम् ॥१३

ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा ।
वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ॥१४

जो पुत्र गया को जायेगा वह ही हमारा त्राता अर्थात् उद्धार करने वाला होगा। गया में प्राप्त होने वाले अपने पुत्र को देखकर पितरों को बहुत ही उत्सव होता है अर्थात् बड़ा आह्लाद हुआ करता है। अपने पैरों से भी जल का स्पर्श करके वह हमको क्या नहीं देगा ॥६॥ जो गया में आकर अन्न को दान करने वाला है पितृगण उसी से पुत्र वाले हुआ करते हैं। जो तीन पक्ष तक वहाँ निवास करने वाला होता है वह अपने सात कुलों को पवित्र कर दिया करता है। अन्यथा पन्द्रह दिन तक सात रात्रि पर्यन्त अथवा तीन रात्रि तक ही वहाँ निवास करने से गया में प्राप्त होकर रहने वाले का महापातक इन पाप भी विनष्ट हो जाया करता है। किसी के बिना भी अपने पितृगण को वहाँ जो दिया करता है वह ब्रह्म हत्या–सुरापान–स्तेय (चोरी)–गुरु पत्नी का गमन और सत्संग से समुत्पन्न सम्पूर्ण पाप गया में श्राद्ध से नष्ट हो जाते हैं ॥१०-११-१२॥ आत्मज हो या अन्यज भी हो जिस–किसी भी समय में गया की भूमि में जिसके नाम से पिण्ड का पातन करता है वह उसको शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त करा देता है ॥१३॥ ब्रह्म का ज्ञान–गया का श्राद्ध–गौ के गृह में मृत्यु और कुरुक्षेत्र में निवास ये चार प्रकार की पुरुषों की मुक्ति बताई गई है ॥१४॥

ब्रह्मज्ञानेन किं कार्य्यं गोगृहे मरणेन किम् ।
वासेन किं कुरुक्षेत्रे यदि पुत्रो गयां व्रजेत् ॥१५

गयायां सर्वकालेषु पिण्डं दद्याद्विचक्षणः ।
अधिमासे जन्मदिने चास्तेऽपि गुरुशुक्रयोः ॥१६

न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थेऽपि बृहस्पतौ ।
तथा दैवप्रमादेन प्रहतेषु ग्रहेषु च ।
पुनः कर्म्माधिकारी च श्राद्धकृद् ब्रह्मलोकभाक् ॥१७

सकृद्गयाभिगमनं सकृत्पिण्डस्य पातनम् ।
दुर्लभं किं पुनर्नित्यमस्मिन्नेव व्यवस्थितिः ॥१८
प्रमादान्म्रियते क्षेत्रे ब्रह्मादेर्मुक्तिदायके ।
ब्रह्मज्ञानाद्यथा मुक्तिर्लभ्यते नात्र संशयः ॥१९
कीटकादिमृतानाञ्च पितॄणां तारणाय च ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यं सुविचक्षणैः ॥२०
ब्रह्मप्रकल्पितान्विप्रान्हव्यकव्यादिनाऽर्च्चयेत् ।
तैस्तुष्टैस्तोषिताः सर्व्वा पितृभिः सह देवता ॥२१

ब्रह्म के ज्ञान से क्या प्रयोजन है और गौ के घर मे मृत्यु होने से भी क्या लाभ है तथा कुरुक्षेत्र के धाम मे निवास से भी कोई सिद्धि नहीं होती है यदि पुत्र गया में जाकर श्राद्ध करता है । अर्थ यह है कि गया मे पुत्र के जाकर श्राद्ध करने में पूर्णतया सद्गति हो जाती है ॥१५॥ गया में विद्वान् पुरुष को सभी समयों मे पिण्ड दान करना चाहिए । चाहे अधिमास हो या जन्म दिन हो और भले ही गुरु और शुक्र का अस्त भी होगया हो—सभी कालों मे पिण्ड दान करना चाहिए ॥१६॥ सिंह राशि पर बृहस्पति के स्थित होने पर भी गया मे जाकर श्राद्ध का त्याग नहीं करना चाहिये । दैव के प्रमाद से ग्रहण होने तथा ग्रहों के होने पर भी श्राद्ध करने वाला पुत्र कर्म का अधिकारी और ब्रह्मपोष का सेवन करने वाला होता है ॥१७॥ एकबार गया मे अभिगमन करना और एकबार पिण्ड का पातन करना ही इतना श्रेयस्कर होता है कि उसे फिर पुत्र भी दुर्लभ नहीं है और नित्य ही इसमें व्यवस्थिति हो तो कहना ही क्या है ॥१८॥ ब्रह्मादि को मुक्ति देने वाले क्षेत्र मे प्रमाद से ही मृत्यु हो जाती है तो जिस प्रकार ब्रह्म ज्ञान से मोक्ष होता है वैसी ही मुक्ति होती है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१९। कीटकादि मृतों को और पितृगण को तारण के लिये सम्पूर्ण प्रयत्नों के द्वारा सुविज्ञ लोग पुरुषों को गया श्राद्ध करना ही चाहिये ॥२०॥ ब्रह्म प्रकल्पित विप्रों का हव्य–कव्यादि के द्वारा अर्चन करना चाहिए । उन विप्रों के तुष्ट होने से समस्त पितरों के साथ देवता परम तोषित हो जाया करते हैं ॥२१॥

मुण्डन चोपवासश्च सर्व्वतीर्थेष्वयं विधिः ।
वर्जयित्वा कुरुक्षेत्र विशाला विरजा गयाम् ॥२२
दण्ड प्रदर्शयेद्भिक्षुर्गया गत्वा न पिण्डदः ।
दण्ड न्यस्ता विष्णुपदे पितृभि सह मुच्यते ॥२३
न दण्डी किल्विष धत्ते पुण्य वा परमार्थत ।
अत सर्व्वा क्रिया त्यक्त्वा विष्णु ध्यायति भावुक ॥२४
सन्यसेत्सर्व्वकर्म्माणि वेदमेक न सन्यसेत् ।
मुण्ड कुर्य्याच्च पूर्व्वेऽस्मिन्पश्चिमे दक्षिणोत्तरे ॥२५
सार्द्ध क्रोशद्वय मान गयेति ब्रह्मणेरितम् ।
पञ्चक्रोश गयाक्षेत्र क्रोशमेक गयाशिर ॥२६
तन्मध्ये सर्व्वतीर्थानि त्रैलोक्ये यानि सन्ति वै ।
श्राद्धकृद्यो गयाक्षेत्रे पितृणामनृणो हि सः ॥२७
शिरसि श्राद्धकृद्यस्तु कुलाना शतमुद्धरेत् ।
गृहाच्चलितमात्रेण गयाया गमन प्रति ।
स्वर्गा रोहणसोपान पितृणाञ्च पदे पदे ॥२८

समस्त तीर्थों मे मुण्डन तथा उपवास करने की विधि है किन्तु कुरुक्षेत्र और विरजा विशाला गया का त्याग करके ही यह विधि होती है ॥२२॥ भिक्षु को गया मे जाकर दण्ड का प्रदर्शन करना चाहिए और पिण्ड नही देना चाहिए। विष्णु पद मे दण्ड के न्यस्त करने ही से वह पितृगण के साथ मुक्त हो जाता है ॥२३॥ दण्डी को कोई पाप नही होता है और परमार्थ से उसे पुण्य भी नहीं होता है। अतएव समस्त क्रियाओं का त्याग करके भावुक को विष्णु का ध्यान करना ही श्रेयस्कर है ॥२४॥ समस्त कर्मों का तो सन्यासी को त्याग कर देना चाहिये किन्तु एक वेद का त्याग नहीं करना चाहिये। पूर्व दिशा मे मुण्ड करे और पश्चिम तथा दक्षिणोत्तर मे ढाईकोस तक गया का मान होता है—ऐसा ब्रह्मा ने कहा है। गया का पाँच कोस तक क्षेत्र है और एक कोस पर्यन्त गया का शिर होता है ॥२५-२६॥ उसके मध्य मे समस्त तीर्थ हैं जोकि इस त्रैलोक्य मे हैं। गया के क्षेत्र मे जो श्राद्ध करने वाला पुरुष है वह पितरो

के ऋण से मुक्त हो जाया करता है ॥२७॥ जो गिर मे श्राद्ध करता है वह अपने सौ कुलों का उद्धार किया करता है। जब वह घर से गया को चलना आरम्भ करता है उसी समय से पितरों के स्वर्गारोहण का काय प्रारम्भ करता है और उसके एक २ कदम चलने में स्वग का सोपान बन जाता है ॥२८॥

पदे पदेऽश्वमेधस्य यत्फलं गच्छतो गयाम् ।
तत्फलञ्च भवे नूनं समग्रं नात्र सशय ॥२९
पायसे नापि चरुणा सक्तुना पिष्टकेन वा ।
तण्डुलं फलमूलाद्यैर्गयाया पिण्डपातनम् ॥३०
तिलकल्केन खडेन गुडेन सघृतेन वा ।
केवलेनव दध्ना वा ऊर्जेन मधुनाऽथ वा ॥३१
पिण्याक सघृत खड पितृभ्योऽक्षयमित्युत ।
इज्यते वात्तव भोज्य हविष्या न मुनीरितम् ॥३२
एकत सव्ववस्तूनि रसवन्ति मधूनि हि ।
स्मृत्वा गदाधराड घ्र यञ्च फल्गुतोयाम्बु वैकत ॥३३
पिंडासन पिंडदान पुन प्रत्यवनेजनम् ।
दक्षिणा चान सङ्कल्पस्तीर्थश्राद्ध ष्वय विधि ॥३४
नावाहन न दिग्बन्धो न दोषो दृष्टिसम्भव ।
सकारुण्येन मत्त व्य तीर्थ श्राद्ध विचक्षण ॥३५

गया को गमन करने वाले के एक एक पद म अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। उसको सम्पूर्ण फल अवश्य ही मिलता है—इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥२९॥ पायस से–चरु–सत्तू–तण्डुल और फल मूलादि के द्वारा गया म पिण्ड का पातन करना चाहिए ॥३०॥ तिलों का कल्क–खाँड गुड और घृत अथवा केवल दही या ऊर्ध्व मधु के द्वारा पिण्ड पातन करे। पिण्याक तथा सघृत खाँड पितरों को वहा अक्षय होता है। अथवा ऋतु का मुनीरित हविष्यान्न भोज्य से यजन किया जाता है ॥३१ ३२। एक ओर रसवाली समस्त वस्तुयें तथा मधु रक्खे और गदाधर के चरण कमल का स्मरण करके एक ओर फल्गु नीर्थ का जल रक्खे ॥३३॥ पिण्डासन पिण्डदान और फिर

प्रत्यवने जन–दक्षिणा और अन्न का सङ्कल्प करे—यह ही तीर्थों के श्राद्ध में विधि होती है ॥३४॥ वहाँ पर न तो कोई आवाहन ही होता है और न दिग्बन्ध किया जाता है। दृष्टि से उत्पन्न होने वाला भी दोष वहा नहीं होता है। विचक्षण पुरुषों को कारुण्य के सहित तीर्थ श्राद्ध करना चाहिए ॥३५॥

अन्यथावाहिता काले पितरो यान्त्यमु प्रति।
तीर्थे सदा वसन्त्येते तस्मादावाहनं न हि ॥३६
तीर्थश्राद्ध प्रयच्छद्भिः पुरुषैः फलकाङ्क्षिभिः।
काम क्रोध तथा लोभ त्यक्त्वा कार्य्या क्रियाऽनिशम् ॥३७
ब्रह्मचार्य्येकभोजी च भूशायी सत्यवाक्शुचि।
सर्व्वभूतहिते रक्तः स तीर्थफलमश्नुते ॥३८
तीर्थान्यनुसरन्धीर पापण्डं पूर्व्वतस्त्यजेद्।
पापण्ड स च विज्ञेयो यो भवेत्कामकारत ॥३९
तीर्थेषु ये नरा धीरा कर्म कुर्व्वन्ति तद्गता।
यदा ब्रह्मादिदो वेधं वस्तु चानन्यचेतस।
प्रविशन्ति परेशाख्य ब्रह्म ब्रह्मपरायणा ॥४०
यास्ते वैतरणी नाम नदी त्रैलोक्यविश्रुता।
साऽवतीर्णा गयाक्षेत्रे पितृणा तारणाय वै।
स्नातो गोदो वैतरण्या त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत् ॥४१
तथाऽक्षयवट गत्वा विप्रान्सन्तोषयिष्यति।
ब्रह्मकल्पितान्विप्रान्हव्यकव्यादिनाऽर्चयेत्।
तैस्तुष्टैस्तोषिता सर्व्वा पितृभि सह देवता ॥४२
गयाया न हि तत्स्थान यत्र तीर्थं न विद्यते।
सान्निध्य सर्व्वतीर्थाना गयातीर्थं ततो वरम् ॥४३
मीने मेषे स्थिते सूर्य्ये कन्यायां कार्मुके घटे।
दुर्ल्लभं त्रिषु लोकेषु गयायां पिंडपातनम् ॥४४
मकरे वर्त्तमाने च ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययो।
दुर्ल्लभं त्रिषु लोकेषु गयाश्राद्धं सुदुर्ल्लभम् ॥४५

गयायां पिंडदानेन यत्फलं लभते नरः ।
न तच्छक्यं मया वक्तुं कल्पकोटिशतैरपि ॥४६

अन्य स्थानो मे आवाहन किए हुए ही पितृगण श्राद्ध करने वाले के समीप आया करते हैं किन्तु तीर्थ मे तो ये सर्वदा ही निवास किया करते हैं अतएव वहा इनका आवाहन नही किया जाता है ॥३६॥ तीर्थों मे श्राद्ध देने वाले पुरुष जो फल की आकाक्षा रखते हैं उनको काम–क्रोध और लोभ का त्याग करके ही निरन्तर श्राद्ध की क्रिया करनी चाहिए ॥३७॥ ब्रह्मचारी–एक बार भोजन करने वाला–भूमि पर शयन करने वाला–सत्यवक्ता–पवित्र तथा समस्त प्राणियो के हित मे रति रखने वाला पुरुष तीर्थ के फल को प्राप्त किया करता है ॥३८॥ तीर्थों का अनुसरण करने वाले वीर पुरुष को चलन के पहले ही से पाषण्ड का त्याग करना चाहिए । जो कामना की भावना से किया जाता है वही पाषण्ड समझना चाहिए ॥३९॥ जो पुरुष परम धीर होकर वहा तीर्थों मे पहुच कर अपना तीर्थोचित कर्म किया करते है जिस तरह ब्रह्म के ज्ञाता लोग प्रसन्न चित्त होते हुए जानने के योग्य वस्तु मे ब्रह्म मे जो कि परिहास्य है, ब्रह्म परायण होकर प्रवेश किया करते हैं उसी भाँति तीर्थों के सेवी को भी करना चाहिए ॥४०॥ जो तीनो लोकों मे प्रसिद्ध वैतरणी नदी है वह गया के क्षेत्र मे पितरो के तारने के लिए अवतीर्ण हो जाती है । गोद अर्थात् गौ का दान करने वाला वैतरणी मे स्नान करके अपने इक्कीस कुलों का उद्धार कर देता है ॥४१॥ उसी भाँति अक्षय पर जाकर विप्रों को सन्तोष देना चाहिए । ब्रह्म कल्पित विप्रों को हव्य कव्यादि से अर्चन करे । तुष्ट हुए उनके द्वारा समस्त देवगण पितरो के साथ तोषित हो जाया करते हैं ॥४२॥ गया मे ऐसा कोई भी स्थान नही है जहा कोई तीर्थ न विराजमान हो । वहा गया मे तो सभी तीर्थों का सान्निध्य होता है अतएव वह परम श्रेष्ठ तीर्थ है ॥४३॥ मीन–मेष–कन्या–धन और कुम्भ पर सूर्य के स्थित होने पर गया मे जाकर पिण्ड का पातन करना तीनो लोको मे दुर्लभ कार्य होता है ॥४४॥ मकर के वर्त्तमान होने पर तथा चन्द्र एवं सूर्य के ग्रहण के समय मे गया मे श्राद्ध करना तीनो लोको मे परम दुर्लभ कार्य है ॥४५॥ गया मे पिंड दान करने से जिस फल को

प्राप्ति मानव किया करता है उसको मैं कल्प कोटि शत के समय में भी वर्णन नहीं कर सकता हूँ ॥४६॥

यज्ञांश्चक्रे गयो राजा बह्वन्ने बहुदक्षिणम् ।
यत्र द्रव्य समूहाना सख्या वक्तुं न शक्यते ॥४७
प्रशसन्ति द्विजास्तृप्ता देशे देशे सुपूजिता ।
गय विष्णवादयस्तुष्टा वर ब्रूहीति चाब्रुवन् ॥४८
गयस्तान्प्रार्थयामास ह्यभिशप्ताश्च ये पुरा ।
ब्रह्मणा ते द्विजा पूता भवन्तु क्रतुपूजिता ॥४९
गयापुरीति मन्नाम्ना ख्याता ब्रह्मपुरी यथा ।
एवमस्तु वर दत्वा चान्तर्दधु सुरा ॥५०

सनत्कुमार जी बोले—नारदजी ! किसी समय राजा गय ने बहुत अन्न और बड़ी-बड़ी दक्षिणाओं वाले इतने यज्ञ किये कि उनमें खर्च होने वाले द्रव्य की सख्या की गणना कर सकना सम्भव नहीं ॥४७॥ देश-देश के ब्राह्मण भली प्रकार पूजे जाकर और पूर्ण तृप्त होकर वहाँ से गये और सर्वत्र राजा गय की प्रशंसा करते रहे। राजा के इस महान् पुण्य कार्य से सन्तुष्ट होकर विष्णु आदि देवगणों ने राजा से वर माँगने को कहा ॥४८॥ राजा ने उनसे प्रार्थना की कि यदि आप वर देना चाहते हैं तो गया के जिन ब्राह्मणों को प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने शाप दिया था उन्हें उससे मुक्त कर दीजिये और वे यज्ञों में पूजित होकर पवित्र हो जायें ॥४९॥ यह गया पुरी मेरे नाम पर ब्रह्मपुरी की तरह पवित्र और विख्यात हो जाय। देवगण 'ऐसा ही' कहकर उनकी प्रार्थनाओं को स्वीकार करके अन्तर्धान होगये ॥५०॥

यत्र तत्र स्थितो देवा ऋषयाऽपि जितेन्द्रियाः ।
श्राद्ध गदाधर ध्यायञ्छ्राद्धपिण्डादिदानत ॥५१
कुलाना शतमुद्धृत्य ब्रह्मलोक नयेत् पितृन् ।
गया गयो गया दित्यो गायत्री च गदाधर ॥५२
गया गयासुरश्चैव षडेते मुक्तिदायका ।
गयाख्यानमिद पुण्य य पठेत्सतत नरः ॥५३

शृणुयाच्छ्रद्धया यस्तु स याति परमां गतिम् ।
पाठयेद्वा गयाख्यानं विप्रेभ्यः पुण्यकृन्नर ॥५४
गयाश्राद्धं कृतं तेन कृतं तेन सुनिश्चितम् ।
गयाया महिमानश्च ह्यभ्यसेद्यः समाहितः ॥५५
तेनेष्टं राजसूयेन अश्वमेधेन नारद ।
लिखेद्वा लेखयेद्वापि पूजयेद्वापि पुस्तकम् ।
तस्य गेहे स्थिरा लक्ष्मीः सुप्रसन्ना भविष्यति ॥५६

इस पुरी में स्थान-स्थान पर देवताओं के अतिरिक्त जितेंद्रिय ऋषि भी विराजमान हैं। आदि गदाधर देव का ध्यान करके यहाँ श्राद्ध और पिण्डदान करने वाला सौ पीढ़ियों का उद्धार करके उनको स्वर्ग का अधिकारी बना देता है। गयागय, गयादित्य गायत्री, गदाधर, गया और गयासुर—ये छः 'गया' में मुक्ति प्रदान करने वाले हैं। इस पुण्यदायक गयाख्यान को जो व्यक्ति सदा पढ़ता रहता है ॥५१-५२ ५३॥ अथवा जो पुण्यशाली इसे श्रद्धापूर्वक सुनता है और ब्राह्मणों से इसका पाठ कराता है वह निश्चित रूप से गया श्राद्ध करता है। जो मनुष्य अन्तःकरण से महातीर्थ गया की महिमा का चिन्तन करता है हे नारद, वह मानो राजसूय और अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान ही कर लेता है। जो गयाख्यान की पुस्तक को स्वयं लिखता है अथवा दूसरे से लिखाता है या पुस्तक की पूजा करता है। उसके घर में लक्ष्मी जी स्थिर और प्रसन्न रहती हैं ॥५४ ५५-५६॥

"वायुपुराण का चतुर्थ चरण (उपसंहार) में गयामाहात्म्य समाप्त"

॥ वायु पुराण समाप्त ॥